समर्पण

'इद दयानन्दाय श्रद्धानन्दाय इदन्न मम' की त्याग भावना से सदैव अध्यापन कार्य मे निरत मेरे गुरुदेव। डॉ चन्द्र भानु सीताराम जी सोनवणे वेदालकार को यह कृति सादर समर्पित

-कुशलदेव कापसे

दो शब्द

प इन्द्र विद्यावाचस्पति – कृतित्व के आयाम" शीर्षक पुस्तक श्रद्धानन्द शोध संस्थान के द्वारा प्रकाशित की जा रही है। प. इन्द्र जी का स्मरण करते ही बीसवीं शताब्दी के उथल–पुथल भरे भारत का चित्र सामने आ जाता है। राजनीति अपने आदोलनों से राष्ट्र के कण–कण को आन्दोलित कर रही थी। हर हृदय की धडकन उसके साथ धडकती थी। धार्मिक क्षेत्र मे दयानन्द का सूर्य राष्ट्र को नवीन जीवन–प्राण प्रदान कर अभी अस्ताचल को गया था पर उसके शिष्यों के रूप में आकाश में लाली अभी विद्यमान थी। सामाजिक क्षेत्र में आर्यसमाज की स्थापना हो चुकी थी, वह एक नयी चेतना, नयी शक्ति केन्द्र के रूप मे सामाजिक जागरण का डिण्डिम नाद कर रहा था। बचपन मे ऑख खोलते ही बालक इन्द्र ने इन परिस्थितियो को बडे निकट से देखा। आकाश तुल्य वृहद् मानव के रूप मे पिता की विभिन्न गतिविधियो ने उन्हे यथार्थ को देखने व समझने का सामर्थ्य प्रदान किया था। फलत बचपन मे जो सस्कार बद्ध मूल हुए, जिस नैतिक चेतना का उदय हुआ वह जीवन भर उनका पाथेय बना रहा।

छात्र जीवन मे इन्द्र जी का यह विचार दृढ हो गया था कि "दासों का धर्म कभी नहीं फैलता। अत आर्यसमाज को स्वाधीनता प्राप्ति में योगदान करना चाहिए"। उन्होनें छात्र जीवन मे ही लिखा था–

ह मातृभूमि तेरे चरणो में सिर नवाऊँ।
मैं भक्ति भेट अपनी सेवा में तेरी लाऊँ।।
तेरे ही काम आऊँ, तेरा ही गीत गाऊँ।
मन और देह तुझ पर बलिदान मैं चढाऊँ।।

उन्होने अपनी डायरी मे लिखा है "अब तो समय आ गया है कि सर्वतोभावेन देश सेवा में लग जाऊँ और अपना जीवन सार्वजनिक जीवन को अर्पण कर दूँ। आर्यसमाज तथा अन्य उपयोगी कार्यों मे योग दूँगा तो वह भी देश–सेवा मानकर दूँगा .. अपने कर्तव्य पथ पर निःशंक भाव से चलते जाना ही धर्म और नीति की दृष्टि से उत्तम समझूँगा" इन सस्कारों के स्नेह से यह दीप झंझावातों मे भी निष्कम्प होकर प्रकाश देता रहा।

बचपन मे बडे भाई हरिश्चन्द्र के साथ मिलकर जो हस्तलिखित पत्रिका निकाली थी वह ही मानो पत्रकारिता का मूल बन गई, और कालान्तर में सत्यवादी साप्ताहिक, सद्धर्म प्रचारक, दैनिक वैभव, विजय, अर्जुन, नवराष्ट्र, वीर अर्जुन, जनसत्ता, के सम्पादक के रुप मे फली। अपने गुरुवर ऋषि दयानन्द की हिन्दी सेवा से, पिता–पुत्र ने जो प्रेरणा ली थी उसी के फलस्वरुप स्वामी श्रद्धानन्द ने सद्धर्म प्रचारक के रूप मे जो बीज दिल्ली की ऊसर (उर्दू प्रधान होने से) जमीन मे डाला था वह अकुरित तो तभी हो गया था परन्तु पुत्र (पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति) ने अपने श्रम से उसे सींचा था परिणामत उपरोक्त समाचार पत्र दिल्ली में पनपने लगे थे। "अर्जुन" मे लिखा जाने वाला "गाण्डीव के तीर" नामक स्तम्भ लोगों के लिए आकर्षण का केन्द्र बन गया था।

अर्जुन पत्र का ध्येय वाक्य "अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यम् न पलायनम्" उनके जीवन का मूल–मंत्र था। समाज मे रहते हुए नाना प्रकार के वाद–विवादो विक्षोभों और उग्र चर्चाओ के झझावातो में भी वे कभी विचलित नहीं होते थे। ऐसे अवसरों पर उनकी प्रज्ञता, धीरता, गम्भीरता के साथ दार्शनिक सौम्यता नितान्त अभिनन्दनीय होती थी। उनकी पत्रकारिता उनका व्यवसाय नहीं था। वह तो राष्ट्र

सेवा का माध्यम था उनका लेखन उनका कर्तव्य था। १६ जोलाई १६४८ के वीर अर्जुन मे उन्होने लिखा था *"किसी भी शासन व्यवस्था की सफलता की मुख्य कसौटी यह है कि उसमे प्रजा सुखपूर्वक* जीवन व्यतीत करे, उसे चोरो और डाकुओं का भय न हो, लोग दुर्भिक्ष और बीमारी जैसी आपत्तियो से बचे रहे और उन्नति कर सके। यह राज्य का मुख्य कर्तव्य है और यही उत्तम राज्य का चिन्ह है। यदि यह है तो सब कुछ है, यदि यह नहीं तो शेष सब दिखावा है"। क्या यह सब आज भी प्रासंगिक नही है ?

वे जीवन भर लेखन कार्य मे व्यस्त रहे। महाभारत की शैली मे उन्होने भारतेतिहयम महाकाव्य लिखा। वे उग्र राष्ट्रीयता के दिन थे, तिलक और लाजपतराय का पडित जी पर बहुत प्रभाव पडा। परिणामत: उन्होने नेपोलियन बोनापार्ट, प्रिन्स बिसमार्क, गैरीबाल्डी आदि विदेशी क्रान्तिकारियों की जीवनिया लिखीं तो भारतीय क्रान्तिकारी भी उनके सम्मुख थे उन्होंने महर्षि दयानन्द का जीवन–चरित्र, प जवाहरलाल नेहरु का जीवन चरित्र मेरे पिता नाम से स्वामी श्रद्धानन्द जी की जीवनी, लोकमान्य तिलक, यतीन्द्रनाथ दास का जीवन–चरित्र के साथ, मैं इनका ऋणी हूँ मे अनेक लोगो की जीवन झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं।

भारतीय मनीषा के प्रतीक श्री इन्द्र ने "उपनिषदो की भूमिका", "भारतीय सस्कृति का प्रवाह", "सस्कृत साहित्य का अनुशीलन", "सम्राट रघु", "ईशोपनिषद्भाष्य, "वैदिक देवता" जैसी पुस्तके लिखीं, तो राष्ट्र की उन्नति, राष्ट्रीयता का मूलमन्त्र, स्वतत्र भारत की रुपरेखा, जीवन सग्राम, जैसी राजनीति की पुस्तके भी लिखीं। मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण", "भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य का उदय", "भारत के स्वाधीनता सग्राम का इतिहास", "आर्यसमाज का इतिहास", "काग्रेस का इतिहास", जैसी इतिहास से सम्बन्धित पुस्तके समाज को प्रदान कीं। इन सब से हटकर कुछ उपन्यास भी पंडित जी ने लिखे जिनमे "अपराधी कौन", "शाह आलम की आँखे", "सरला", सरला की भाभी", 'आत्म बलिदान' व 'गुलाम कादिर' विभिन्न पृष्ठभूमियो पर लिखे गए हैं। पडित जी के सस्मरण भी बहुत महत्वपूर्ण कृतियॉ हैं जिसमे "दिल्ली के वे स्वर्णिम बीस दिन", "मै चिकित्सा के चक्रव्यूह से कैसे निकला", "मेर नौकरशाही जेल के अनुभव", "हमारे कर्मयोगी राष्ट्रपति" हैं।

स्वतत्र भारत की कल्पना और उसके दिशा निर्देश भी पडित जी ने दिये। उनके शीर्षक थे —– काग्रेस की मौलिक भूल, काग्रेस की दूसरी भूल, राष्ट्र के नेताओ की दूसरी परीक्षा, काश्मीर पर सकट, पाकिस्तान भारत पर आक्रमण कर सकता है, भारतवासियो को सशस्त्र बनाओ, नेहरु जी से निवेदन, साम्प्रदायिकता का बीजनाश आदि मे चेतावनी भी थी। उन्होने कहा था – "मेरा राष्ट्र और राष्ट्र के नेताओ से निवेदन है वे समय रहते सचेत होकर भारत की उज्ज्वल सस्कृति को अपनाएँ। ये लेख यद्यपि "अर्जुन" के लिए लिखे गए, सम्पादकीय के अश है किन्तु इनका ऐतिहासिक महत्व है। इनमे कही गई बाते आज भी उसी रूप मे कही जा सकती हैं। इन सबसे यह स्पष्ट हो जाता है कि वे केवल कागज काले करने वाले लेखक या व्यावसायिक पत्रकार अथवा केवल लफ्फाजी करने वाले राजनीतिज्ञ, समय काटने के लिए चिन्तन करने वाले चिन्तन, यथार्थ से परे रहने वाले दार्शनिक नहीं थे। वे राष्ट्र के मार्गदर्शक थे। राष्ट्रीयता की भावना को उदबुद्ध करने में उनके लेखों का बहुत बडा योगदान था। वे लोकमत को प्रभावित करने मे सक्षम थे।

पं. इन्द्र जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। गुरुकुल से स्नातक होने के उपरान्त, अपने समय के प्रकाण्ड विद्वान महोपाध्याय पंडित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी से वर्णव्यवस्था पर शास्त्रार्थ हुआ था जिसमें इन्द्र जी की प्रौढ तर्क शैली तथा गम्भीर शास्त्र ज्ञान से उन्हें विजय श्री प्राप्त हुई। राजनीति के साथ ही उपनिषदों पर भी उन्होंने कलम चलाई। वेदों का भाष्य लिखने का भी उनका विचार था जो मन में ही रह गया। वे सहृदय कवि भी थे। अनुष्टुप छन्द में उन्होने भारतेतिहयम नामक

महाकाव्य की रचना की थी। उनकी हिन्दी गीतिका महात्मा गाधी के आश्रम की प्रार्थना बन गई थी। पं. इन्द्र जी यदि पत्रकार न होते तो वे एक सफल अध्यापक होते। गुरुकुल मे समय–समय पर उन्होंने यह कार्य किया भी है, एक सफल अध्यापक के सभी गुण उनमे विद्यमान थे।

वे जीवन भर विविध कार्यो मे व्यस्त रहे। वे आर्यसमाज के दिशानिर्देशकों में थे और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्यकर्ता प्रधान थे। गुरुकुल कागडी के प्रोफेसर एव मुख्याधिष्ठाता थे। राज्यसभा के सदस्य थे। यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन के सलाहकार थे, भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय की विश्वकोष परामर्श ममिति के सदस्य थे, दिल्ली स्वदेशी सघ के प्रधान थे, अस्पृश्यता निवारक लीग के जनरल सेक्रेटरी थे, हिन्दी साहित्य सम्मेलन व नागरी प्रचारिणी सभा आदि उनके प्रमुख कार्य थे। खराब स्वास्थ्य के बावजूद इतनी अधिक जिम्मेदारियॉ उनके व्यक्तित्व की क्षमताओ की अभिव्यक्ति मात्र हैं। वे दृढ चरित्र के शील एव प्रज्ञा के धनी महापुरुष थे। जिन्हे लोभ या भय विचलित नहीं कर सकते थे। प्रतिष्ठा के झौंके जिन्हे आनन्द मे उद्वेलित नहीं करते थे तो असफलताएँ उन्हे निराश नहीं करती थीं। वे दैन्य व पलायन दोनो से दूर थे। इन्द्र जी ने अपने पिता की उज्ज्वल परम्पराओ को कभी विस्मृत नहीं होने दिया।

किसी भी बहुमुखी प्रतिभा के लेखक की सम्पूर्ण कृतियो के साथ न्याय कर पाना सहज नहीं होता फिर जिनकी कृतियो की सख्या भी पर्याप्त हो। प्रस्तुत पुस्तक श्री कुशलदेव शकर देवकापसे का अत्यन्त श्रम साध्य कार्य है। इस ग्रन्थ मे प इन्द्र जी के सवाद, भाषा, शैली, सस्मरण सभी को उचित रूप मे प्रस्तुत किया गया है। यह लेखक की योग्यता एव क्षमता का प्रतीक है। मैं उनकी इस कृति के लिए हृदय से धन्यवाद देता हूँ और उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय के श्रद्धानन्द शोध एव प्रकाशन सस्थान के निदेशक प्रो भारत भूषण विद्यालकार को इस सुकृति के प्रकाशन हेतु बधाई।

डॉ. धर्मपाल
कुलपति
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

प्राक्कथन

स्वाधीनता पूर्वकाल मे लेखनी और वाणी द्वारा अन्यायी विदेशी शासन के विरुद्ध जनमत तैयार करने और उनकी राज्य–व्यवस्था की कुटिल कूटनीति से प्रजा को सुपरिचत कराने तथा जन–मन मे लुप्त हो रहे राष्ट्राभिमान की ज्योति जलाने का ध्येय श्री इन्द्र विद्यावाचस्पतिके सामने सदैव ही रहा एक ओर वे जीवनी, सस्मरण, उपन्यास, निबन्ध, पत्रकारिता आदि साहित्य की विविध विधाओ से स्वधर्म स्वभाषा और स्वराज्य के विषय मे जन–मन मे स्वाभिमान निर्माण कर रहे थे, तो दूसरी ओर गभीरता से अपने सामाजिक एव राष्ट्रीय सार्वजनिक जीवन मे आये दोषो के निवारण करने की मनोभूमिका भी तैयार कर रहे थे स्वाधीनता के पश्चात् उनकी लेखनी और वाणी का लक्ष्य स्वराज्य को सुराज्य मे परिणत करने तथा भारतीय सस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने की ओर केन्द्रित रहा सन् १६११ से १६४७ तक जिन प्रतिकूल परिस्थितियो मे उन्होने विविध प्रकार से जन–जागरण कर राष्ट्राभिमान को जागृत करने का कठोर कार्य किया, उसे ध्यान मे लाते ही श्रद्धा से उनके सामने मस्तक नत हो जाता है

यह श्री विद्यावास्पति के जीवन और साहित्य के अन्वेषण और विश्लेषण का एक नम्र प्रयत्न है उनका साहित्य और व्यक्तित्व इतना विशाल और बहुमुखी है कि समस्त पक्षो से उसका अन्वेषण करने का, और उनके व्यक्तित्व के समस्त पहलुओ का मूल्याकन करने का प्रयत्न मानो कालिदास के कथनानुसार 'तितीर्षुदुस्तर मोहादुडपेनास्मिसागरम्' अर्थात् 'एक छोटी–सी नौका द्वारा प्रचड सागर को पार करने जैसा है' उसमे भी नान्देड–औरगाबाद जैसे महाराष्ट्रीय सुदूर स्थान पर रहकर अन्वेषण का यह प्रयत्न अत्यन्त ही कठिन था, पर पुनरपि यथोपलब्ध परिस्थिति मे विद्याावाचस्पति जी के व्यक्तित्व को समझने और उसे प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है एतदर्थ उनके उपलब्ध साहित्य का तटस्थ भूमिका से अध्ययन किया गया है उनका समस्त साहित्य मुझे प्रयत्न करने पर भी प्राप्त नही हो पाया, अत इस ग्रन्थ की कुछ अपनी सीमाये और विवशताये है, जिनसे मै सुपरिचित हूँ मुझे इस बात का सन्तोष है कि इस ग्रन्थ के कारण श्री विावाचस्पति के वैचारिक विश्व मे रहते हुए मेरा काल बहुत ही सुखपूर्वक व्यतीत हुआ

प्रस्तुत ग्रन्थ को ११ अध्यायो मे विभाजित किया गया है प्रथम अध्याय मे विद्यावाचस्पति जी के युगीन परिवेश का विश्लेषण किया है उनके साहित्य की पृष्ठभूमि के रुप मे उनके युग की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक परिस्थितियो का प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत किया गया है द्वितीय अध्याय मे विद्यावाचस्पति जी के जीवनी और व्यक्तित्व के विविध पक्षो का उद्घाटन किया है सक्षिप्त जीवन–परिचय के साथ गुरुकुल, कॉग्रेस, भारतीय स्वाधीनता सग्राम, आर्यसमाज, हैदराबाद मुक्ति सग्राम, हिन्दी–प्रचार आदोलन मे उनका जो इतरेतराश्रय सबध रहा है, उसे स्पष्ट किया है तृतीय अध्याय मे विद्यावाचस्पति जी के सस्मरण साहित्य का विवेचन है उन्होने राजनीतिज्ञ, समाज–सेवी और साहित्यकारो के विषय मे हृदयस्पर्शी सस्मरण साहित्य की रचना की है इस अध्याय मे सस्मर्ण्य का चरित्राकन, संस्मरणकार का व्यक्तित्व, परिवेश, विचारधारा, उद्देश्य की दृष्टि से इस अध्याय मे उनकी जीवनीयो का विवेचन किया है पचम अध्याय मे वर्ण्य विषय के आधार पर श्री विद्यावाचस्पति लिखित उपन्यासो का ऐतिहासिक–सामाजिक स्तर पर वर्गीकरण कर कथावस्तु पात्र व चरित्र–चित्रण सवाद, देश–काल व भाषा शैली की दृष्टि से परीक्षण किया गया है। षष्ठ अध्याय मे श्री विद्यावाचस्पति का एक पत्रकार के रूप मे विवेचन है दिल्ली की हिन्दी पत्रकारिता

के तो वे जनक थे उन्हे पत्रकारिता की ओर प्रेरित करने वाली प्रेरणा–शक्तियो के विवेचन के साथ उनके पत्रो के अतरग एव बहिरग स्वरूप का भी विश्लेषण किया है इस अध्याय मे हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र मे उनके अप्रतिम योगदान की भी चर्चा की गई है सप्तम अध्याय मे 'रघुवश', किरातार्जुनीय' और 'ईशोपनिषद्' नामक सुप्रसिद्ध कालजयी सस्कृत ग्रन्थो का विद्यावाचस्पति जी ने जो हिन्दी मे अनुवाद किया है, उसका उनकी अनुवाद–प्रक्रिया के साथ, सोदाहरण मूल्याकन किया गया है इसी के साथ उनके सफल अनुवाद व भाष्यकार रूप को भी स्पष्ट किया है अष्टम अध्याय मे विद्यावाचस्पति जी की ऐतिहासिक दृष्टि व सरस इतिहास लेखन शैली के विवेचन के साथ उनके द्वारा लिखित राजनीति विषयक रचनाओ का भी मूल्याकन किया है नवम अध्याय मे विद्यावाचस्पति जी द्वारा विरचित भारतीय सस्कृति व तद्विषयक कतिपय अन्य ग्रन्थो का विवेचन किया गया है इसमे भारतीय सस्कृति की विशेषता, भारतीय सस्कृति का सर्वोच्च काल, भारत मे पश्चिमी सस्कृति का प्रवेश, और विदेशो मे भारतीय सस्कृति के विस्तार की चर्चा भी की गई है दशम अध्याय मे श्री विद्यावाचस्पति द्वारा रचित निबध, काव्य व नाट्यविधा से सबद्ध प्रकीर्ण रचनाओ के आधार पर उनकी निबन्धकार, कवि और नाटककार के रूप मे जो छवि उभरी है, उसे स्पष्ट करने का प्रयास किया है एकादश अध्याय मे विद्यावाचस्पति जी की सूक्तियो, मुहावरो, कहावतो व अलकारो से सुसज्जित, सस्कृत–तत्सम शब्दो के चोगे व अरबी–फारसी की शब्द सम्पदा की ओढनी से मण्डित व प्रसाद–उद्धरणदि शैलियो से विभूषित, भाषा–शैली का मूल्याकन किया गया है उपसहार मे श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति के सम्पूर्ण साहित्य का एक सश्लिष्ट मूल्याकन किया है साथ ही ग्रन्थ मे किये गये अध्ययन का साराश भी प्रस्तुत किया गया है

इसके साथ विद्यावाचस्पति जी के समग्र साहित्यिक व्यक्तित्व का एक स्थान पर मूल्याकन करने का एक प्रयास पूर्ण हो जाता है निष्कर्ष रुप में इस उपसहार मे यह सकेत किया गया है कि श्री विद्यावाचस्पनि की साहित्य क्षेत्रीय उपलब्धियॉं अनेक दृष्टियो से विशिष्टता रखती है उन्होने विविध सघर्षो के बीच जीवित रहकर भी, जो हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओ को महत्वपूर्ण देन दी है, वह अविस्मरणीय, सस्मरणीय है

आचार्य प्रवर डॉ चन्द्रभानु सीताराम सोनवणे वेदालकार जी से ही इस ग्रन्थ की मूल प्रेरणा मुझे प्राप्त हुई ग्रन्थ की रूपरेखा से लेकर कार्य की परिसमाप्ति तक उनके सत्परामर्शो से मै लाभान्वित रहा हूँ, इस ग्रन्थ के लिए पूज्य गुरुवर्य डॉ सोनवणे जी ने मुझे प्रेरित ही नहीं किया, बल्कि विद्यावाचस्पति जी विषयक अनेक महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त करने मे मेरी उन्होने पूर्णत सहायता भी की है उनके स्नेहाशीष के लिए मै उनका आजीवन कृतज्ञ हूँ, उनकी तत्परता, पाण्डित्यपूर्ण अनुग्रह के बिना इस सारस्वत अनुष्ठान की पूर्ति सभव न थी इस अवसर पर श्रीमती मीरादेवी चन्द्रभानु विद्यालकृता जी को भी मै कैसे भूल सकता हूँ जिन्होने लेखन काल मे साग्रह आतिथ्य किये बिना मुझे कभी अपने घर से वापिस लौटने न दिया।

विद्यावाचस्पति जी के कतिपय ग्रथ व उनके द्वारा सचालित नियतकालिक (समाचार पत्र) सप्रति अत्यन्त ही दुर्लभ हो चुके हैं इस सब दुर्लभ साहित्य को प्राप्त कर उनका अध्ययन करना अतिशय कठिन काम था, पर दिल्ली स्थित विद्यावाचस्पति जी के सुपुत्र श्री जयन्त वाचस्पति का निजी ग्रथालय, गुरुकुल कॉंगडी विश्वविद्यालयीन पुस्तकालय–हरिद्वार, दयानन्द कला महाविद्यालयीन ग्रथालय–लातूर, विश्वभर वैदिक पुस्तकालय–गुरुकुल झज्जर रोहतक–हरियाणा, स्टेट सेट्रल लाइब्रेरी अफजल गज, नयापुल, हैदराबाद, सिटी सेट्रल लाइब्रेरी हिमायतनगर–चिकडपल्ली–हैदराबाद, आर्ट्स कॉलेज, उस्मानिया यूनिर्सिटी–हैदराबाद, आर्य प्रतिनिधि सभा ग्रथालय–आन्ध्रप्रदेश–हैदराबाद, सरदार पटेल विश्वविद्यालय–वल्लभविद्यानगर–आणंद, मराठी ग्रथ सग्रहालय–ठाणे, हुतात्मा पानसरे

स्मारक ग्रथालय–पीपल्स कॉलेज–नादेड, प्रतिभा निकेतन महाविद्यालयीन ग्रथालय नादेड, डॉ बाबासाहब आबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालयीन ग्रथालय–उदगीर, महाराष्ट्र हिन्दी ग्रथालय–वडवल नागनाथ, लातूर, केसरी–मराठा सस्थान ग्रथशाला–गायकवाड वाडा–पुणे, महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार सभा–पुणे, आर्यसमाज ग्रथालय–पिपरी पुणे, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध–सस्थान–पजाब विश्वविद्यालय–होशियारपुर, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा–दिल्ली, पब्लिक लाइब्रेरी–दिल्ली, राष्ट्रीय अभिलेखागार–जनपथम नई दिल्ली, श्री विद्याभूषण भोपळे आर्य निजी ग्रथालय–हिवरखेड–अकोट, आर्यसमाज नादेड आदि के पुस्तकालयाध्यक्षो ने मुझे दुर्लभ ग्रथ व नियतकालिक तत्परता से सुलभ कराये, इस सहयोग के लिए मै इन सब पुस्तकालयों का अत्यन्त ही ऋणी हूँ

सर्वश्री विष्णु प्रभाकर (दिल्ली), प विश्वनाथ विद्यामार्तण्ड (देहरादून), डॉ रामनाथ वेदालकार (गुरुकुल कागडी), वागीश्वर विद्यलकार (दिल्ली), स्वामी धर्मानन्द विद्यामार्तण्ड (ज्वालापुर), स्वामी ओमानन्द सरस्वती (हरियाणा) स्वामी आनन्दबोध सरस्वती (दिल्ली), डॉ उषा पुरी विद्यावाचस्पति (दिल्ली), श्री सत्यकाम विद्यालकार (मुबई), श्री जयन्त वाचस्पति (दिल्ली), प्रा राजेन्द्र जी जिज्ञासु (पजाब), डॉ श्रीराम शर्मा (हैदराबाद), डॉ भगतसिह राजूरकर (औरगाबाद), श्री शकरदेव वेदालकार (पूर्वसासद वीदर) डॉ मदन मोहन जावलिया (राजस्थान) श्रीयुत बाबूलाल शिवनारायण द्विवेदी, श्रीयुत डॉ विजयवीर विद्यालकार, प मदनमोहन विद्यासागर, डॉ गोपाल वेदालकार (हैदराबाद), श्री धर्मवीर विद्यालकार (गुरुकुल कागडी) श्री दिनेश त्रिपाठी विद्याभास्कर (ज्वालापुर) आदि आदरणीय महानुभावो के प्रति मै अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिनसे साक्षात्कार कर मुझे मौखिक सूचनाएँ और सस्मरण प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, नि सदेह इन महानुभावो के कृपा के अभाव मे यह शोध प्रबध अपूर्ण ही रह जाता

दो दशक से भी अधिक समय से जिस नेताजी सुभाषचन्द्र बोस महाविद्यालय नान्देड मे मै अध्यापन कार्य कर रहा हूँ, उस महाविद्यालय के वर्तमान प्राचार्य श्री प्रभाकर जी माहूरकर, मेरे हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रो सुदर्शन देव जी जाधव, सस्कृत विभागाध्यक्ष डॉ सी ना जोशी इतिहास विभागाध्यक्ष डॉ वसत देशपाडे तथा अन्य आदरणीय आत्मीय प्राध्यापक गण मेरे सहचर प्रा सत्यकाम पाठक, प्रा गणेश सोनाळे, पुस्तकालयाध्यक्ष श्री विजय जोशी व सर्वश्री शिवाजी वाघमारे, तुलसीराम पलनाटे, दामोदर देशपाडे, सुभाष यशवंतकर, अर्जुन सूर्यवशी आदि ग्रथालयीन सहकर्मियो का मै अतिशय आभारी हूँ, जिनके सतत प्रोत्साहन और सहयोग से यह अनुसधान कार्य सपन्न हुआ है

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस महाविद्यालयीन 'केन्द्रीय विश्वविद्यालय अनुदान आयोग', से सबद्ध समिति के सलाहकार सदस्य उपप्राचार्य प्रा सुनील आडगावकर, डॉ अनत चौधरी, डॉ रत्नाकर कुलकर्णी, प्रा श्रीकृष्ण धर्मापुरीकर, प्रा सादोद्दीन सिद्दीकी व महाविद्यालयीन कार्यालय–अधीक्षक श्री लक्ष्मण लिगमपल्ले तथा शेष सभी कार्यालयीन सहयोगियो का भी अत्यत ही कृतज्ञ हूँ, क्योकि इस समिति के प्रयासो के फलस्वरुप ही मुझे ' विश्वविद्यालयीन अनुदान आयोग' की ओर से एक वर्ष के लिए 'प्राध्यापक छात्रवृत्ति' प्राप्त हुई, तथा मुझे डॉ बाबासाहब आबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय–औरगाबाद के परिसर मे रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ इस कृति को अन्तिम रूप देने का अधिकाश कार्य इसी काल मे ही सपन्न हुआ इस कालावधि मे मराठवाडा विश्वविद्यालय के पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ भगतसिहजी राजूरकर, डॉ गणेश जी अष्टेकर, वर्तमान हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ माधव जी सोनटक्के आदि इस कार्य को सपन्न करने मे सतत आत्मीयता से प्रेरणा देते रहे हैं अत मै इन सबका हार्दिक कृतज्ञ हूँ विश्वविद्यालयीन हिन्दी विभाग के कार्यालयीन सहयोगी श्री अनिल कोठारकर व श्री शकर पुरी ने अयाचित सहयोग प्रदान कर कार्यालयीन कामकाज से मुझे सदैव चिन्तामुक्त रक्खा, अत उनके प्रति भी आभार वयक्त करता हूँ डॉ रामप्रसाद जी वेदालकार,

डॉ जयदेव जी वेदालकार, डॉ विजयपाल जी शास्त्री, डॉ महावीर जी (गुरुकुल कांगडी) डॉ धर्मवीर जी (अजमेर) श्री शकरराव सराफ–(उदगीर), श्री धर्मेन्द्र धींग्रा (बडोदरा), डॉ भवानीलाल भारतीय (जोधपुर), श्री देवेन्द्रनाथ प्रशान्त (असाम), डॉ सूर्यनारायण रणसुभे, प्रा ओमप्रकाश हाळीकर प्रा विजय शिदे–(लातूर) डॉ अपरप्रसाद जायस्वाल डा यं पा देशपाडे–(नादेड), कॅप्टन डॉ भारती जाधव–(औरगाबाद), श्री जवाहर सत्यपाल राठौर, श्री राज सोनाळे–(नादेड) आदि उन सभी मित्रो प्रेरक स्वजनो एव परिजनो के प्रति भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ जो इस कार्य को सपन्न करने मे मुझे प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग तथा प्रेरणा देते रहे हैं इस अवसर पर मै पूज्या माता श्रीमती प्रयागदेवी, पिताश्री शंकरदेव माधवराव कापसे, सहधर्मिणी श्रीमती वेदवती शास्त्री, आयुष्मान् राजवीर और आयुष्मती कु विद्युल्लता तथा अन्य पारिवारिक जनो को कैसे विस्मृत कर सकता हूँ, जिनके सक्रिय सहयोग और मौन तप का मूल्य मेरे लिए अनिर्वचनीय है इसके अतिरिक्त जिन विद्वानो की कृतियो से इस शोधकार्य मे मैने सहायता ली है तथा मेरे इस शोधात्मक प्रयास मे जिन अन्य महानुभावो का मुझ पर स्नेहिल कृपाभाव बना रहा, उन सबका नामोल्लेख संभव नहीं है। अत उन सबके प्रति भी मेरे मन मे अशेष सम्मान और कृतज्ञता का भाव है प्रस्तुत ग्रथ को आधुनिक पद्धति से शुद्ध सुदर व नयनाभिराम रूप मे टकित करने का कार्य 'अभय डिजीटल टाईसेटर्स' के स्वामी श्री राजू वच्चेवार तथा उनके सहयोगी श्री मोहनसिह चौहान (नादेड) ने अत्यल्प समय मे किया, अत उनके प्रति भी हार्दिक आभार

किसी भी रचना की सार्थकता उसके प्रकाशन मे होती है (स्व) बनारसीदास जी चतुर्वेदी ने यह मनीषा व्यक्त की थी कि श्रद्धेय इन्द्रजी का समग्र साहित्य गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय की ओर से प्रकाशित हो इस सयोग ही है कि उनकी मनोकामना की यतकिचित् पूर्ति उक्त विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ धर्मपाल जी के मार्गदर्शन मे इस कृति के प्रकाशन के साथ सपन्न हो रही है विश्वविद्यालयीन 'श्रद्धानद शोध एव प्रकाशन सस्थान ने राष्ट्रीय साहित्यकार प इन्द्र विद्यावाचस्पति विषयक प्रस्तुत ग्रन्थ को भारतीय स्वाधीनता संग्राम की स्वर्ण जयन्तीवर्ष (१६६७) मे, प्रकाशित करने का सहर्ष निर्णय लिया, एतदर्थ मैं विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ धर्मपाल जी और शोध सस्थान के निदेशक डॉ भारतभूषण जी विद्यालकार का हार्दिक कृतज्ञ हूँ सम्पादक के रूप मे उन्होने जो श्रम किया है उसके बारे मे कुछ भी कह सकना मेरे लिए असभव सा ही है

यदि इस कार्य से साहित्य को, विशेषत 'विद्यावाचस्पति साहित्य' को कुछ भी योगदान मिला, तो मुझे यह सन्तोष होगा कि प्रदीर्घ काल का मेरा यह कठोर श्रम व्यर्थ नही गया है यदि मेरे इस प्रयास से विद्वज्जनो, पाठको एव अध्येताओ को तनिक भी सतोष मिल सका, तो मैं स्वय कृतकृत्य अनुभव करूँगा इसके साथ ही सुविज्ञ तथा सहृदय साहित्यिक बधुओ से नम्र निवेदन है कि यदि कहीं किसी प्रकार की भूल या अशुद्धि रह गई हो, तो अपनी उदारमना प्रकृति के अनुरूप सूचित कर कृतार्थ करे इत्यलम्

विनीत

प्रा. कुशलदेव कापसे

३६-रामानंद नगर

नांदेड(महाराष्ट्र)

पिन : ४३१ ६०२

सम्पादकीय

शिवालिक पर्वत की तलहटी मे प्रसिद्ध पौराणिक बदरी वन के निकट, गगापुत्री के तीर पर, लोक कल्याण हेतु गरल पायी शिव की ससुराल, दक्ष प्रजापति के ऐतिहासिक कनरवल नगर से पश्चिम की ओर सुरम्य वातावरण मे बसा श्रद्धानन्द स्वामी के तप के पुजी भूत रूप, गुरुकुल के सुरम्य प्रागण मे नाना विध वृक्षो से ढकी हुई सी, बीच बीच मे पडते धूप के टुकडो से चितकवरी सी श्वेत वर्णी सीमेन्टेड सडक पर एक आकृति उभर रही है। लम्बा कद, सुदीर्घ भुजाएँ, तीखी नाक, ऊँचा चौडा मस्तक, मजबूती से बन्द होठ, विशाल ऑखों से टपकती दृढता, सीधी सतर पर काल के पार कुछ देखती सी प्रेम एव सहज विश्वास से भरी दृष्टि, पतली छरहरी सी देह, सिह सी निश्चित, धीर–गम्भीर चाल, खादी के श्वेत धोती कुरते का वेश, नगे सिर, पैरो मे चप्पल पहने, अत्यन्त सात्विक पर परम प्रभावशाली व्यक्तित्व। यही वह रूप था जो गुरुकुल के हम छात्रो के मन मस्तिष्क पर छाया था। पर इस रूप के दर्शन का सौभाग्य हमे दूज के चॉद सा कभी कभी ही दिख पाता था परन्तु प्रत्येक ब्रहमचारी विस्तृत आकाश के समान इस व्यक्तित्व की अनुभूति से अपने को सहज जुडा पाता था क्योकि उस समय गुरुकुल में कुलपति नहीं कुलपिता होते थे। यही वह रूप था जो हम छात्रो को प इन्द्रजी से जोडे रखता था। भले ही हम दस वर्ष तक, सडक के उस पार स्थित परिवार की ओर झॉक भी नही पाये थे। जहॉ दो कमरो के छोटे से मकान मे यह दिव्य मूर्ति प्रतिष्ठित थी।

सस्कृत साहित्य की वृद्ध त्रयी की भॉति उस समय गुरुकुल मे भी एक वृद्ध त्रयी थी जिनमे प इन्द्र जी, आचार्य प्रियव्रत जी और प धर्मपाल जी थे। एक सुदीर्घ काल तक इस त्रयी ने सस्था को मार्ग दर्शन एव गति प्रदान की। तत्कालीन छात्र, अध्यापक एव कर्मचारी इस त्रयी को आदर्श मानकर चलते रहे। सारे गुरुकुल मे एक परिवार की सी अनुभूति थी, वहॉ न कोई छोटा था न कोई बडा। सहज विश्वास, कर्मनिष्ठा, सादगी पूर्ण जीवन, उच्च आदर्शो से प्रेरित मस्तिष्क इस सस्था का पाक्षेय था। आज के टयूशन प्रधान शैक्षणिक जगत मे इस प्रकार के गुरुओ की कल्पना भी सभव नहीं है। विद्यालय मे पढाने के बाद सभी उपाध्याय भोजन करते ही आश्रम मे आ जाते थे और अपने अपने विषय मे कमजोर छात्रो को तब तक पढाते रहते थे, जब तक सायकालीन विद्यालय की घटी न बज जाये, और तब पुन विद्यालय में पढाई प्रारम्भ हो जाती थी। यह परम्परा स्वामी श्रद्धानन्द के समय से निरन्तर चल रही थी। गुरुकुल की प्रार्थनावली मे इस प्रकार की अनेको प्रार्थनाए थी। प इन्द्रजी की एक सुकृति की पक्तियॉं हैं।

"राग द्वेष को दूर भगाकर, प्रेम मत्र का जाप करे हम।
तब वन्दन हे नाथ करें हम,
फूले गुरुकुल की फुलवारी, विद्यामधु का पान करें हम"

पं. इन्द्र जी ससद् के कार्यों से जब भी अवकाश पाते थे वह गरुकुल में आ जाते थे। यदि वह पत्रकार न होते तो एक सफल प्राध्यापक होते। जब–जब उन्होनें गुरुकुल में अध्यापन कार्य किया उनके छात्र उनसे अत्यन्त प्रभावित रहे। इतिहास उनका प्रियविषय था। गुरुकुल मे दी जाने वाली शिक्षा पूर्णत. राष्ट्रीय थी क्योकि आर्यसमाजियों का "बाईबल" सत्यार्थ प्रकाश देशभक्ति के भावो से ओतप्रोत है। गुरुकुल मे इतिहास इस प्रकार पढाया जाता था जिससे ब्रह्मचारियों मे देश भक्ति की भावना प्रदीप हो उनमे उपदेश एव उदाहरणो के द्वारा देश के लिए उत्कट प्रेम पैदा किया जाता

था। वे ऋषि दयानन्द के ग्यारहवे समुल्लास की इस आज्ञा का पालन करते थे कि "श्रद्धा और प्रेम से अपने तन–मन–धन सर्वस्व देशहित के लिए अर्पण कर दो"

इन्द्र जी के लेखन से भी स्पष्ट है कि उन्होने साहित्य रचना मे इतिहास को विशेष महत्व दिया। इतिहास के अध्यापन को अधिक गहन व महत्वपूर्ण बनाने के लिए उन्होने गुरुकुल मे एक ऐतिहासिक सग्रहालय की स्थापना की थी। इस सग्रहालय मे प्राचीन इतिहास से सम्बद्ध एव उपयोगी सामग्री एव हस्तलिखित ग्रथो का सग्रह किया गया था। पडित जी स्वय एक विद्याव्यसनी पुरुष थे इसलिए पुस्तकालय के साथ भी उनका विशेष स्नेह था। पुस्तकालय के विस्तार एव उसके विकास के लिए वे सतत जागरुक रहते थे। अपना निजी पुस्तकालय भी उन्होने गुरुकुल कागडी को दान कर दिया था।

गुरुकुल एव उसकी आदर्शात्मक स्थिति बारे मे मि सी एफ एण्ड्रूज ने १९१३ मे 'माडर्नरिव्यू' (कलकत्ता) मे एक लेख मे लिखा था "जिस भारत को मैं जानता था, जिस भारत से मैं प्रेम करता था, जो भारत मेरे सपनो मे था, वह मुझे यहाँ देखने को मिला। मैने अपने सम्मुख उस मातृभूमि को देखा जो न शोकातुर थी और न श्रान्त व क्लान्त, जिसमे अनन्त अनश्वर यौवन था, जो बसन्त के समान ताजा व नवयौवना थी, यहाँ गुरुकुल मे यह नवभारत विद्यमान था।"

१९१३ मे गाधीजी दक्षिण अफ्रीका मे रगभेद के विरोध मे सत्याग्रह आन्दोलन चला रहे थे। भारत मे श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने इस सत्याग्रह के लिए धन की अपील की। तब गुरुकुल के ब्रह्मचारियो ने अपना घी–दूध छोडकर बचत करके तथा हरिद्वार मे गगा पर बन रहे दूधिया बाध मे साधारण मजदूरो की भॉति काम करके १५०० रुपये मजदूरी भी गोखले को भेज दी थी। तब गाधी जी को सूचना देते हुए महात्मा मुशीराम को लिखा था "दिल हिला देने वाले इस देशभक्ति पूर्ण कार्य के लिए मैं उनको क्या धन्यवाद दूँ भारतमाता की सेवा के लिए त्याग और श्रद्धा का जो आदर्श उन्होने देश के युवको तथा वृद्धो के सम्मुख उपस्थित किया है, उसकी अन्तकरण से प्रशसा किये बिना मै नही रह सकता।" महात्मा गाधी अपने फोनिक्स आश्रम के छात्रो के साथ जब भारत आये तो अपने विद्यार्थियो के लिए सर्वोत्तम स्थान उन्होने गुरुकुल कागडी को ही समझा था गाधी जी को दिये गए अभिनन्दन पत्र की कुछ पक्तिया इस प्रकार थीं "मातृभूमि के वस्त्र फटे हुए हैं, दिन प्रतिदिन उसे कृशता घेर रही है, शरीर काटो से छिदा हुआ है, रुधिर बह रहा है। ऐसे समय मे आप ही की ओर वह स्नेह और आशा से देख रही है। आप ही दूसरी जातियो मे उसका मुख उज्वल करने वाले हैं। आप स्वाधीनता के दिव्य मन्त्र से दीक्षित हैं, जातीयता की नौका के कर्णधार हैं। देशभक्तो के सर्वस्व हैं। इस कुल मे पूजनीय अतिथि हैं।" प्रारम्भ से ही गुरुकुल का वातावरण देशभक्ति और राष्ट्रीयता की भावनाओ मे किस प्रकार परिपूर्ण था और वहॉ के ब्रह्मचारी तथा अध्यापक मातृभूमि की दुर्दशा को किसप्रकार अनुभव करते थे इसे समझने के लिए ये निम्न पक्तियॉ पर्याप्त हैं। यही कारण था कि गुरुकुल मे पधारे वायसराय के स्वागत के समय भी गुरुकुल ने अपनी भारतीयता नहीं छोडी थी।

इस प्रकार की पृष्ठभूमि मे विद्यार्थियो ने जो गीत तैयार किये थे वे ही इस सस्था के पुण्य श्लोक बन गए थे।

प्राणों से हमको प्यारा, कुल हो सदा हमारा
कट जाये सिर न झुकना यह मन्त्र जपने वाले
वीरो का जन्मदाता, कुल हो सदा हमारा
स्वाधीन्य दीक्षितो पर सब कुछ लुटाने वाले

धनियो का जन्म दाता, कुल हो सदा हमारा
आजन्म ब्रह्मचारी ज्योति जगा गया है
अनुरूप पुत्र उसका, कुल हो सदा हमारा।

इस प्रकार के अनेको गीत गुरुकुल के विद्यार्थियो की भावना के अनुरूप ही थे। इसी से "सद्धर्म प्रचारक" मे स्वाधीनता के लिए मर मिटने वाले राष्ट्र भक्त स्वतत्रता सेनानियो से सम्बन्धित आग उगलने वाली टिप्पणियो से प्रभावित होकर गणेश शकर विद्यार्थी इन्द्रजी से मिलने कानपुर से हरिद्वार पधारे। इन्द्र जी के साहित्य मे भी क्रान्तिकारी चेतना का विस्फोट उपलब्ध है। निष्काम राष्ट्र सेवा, स्वातन्त्रय की कसक, बलिदान का सकल्प, नवचेतना का उन्मेष उनमे भरा पडा है। एक उद्‌बोधन देखिये

जागो प्रमाद छोडो, कसकर कमर खडे हो।
देखो तुम्हारी जननी तुमको बुला रही है
दुनिया को फिर जगा दो, सुन लो वह ध्यान धरके
बलिकुण्ड से उमडती, जयमाल आ रही है।

छात्र जीवन मे ही इन्द्र जी का यह विचार हो गया था कि "दासो का धर्म कभी नहीं फैलता" और तब उन्होने यह गीत लिखा था –

हे मातृभूमि तेरे चरणो मे सिर नवाऊँ
मै भक्तिभेट अपनी तेरी शरण मे लाऊँ।
तेरे ही काम आऊँ, तेरा ही मन्त्र गाऊँ,
मन और देह तुझ पर बलिदान मैं चढाऊँ।।

गुरुकुल का वर्णन करते हुए इन्द्रजी ने लिखा है "हमारे रहने का स्थान खैर और बेरी के घने जगलो से घिरा था, कही कहीं विल्व के पडे थे, इन पेडो की बहुतायत के कारण वह जगल वस्तुत 'कण्टकाकीर्ण' शब्द का अधिकारी था। नीचे कॉटे, उपर कॉटे, और चारो तरफ भी कॉटे ही कॉटे। स्नान के लिए सिर्फ गगा की धारा थी और क्रीडा क्षेत्र का आनन्द गगा तट की बालू से लिया जाता था। ऐसी दुनिया मे हम रहते थे।" उन कॉटो मे जो फूल खिले थे उन्होने राष्ट्र की बगिया को महकाने मे अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया था। छात्रावस्था मे ही ब्रह्मचारी इन्द्र कवि और मन्त्रकार के रुप मे उभरने लगा था अत किसी एक पन्थ से बध न सके इन्द्र। डा विजयेन्द्र स्नातक के अनुसार "उनकी विचारधारा मे उच्चस्तरीय उदारता और विराटता का समावेश हो गया था। राष्ट्रसेवा के धरातल पर उनका दृष्टिकोण व्यापक होने के साथ सबके सुख की कामना से ओत प्रोत होकर बुद्धिवादी बन गया था।" इन्द्र जी ने लिखा है कि "शत्रुओ से नरमी और हितैषियो पर सख्ती, यह कायरता तो है ही अदूरदर्शिता भी। वीरता और उदारता का तकाजा यह है कि शत्रुओ के लिए धनुष पर सदा तीर चढा रहे, और प्रजा पर पिता की सी उदार वृत्ति रहे"

इन्द्रजी ने गुरुकुल कागडी की आजीवन निष्ठापूर्वक सेवा की वे इस सस्था की उन्नति के लिए सदा प्रयत्नशील रहे। स्नातक बनने पर उन्होने व्रत लिया था– मैं शक्तिभर स्वधर्म और स्वदेश की सेवा मे अपना जीवन लगाऊँगा। वे सारा जीवन अपने व्रत का पालन करते रहे। गुरुकुल के लिए वे सदैव समर्पित रहे। उनके नेतृत्व मे गुरुकुल ने चहुँमुखी प्रगति की । यहॉ पर अनेक नये–नये विभाग खुले। विज्ञान, कृषि तथा अन्य विषयो के शिक्षण की भी व्यवस्था की गई। १९५८ मे प जवाहरलाल नेहरु ने गुरुकुल कागडी के विज्ञान भवन का उद्‌घाटन किया। उस समय उन्होने कहा था "मुझे अपनी सभ्यता पर गर्व है। यह अच्छी और महान दोनो है। यह प्रेरणा दायक है। आर्थिक और राजनीतिक तरक्की के लिए यह जरुरी है कि हम वैज्ञानिक तरीके अपनाऍ और अपने कार्य

मे वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखे। आज की वैज्ञानिक सस्कृति और पुरानी सस्कृति, दोनो मे मेल होना आवश्यक है। गुरुकुल का इस देश की प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान है। ऐसी सस्था को छात्र सख्या या इस प्रकार की कमियो के लिहाज से नहीं देखा जाना चाहिए।" प इन्द्र विद्या वाचस्पति ने इस दिशा मे यथा शक्ति प्रयास किया और वे अपने उद्देश्यो मे सफल भी हुए। पडितजी की कृपा से गुरुकुल कागडी मे अनेक राष्ट्रीय नेताओ का आगमन हुआ। इन पक्तियो के लेखक को अच्छी तरह याद है जब पडित जी हम छात्रो के बीच आते थे तो वे हमसे पूछ लिया करते थे इस बार दीक्षान्त पर किस को आमन्त्रित किया जाये। हम छात्र उसी व्यक्ति को दीक्षान्त मे अपने मध्य उपस्थित पाते थे। उस समय की गुरुकुल की परम्परा के अनुसार दीक्षान्त व्याख्यान के उपरान्त विशिष्ट अतिथि छात्रो के अतिथि हो जाते थे। उस दिन के भोजन की व्यवस्था उस दिन स्नातक हो रहे छात्रो की ओर से होती थी। विशिष्ट अतिथि भी छात्रो के साथ पक्तिवद्ध बैठकर भडार मे भोजन एव आश्रम मे विश्राम करते थे। अधिकारी गण केवल उनका साथ देते थे। इस प्रकार छात्रो को विशिष्ट व्यक्तियो के स्वभाव, विचारधारा एव व्यक्तित्व को निकट से देखने व परखने का सौभाग्य पडित जी की कृपा से प्राप्त होता रहा था।

प सुखदेव जी विद्यावाचस्पति दर्शनाचार्य ने एक बार सुनाया था कि "हम गुरुकुल कागडी मे उस समय (पुण्य भूमि मे) महाविद्यालय की कक्षाओ मे पढ रहे थे। प इन्द्र जी हमारे प्राध्यापक थे, हम से एक भूल हो गई, उन्होने हमे बुलाया, समझाया, कहा स्वय ही पश्चाताप करलो, पश्चाताप से हृदय की शुद्धि हो जाती है। मन की मलिनता धुल जाती है। भविष्य मे व्यक्ति भूल नही करता। इसके बहुत समय बाद जब आयुर्वेद कॉलेज की मान्यता के लिए उसके सरकारीकरण के लिए छात्रो ने मॉग रखी। ताकि सरकारी नौकरी मिल सके। छात्रो ने बिना नोटिस दिये भूखहडताल प्रारम्भ कर दी, तुरन्त पडित जी देहली से आये और उन्होने छात्रो व अधिकारियो से वार्तालाप किया। परन्तु कोई परिणाम न निकलने पर प इन्द्रजी ने घर आकर कहा – मेरे छात्र भूखे हैं अत आज भोजन नही बनेगा" उनके सेवक की कृपा से यह सूचना तुरन्त सारे परिसर मे फैल गई और किसी अधिकारी या अध्यापक के घर चूल्हा नहीं जला। जब छात्रो को पडित जी द्वारा अपने रुग्ण एव दुर्बल शरीर पर इस प्रकार का अत्याचार होने की सूचना मिली तो वह हडताल तुरन्त समाप्त हो गई। और छात्रो ने इन्द्र जी को अपने साथ भडार मे बैठाकर भोजन कराया। काफी सालो बाद यह कालेज उत्तर प्रदेश के सभी आयुर्वेद कालेजो के साथ सरकार ने अपने अधिकार मे ले लिया।

पडित इन्द्र जी सादगी पसद व आडम्बर विरोधी थे। एक बार प्रसिद्ध अभिनेता पृथ्वीराज कपूर अपने नाटको का मचन करने हरिद्वार पधारे थे। पडितजी ने उन्हे गुरुकुल मे आमन्त्रित किया। साय काल वेद मन्दिर के निकट आम के वृक्षो के नीचे दो कुर्सी एव दरी बिछा दी गईं। न कोई प्रदर्शन न आडम्बर। मुझे अब भी स्मरण है कि पृथ्वीराज जी ने सुनाया था कि मेरे घर वालो ने मुझे भी गुरुकुल कागडी मे दाखिल कराया था। मेरे कुर्ते पर नारगी रग की स्याही से लिखा था "पृथ्वीराज कक्षा चार।" पर मेरे भाग्य मे यहॉ का अन्न जल नहीं था। मैं यहॉं के तपस्वी जीवन को धारण नहीं कर सका और मैं घर भाग गया तथा वहॉ जाकर मैने घर वालो को पुन यहॉ न भेजने के लिए राजी कर लिया। अन्यथा शायद मैं भी आज आप मे से ही एक होता"

पडित जी गुरुकुल की छात्र सख्या को लेकर कभी कभी चितित हो जाते थे। इस ओर वे सतत प्रयत्नशील भी थे। उनकी इच्छा थी कि गुरुकुल में एक इजीनियरिंग कॉलेज खुले। उन्होने इसके लिए राजकीय अधिकारियो से भी बात की। उस समय सरकार कृषि सम्बन्धी योजनाओं एव शिक्षा को बढाना चाहती थी। अत उन्हे इस ओर विचार करने के लिए कहा गया। तब उनके प्रयत्नो से "ग्राम्य प्रशिक्षण केन्द्र" खुला। पुन कृषि विद्यालय भी प्रारम्भ हो गया। उनकी इच्छा थी कि गुरुकुल

को पर्याप्त टेक्नीकल विषय प्रारम्भ करने चाहिए। तभी उनके मन मे यह इच्छा हुई कि गुरुकुल को विश्वविद्यालय की मान्यता प्राप्त हो। इससे छात्र सख्या एव अर्थ व्यवस्था दोनो मे सुधार आयेगा। इस सम्बन्ध मे वे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के तत्कालीन चेयरमैन से भी मिले थे। उनके जीवन काल मे तो गुरुकुल को विश्वविद्यालय की मान्यता न मिल सकी, पर उनकी मृत्यु के कुछ समय बाद ही उनका बोया बीज अकुरित होकर पल्लवित एव पुष्पित होने लगा।

२३ जौलाई १९६० को पंडित इन्द्र जी की गुरुकुल से विदाई की गई। उन्हे गुरुकुल से विदा होना अच्छा नहीं लग रहा था। वे आजन्म गुरुकुल की ही सेवा करते रहना चाहते थे। उन्होने अपने विदाई भाषण मे कहा भी था "मैं गुरुकुल से विदाई की तो स्वप्न मे भी कल्पना नहीं करता था। मैं कहीं भी किसी भी रूप मे रहूँ गुरुकुल से पृथक् नहीं हो सकता, ये मेरा प्राण तत्व है।" इसीलिए उन्होने गुरुकुल परिसर मे ही एक फूस की कुटिया बनवाई थी। वे चाहते थे कि यहीं रहकर मैं अपने लेखन कार्य को मूर्त रूप प्रदान करुँ। इस विदाई का उनके हृदय पर घातक प्रभाव पडा। २३ जौलाई को उनकी विदाई हुई थी और ठीक एक मास बाद २३ अगस्त को उनका देहान्त हो गया। यह भी उल्लेखनीय है कि २३ दिसम्बर को ही स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान हुआ था।

२४ अगस्त को गुरुकुल मं सूचना मिली कि इन्द्र जी का देहली मे देहान्त हो गया है। सम्पूर्ण गुरुकुल इस सूचना से स्तब्ध रह गया। गुरुकुल से बस व ट्रको से सारा गुरुकुल देहली पहुँच गया। उनके निवास स्थान "इन्द्र लोक" से एक विशाल यात्रा उस महापुरुष को अपनी श्रद्धाञ्जली अर्पित करने के लिए चल पडी, श्मशान भूमि मे पावन वैदिक ऋचाओ के उच्चारण के मध्य, घृत एव सुगन्धित द्रव्यो की असख्य आहुतियो के मध्य आग की लपटो के माध्यम से वह देह पच तत्व मे विलीन हो गई। ऐसे ही लोगो के लिए उपनिषद्कार ने कहा है" ते सूर्य लोके विरजा प्रयान्ति"

उनके साहित्य, धर्म, राजनीति, पत्रकारिता आदि विषयो को लेकर अनेक लेख लिखे गए। उनके पत्रिकाओ ने अपने विशेषाङ्क निकाले और अपनी अपनी तरह से उन्हे श्रद्धाञ्जलिया अर्पित कीं। जिन लोगो को उनके साथ काम करने, वार्तालाप करने या फिर देखने का सौभाग्य मिला था। वे उन पलो को सदा को चिरस्मरणीय बनाये रखने का प्रयास करते रहते हैं। ऐसे महामानव को हमारा कोटिश नमस्कार।

गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय के शताब्दी समारोह के निकट आने पर उस महापुरुष को एक विनम्र श्रद्धाञ्जलि प्रदान करने की प्रेरणा मान्य कुलपति जी द्वारा प्राप्त हुई। इन्द्र जी का गुरुकुल के अतिरिक्त एक लेखक एव पत्रकार के रूप मे बडा विशाल एव भव्य स्वरुप है। उस स्वरुप के साथ हिन्दी साहित्य मे न्याय नहीं हो सका। इसी विचार धारा को दृष्टिगत करते हुए श्री कुशलदेव शकरदेव कापसे की इस कृति को जन सामान्य के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हार्दिक प्रसन्नता है। यह पडित इन्द्र विद्या वाचस्पति के ऋण से उऋण होने का एक अत्यन्त लघु प्रयास है।

संपादक
भारत भूषण विद्यालंकार
निदेशक श्रद्धानन्द शोध एवं प्रकाशन संस्थान
गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

विषय सूची

१
युगीन परिवेश

साहित्य समाज का दर्पण है धरती की सत्य परिस्थितियो का अकन, साहित्यकार हित और रसात्मकता का ध्यान रखते हुये किया करता है सत्यात्मक वाक्य जब रसात्मक हो जाते हैं, तभी साहित्य कहलाते हैं[१] शैशव, यौवन और प्रौढत्व मे जो परिस्थितियॉ साहित्यकार को प्रभावित करती हैं, अनायास वह उसके साहित्य मे अवतरित हो जाती हैं, कोई भी साहित्यकार अपने परिवेश से नितात कटकर साहित्यकार के उत्तरदायित्व का निर्वाह करने मे समर्थ हो ही नहीं सकता है साहित्यकार शून्य मे रचना कदापि नहीं कर सकता पत्रकार प इद्र विद्यावाचस्पति के साहित्य पर तो तत्कालीन परिस्थितियो की विशिष्ट छाप रही है उस युग की परिस्थितियॉ क्रान्तिकारी थीं, और नवनूतन परिवर्तन लाने वाली थीं साहित्यकार प इन्द्र जी के साहित्य को जिन विशेष परिस्थितियो ने प्रभावित किया उनमे निम्नाकित की चर्चा आवश्यक है

१.१ राजनीतिक परिस्थितिः-

सन् १८५७ की क्राति के पश्चात् कपनी से सत्ता की बागडोर ब्रिटिश पार्लियामेट ने अपने हाथ मे ले ली, और उसने महारानी विक्टोरिया से कुछ घोषणाये करवायीं, जिनके द्वारा भारतीयो के धार्मिक स्वातत्र्य को अक्षुण्ण बनाये रखने व उनके साथ उदारता और सहिष्णुता का व्यवहार किए जाने का आश्वासन दिया गया, पर महारानी विक्टोरिया की घोषणा के पश्चात् भी भारतीयो की दशा मे अपेक्षित सुधार न हुआ 'भारत भारतवासियो के लिए' की घोषणा करने वाले महर्षि दयानद ने १८७५ ई मे आर्यसमाज की स्थापना की आर्यसमाज सगठन मुख्यत धार्मिक होते हुये भी परोक्ष रूप से राजनीति से अभिन्न रहा है, उसका उद्देश्य धार्मिक और सामाजिक सुधार के साथ–साथ राष्ट्रीय भावोद्दीपन भी है[२] आर्यसमाज का धर्म विषयक दृष्टिकोण अत्यत व्यापक है उसका धर्म सस्कृति का पर्यायवाची है, अत वह राजनीति के नाम से बिदकता नहीं है[३] अग्रेज शासक स्वामी दयानद को उग्र राष्ट्रवादी एव आर्यसमाज को अर्द्ध राजनीतिक सगठन मानते थे[४] अग्रेज–शासको मे कुछ ऐसे भी शासक थे जो भारत के प्रति सहानुभूति रखते थे और अग्रेज शासको को उनके दोष बतलाते थे, उनमे श्री मि. ह्यूम का नाम विशेष उल्लेखनीय है, इन्ही की प्रेरणा से १८८५ ई मे भारतीय कॉग्रेस का जन्म हुआ जनता का ५० प्रतिशत प्रतिनिधित्व स्वीकार कराना कॉग्रेस का प्रारम्भिक प्रमुख लक्ष्य था दादाभाई नौरोजी, सुरेद्रनाथ बॅनर्जी, फिरोजशाह मेहता, महादेव गोविद रानडे, गोपाल कृष्ण गोखले एव मदनमोहन मालवीय कॉग्रेस के नरम दल के नेता थे वे शासन मे शनै शनै सुधार लाने के पक्ष मे थे इसी कारण देशभक्ति और राजभक्ति दोनो प्रकार की धाराऍ समानान्तर रूप से बहने लगीं थीं उसी समय की इस स्थिति के सबध मे डॉ पट्टाभि सीतारमैय्या ने लिखा है 'हमारे इन पूर्व पुरूषो ने अग्रेजो और इग्लैण्ड के प्रति जो विश्वास रखा, वह कभी दयाजनित और हेय मालूम देता था, परतु हमारा कर्तव्य तो यही है कि हम उनकी मर्यादाओ को समझे[५] उन्नीसवीं शताब्दी के अतिम वर्षों मे श्री लोकमान्य तिलक राष्ट्रीय आदोलन के उग्र दल के नेता के रूप मे अग्रणी हुये राजद्रोह मे दडित होने के बावजूद भी अविचलित रहने वाले उनके दृढ व्यक्तित्व ने राष्ट्रीय भावनाओ मे उग्रता का समावेश किया बाल गगाधर तिलक के रूप मे राष्ट्रीयता साकार हो उठी, तिलक पूर्ण भारतीयता के पक्षधर थे, स्वधर्म, आध्यात्मिकता तथा राजनीति की सुदृढ

आधार भूमि पर वे राष्ट्र का निर्माण करना चाहते थे इस सतह पर स्वामी दयानद व लोकमान्य तिलक के विचारो मे साम्य था महर्षि दयानद के राष्ट्रीय सास्कृतिक विचार–प्रवाह को तिलक ने भारतीय राजनीति मे साकार किया है तिलक 'दयानद को स्वराज्य का सर्वप्रथम सदेशवाहक' मानते थे[६] इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए राष्ट्रपति डॉ राजेद्रप्रसाद कहते है, "ऋषि दयानद ने भारतोद्धार का जो सूत्र रचा, उसी का भाष्य आज महात्मा गाधी कर रहे हैं,[७]" स्वामी दयानद सरस्वती के प्रभाव को ध्यान मे रखकर ही मिश्रबधुओ ने भारतेदु युग के प्रारभिक काल को 'दयानद काल' नाम दिया है इसी तरह डॉ जितराम पाठक सर्वस्वीकृत नाम 'द्विवेदी युग' को स्वीकारते हुए कहते है, "द्विवेदी जी भाषा के साथ जीवन के अन्य क्षेत्रो मे भी सुधार कर मर्यादा की स्थापना करना चाहते थे उन पर आर्यसमाज का सुधारवाद हावी रहा राष्ट्रीय क्षेत्र मे तिलक का प्रभाव इसके (दयानद के) उत्तरार्द्ध मे पडा इसलिए राष्ट्रीय काव्य पर पडने वाले प्रभाव की दृष्टि से इस युग का नामकरण 'दयानद–युग' अथवा 'तिलक युग' किया जा सकता है[८]" मेरी दृष्टि मे आलोच्य साहित्यकार को प्रभावित करने वाला जो परिवेश है, उसके आधार पर 'दयानद–तिलक युग' नामकरण ही सार्थक है यह तो निर्विवाद रूप से कहा जा सकता हे दयानद और तिलक की विचारधारा से राष्ट्रीय भावनाओ मे उग्रता का समावेश हुआ है

बीसवी सदी के प्रारभ होते ही सन् १९०१ ई से (भारत के गवर्नर जनरल) लॉर्ड कर्जन का शासन प्रारभ हुआ निरकुश एव कठोर नीति वाले लॉर्ड कर्जन ने अपने दमन कार्य से भारतवासियो के हृदय मे अग्रेजी शासन विरोधी भावनाए जागृत कीं जनता का बढता असतोष १९०३ ई मे उभरकर सामने आया भारतीयो पर अनुत्तरदायित्व का दोषारोपण कर उन्हे उच्च पदो से वचित रखा गया १९०५ मे लार्ड कर्जन के बग–भग सबधी निर्णय ने आग मे घी का काम किया जन–असतोष, आदोलन और विद्रोह के जन्मदाता बग–भग के सबध मे प जवाहरलाल नेहरू लिखते हैं, "१८५७ के विद्रोह के बाद पहली बार भारत लडने की क्षमता दिखा रहा था विदेशी राज्य के सम्मुख पालतू पशु की तरह पराजित होकर दब नही रहा था[९] "सन् १९०५ मे ही जापान द्वारा रूस की सामरिक पराजय से भारतवासियो मे भी आत्मस्वातत्र्य की भावना जागृत हुई सन् १९०६ मे कॉग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन मे श्री दादाभाई नौरोजी ने सर्वप्रथम स्वराज्य का प्रस्ताव प्रस्तुत किया, इसी अधिवेशन मे आपसी मतभेद के कारण कॉग्रेस गरम दल और नरम दल के रूप मे विभाजित हुई इसी वर्ष राजनीतिक एव साप्रदायिक स्तर पर भारतीय मुसलमानो के दल 'मुस्लिम लीग' का भी उदय हुआ १९०८ मे 'युगातर', 'सध्या', 'वदेमातरम्' जैसे क्रातिकारी पत्रो पर प्रतिबध लगाया गया सन् १९०६ की 'मिटो–मार्ले सुधार' योजना जनता को किसी प्रकार सतुष्ट न कर सकी सन् १९०६ मे मुस्लिमो के लिए पृथक् निर्वाचन क्षेत्र बना इस घटना ने मुस्लिम लीग की विशिष्ट सहायता की 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति मे माहिर अग्रेजो को मुस्लिम लीग के निर्माण पर अत्यत हर्ष हुआ "वाइसराय की पत्नी मेरी मिण्टो ने अपनी दैनदिनी मे मुसलमानो की प्रशसा की है[१०]", किन्तु देश की भावनात्मक एकता और कल्याण की दृष्टि से पृथक् निर्वाचन प्रणाली अत्यत ही दु खदायी रही सन् १९१० मे ब्रिटिश सिहासन पर पचम जॉर्ज आरूढ हुए और सन् १९११ ई मे रानी मेरी सहित उनके भारत आगमन के अवसर पर दिल्ली मे विशाल दरबार का आयोजन किया गया भारत की राजधानी कलकत्ता से हटाकर दिल्ली उसी समय लाई गई भारतीय जनमानस मे ब्रिटिश–शासन के प्रति तीव्र रोष उत्पन्न हो चुका था इस राजनीतिक चेतना का प्रधान कारण भारत के साथ अन्य राष्ट्रो का बढता हुआ सपर्क भी था दक्षिण अफ्रीका के बोअर–युद्ध, विद्रोह और सत्याग्रह आदि मे महात्मा गाधी की सेवा कार्य से राष्ट्र के जीवन मे नवीन स्फूर्ति का सचार हुआ, इसके बाद विश्वयुद्ध (सन् १९१४–१९१८) से भारत मे अतराष्ट्रीय चेतना का सर्वाधिक सचार हुआ, और उसने अनुभव किया कि विश्व की प्रत्येक घटना उसके लिए महत्त्व रखती है

सन् १६१५ मे भारत के महान सपूत गोपाल कृष्ण गोखले के निधन के पश्चात् गरम दल का बोल बाला हो गया प्रतिभा–सपन्न आयरिश महिला श्रीमति ऐनीबेसेन्ट स्वराज्य के रणक्षेत्र मे उतरीं, और उन्होने होमरूल लीग की ओर से राष्ट्रीय आदोलन का पुनरूज्जीवन किया गरम और नरम, दोनो इन्ही के शुभ उद्योग से एक ही व्याख्यान वेदी (लखनऊ अधिवेशन १६१६) पर नजर आने लगे १६१८ ई मे यूरोप का पहला महासग्राम समाप्त हुआ युद्ध के समय इग्लैण्ड के शासको ने हिदुस्तानियो को स्वराज्य की बडी–बडी आशाये दिलायी थी परतु युद्ध विजय के बाद अग्रेज–शासको ने भारतवासियो को स्वराज्य की पहली किश्त रौलट ऐक्ट के रूप मे पेश की रोटी की आशा दिलाकर पत्थर भेट किया गया इस विश्वाराघात से देश की जनता का आक्रोश उग्र हो उठा महात्मा गाधी ने अहिसात्मक सत्याग्रह द्वारा रौलट ऐक्ट का विरोध करने का निश्चय किया सन् १६१६ मे गाधीजी की तपस्यात्मक राजनीति मे कदम रखने के उपरान्त सन् १६१६ मे स्वामी श्रद्धानद ने भी सक्रिय राजनीति मे कदम रखा रौलट ऐक्ट विरोधी पग उठाने मे दिल्ली मे सत्याग्रह कमेटी की स्थापना हुई, जिसके सर्वसामान्य नेता स्वामी श्रद्धानद ही थे आपने ३० मार्च १६१६ को रौलट ऐक्ट विरोधी जलूस का नेतृत्व करते हुए दिल्ली के घटाघर के पास सगीनो के सामने छाती खोल दी थीं आर्य सन्यासी की निर्भयता व देशभक्ति ने सारे राष्ट्र को प्रभावित किया १३ अप्रैल १६१६ को अमृतसर के जलियॉवाले बाग मे एक वृहत् सभा हुई इस सभा का आयोजन श्री हसराज ने डी ए वी कालेज के छात्रो की सहायता से किया था सभा मे महात्मा गाधी, डॉ सत्यपाल एव डॉ किचलू की रिहाई की मॉग की गई व रौलट ऐक्ट को काला कानून बताकर उसकी भर्त्सना की गई जब जनरल डायर ने गोली दागनी आरभ की, तब श्री हसराज का भाषण चल रहा था वे इस हत्याकाड के प्रमुख शिकार थे[११] लोगो को चेतावनी दिये बिना जनरल डायर ने ३०३ नबर की १६५० गोलिया चलवाई और यह पाशविक गोलीकाड तभी बद हुआ जब गोली बारूद जवाब दे गया[१२] इस पाशविक हत्याकाड का राष्ट्र के मन और मस्तिष्क पर व्यापक प्रभाव पडा सन् १६१६ के अत मे तिलक युग पर विरामचिह्न लगा और गाधी युग प्रारभ हो गया १६२० से १६४७ तक महात्मा गाधी के सर्वोन्नत व प्रभावशाली स्वर ने करोडो भारतवासियो के हृदय पर एकच्छत्र शासन किया इसके साथ–साथ उग्रपथी व आतकवादी क्रातियो का आदोलन भी चलता रहा सन् १६२०–२१ मे असहयोग आदोलन के माध्यम से राष्ट्रीय उत्साह देश के प्रत्येक भाग मे छा गया दिसबर १६२७ ई मे राजेद्र लाहिडी, रामप्रसाद बिस्मिल, अश्फाकउल्ला खॉ और ठाकुर रोशनसिह देशहित मे हसते–हसते फॉसी का फदा चूम गये फलत सन् १६२८–२६ मे राष्ट्र के छात्र–युवा वर्ग मे राष्ट्रीय भावनाये पुन प्रबल हुई साइमन कमीशन का विरोध अखिल भारत मे हडताल व विरोधी प्रदर्शनो द्वारा किया गया, 'साइमन कमीशन वापिस जाओ' का नारा लगाते हुए लाहौर मे जलूस निकला जिसका नेतृत्व पजाब केसरी लाला लाजपतराय ने किया नृशस सरकार ने लाठी–चार्ज करवाया फलत लाला लाजपतराय की मृत्यु हो गयी, "मेरे ऊपर पडी एक–एक लाठी ब्रिटिश साम्राज्य की कफन की कील सिद्ध होगी"– पजाब केसरी की इस भविष्यवाणी व शहादत का अदभुत प्रभाव पूरे राष्ट्र पर पडा १६२६ के लाहौर कॉग्रेस अधिवेशन मे प जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व मे पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव स्वीकार किया गया १६३० मे महात्मा गाधी त्रिविध कार्यक्रम 'सविनय अवज्ञा आदोलन', 'दाडी यात्रा', व 'नमक कानून उल्लघन' ने देश मे विशिष्ट जन–जागृति की 'बहरे कानो को धमाके की आवाज से झकझोरने वाली' क्रातिकारी टोली के तीन सदस्य सर्वश्री सुखदेव, राजगुरू, भगतसिह को फासी हुई राष्ट्रीय जागरण ने फिर जोश मारा विद्यार्थी पुस्तक छोड सडक पर आ गये सन् १६३५ के बाद भारतीय राष्ट्रवाद समाजवादी विचारधारा से प्रभावित हुआ इसी के परिणामस्वरूप १६३६ मे कॉग्रेस का अधिवेशन फैजपुर गाव मे हुआ १६३७ के निर्वाचन मे कॉग्रेस सयुक्त प्रात, बबई, मद्रास, बिहार, मध्यप्रात और उडीसा मे विजयी हुई[१३] १ सितबर १६३६ मे द्वितीय

विश्वयुद्ध के छिडने पर अग्रेजो ने भारत पर युद्ध मे सम्मिलित होने का निर्णय लाद दिया फलस्वरूप कॉग्रेस के आठो मत्रिमडलो ने त्यागपत्र दे दिया जुलाई १६४० मे नेताजी सुभाषचद्र बोस को बदी बना लिया गया भारत मे हुई सन् १६४२ की रक्तरजित क्राति असफल हुई ३ जून १६४७ को गाधीजी ने विभाजन को स्वीकृति दी यह विभाजन पजाब और बगाल के वक्षस्थलो को चीरता, कोटि–कोटि मानवो की लाशो पर पैर रखकर ही सपन्न हुआ आजादी के बाद गाधीजी की मृत्यु होती है और उसके साथ नेहरू युग का प्रारभ होता है कॉग्रेस की स्थापना से लेकर नेहरू युग तक की राजनीतिक गतिविधियो का स्पष्ट और सीधा प्रभाव प इद्र विद्यावाचस्पति के व्यक्तित्व और साहित्य मे परिलक्षित होता है

१.२ सामाजिक परिस्थितिः-

१६ वी सदी का भारतीय समाज अध पतन की चरम सीमा पर था 'देश गहरा सोया हुआ और अध रूढियो से ग्रस्त था'[१४] सामाजिक विचारो मे सकीर्णता व्याप्त हो चुकी थी तत्कालीन भारत मे बालविवाह, कन्या–वर विक्रय, अनमेल विवाह, बहुविवाह, पर्दा–प्रथा, सती–प्रथा, बालिकाओं का वध, नारी वर्ग के प्रति असीम अत्याचारो का विधान, जन्मगत जाति–पाति का ढोग, अस्पृश्यता का भयानक रोग, मास भक्षण, मदिरा सेवन, समुद्र–यात्रा का अस्वीकार, चौके–चूल्हे का आडबर, स्त्रियो व तथाकथित शूद्रो के लिये पठन–पाठन का निषेध आदि–अनेक अधविश्वासो का साम्राज्य फैला हुआ था विधवाओ का करूण क्रदन असह्य था, वे पुनर्विवाह के अधिकार से वचित थीं दहेज–प्रथा बडी भयानक थी मध्य तथा पश्चिमी भारत के राजपूतो, जाटो, मेवातो मे कन्या का जन्म होते ही उसे अफीम देकर या अन्य उपायो से मार दिया जाता था,'[१५] ताकि कन्या के विवाह के समय दहेज आदि के कारण जो अपमान सहना पडता है, तथा परेशान होना पडता है, उससे मुक्ति मिल जाय सवर्ण कहे जाने वाले हिदुओ के कुओ से अछूत पानी नहीं भर सकते थे, उनका मदिर प्रवेश भी निषिद्ध था ब्राह्मण नायर के स्पर्श से दूषित समझे जाते थे दक्षिण भारत मे राज, बढई, लुहार, चमार ब्राह्मणो को २४ फुट की दूरी से, ताडी निकालने वाला ३६ फुट की दूरी से, फेरूमान कृषक ४५ फुट की दूरी से अपवित्र कर देता था[१६] अधविश्वास, अज्ञान तथा नवीन साधनो के अभाव मे भारतीय समाज कूपमडूक व लकीर का फकीर बना हुआ था ऐसी परिस्थिति मे भारतवर्ष मे पुनर्जागरण के सामाजिक आदोलनो का उदय होना स्वाभाविक था इन आदोलनो का उद्देश्य भारतीय समाज मे व्याप्त रूढिवादिता की व्याधि को समाप्त करना व समाज को नई चेतना प्रदान करना था

भारतीय नवजागरण के प्रथम ज्योतिर्धर राजा राममोहन राय ने सन् १६२८ ई मे ब्रह्मसमाज की स्थापना की ब्रह्मसमाज ने समस्त सप्रदायो की अच्छाइयो का स्वागत किया और अधविश्वासो को नष्ट करने के लिए सक्रियता के साथ विविध कदम उठाये राजा राममोहन राय के आदोलन के फलस्वरूप सन् १६२६ ई मे सती–प्रथा विरोधी कानून बना फिर भी गतानुगतिकता व कदाचार की चक्की चलती ही रही यह नहीं कह सकते कि इन कानूनों का सदा उचितरूप मे उपयोग किया गया, अथवा इनका लाभप्रद ही प्रभाव पडा हॉ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि इन कानूनो के निर्माण मे पाश्चात्य भावना का प्रभाव था, भारतीय समाज के लिए तो परपरा से कटकर जीना, धर्म विरहित जीवन जीने के समान था सिख राज्य मे सन् १८३६ ई मे महाराजा रणजीतसिह की मृत्यु के बाद उनकी ग्यारह स्त्रियॉ सती हो गई थीं[१७] जिस समय ब्रह्मसमाज की स्थापना हुई विज्ञान के प्रचार–प्रसार के फलस्वरूप पौराणिक आस्थाओ की जडे हिलने लगी थीं राजा राममोहन राय के बाद इस सस्था को महर्षि देवेद्रनाथ ठाकुर व केशवचद्र सेन ने गति दी ईश्वरचंद्र विद्यासागर व सुरेद्रनाथ बैनर्जी के प्रयत्नो से भी सामाजिक स्थिति मे सुधार हुआ, विद्यासागर जी के प्रयत्नो से १८५६ मे विधवा विवाह का कानून बना श्री सुरेन्द्रनाथ बॅनर्जी के प्रयत्नो से अन्तर्जातीय विवाह, मादक द्रव्य निषेध और रात्रि पाठशालो के माध्यम से शिक्षा–प्रसार करने वाली अनेक संस्थाओ की स्थापना

हुई देश की इन्हीं दु खद सामाजिक परिस्थितियो मे स्वामी दयानद (१८२४–१८८३) का आविर्भाव हुआ उन्होने धर्म पर होने वाले आघात व सामाजिक दुर्दशा से तिलमिलाकर १८७५ मे आर्यसमाज की स्थापना की समकालीन सुधारको की तुलना मे स्वामी दयानद का सामाजिक कार्य बहुमुखी व प्रभावशाली रहा सूर्यकात त्रिपाठी निराला के शब्दो मे 'स्त्री–शिक्षा विस्तार का अधिकाश श्रेय स्वामी दयानद सस्थापित आर्यसमाज को दिया जा सकता है[१८]' दिनकर कहते हैं, ''उत्तर भारत मे हिदुओ को जगाकर उन्हे प्रगतिशील करने का सारा श्रेय आर्यसमाज को ही है[१९]'' प्रेमचन्द ने लिखा है, ''हरिजनो के उद्धार में सबसे पहले आर्यसमाज ने कदम उठाया वर्ण व्यवस्था को जन्मगत न मानकर कर्मगत करने का सेहरा उसके सिर है[२०]'' आर्यसमाज के इस बहुमुखी कार्य की प्रशसा करते हुए सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने कहा था, 'स्वतत्र भारत के सविधान मे जिन आदर्शों का समावेश किया गया है, उनके लिए महर्षि दयानंद से प्रेरणा प्राप्त की गई है[२१]' जहाँ आर्यसमाज की दृष्टि विशाल थी, वहाँ उसका क्षेत्र भी व्यापक था ब्रह्मसमाज का क्षेत्र उच्च वर्ग तक ही सीमित रहा, जबकि आर्यसमाज उच्च वर्ग से निम्न वर्ग तक जुडा रहा इसीलिये डॉ रामरतन भटनागर ने लिखा है, ''गाधीवादी चेतना को आर्यसमाज की पृष्ठभूमि आरभ से ही प्राप्त थी, अत उसे शिक्षित वर्ग से नीचे उतरकर जनता तक पहुँचने मे कोई कठिनाई नहीं पडी[२२]'' महर्षि के इस बहुमुखी कार्य की तुलना मे राजा राममोहन राय आदि सुधारको का कार्य अत्यत सीमित था इसीलिये श्री देवेद्रनाथ मुखोपाध्याय ने स्वामीजी की तुलना मे राजा राममोहन राय को ''आशिक सुधारक'' स्वीकारा है[२३] महर्षि दयानद के इस कार्य की विशेषता यह थी कि ''उनका कार्य पूर्णत भारतीय सस्कृति की नींव पर खडा था, जबकि राजा राममोहन राय आदि पश्चिमी सस्कृति के अनुकरण द्वारा भारतीय समाज का विकास करना चाहते थे तत्वत कोई भी देश अधानुकरण करके प्रगति नहीं कर सकता, क्योकि व्यक्ति की स्वाधीनता विकास की पहली शर्त है[२४] यूरोप के प्रभावस्वरूप ब्रह्मसमाज मे बप्तिस्मा और पाप–क्षमा के सिद्धातो तक को अपना लिया गया था, ब्रह्मसमाज मे उत्तरोत्तर ईसाई तत्व बढ रहा था नि सदेह बिछुडो को गले लगाने, जातीयता के पाश को छिन्न भिन्न करने, छुआछूत के भूत को भगाने और स्त्रियो को सुशिक्षित व समुन्नत बनाने मे आर्यसमाज सर्वाग्रणी रहा उसने सुप्त, सडी–गली कुरीतियो से ग्रस्त भारतवासियों को झकझोर कर नई चेतना दी आर्यसमाज के भगीरथ प्रयासो ने मध्ययुगीन रूढिगत मतो के स्थानी पर उन शक्तियो को जन्म दिया, जिसने आधुनिक भारत की नींव रखी सम–सामायिक सामाजिक आदोलनो मे समाज–सुधार सर्वाधिक श्रेय आर्यसमाज को है नि सशय भारत के एक बडे भू–भाग मे आर्यसमाज ने अपनी समाज–सुधार की योजनाओ को कार्यान्वित किया है महर्षि दयानद के बाद इस सस्था को स्वामी श्रद्धानद, लाला लाजपतरायजी ने विशिष्ट गति दी

उन्नीसवीं शताब्दी के अतिम वर्षों मे थियोसोफिकल सोसायटी का भी उल्लेखनीय स्थान है थियोसोफिकल सोसायटी की अध्यक्षा एनीबेसेट सच्चे हृदय से भारत भक्त और ऊँचे दर्जे की व्याख्यात्री थीं श्रीमति एनीबेसेट इग्लैंड मे जन्मी, पली और बढी, परन्तु उनकी कर्मभूमि भारत ही रही शुभ्र भारतीय परिधान मे सदा विभूषित गौरागना श्रीमति एनीबेसेट को काशी के एक विद्वान ने 'सर्व शुक्ला सरस्वती' का विरूद प्रदान किया था उन्होने जाति–प्रथा, स्त्री–शिक्षा और पिछडी जातियों के पुनरूत्थान सबधित अपने अनेक भाषणो द्वारा समाज–सुधार के कार्य को विशिष्ट गति दी थी भारतीय महिलाओ को तो उनसे विशिष्ट प्रेरणा मिली देश की जागृति मे उनका योगदान प्रशसनीय रहा है, 'कालातर मे थियोसॉफी का आदोलन शिष्ट और शिक्षित लोगो के बुद्धिविलास का क्रीडा कानन बन गया'[२५] रामकृष्ण परमहस ने काचन–कामिनी व वासनाओ का परित्याग करके समाज को उदात्त भाव–भूमि पर पहुँचाने की कोशिश की, उन्होने अपने युवा शिष्यो द्वारा जन–मन से लोक–विमुख एव अकर्मण्य बनाने वाली पलायनवादी प्रवृत्तियो को हटाने का भी अदभुत कार्य किया

रामकृष्ण परमहस के अनुयायी स्वामी विवेकानद ने सन् १८६७ मे रामकृष्ण मिशन की स्थापना की स्वामी विवेकानद की समाज–सुधार की प्रक्रिया महर्षि दयानद के समान प्रबल सशक्त क्रातिकारी होने की अपेक्षा शिथिल ही थी मूर्तिपूजा, पौराणिक कर्म–काड व यत्किचित् जातीयता की भावनाओ से भी वे चिपके हुए थे देश को शक्तिशाली बनाने की बात करते हुये वे एक प्रकार से जातीयता का समर्थन ही करते है उन्हीं के शब्दो मे "शक्ति–सचय जितना आवश्यक है, शक्ति–प्रसार भी उतना ही या उससे भी अधिक आवश्यक है हृत्पिड मे रक्त का एकत्र होना तो आवश्यक है, पर उसका यदि सारे शरीर मे सचालन न हुआ तो मृत्यु निश्चित है समाज के कल्याण के लिये कुल तथा जाति विशेष मे विद्या और शक्ति का एकत्र होना कुछ समय के लिये परम आवश्यक है, परतु यह शक्ति सर्वत्र फैलने के लिये विकसित हुई है यदि ऐसा न हुआ तो समाज–शरीर अवश्य तुरत ही नष्ट हो जायेगा[२६]" पौराणिक कर्मकाड के समर्थन मे स्वामी विवेकानद का कथन था कि, "अधविश्वासो के इस विशाल समूह मे सुवर्ण एव सत्य की कणिकाये है क्या तुमने ऐसा साधन ढूँढ लिया है कि तुम सुवर्ण को सुरक्षित रखते हुये अशुद्धि को दूर कर सको?[२७]" जातीयता व पौराणिक कर्मकाड सबधी स्वामी विवेकानद के ये कथन अप्रत्यक्ष रूप मे सुधार कार्य के प्रबल अस्वीकार है जहॉ रामकृष्ण मिशन की निरर्थक भारतीय रूढियो की वैज्ञानिक व्याख्या समाज–सुधार की प्रगति मे बाधक ही सिद्ध हुई, वहॉ रामकृष्ण मिशन की अस्पृश्यता विरोधी जैसी कट्टर भावनाये समाज–सुधार की प्रक्रिया मे विशिष्ट रूप से सहायक सिद्ध हुई" रूग्ण–शुश्रुषा के लिए कार्य मे अन्य कोई भारतीय धार्मिक आदोलन रामकृष्ण मिशन की समता नहीं कर सकता[२८]"

१९२० ई से १९४७ तक महात्मा गाधी स्वराज्य प्राप्ति के लिए सक्रिय होने के साथ–साथ सामाजिक सुधार की दिशा मे भी विशिष्ट रूप से प्रयत्नशील रहे, गाधीजी ने अपने सम–सामायिक आदोलनो से प्रेरणा लेकर अस्पृश्यता उन्मूलन, दलितोद्धार, नारी उत्थान, आश्रम व्यवस्था का सक्रिय समर्थन किया महात्मा गाधी ने लिखा है, 'स्वामी दयानद हमारे लिये विरासत मे जो मूल्यवान वस्तुए छोड गये हैं, उनमे अस्पृश्यता के विरूद्ध उनकी स्पष्ट घोषणा निश्चर ही बहुत महत्वपूर्ण है'[२९] 'महात्मा गाधी का राष्ट्रीय स्वाधीनता आदोलन सफल न हुआ होता, यदि आर्यसमाज ने उससे लगभग ७० वर्ष पूर्व धार्मिक, सामाजिक सुधार आदोलन का मगलाचरण न किया होता भारत के बडे भू–भाग मे समाज–सुधार की योजनाओ को कार्यान्वित करने का श्रेय आर्यसमाज को ही देना पडेगा'[३०] महाकवि निराला ने लिखा है– 'हमे अपने सुधार के लिये क्या–क्या करना चाहिये, हमारे सामाजिक उन्नयन मे कहॉ–कहाँ और क्या–क्या रूकावटे है, हमे मुक्ति के लिये कौन–सा मार्ग ग्रहण करना चाहिये, महर्षि दयानद सरस्वती ने बहुत अच्छी तरह समझाया है'[३१]

इस प्रकार ब्रह्मसमाज–आर्यसमाज व थियोसोफिकल सोसाइटी ने अनेक सामाजिक कुरीतियो और कु प्राओ को सुधार कर नूतन एव परिष्कृत सामाजिक मान्यताओ को प्रस्थापित किया, सर्वश्री ईश्वरचद्र विद्यासागर, महादेव गोविद रानडे, सुरेद्रनाथ बॅनर्जी, महात्मा गाधी, डॉ भीमराव आबेडकर प्रभृति महापुरुषो ने देश की सामाजिक स्थिति को सुधारने मे महत्वपूर्ण योगदान दिया इन सभी महापुरुषो का ध्येय था सामाजिक व्यवस्था मे रोग के समान उत्पन्न बुराइयो को दूर करना

१.३ धार्मिक परिस्थितिः-

उन्नीसवीं शती से पूर्व भारत मे जो सुधारक सत हुये उनका प्रमुख प्रतिपाद्य विषय धर्म था ब्रह्मसमाज ने उपनिषदो के समर्पित धर्म का प्रतिपादन किया तो, आर्यसमाज ने वैदिक धर्म की महत्ता को गति प्रदान की, और रामकृष्ण मिशन ने वेदात धर्म की महिमा का प्रसार किया. प्रार्थनासमाज व थियोसोफिकल सोसाइटी भी इन सस्थाओ के कार्य को पुष्ट कर रहे थे इन सभी के प्रयासो से विदेशी धार्मिक–सास्कृतिक घुसपैठ को अवरूद्ध करने का सराहनीय कार्य हुआ ब्रह्मसमाज,

आर्यसमाज व रामकृष्ण मिशन के आदोलनात्मक कार्यों को पुनर्जागरण के विभिन्न चरणो के रूप मे मान्यता मिली राजा राममोहन राय ने 'उपनिषदो की ओर लौटने' का शखनाद किया तो स्वामी दयानद ने 'वेदो की ओर लौटो' की घोषणा की और रामकृष्ण परमहस, स्वामी विवेकानद ने 'वेदात की ओर' जनता को आकृष्ट किया ब्रह्म–समाज, प्रार्थना–समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी व रामकृष्ण मिशन के सस्थापक व प्रसारक भारत के अतीत के प्रति आकर्षित होते हुये भी मानसिक दृष्टि से पश्चिमी सभ्यता व विचारधारा से प्रभावित थे "पश्चिम मे व्यक्तिगत स्वातत्र्य, राष्ट्रवाद, मानव मात्र के प्रति समानता और बधुत्व के भाव, दास–प्रथा का उन्मूलन आदि जिन उदार विचारो का जन्म हुआ, वे निश्चित रूप से भारतवासियो मे व्याप्त सकीर्णता, अनुदारता तथा रूढिवादिता के भावो का विनाश कर सकेगे यह उनकी सुनिश्चित धारणा थी,[32]" सम–सामायिक आदोलनो मे आर्यसमाज के सस्थापक ही एकमात्र ऐसे थे, जिन पर पाश्चात्य विचार–प्रणाली का किचित् भी प्रभाव नहीं था उनका आदोलन समग्र रूप से भारतीय था तत्कालीन ये सभी आदोलन उदारतावादी थे कालिदास की उक्ति 'पुराणमित्येव न साधु सर्वम्' मे उनका व्यावहारिक स्तर पर विश्वास था ब्रह्मसमाज ने मूर्तिपूजा, बहुदेववाद आदि का तीव्र विरोध किया, पर ईसाइयत के प्रभाव से इसने बप्तिस्मा और पाप–क्षमा के सिद्धातो को स्वीकार किया प्रार्थनासमाज ब्रह्मसमाज का ही एक लघु सस्करण था, थियोसोफिकल सोसाइटी ने अस्पृश्यतादि का जहॉ सख्त विरोध किया वहॉ वह चमत्कार प्रदर्शन व पौराणिक रूढियो के पक मे फॅस गई स्वामी विवेकानद ने मानव–सेवा को आध्यात्मिक साधना तो बनाया, पर पौराणिक कर्मकाडो का क्रातिकारी ढग से विरोध करने का साहस वे भी नहीं कर पाये सत्य ज्ञान के अनुसधान करने वाले स्वामी दयानद ने वैदिक कालीन सास्कृतिक समृद्धि को फिर से लौटा लाने के लिये ही दुराग्रह रहित व यथार्थवादी भूमिका अपनायी स्वामी दयानद का भारतीय नवोत्थान मे अद्वितीय योगदान रहा है स्वामीजी द्वारा स्थापित आर्यसमाज के सदर्भ मे प जवाहरलाल नेहरू विश्लेषण करते हुए कहते हैं, 'आर्यसमाज इस्लाम तथा ईसाइयत के प्रभाव के विरूद्ध प्रतिक्रिया था आतरिक रूप मे वह सगठनात्मक तथा सुधारात्मक आदोलन और बाह्य आक्रमणो के बचाव के लिये वह एक रक्षात्मक दुर्ग था[33]' इसीलिये श्री रामधारीसिह दिनकर कहते है, 'सास्कृतिक क्षेत्र मे भारत का आत्माभिमान दयानद मे निखरा[34]'

ब्रह्मसमाज और प्रार्थनासमाज आदोलनो के प्रभाव मे कतिपय भारतीय पाश्चात्य सभ्यता को श्रेष्ठ और भारतीय सस्कृति को हेय समझते थे रोमा रोलॉ लिखते हैं – 'राजा राममोहन राय यह तो कभी चाहते ही नही थे कि इग्लैण्ड को भारत से निकाल दिया जाय[35], अपितु उनकी इच्छा थी कि वह यहॉ इस प्रकार जम जाय कि उसका रक्त, उसका सोना और उसके विचार भारतवासियो के साथ घुल–मिल जाय इसके विपरीत पुनरूत्थान के द्रष्टा स्वामी दयानद ने स्पष्ट लिखा था, 'अन्य देशवासी राजा हमारे देश मे कभी न हो[36]' 'कोई कितना ही करे परतु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है प्रजा पर माता पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियो का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है[37] वायसराय लार्ड नार्थ ब्रुक को स्वामी दयानद ने स्पष्ट उत्तर दिया था "मै अपनी मातृभूमि को स्वच्छद राष्ट्रो की पक्ति मे खडा देखना चाहता हूँ[38]" आर्यसमाज और रामकृष्ण मिशन के प्रचार–प्रभाव से देश ने स्वय को ब्रह्मसमाज और प्रार्थनासमाज के प्रारभिक चरण की हीन भावना से मुक्त पाया राष्ट्रीय पुनजार्गरण को प्रतिष्ठित करने मे स्वामी दयानद व विवेकानद का महत्वपूर्ण योगदान है इसीलिये रेम्जे मैकडानल्ड ने लिखा था, "आर्यसमाज आक्रमक, उग्रवादी, तेजोमय, पुरूषार्थपूर्ण व प्रचारवादी आदोलन है[39]" स्वामी विवेकानद ने १८६३ ई मे शिकागो के सर्वधर्मसम्मेलन मे भारतीय सस्कृति की विशिष्ट छाप डाली स्वामी विवेकानद के भाषण से प्रभावित होकर 'न्यूयार्क हेराल्ड' ने लिखा था, "सर्वधर्मपरिषद् मे विवेकानद सबसे बडे व्यक्ति हैं, उनका भाषण सुनने के बाद हम यह अनुभव करते हैं कि उस शिक्षित राष्ट्र (भारत) को

मिशनरी भेजना कितना मूर्खतापूर्ण है[४०]" नोबेल पुरस्कार विजेता कवींद्र रवींद्र, योगी अरविंद व लोकमान्य तिलक ने भी भारतीय जन–जीवन मे जागृति और सास्कृतिक पुनरूत्थान मे महत्वपूर्ण योगदान दिया पूर्व और पश्चिम के मूलभूत विचारो तथा आदर्शों मे इन सभी महापुरूषो ने समन्वय तथा ऐक्य स्थापित करने का स्तुत्य प्रयास किया रवींद्रनाथ ठाकुर ने सर्वधर्मसमभाव पर बल दिया तो अरविंद घोष ने राष्ट्रीय भावो को आध्यात्मिक क्रातिकारी राष्ट्रवाद का रूप दिया[४१] और "लोकमान्य तिलक ने सास्कृतिक पुनर्जागरण के आधार पर राष्ट्रीयता का निर्माण किया[४२]" पुनर्जागरण की धारा को तिलक ने कर्मयोग से मडित किया इसीलिये श्री रामधारी सिह दिनकर ने कहा है, "गीता एक बार तो भगवान् कृष्ण के मुख से कही गयी थी, किन्तु दूसरी बार वह तिलक के द्वारा उद्‌गीत हुई है[४३] लोकमान्य तिलक ने शिवाजी उत्सव की स्थापना करके और गणपति उत्सव को समयानुकूल नया रूप देकर पहले महाराष्ट्र और फिर सारे राष्ट्र को राष्ट्रीयता की यज्ञाग्नि से प्रकाशित किया उन्होने सास्कृतिक–धार्मिक क्रिया–कलापो को राष्ट्रीयता के परिवेश मे पूर्णत प्रतिष्ठित किया

इस प्रकार इस युग मे सास्कृतिक पुनरूत्थान की प्रवृत्ति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है इस प्रवृत्ति के मूल मे भारतीय व पाश्चात्य दोनो का प्रभाव रहा है मैक्समूलर, गेटे जैसे पाश्चात्य विद्वानो ने भारतीय प्राचीन साहित्य के सबध मे जो महत्वपूर्ण अनुसधानात्मक रचनाये प्रस्तुत कीं, उनसे भी भारत लाभान्वित हुआ, और अपनी प्राचीन थाती के प्रति उसमे गौरव–भावना जागी भारतीय आदोलनो व पाश्चात्य विद्वानो की प्रशसा व विचारधारा ने भारतीय जन–मानस मे सास्कृतिक चेतना की एक अपूर्व लहर दौडा दी सास्कृतिक दृष्टि से यह युग अतीतोन्मुखी व पुनरूत्थानवादी है

१.४ आर्थिक परिस्थितिः-

भारत मे 'ब्रिटिश ईस्ट इडिया' कपनी का उद्देश्य ही भारत का आर्थिक शोषण कर अधिकाधिक धन सचय करना था 'इसी कारण जिले का सर्वोच्च पदाधिकारी कलेक्टर कहा जाता था.[४४]' जॉन ब्राइट के अनुसार सन् १७५७ से १८५७ ई. तक का शासन काल 'अपराध पूर्ण शतवर्षीय शासन काल' के नाम से सबोधित किया जाता है[४५] अर्थोपार्जन के साधन कृषि, वाणिज्य और कला–कौशल व देशातर्गत उद्योग विदेशी साम्राज्यवाद के आधीन हो गये. नमक जैसी वस्तु पर भी ३०० प्रतिशत के लगभग उत्पादन शुल्क बिठाकर नमक व्यवसाय को नष्ट कर दिया गया[४६] एक प्रकार से भारतीय लक्ष्मी परतत्र होकर विदेशी शासको के बंधन मे पड गयी. भारतीय कुलियो की तो गुलाम हब्शियो से भी बदतर स्थिति हो गयी थी ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा किये आर्थिक शोषण का यह परिणाम था कि जो आर्यावर्त्त सत्रहवीं शताब्दी तक 'सोने की चिडिया' कहा जाता था वह दीन–हीन बन गया इसी आर्यावर्त्त के संबंध मे दो सदी बाद सर विलियम डिगबी लिखता है, "बीसवीं सदी के शुरू मे करीब दस करोड मनुष्य ऐसे हैं, जिन्हे किसी समय भी पेट भर अन्न नहीं मिल पाता[४७]" एक अमेरिकी इतिहासकार लिखता है, "शायद जबसे दुनिया शुरू हुई है, किसी भी पूँजी से इतना मुनाफा नहीं हुआ जितना की हिन्दुस्तान की लूट से" ब्रिटिश आर्थिक व्यवस्था मे भारतवर्ष एक उपनिवेश मात्र और कच्चा माल देने वाले देश के रूप में रह गया. डॉ. कृष्णलाल इस युग का विवेचन करते हुए कहते हैं, "मुसलमानों के शासन काल में अपने देश का रुपया देश में ही रहा, भोग–विलासिता राजा और नवाबों तक ही सीमित थी, साधारण जनता इससे बहुत दूर थी, परतु अब देश का रूपया बाहर जाने लगा, जनता का रहन–सहन भी ऊँचा हो चला. आवश्यकताओं की निरतर वृद्धि होती रही थी[४८]" परिणामस्वरूप 'पै धन विदेस चलि जात' की 'अतिख्वारी' भारतेन्दु को थी. अंग्रेजों ने उर्वर भारतभूति को निर्ममता से लूटा, जिधर उनकी कुदृष्टि पडी वहीं दारिद्रय छा गया.

भारतेदु युग मे देश की आर्थिक स्थिति बडी ही दयनीय बन गयी थी यत्रों के विकास के

साथ ही आर्थिक शोषण व करो का एक नया अध्याय जुड गया था भारत मे स्टीम इजिन, तथा अन्य वैज्ञानिक साधनो का प्रचुर मात्रा मे प्रचार हुआ, जिसका फल देश की औद्योगिक स्थिति के पक्ष मे नहीं हुआ १९११ मे टाटा ने जमशेदपुर मे लोहे और फौलाद का कारखाना खोला तथा अन्य उद्योग धधो की भी नींव डाली, तो सरकार ने उन्हे कुदृष्टि से देखा द्विवेदी युगीन भारत की आर्थिक दशा भारतेदु युगीन भारत से कुछ विशेष अच्छी नहीं थी. विदेशी वस्तुओ से भारत का बाजार भर गया था, भारतीय उद्योग धधे नष्ट कर दिये थे विश्व–युद्ध काल मे भारतीय सेना का पूरा खर्च देश पर आ पडा था बढ़ते हुए करो ने देश की आर्थिक दशा को और दयनीय बना दिया था अकाल और भुखमरी से पूरा देश छटपटा उठा था. उद्योग धधों का अधिकाश लाभ अग्रेज पूजीपतियो को ही प्राप्त हुआ, बचे–खुचे धन–लाभ से भारतीय मिल–मालिको का खजाना बढा, पर जिन मजदूरो के कारण यह लाभ हुआ था, उनकी आर्थिक दशा तो दयनीय ही रही.

साहित्यिक क्षेत्र मे भारतेदु के नेतृत्व मे आर्थिक नीति का विरोध शुरु हो गया था. भारतेदु युग व द्विवेदी युग के साहित्यकारो ने आर्थिक शोषण व स्वदेशी आदोलन को अपनी रचनाओ मे स्थान दिया इस युग मे भारतीय जनता व उसके साहित्य में अपनी दरिद्रता एव विदेशी शोषण से मुक्त होने की भावना प्रबुद्ध हुई सामाजिक क्षेत्र मे आर्यसमाज ने तथा राजनीतिक क्षेत्र मे कॉग्रेस ने विदेशी वस्त्रो का बहिष्कार कर अग्रेजो की आर्थिक एव औद्योगिक नीति का विरोध किया

आर्यसमाज के सस्थापक स्वामी दयानद ने स्वदेशी का समर्थन बग–भग विरोधी आदोलन से बहुत पहले किया था सन् १८७५ मे प्रकाशित 'सत्यार्थप्रकाश' के प्रथम संस्करण मे स्वामी दयानद ने नमक–कर और जगल–कानून का भी विरोध किया है[३९], न्यायालयो मे स्टैम्प शुल्क आदि की आलोचना भी इस आदिम 'सत्यार्थप्रकाश' मे देखने को मिलती है[४०] मार्च १८८३ ई मे जब स्वामी दयानद जोधपुर रियासत में गये थे, तो उन्होने महाराज से अपने राज्य के स्वदेशी वस्त्र उद्योग की सहायता करने की प्रेरणा दी थी स्वामी दयानद ने दीन–हीन–कृषक को 'राजाओ के राजा' कहकर सहानुभूति प्रकट की थी, 'व्यापारे वसति लक्ष्मी' के सिद्धांत मे उनका विश्वास था. भारतीय वाणिज्य की प्रगति हेतु वे भारतीयो को विदेश भेजना चाहते थे[४१] राष्ट्रोन्नति के लिए व्यापार का समर्थन करते हुए उन्होने कहा था, "क्या बिना देश–देशांतर और द्वीप–दीपातर मे राज्य वा व्यापार किये स्वदेश की उन्नति कभी हो सकती है[४२] आर्यसमाज ने अपनी शिक्षा सस्थाओ, पत्रो व नेताओ के माध्यम से स्वदेशी आन्दोलन मे नये प्राण फूँके. १५ सितबर १९०५ के 'सद्धर्म प्रचारक' ने स्वदेशी आदोलन के समर्थन मे प्रभावशाली सपादकीय लिखा था. स्वामी श्रद्धानद की गुरुकुल शिक्षा प्रणाली 'स्व' के इस राष्ट्रीय भाव से सर्वाधिक ओतप्रोत थी लाला लाजपतराय की तरह अन्य नेता भी स्वदेशी को देशभक्ति का पर्यायवाची शब्द मानते थे. आर्यसमाजी नेताओ ने स्वदेशी आदोलन को सफल बनाने में अभूतपूर्व योगदान दिया आर्यसमाज धर्मपूर्वक न्याय से अर्थोपार्जन करने व अर्जित धन के सदुपयोग पर सर्वाधिक बल देता है. उसके अनुसार धन का सदुपयोग निर्धनो की निर्धनता दूर करने और कला–कौशल के विकास मे ही होना चाहिए कानपुरी सेठ गुरुप्रसाद और प्रतापनारायण द्वारा मदिर बनवाए जाने पर स्वामीजी ने उनसे कहा था, "कोई कला–कौशल का कारखाना खोलते, जिससे देश और जाति का भला होता[४३] " आर्यसमाज ने अपने देश की औद्योगिक उन्नति हेतु देश के लोगों से विदेश जाकर ज्ञान–विज्ञान उद्योग व्यवस्था सीखने का अनुरोध किया. इस हेतु एग्लो वैदिक कॉलेज लाहौर मे, १९०५ मे जापानी भाषा सिखाने का प्रबध भी किया गया[४४]. आर्यसमाज प्रवृत्ति मार्गी है, पर वह त्याग से भोग करने की विचारधारा का कट्टर समर्थक है. आर्यसमाज के इसी आर्थिक दृष्टिकोण से गाधी युग भी प्रभावित नजर आता है.

गाधी जी की आर्थिक नीति अपरिग्रह, अस्तेय, शरीरश्रम, ईमानदारी और स्वदेशी के आदर्शो

पर निर्धारित थी. आर्थिक समता लाने के लिए वे ह्रदय परिवर्तन मे विश्वास रखते थे पूँजीपति के ह्रदय मे भी वे दया, सवेदना के भाव जागृत करना चाहते थे महात्मा गाधी पूँजीपतियो और जर्मीदारो को मजदूरो के ट्रस्टी (सरक्षक) बनाना चाहते थे. आर्थिक साम्य की स्थापना हेतु मालिको के अधिकारो को छीनने व कानून की सहायता से उनकी सपत्ति को अधिकृत करने के पक्ष मे वे कभी नही रहे उनकी धारणा थी कि इस तरह से परस्पर सौमनस्य नष्ट हो जायेगा विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार के निमित्त उन्होने स्वदेशी आदोलन का नेतृत्व व प्रचार किया उन्होने कहा था, "हमारे राष्ट्रीय स्कूल 'चर्खा–शाला' होने चाहिऍ चर्खे के द्वारा ही हम युवको को सहस्त्रो की सख्या मे काम दे सकेगे और जनता की धन–वृद्धि मे सहायक हो सकेगे[५५]" प्रसिद्ध विचारक रसेल की तरह गाधीजी मशीनो के विरोधी थे 'वे सभ्यता की नींव नगरो के उद्योगो पर नहीं, किन्तु ग्रामोद्योगो पर आधारित रखना चाहते थे[५६] ' 'यत्रो के कारण असंख्य लोगो का शोषण होता है और बेकारी भी बढती है' यह उनका दृढ मत था वे यह भी मानते थे कि यत्रो से धन का केंद्रीकरण होता है महात्मा गाधी धन का विकेन्द्रीकरण चाहते थे उनका कहना था, 'भारतीय किसानो के लिए हाथ करघा इसलिये विशेष उपयोगी है, क्योकि इससे उन्हे अपनी बेकारी दूर करने मे सहायता मिलती है[५७] वे उन सभी वस्तुओ के प्रयोग के विरोधी थे, जिससे देश का धन विदेश जाता है गाधी युग (सन् १६२०–१६४७ ई) की समूची राजनीति स्वदेशी एव बहिष्कार आदोलन के चारो तरफ घूमती है दयानद का नेतृत्व स्वीकार करने वाले आर्यसमाज व गाधी का नेतृत्व स्वीकार करने वाली कॉग्रेस ने अग्रेजो की आर्थिक नीति के विरोध मे जो प्रतिरोध की नीति अपनायी, वह अभिन्न थी, उसका कार्यक्रम था – अग्रेजी माल का बहिष्कार व स्वदेशीं का प्रचार, सरकारी शिक्षण सस्थाओ का बहिष्कार व राष्ट्रीय स्कूल कॉलेजो की स्थापना, सरकारी न्यायालयो का बहिष्कार व विवादो के निर्णय के लिये पचायतो की स्थापना, न्याय और ईमानदारी से अर्थोपार्जन करने के लिये आर्यसमाज व कॉग्रेस दोनों ने ही समान रूप से बल दिया इन सस्थाओ द्वारा सचालित स्वदेशी आदोलन राष्ट्रीय आदोलन का एक प्रमुख अग बन गया था इन आदोलनो के कारण देशी उद्योग–धधो और व्यवसायो की प्रगति को गति मिली

भारतेदु–द्विवेदी युग के पश्चात् छायावाद काल मे पूँजिपतियो तथा गावो के सेठ–साहूकारो की स्थिति ठीक रही, पर किसान–मजदूर ऋण के बोझ से लदे रहे इस विषय आर्थिक स्थिति ने तत्कालीन जनजीवन और साहित्यकारो को प्रभावित किया, जिसका स्वरूप हमे तत्कालीन श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति के साहित्य मे भी दृष्टिगोचर होता है.

सन्दर्भ

१ बासुरी–६
२ भारतीय राष्ट्रवाद एव आर्यसमाज आदोलन–२८
३ हिन्दी गद्य साहित्य–५०
४ दि आर्य मेसेन्जर १५ अक्टूबर १६०७
५ कॉग्रेस का इतिहास–५८
६ जनज्ञान जुलाई–अगस्त १६७१–२५३
७ हिन्दी गद्य साहित्य–८८
८ राष्ट्रीयता की पृष्ठभूमि मे आधुनिक काव्य का विकास–१५३
६ मेरी कहानी–२१
१० ब्रिटिश रूल इन इन्डिया–२६६
११ गृह राजनीतिक विभाग कार्रवाई जुलाई १६१६, स २६
१२ कॉग्रेस का इतिहास–२७६
१३ भारत का सविधान और राष्ट्रीय विकास–२०५
१४ इतिहास प्रवेश–१७
१५ भारत का सास्कृतिक इतिहास–२७३
१६ भारतीय राष्ट्रवाद एव आर्यसमाज आन्दोलन–७०
१७ रणजीत चरित–१११
१८ प्रबध प्रतिमा–६२
१६ सस्कृति के चार अध्याय–१७१
२० साहित्य का उद्देश्य–१८६
२१ जीवन सघर्ष–२६४
२२ निराला और नवजागरण–६०
२३ विरजानद चरित–१७८
२४ हिन्दी गद्य साहित्य–४२
२५ महर्षि दयानद व आर्यसमाज का सस्कृत साहित्य को योगदान–२६
२६ विवेकानद साहित्य भाग–६, पृ २१३
२७ नारायण अभिनन्दन ग्रथ–लेख–उन्नीसवीं शती के धार्मिक आन्दोलन–८०
२८ हिन्दी गद्य साहित्य–६६
२६ दयानद कम्मेमोरेशन वाल्यूम–७३
३० भारतीय राष्ट्रवाद एव आर्यसमाज का आन्दोलन–८५
३१ वन्दना के स्वर–१८
३२ महर्षि दयानद व आर्यसमाज का सस्कृत साहित्य को योगदान–१६
३३ दि डिस्कवरी ऑफ इण्डिया–३७८–३७६
३४ सस्कृति के चार अध्याय–४६३
३५ दि लाइफ ऑफ रामकृष्ण, अल्मोडा अद्वैत आश्रम–१०७
३६ आर्याभिविनय–२४८
३७ सत्यार्थप्रकाश–२६७
३८ भारतीय स्वधीनता सग्राम और आर्य समाज–११
३६ दि गवर्नमेट ऑफ इणडिया–२३७–३६
४० नारायण अभिनन्दन ग्रथ–७६
४१ वदे मातरम् अप्रैल १६०७
४२ आधुनिक भारत–६८
४३ पत, प्रसाद और मैथिलीशरण–४
४४ हिन्दी गद्य साहित्य–३०
४५ भारतेन्दु युग–१३
४६ लघु इतिहास–४१६
४७ भारत मे अग्रेजी राज प्रथम खण्ड–१
४८ आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास–३१
४६ सत्यार्थ प्रकाश–५०२
५० तत्रैव–५०६
५१ ऋषि दयानद के पत्र और विज्ञापन–२४६
५२ सत्यार्थ प्रकाश–२१८
५३ ऋषि दयानद के पत्र और विज्ञापन–२१४
५४. सरस्वती जून १६०५–२०१
५५ आत्मकथा–१८०
५६ साकल्य–६६
५७ सोशियल बॅक ग्राउण्ड ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म–८२

२

इन्द्र विद्यावाचस्पति : जीवनी एवं व्यक्तित्व

दुनिया उसको ही पूजती है, जो अपने 'स्व' को 'सर्व' मे मिला देता है आजानुबाहु[१] प्रो इन्द्र विद्यावाचस्पति जी ने अपने शैक्षिक, साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक एव पत्रकारिता के अमोघ एव बहुमूल्य सामर्थ्य से राष्ट्रीय अस्मिता को अक्षुण्ण बनाये रखने मे अविस्मरणीय योगदान दिया है जीवन मे अनेक विलोभनीय प्रलोभन आये, पर उन सबको ठुकराकर वे राष्ट्र–निर्माण के कार्य मे ही लगे रहे वे देश के महान् विश्वकर्मा थे राष्ट्रीय साहित्यकारो मे उनका स्थान महत्वपूर्ण है

२.१ जन्मः माता-पिताः-

प्रो इन्द्र विद्यावाचस्पति के पिता श्री महात्मा मुशीराम थे उनकी माताजी का नाम शिवदेवी था श्री विद्याचाचस्पति का जन्म ६ नवबर १८८६ को पजाब के जालन्धर नामक नगर मे हुआ[२] बालक इन्द्र अभी दो वर्ष का भी न हो पाया था कि ३१ अगस्त १८६१ को उनकी मॉ का साया सिर से उठ गया[३] ताई जमुनादेवी जी ने बचपन से ही बालक इन्द्र का बहुत कष्ट उठाकर अतिशय मातृभाव से पालन–पोषण किया पिताश्री मुशीराम ने अपने ज्येष्ठ पुत्र हरिश्चन्द्र से साम्य रखते हुए इस नवजात का नामकरण भी इन्द्रचन्द्र ही रखना पसन्द किया चन्द्र के प्रति यह आग्रह असाधारण है तात मुशीराम ने न जाने किन विचारो से सराबोर हो 'चन्द्र' से इतना प्यार किया था, पर इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यशस्वी पिता की तरह प्रतिपच्चद्रकला के समान ही इन्द्र की ख्याति भी 'दिन दुगुनी रात चौगुनी' बढने लगी यह भी एक सयोग ही समझिये कि इन्द्र जी की द्वितीय पत्नी का नाम भी चन्द्रवती था और कालान्तर मे जब इस दम्पति ने अपना घर बनाया तो उसका नाम भी 'चन्द्रलोक' ही रखा गया अस्तु

विद्यावाचस्पति के पिता मुशीराम जी ऋषितुल्य जीवन जीने वाले, निष्ठावान् शिक्षा शास्त्री, महान् समाज–सुधारक व तेजस्वी राष्ट्रीय नेता के रूप मे देश मे विख्यात थे वकीली पेशे को लात मारकर उन्होने अपना सपूर्ण जीवन समाज व राष्ट्र की सेवा मे अर्पित कर दिया था उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप प्रो विद्यावाचस्पति पर दृष्टिगोचर होती है विद्यावाचस्पति जी के शब्दो मे, "पिताजी के जीवन–काल मे सदा उनका अनुयायी रहा कभी–कभी स्थान की दृष्टि से अधिक दूरी हो जाने पर भी मानसिक दृष्टि से सदा समीपता रही स्नातक बनने के पश्चात् लगभग पन्द्रह वर्ष के क्रियात्मक जीवन मे आर्यसमाज के क्षेत्र मे हो या कॉग्रेस के क्षेत्र मे, मैं उनके दाये या बाये दिखाई देता था[४]" पिताजी ने 'विचार और कार्य की पूरी स्वतत्रता दे रखी थी[५] "पिताजी से असहमत होकर रस्सी तुडाने की नौबत नहीं आई थी, क्योकि वह रस्सी असीम थी जो व्यक्ति उनके समीप रहे वे सभी अनुभव करते थे कि उनके हृदय का घेरा बहुत विस्तृत था, वह देश और जाति की सीमाओ से सीमित नहीं था[६]"

२.२ प्रारंभिक जीवन की महत्वपूर्ण घटनाएँ:-

आर्यसमाज की स्थापना के १४ साल बाद, महर्षि दयानद निर्वाण के ६ साल उपरात, कॉग्रेस स्थापना के चार साल पश्चात्, और प जवाहरलाल नेहरू के जन्मदिन से ठीक ५ दिन बाद इन्द्रजी का जन्म हुआ स्पष्ट है इस काल में सामाजिक व राजनीतिक क्राति के स्वर पूरे देश मे निनादित

हो रहे थे तत्कालीन परिवेश की इन तरगो को जिन राष्ट्रीय नेताओ के अतर्बाह्य व्यक्तित्व मे तरगायित होता हुआ देखा जा सकता था, उनमे इद्रजी के पिता महात्मा मुशीराम की भी विशिष्ट रूप से गणना की जा सकती है इस समय तक इद्रजी के "पिताजी मुशीरामजी कट्टर आर्यसमाजी बन चुके थे [७]" वे कचहरी से लौटकर, घर जाने से पूर्व, जालधर आर्यसमाज जाते थे इद्रजी जब होश मे आये, तब से उन्होने पिताजी को जालधर आर्यसमाज का प्रधान ही पाया [८] सायकाल घर के सामने चबूतरे पर पच्चीस–तीस कुर्सियो से सजा दरबार लगता था यह दरबार अँधेरा होने तक जारी रहता जिसमे राजनीति, धर्म आदि पर चर्चा होती थी चर्चा मे रानाडे, तिलक, प गुरुदत्त का नाम प्राय बारबार आता था घर की बैठक मे अन्य चित्रो से आकार व सजावट की दृष्टि से बढ–चढकर जो तीन बडे विशिष्ट महत्वपूर्ण चित्र लगा रखे थे, वे ऋषि दयानद, महादेव गोविद रानाडे और लोकमान्य तिलक के थे पिताजी का गृहस्थ राजा जनक के राज्य जैसा था वे गृहस्थ मे रहते हुए भी गृहस्थ से बाहर थे जैसे कमल–पत्र पानी मे रहते हुए भी गीला नहीं होता, ठीक वैसी ही दशा पिताजी की थी [९] कभी–कभी शाम को बच्चो के पीछे पडने पर मजबूरन पिताजी सर वाल्टर स्काट और चार्ल्स डिकन्स आदि की कहानियाँ जरूर सुनाते थे बालक इद्र जब तीन वर्ष का हुआ तब पिताजी आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के प्रधान थे पजाब भर के आर्यसमाजो मे घूमकर प्रचार करना और आर्य सगठन को मजबूत करना पिताजी का महत्वपूर्ण कार्य था, इसके अतिरिक्त वे 'सद्धर्म प्रचारक' के सपादन मे भी रत रहते थे बचपन का यह परिवेश इद्रजी को महान् शिक्षा शास्त्री, प्रखर राष्ट्रवादी, साहित्य–सेवी, व तेजस्वी पत्रकार बनाने मे सहायक हुआ इस 'घरेलू' वातावरण के कारण जहाँ बचपन से ही राजनीति की ओर उनका झुकाव हो गया [१०] वहाँ पत्रकार बनने की धुन भी उनमे बचपन से ही सवार हो गई आर्यसमाज की छाप भी प्रारभ से ही उनके व्यक्तित्व को अभिभूत करने लगी थी क्रियात्मक जीवन के प्रारभ से ही इद्रजी की कार्यप्रणाली मे धर्म और राजनीति का मिश्रण होने लगा था "उनकी शिक्षा–दीक्षा धार्मिक हुई और आतरिक प्रवृत्ति राजनीति की ओर थी [११]" मेरी दृष्टि मे तो सही आर्यसमाजी कोरा धार्मिक या निरा राजनीतिज्ञ हो ही नहीं सकता वह राजनीति और धर्म को साथ–साथ लेकर चलता है धर्म राजधर्म होता है इद्र जी का व्यक्तित्व और कृतित्व भी इसी तथ्य का परिचायक है इद्रजी का यह सौभाग्य था कि बचपन से ही उन्हे आदर्श और प्रेरणा के स्रोत की खोज मे भटकने की जरूरत नहीं पडी पिताजी की दृष्टि–छाया मे बालक इद्र का व्यक्तित्व विविध गुणो से समन्वित हो सवर्धित होने लगा

२.३ शिक्षा-दीक्षा:-

इद्रजी की प्रारभिक शिक्षा द्वाबा हाईस्कूल मे हुई [१२] जब वे छठी कक्षा मे पढ रहे थे, तो पिताजी के आदेश पर गुरुकुल गुजरॉवाला मे भेज दिये गये १६ मई १९०० को गुजरॉवाला मे स्थायी तौर पर गुरुकुल की स्थापना की गई थी जालधर मे जिन्होने बालक इद्र का उपनयन सस्कार किया था, वे प गगादत्त जी महाराज ही इस गुरुकुल मे प्रधानाध्यापक थे बडे छात्रो मे प नरदेव जी शास्त्री व आचार्य पद्मसिह शर्मा व प. दीनानाथ जी थे प इद्र जी के पूर्वजो की जन्मभूमि तलवन के प दीनानाथ जी ही उनके कुल पुरोहित (पाधे) थे प इद्रजी को संस्कृत का पहला पाठ इन्हीं से प्राप्त हुआ दो वर्ष बाद जब गगा की धारा से डेढ मील दूरी पर, हिमालय की उपत्यका, शिवालिक पहाडी की तलहटी मे, कटकाकीर्ण अरण्य से आवेष्टित कागडी ग्राम की दो बीघा जमीन के टुकडे पर 'गुरुकुल कागडी' की प्रारभिक झोपडियो का निर्माण हो गया, तो इद्र जी के पिताजी गुजरॉवाला आए और इद्र जी सहित ३४ बालको को लेकर हरिद्वार की ओर रवाना हो गए [१३]

४ मार्च १९०२ को सनातन धर्म के गढ हरिद्वार और कनखल को वेदमत्रो के खुले पाठ से आश्चर्यचकित करता, रेतीले–पथरीले और कटाकाकीर्ण मार्ग को रौंदता हुआ गुजरॉवाला से

चला ब्रह्मचारियो का ये दल धवल–चद्र ज्योत्स्ना मे पुण्यभूमि गुरुकुल कागडी पहुँच गया गुरुकुल प्रयाण से पूर्व उर्दू–फारसी शिक्षक ने घर पधारकर इद्रजी को उर्दू और फारसी भाषा का अच्छा पाठक बना दिया था फारसी मे वे 'सोहराब रूस्तम की कहानी' बडे चाव से पढा करते थे पिताजी का पत्र 'सद्धर्म प्रचारक' भी उर्दू मे ही निकलता था गुरुकुल कॉगडी मे प्रवेश के साथ ही इद्र जी का ऋषि सन्तान के समान गुरुकुलीय जीवन प्रारभ हो गया पिता–पुत्र का सबध आचार्य और अन्तेवासी के रूप मे परिवर्तित हो गया वैसे भी पिताजी ने 'पद्मपत्रमिवाम्भसा' गृहस्थ धर्म का पालन किया था विद्यावाचस्पति जी के शब्दो मे, "हम लोग यह तो अनुभव करते थे कि उनकी ऑखे हम पर हैं, परन्तु उनका हाथ हमसे दूर ही रहता था"[१४] जीवन मे एक बार ही इद्रजी पितृप्रेम के स्वर्गीय सुख का अनुभव कर पाये थे तत्सबधी सस्मरण उन्हीं के शब्दो मे प्रस्तुत है, "गुरुकुल के चन्दे का दौरा लगभग समाप्त करके पिताजी लाहौर के आर्य होटल मे ठहरे हुए थे हम दोनो भाई उस रात जीवन मे पहली बार अपने पिताजी के दोनो ओर चारपाइयो पर सोए उस रात सोने से पहले पिताजी हमारी चारपाइयो पर आए और प्रत्यक्ष मे प्यार किया वह अनुभव हमारे बाल्यजीवन मे बिल्कुल अपूर्व था अन्यथा सदा पिताजी हमसे दूर–दूर रहकर वात्सल्य भाव रखते रहे कभी उसे अनुभव मे नहीं आने दिया उस रात उन्होने प्रेम से हम दोनो के सिरो को चूमा हम दोनो भाइयो ने उस समय मानो स्वर्गीय सुख का अनुभव किया"[१५]

क्रमश गुजरॉवाला व कॉगडी गुरुकुल मे सात वर्ष की सतत सस्कृत शिक्षा के बाद इन्द्र जी ने इतिहास, अर्थशास्त्र, गणित, ऑग्लभाषा, विज्ञान आदि आधुनिक विषयो का अध्ययन भी किया गुरुकुल शुरू से स्वभाषा का समर्थक रहा था वहॉ प्रारभ से ही सभी विषयो की शिक्षा हिदी माध्यम द्वारा दी जाती रही है, अत विज्ञान, गणित और पाश्चात्य दर्शन आदि विषय भी हिदी मे ही पढाये जाते थे व्याकरण, साहित्य, दर्शन सभी विषयो मे इन्द्र जी की योग्यता श्रेष्ठ मानी जाती थी[१६] वे सस्कृत विद्या के साथ विज्ञान, कला आदि मे पूर्ण पारगत थे सन् १९०२ से १९०६ तक इद्र विद्यालय विभाग के छात्र रहकर 'विद्याधिकारी' बने, और १९०७ से १९१२ तक महाविद्यालय विभाग के छात्र रहकर 'वेदालकार' बने १९०२ से १९०६ तक गुरुकुल के पाठ्यक्रम मे भारतीय विद्याओ का जोर रहा १९०६ से १९१० के दूसरे दौर मे गुरुकुल मे पूर्व और पश्चिम की उपादेय बातो का समुचित समन्वय हुआ प्राचीन और अर्वाचीन का यह सघर्ष प्रमुख रूप से शिक्षको मे हुआ इद्रजी सबसे बडी श्रेणी मे थे, इसलिए प्रत्येक सघर्ष व परिवर्तन ने उनको सर्वाधिक प्रभावित किया मुशीराम जी अपने जीवन मे वैचारिक स्तर पर ही नहीं, क्रियात्मक स्तर पर भी प्रगतिशील थे प्राचीन और अर्वाचीन के वैचारिक सघर्ष को स्पष्ट करते हुए इद्रजी ने लिखा है, "शुरु मे पिताजी को जो सहायक मिले, उनमें गुरुकुल चलाने की अन्य बहुत सी योग्यताएँ होते हुए भी उनके दृष्टिक्षेत्र बहुत ही सकुचित थे,"[१७] किन्तु महात्मा मुशीराम के प्रगतिशील दृष्टिकोण के कारण गुरुकुल 'तात का कूप' बनने से बच गया और ब्रह्मचारी भी 'कूपमडूक' होने से बच गये इस सघर्ष ने इन्द्रजी की दृष्टि को व्यापक बनाने मे अभूतपूर्व भूमिका निभाई

२.४ विद्यावाचस्पति जी का स्वाधीनता संग्राम में योगदानः-

गुरुकुल के देशभक्तिमय वातावरण का प्रभावः– बचपन से ही श्री विद्यावाचस्पति जी ने राष्ट्रीय गीतो मे बेडियो की झकार को सुना था[१८] उन्होने अपने पिताजी को आर्यसमाज के माध्यम से देश–सेवा करते देखा था पिताजी ने राष्ट्रीय शिक्षणालयो के अभाव को अनुभव कर गुरुकुल की स्थापना की थी विद्यावाचस्पति जी का पूर्ण अध्ययन–अध्यापन काल गुरुकुल कॉगडी मे ही बीता. गुरुकुल के अधिकारी सरकारी अफसरो की खुशामद नहीं करते थे गुरुकुल मे दर्शक के रूप मे आने वाले गुप्तचर विभाग के पुलिस के उच्चाधिकारियों का क्रम लगा ही रहता था. जब कभी गुरुकुल

के ब्रह्मचारी सरस्वती यात्राओ (एज्युकेशनल टूर) पर निकलते थे, तब उनके पीछे गुप्तचर गुलडॉग की तरह लगे रहे थे, और गुरुकुल के जो कार्य सरकार के सहयोग की अपेक्षा करते थे, उनमे रोडे अटकाये जाते थे [१९] एक पुलिस अधिकारी द्वारा बिजनौर के कलेक्टर को प्रस्तुत रिपोर्ट मे यहाँ तक अकित था कि– 'अनुभवहीन क्रातिकारी नौजवान गुरुकुल का सचालन कर रहे हैं,'[२०] अग्रेजो का आक्रोश गुरुकुल पर बढ जाने से क्रातिकारियो का ध्यान गुरुकुल की ओर आकृष्ट हुआ सन् १९०७ और १९१३ के बीच मे ऐसे देशभक्त भी गुरुकुल को अपना प्रिय सुरक्षित स्थान समझते थ जिनके पीछे सरकार के वारट घूम रहे थे पजाब, उत्तर प्रदेश और बगाल के अनेक क्रातिकारी गुरुकुल मे आये और दर्शक बनकर सप्ताहो तक रहे पजाब के प्रसिद्ध देशभक्त लाला हरदयाल एम ए लगभग एक मास तक गुरुकुल मे रहकर ब्रह्मचारियो को स्वाधीनता की घुट्टी पिलाते रहे [२१] गुरुकुल के इस देशभक्तिमय वातावरण का प्रभाव गुरुकुल के प्रारभिक छात्र और सर्वप्रथम स्नातक श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति पर भला कैसे न पडता? उन्हे गुरुकुलीय जीवन मे ही डायरी लिखने की आदत हो गई थी छात्रावस्था मे उन्होने अपनी डायरी मे लिखा था, "मैंने खूब सोचा है और जाना है कि मातृभूमि कई पुत्रो का बलिदान चाहती है बलिदान यह नहीं कि क्षणभर जीकर मर जाना अपितु अपना दीर्घ जीवन पूर्णत मातृभूमि को अर्पित कर देना"[२२] युवावस्था मे देशहित की भावनाओ मे सराबोर होकर फासी का चुबन करना तो अभिनन्दनीय त्याग है ही, किन्तु अपना प्रदीर्घ जीवन प्रतिक्षण तिल–तिलकर देशहित समर्पित कर देना एक महान् अनिर्वचनीय त्याग है छात्र जीवन मे ही इन्द्रजी का यह दृढ निश्चय हो गया था, "दासो का धर्म कभी नहीं फैलता"[२३] अत उन्होने स्वाधीनता प्राप्ति का लक्ष्य नक्तदिन सामने रखा था छात्रावस्था मे उनके द्वारा रचित विविध गीत इस बात के साक्षी है कि उनका पूर्ण व्यक्तित्व देशप्रेम से लबालब भरा था

गुरुकुल के सस्थापक इस बात से चिन्तित थे कि मुस्लिम शासन के अनेक शताब्दियॉ, जिन हिन्दुओ को अपनी दास नहीं बना सकीं उन्हे दस–बीस वर्षो से अग्रेजी शिक्षा दास बनाने मे समर्थ हो रही है इसलिए उन्होने राष्ट्रीय शिक्षा की योजना बनायी और शिक्षा का माध्यम हिदी बनाया था गगा तट पर स्थित वाराणसी हिन्दू विश्वविद्यालय मे टेम्स का पानी पिलाया जा रहा था, पर गुरुकुल कागडी के सस्थापको ने भारतीयता (आर्यभाषा) को ही महत्ता दी थी विज्ञान की पढाई का माध्यम आर्यभाषा (हिदी) को ही बनाया गया था बस इसी राष्ट्रीय शिक्षणालय की योजनाओ का परिणाम इद्रजी परभी अनायास पडा और उन्होने यह प्रण कर लिया कि लेख मे अग्रेजी के शब्द कभी न लाऊँगा [२४] प्रथम महायुद्ध शुरु होने से तीन वर्ष पूर्व ही गुरुकुल के विद्यार्थियो मे 'भारत का अपना झडा होना चाहिए' यह भावना जाग चुकी थी, और इस भावना की पूर्ति हुई शुभ दीपावली (१९१०) के दिन इद्रजी ने अपने विद्यार्थी जीवन की डायरी मे लिखा है, 'राष्ट्रीय झडा हमने मिलकर बनाया,"[२५] इस प्रकार इद्रजी के नेतृत्व मे गुरुकुल के ब्रह्मचारियो ने राष्ट्रीय झडे का निर्माण कर दीपावली मनायी थी

गुरुकुल को अग्रेज अधिकारी और सरकारी अफसर एक विद्रोही सस्था की दृष्टि से देखते थे, क्योकि शिक्षणालय सरकारी नियत्रण से स्वतत्र था गुरुकुल के छात्र अग्रेजो के सामने झुकना नहीं जानते थे और गुरुकुल के अधिकारी सरकारी अफसरो की 'जी हॉं हजूरी' नहीं करते थे, भारतीय राजविद्रोह का अध्ययन करने वाले, आर्यसमाज के इस शिक्षणालयगुरुकुल से, अपरिचित हो, यह असभव था [२६] प्राय असफल विद्रोह को आतकवादी शासक बगावत कहा करते हैं, और उनकी कोशिश रहती है कि वे बगावत का गला घोट दे तत्कालीन अग्रेजो की मनोवृत्ति भी ऐसी ही थी वे बागियो से सलाम कराने का असफल प्रयास करा कर बगावत को समाप्त कराना चाहते थे इस संदर्भ मे इद्र जी की छात्रावस्थाकालीन आप बीती उन्हीं के शब्दो मे प्रस्तुत है "उस वर्ष (बग विच्छेद के

बाद– शायद सन् १९०६[२७] मे) हम लोग सरस्वती–यात्रा (एज्युकेशनल टूर) के लिए 'धर्मशाला के पहाड पर गये थे एक दिन प्रात काल के समय कुछ विद्यार्थी छावनी की सडक पर घूमने के लिए जा निकले हम लोगो के साथ अधिष्ठाता के रूप मे डॉ० सुखदेव जी थे ब्रह्मचारियो के सिर नगे थे और हाथो मे डडे थे हम लोग बाते करते हुए जा रहे थे कि सामने से दो गोरे घुडसवार आते दिखाई दिये, जब वे पास आये, तब हम सडक के एक किनारे होकर चलने लगे और समझा कि हमने बीच का रास्ता छोडकर शिष्टाचार का परिचय दे दिया है, परंतु गौराग जाति के उन प्रतिनिधियो ने वैसा नहीं समझा मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब मैंने देखा कि एक गोरे ने अपना घोड़ा मध्य रास्ते को छोड़कर मेरी ओर बढा दिया है मैं यह अद्भुत बात देखकर खडा हो गया गोरे का घोडा मेरे इतने पास आ गया कि घोडे की थूथनी का सॉस मेरे शरीर को छू रहा था मैं विस्मित होकर गोरे के मुँह की ओर देखने लगा वह शायद आशा रखता था कि मैं उसकी और उसके घोडे की शक्ल देखकर या तो भाग खडा हूँगा, या जमीन पर नाक रगडने लगूँगा परतु मैंने वैसा कुछ भी नहीं किया और जहॉ का तहॉ खडा रहा इस पर अत्यत क्रोध भरे स्वर मे उसने कहा, 'सलाम करो, सलाम !' मैंने वहीं खडे–खडे उत्तर दिया 'क्यो सलाम करे?' इस उत्तर से और भी भडककर गोरे ने अपने घोडे को और भी आगे बढाते हुए अग्रेजी मे कहा, 'तुम्हे चाहिए कि हरेक अग्रेज को सलाम करो ' घोडे का मुँह बिल्कुल मेरी छाती से लग गया था, पर मैं वहीं अचल खडा रहा मैंने शातभाव से उत्तर दिया, 'ऐसा कोई कानून नहीं, जो हमसे जबरदस्ती सलाम करा सके ' गोरे ने कहा, "तुम सलाम नहीं करेगा " मैने उत्तर दिया "नहीं " अब गोरे के सामने दो रास्ते खुले थे या तो वह घोडा मुझ पर चढा देता अथवा हार मानकर, सलाम किए बिना ही अपना रास्ता नापता लगभग एक मिनट तक मैं गोरा और उसका घोडा उसी स्थिति मे खडे रहे मै और मेरे सब साथी इस प्रतीक्षा मे रहे, कि अब क्या होता है अत मे गोरा केवल 'बुली' साबित हुआ और घोडे की बाग खींचकर यह कहते हुए वहॉ से चल दिया, 'टुम सलाम नहीं करटा अच्छा डेखा जायेगा'[२८]

इस घटना से स्पष्ट होता है कि इद्रजी के व्यक्तित्व मे अद्भुत निर्भीकता व अन्याय का हिम्मत से मुकाबला करने की अद्भुत क्षमता थी अपने जीवन में देश की व्यथा को देखकर वे तटस्थ नहीं रह सके इद्रजी ने छात्रावास मे ही स्वाधीनता प्राप्ति मे योगदान देने का निश्चय कर लिया था उनको यह बार–बार अनुभव होता था कि, 'मेरी जन्मभूमि को मेरी जरूरत है '[२९] आर्यों की जन्मभूमि आर्यावर्त्त को उसी ऊँचे स्थान पर पहुँचाना है जिस पर और सभ्य देश पहुँच गए हैं.[३०] धर्म, जाति व प्रातीयता के भेदो को मिटाकर भारतीयों में सहिष्णुता, सर्वधर्मसमभाव उत्पन्न करना जरूरी है, "देशबधु धर्मबधु है और देशशत्रु धर्मशत्रु है "[३१] राष्ट्र के एक सतर्क प्रहरी के समान गुरुकुलीय छात्र इद्र का व्यक्तित्व हमारे सामने आता है निजाम राज्य के बाद पीडितो की सहायता के लिए वह मदद निधि मे सोत्साह घडी दान देता है,[३२] तो दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतीयो के दु:ख से विह्वल हो वह स्वादिष्ट भोजन व सायकाल के अन्न का परित्याग कर देता है मातृभूमि और जनता की सेवा अंग्रेजी द्वारा नहीं हो सकती, वह तो हिन्दी द्वारा ही सभव है–इस सत्य का दर्शन इद्रजी ने सन् १९१३ मे ही कर लिया था. इसीलिए उन्होने सकल्प भी किया था कि गुरुकुल में रहते हुए मैं सबके लिए सरल, सुबोध तथा राष्ट्रीय कर्तव्यो का प्रशिक्षण देने वाली पुस्तकें लिखूँगा [३३]

प्रो. इन्द्र १९१४ से १९१८ व १९२० से १९२२ तक उपाध्याय के रूप मे गुरुकुल मे कार्यरत रहे.[३४] आपके अध्यापन के विषय सस्कृत साहित्य, इतिहास, तुलनात्मक धर्म व आर्य सिद्धात थे 'सद्धर्म प्रचारक' पत्र का एक वर्ष दिल्ली मे सफल सपादन करके उन्होने १९१४ मे उपाध्याय के रूप मे गुरुकुल कॉगडी मे पदार्पण किया. यह काल उग्र राष्ट्रीयता का काल था. इस काल मे

इन्द्रजी का साहित्यिक मन क्रान्तिकारियो की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ था सन् १९११ से १९१८ तक हम उन्हे क्रान्तिकारियो के 'दीवाने–भक्त' के रूप मे पाते हैं सबधियो की ओर से जब विवाह के लिए आग्रह हुआ, तो उन्होने यही कहा, "अपना विवाह यदि किसी के साथ करूँगा तो राष्ट्र के साथ "[३५] जब उन्हे छात्रवृत्ति देकर उच्चशिक्षा के लिए भेजने की तैयारी दर्शाई गई तो उनका मन विद्रोह कर कह उठा – 'हमारी दिमागी गुलामी का चिह्न है कि हम यूरोप के पढे हुए की प्रतिष्ठा करते हैं[३६] उनका पूर्ण व्यक्तित्व भारतीयता से ओतप्रोत था इद्रजी को हम सन् १९११ से १९३६ तक के राष्ट्रीय महासभा कॉग्रेस के अनेक अधिवेशनो मे पाते है बचपन से ही राजनीति उनकी हवस थी[३७] अध्ययन काल मे उसकी तृप्ति समाचार पत्रो से होती थी, तो अध्यापन काल मे कॉग्रेस के अधिवेशनो मे सम्मिलित होने से छात्रावस्था मे जिन महापुरुषो के नाम और काम, सुने और पढे थे, उनको देखने के लिए उनके मन मे तीव्र लालसा व जिज्ञासा थी जिसकी पूर्ति अध्यापकीय जीवन मे हुई

श्री इद्रजी अपने उपाध्याय जीवन मे विद्यार्थियो को नई प्रगतिशील दिशा मे अनेक उपायो से ले जाने की कोशिश करते थे आपने गुरुकुलीय उपाध्याय जीवन मे पार्लियामेट की स्थापना की, जिसमे सत्तापक्ष व विरोधी पक्ष का विभाजन कर विद्यार्थियो को ससदीय कार्य प्रणाली से परिचित कराया पटियाला मे जब आर्यों व सिक्खो का सघर्ष उग्र होकर अदालत मे पहुँचा, तो इद्र का मन बहुत ही व्यथित हुआ उन्होने उस समय अपनी डायरी मे लिखा था, "यह सघर्ष देश और जाति के लिए खेदजनक है मेल मे ही देश का लाभ है हमारी लडाई से शत्रु लाभ उठाते हैं "[३८]

इद्रजी आजीवन ब्रह्मचारी रहकर देश सेवा करने का सकल्प कर चुके थे, पर परिस्थितियो के बदल जाने के कारण उन्हे विवाहबद्ध हो जाने का निश्चय करना पडा सवत् १९७१ अर्थात् सन् १९१५ मे अग्रज हरिश्चद्र राजा महेद्रप्रताप के साथ घर के किसी भी परिवार के सदस्य को सूचना न देते हुए महात्मा बुद्ध की तरह विदेश चले गये बुद्ध और हरिश्चद्र के मार्गों मे अतर था, पर निष्क्रमण समान था बाद मे अग्रज अमेरिका मे क्रातिकारी दल के नेता बने अवनींद्रकुमार विद्यालकार के शब्दो मे – आगे चलकर 'पहले महायुद्ध मे ये विदेश मे ही गिरफ्तार हुए और भेद न देने के कारण विद्युत–तप्त टीन की चादर पर लिटाकर मार दिये गए[३९]

अग्रेज के विदेश चले जाने तथा पिताजी के चतुर्थाश्रम (सन्यास) मे जाने का निश्चय करने के कारण इद्रजी का आजन्म ब्रह्मचारी रहने का सकल्प बदलना पडा उन्होने साहित्य द्वारा राष्ट्र सेवा करने और सेवा के कार्य से कभी न उन्मुख होने का प्रण किया[४०] पर गुरुकुल का क्षेत्र इद्रजी को सदैव सीमित लगा वे 'विशाल कार्यक्षेत्र' मे कदम रखने के लिए इस उपाध्याय जीवन मे सदैव बेचैन रहे, व्यापक कार्यक्षेत्र की भूमि दिल्ली मे आने का पहला कदम उस समय उठा जब गुरुकुल इद्रप्रस्थ का मुख्याधिष्ठाता होना उन्होने स्वीकार कर लिया धीरे–धीरे कुछ गुरुकुलीय परिस्थितियो[४१] व अधिक राष्ट्रीय परिस्थितियो के कारण उनके अत करण से यही आवाज निकली, "देश की अन्य आवश्यकता मुझे बुलाती है, मुझे उधर ही चलना चाहिए "[४२] विभिन्न लब्धप्रतिष्ठित व्यक्तियो ने, मतभेद होते हुए भी, गुरुकुल के राष्ट्रप्रेम को मुक्त कठ से स्वीकार किया है इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षणालय के सर्वप्रथम छात्र एव सर्वप्रथम स्नातक, निर्भीक राष्ट्रीय नेता स्वामी श्रद्धानद के सुपुत्र, क्रातिकारियो की जीवनियो के विश्लेषणकर्ता, अनेक महापुरुषो की गतिविधियो को नजदीकी से देखने का सौभाग्य प्राप्त करने वाले, तथा स्वाधीनता के लिए मचलते हुए कॉग्रेस के अधिवेशनो के जोश के प्रत्यक्षदर्शी, स्वराज्य की अदम्य आकाक्षा व भारतीयता से ओत–प्रोत श्री इद्र विद्यावाचस्पति के जाज्वल्यमान व्यक्तित्व का विद्यार्थियो पर प्रभाव न पडता, यह असभव था विद्यावाचस्पति जी के अनेक शिष्यो को हम एक बार ही नहीं, अपितु अनेक बार देशहित जेलो की

यात्रा करते हुए पाते हैं एकाधिक शिष्यो को राष्ट्रीय साहित्य के माध्यम से माँ भारती की सेवा करते हुए देखते हैं अनेक शिष्य अपने–अपने क्षेत्र मे राष्ट्रीय स्वाधीनता सग्राम के अग्रणी नेता रहे हैं उनके शिष्य श्री विनायकराव विद्यालकार के विषय मे श्री लाल बहादुर शास्त्री ने कहा था – 'पुलिस कार्यवाही से पूर्व विरोधी शक्तियो से टक्कर लेकर श्रीयुत् विनायकराव जी ने राष्ट्र की विशिष्ट सेवा की है''[४३] स्पष्ट है कि उपाध्याय श्री विद्यावाचस्पति ने विद्यार्थियो को रामायण–महाभारत व राष्ट्र विधाता नैपोलियन बोनापार्ट आदि उज्ज्वल चरित्रो के जो किस्से सुनाये थे, वे भविष्य मे भारत का सौभाग्य बढाने का कारण बने

२.५ कॉग्रेस के संपर्क का प्रभावः-

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति जी के मन मे गुरुकुल के स्नातक बनने से पूर्व ही क्रातिकारियो व कॉग्रेसी नेताओ के प्रति विशिष्ट श्रद्धा उत्पन्न हो चुकी थी अनेक वर्षों से कॉग्रेस का अधिवेशन देखने का उत्साह उनके मन मे इकट्ठा हो रहा था कॉग्रेस की व्यावहारिक राजनीति का पहला पाठ उन्होने कलकत्ता कॉग्रेस (१६११) के अधिवेशन मे लिया इसके बाद हम उन्हे सभी कॉग्रेस के अधिवेशनो मे सम्मिलित पाते हैं सन् १६१२ मे बॉकीपुर मे कॉग्रेस का अधिवेशन हुआ अधिवेशन मे श्रीयुत गोपालकृष्ण गोखले जी ने, दासो का जीवन यापन कर रहे प्रवासी भारतीयो के हित मे, महात्मा गाधी द्वारा सचालित, सत्याग्रह–सग्राम के लिये अपने भाषण–प्रस्ताव द्वारा सहायता की अपील की थी इ द्र जी ने इस भाषण को बडी सावधानी से सुना था, उनके कान वक्तृता पर थे, और ऑखे गोखले जी के चेहरे पर उन्हे पचास मिनिट का समय ५० सैकड से भी कम महसूस हुआ था[४४] उपाध्याय इद्र जी गोखले जी के इस दक्षिण अफ्रीका सबधी भाषण से विशेष रूप से प्रभावित हुए और उन्होने गुरुकुल आकर ब्रह्मचारियो को अधिवेशन का पूर्ण विवरण सुनाया और प्रवासियो के लिए कुछ सहयोग करने की अपील की कुलपति महात्मा मुशीराम व उपाध्याय इद्र जी से उत्साह पाकर गुरुकुल के विद्यार्थियो ने अपना घी–दूध छोडकर तथा गगा पर 'दूधिया बाध' निर्माण योजना मे मजदूरी कर 'दक्षिण अफ्रीका सत्याग्रह सग्राम निधि' मे १५०० (डेढ हजार) रुपया प्रदान किया इस सदर्भ मे महात्मा गाधी जी ने लिखा है, ''दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रहियो के लिए उस समय जो धन इकट्ठा किया जा रहा था, उसमे चदा देने के लिए (गुरुकुल) लडको को उन्होने उत्साहित किया था वह चाहते थे कि लडके खुद कुली बनकर, मजदूरी करके चदा दे दे, क्योकि वह युद्ध क्या कुलियो का नहीं था? लडको ने यह सब पूरा कर दिखाया और पूरी मजदूरी कमाकर मेरे पास भेजी''[४५] दक्षिण अफ्रीका मे ही मोहनदास करमचद गाधीजी ने महात्मा मुशीराम जी की कीर्ति सुन ली थी और वे उनकी ओर अत करण से आकृष्ट हो गये थे[४६] जैसे ही वे दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे तो गुरुकुल कॉगडी भी पधारे थे (१६१५) उन्हे मिस्टर एण्ड्रूज ने भी कहा था, – 'जब कभी वे देश लौटे, तो कवि ठाकुर, प्रिंसिपल रुद्र और महात्मा मुशीराम से परिचय जरूर प्राप्त करे'[४७] इद्रजी के पिता और आचार्य से हुई भेट का विवरण देते हुए महात्मा गाधी जी ने लिखा है, 'पहाड जैसे दीखने वाले महात्मा मुशीराम के दर्शन करने और उनके गुरुकुल को देखने जब मैं गया, तब मुझे बहुत शाति मिली. महात्मा जी ने मुझ पर भरपूर प्रेमवृष्टि की ब्रह्मचारी लोग मेरे पास से हटते ही न थे'[४८] महात्मा गाधी जी ने अहमदाबाद मे पृथक् आश्रम खुलने तक अपने दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह आश्रम के विद्यार्थियो के लिए सर्वोत्तम स्थान गुरुकुल कॉगडी को ही समझा था[४९] इस प्रकार स्पष्ट है कि गुरुकुल एक राष्ट्रीय शिक्षणालय था स्वधीनता का मत्र जपने वाले उग्र व अहिसावादी देशभक्तो का गुरुकुल के अधिकारियो एव ब्रह्मचारियो द्वारा दिल खोलकर स्वागत होता था गुरुकुल का वातावरण ही कुछ ऐसा था, जो सभी कुलवासियो को राष्ट्रीय भावनाओ से ओत–प्रोत कर देश सेवा के लिये प्रेरित करता था. इस समय इद्रजी के विचार 'अन्य

नौजवान भारतवासियो की तरह गरम ही थे"[50] फिर भी उन पर गोखलेजी की नरम व सहिष्णु वृत्ति का प्रभाव रहा श्रीयुत् गोखलेजी से प्रभावित होने के बावजूद भी वे हृदय से लोकमान्य तिलक के भक्त थे माडले जेल से लोकमान्य के छूटकर पुणे आने के साथ युग ने एक नई करवट ली और इद्रजी ने उसके आहवान को सुना बाकीपुर के अधिवेशन के बाद उन्होने सन् १६१५ मे कॉग्रेस की सदस्यता ग्रहण की, उस समय वे गुरुकुल कागडी मे प्रोफेसर थे[51] लखनऊ (१६१६) अधिवेशन मे उन्होने भारत भक्त श्रीमति ऐनीबेसेट, गरम दल के नेता विपिनचद्रपाल व तपस्वी लोकमान्य तिलक के दर्शन किये दिसबर १६१८ के अतिम सप्ताह मे दिल्ली मे सपन्न हुये कॉग्रेस अधिवेशन मे इद्रजी 'सद्धर्म प्रचारक' के प्रतिनिधि के रूप मे सम्मिलित हुये थे इस अधिवेशन मे रौलेट बिल' को वापिस लेने की जोरदार मॉग की गई थी इस अधिवेशन के जोशीले भाषणो ने उपाध्याय इद्रजी को अभिभूत व प्रेरित किया वे भी पत्रकारिता की तोप लेकर अग्रेज तानाशाही के विरूद्ध दिल्ली के मैदाने–जग मे अवतरित हुये इस तोप का नाम था – 'विजय' रॉलट बिल विरोधी आयोजित सत्याग्रह (१६१६) कमेटी के दो मत्रियो मे से एक प्रो इद्र थे इन्हीं दिनो स्वामी श्रद्धानद के नेतृत्व मे एक 'शाति सभा' हुई इस सभा मे बीस–पच्चीस हजार के लगभग लोग उपस्थित थे सभा मे हिन्दू भी थे और मुस्लिम भी भाषणो की समाप्ति पर जनसभा जलूस के रूप मे परिवर्तित हो गयी सर्वाग्रणी स्वामी श्रद्धानद जी थे, और पीछे 'भारत माता की जय' और 'हिदु–मुसलमान की जय' का नारा लगाती हुई क्रमबद्ध २०–२५ हजार की भीड जब यह काफिला (जलूस) घटाघर पर पहुँचा, तो एक बदूकधारी ने गोली चला दी इद्रजी के पिता स्वामी श्रद्धानदजी ने स्वय आगे बढकर सिपाहियो की पक्ति के सामने जाकर पूछा– 'तुमने गोली क्यो चलाई?' प्रश्न का उत्तर न देकर कई सिपाहियो ने बदूको की सगीने स्वामीजी की ओर बढाते हुए कहा, 'हट जाओ नहीं तो हम छेद देगे ' स्वामीजी एक कदम और बढ गये सगीन की नोक स्वामीजी की छाती को छू रही थी स्वामीजी ने बडे ऊँचे स्वर से कहा "मार दो" इतने मे एक अग्रेज अफसर आया और सब सिपाहियो ने बन्दूके नीचे कर लीं, स्वामी जी ने अफसर से पूछा, "गोली क्यो चलाई गई?" अफसर ने उत्तर दिया "गोली भूल से चल गई थी " सिपाहियो द्वारा रास्ता खुला कर देने पर जलूस नया बाजार गया स्वामी श्रद्धानद जी अपने निवास स्थान की सीढ़ियो पर चढ गये और जुलूस के लोग अपने–अपने घरो की ओर चले गये[52] इद्रजी के जीवन मे पग–पग पर निर्भीकता दृष्टिगोचर होती है नि सदेह वह उनके पिताजी के कर्मठ–कर्मयोगी निर्भीक जीवन की धरोहर हैं इद्रजी इस पूरी घटना के समय भीड की अगली श्रेणी मे स्वामी जी की दायीं ओर विद्यमान थे इद्रजी पर अपने पिता एव आचार्य की निर्भीकता का अवश्य रूप से प्रभाव पडा होगा निश्चित रूप से आचार्य–स्वामी श्रद्धानद ने अपने शिष्य को ही नहीं, अपितु भारतीय जनता को अपने क्रियात्मक जीवन से प्राणो की प्राणो की परवाह न करते हुये निर्भीकता से राष्ट्रीय कार्य करने का कलात्मक पाठ पढाया था

बडे ओर नामी बाप के बेटे होने के कारण इद्रजी को अपने कॉग्रेसी नेताओ को नजदीकी से देखने का अवसर मिला ऐसे बहुत से नेताओ मे कॉग्रेस के प्रख्यात नेता प मोतीलाल नेहरू का नाम उल्लेखनीय है १६१६ मे रोलैक्ट एक्ट के विरोध मे ३० मार्च व ६ अप्रैल को देश व्यापी हडताल हुई इस हडताल पर पजाब की सरकार ने बडी क्रूरता से प्रहार किया जिसकी परिणति जलियॉवाले बाग के हत्याकाड व मार्शल ला के रूप मे प्रकट हुई पूरे पजाब मे फॉसी घर–सी निस्तब्धता छा गयी सभ्यताभिमानी ब्रिटेन के प्रतिनिधियों ने पचनद में जो राक्षसी लीला की, उसने नीरो और चगेजखॉ की स्मृतियो को भी मात कर दिया[53] आघातों पर मरहम लगाने के लिये स्वामी श्रद्धानद व मदनमोहन मालवीय अमृतसर पहुँचे जब स्वामीजी सेवा कार्य करके वापिस लौटे, तो स्वामी श्रद्धानद जी के पास पं. मोतीलाल का इस आशय का एक पत्र आया, "मैं मार्शल ला की घटनाओ की तहकीकाती कमेटी मे भाग लेने के लिए लाहौर जा रहा हूँ आप पजाब (अमृतसर)

मे सेवाकार्य करके अभी लौटे हैं इलाहाबाद से लाहौर जाता हुआ दिल्ली मे आप से मिलकर जाऊँगा" यह समाचार पाते ही प इद्रजी ने पिताजी से निवेदन किया कि, "मैं प मोतीलाल जी नेहरू के आपके स्थान पर आने के समय कुछ देर के लिए उपस्थित रहना चाहता हूँ, और आपकी बातचीत आरभ होने पर चला जाऊँगा ' पिताजी ने पुत्र को प्रारभिक कुछ समय के लिए उपस्थित रहने की अनुमति प्रदान की इस समय इद्र जी को पता चला कि 'पिताजी और मोतीलाल जी कालेज जीवन मे इलाहाबाद मे सहपाठी थे दोनो सैलानी तबियत के थे और किताबो के कीडे नहीं थे'[४४] इद्रजी के मन मे प्रत्येक राष्ट्रीय नेता को देखने की उत्कट अभिलाषा रहती थी वे अपनी अतर्हित अग्नि को राष्ट्रीय नेताओ की अग्नि से और अधिक तेजस्वी बनाना चाहते थे

१९१६ मे कॉग्रेस कमेटी ने यह तय किया कि कॉग्रेस का अधिवेशन अमृतसर मे किया जाय, पर महत्कार्य की जिम्मेदारी स्वीकार करने मे कॉग्रेस के अन्य कार्यकर्ता हिचकिचा रहे थे, क्योकि पजाब के वक्षस्थल पर मार्शल ला की सगीनो द्वारा किये हुए घाव अभी हरे थे, और जनरल डायर के हुक्म से जलियॉवाले बाग मे चलायी गयी बदूको की प्रतिध्वनि अभी शात नहीं हुई थी[४५] इद्रजी के पिता स्वामी श्रद्धानद जी ने अमृतसर की प्रबधात्मक जिम्मेदारी को उत्साह के साथ स्वीकार किया वे इस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष बनाये गये 'स्वागताध्यक्ष श्री स्वामी श्रद्धानद जी के व्यक्तिगत प्रभाव और परिश्रम के बिना अमृतसर मे कॉग्रेस का अधिवेशन शायद ही हो पाता स्वभावत उनके चारो ओर कार्यकर्ता एकत्र हुए, वे आर्यसमाजी थे इस अधिवेशन की स्वागत योजना के चलाने वाले यदि सौ फीसदी नही, तो पचहत्तर फीसदी तो आर्यसमाजी अवश्य थे[४६] इद्रजी भी स्वागत प्रबध का कार्य करने कई दिन पूर्व ही अमृतसर पहुँच गये थे. इस अवसर पर उन्हे अनेक राष्ट्रीय नेताओ के निकट सपर्क मे आने का और सेवा करने का अवसर मिला बगाली नेता देशबधुदास के आगमन का समाचार पाकर इद्रजी प्रात ६ बजे बगाली प्रतिनिधियो के डेरे पर पहुँचे देशबधुदास के बगल मे विपिनचद्रपाल बैठे हुये थे वहॉ दास बाबू के सभापतित्व मे बगाली प्रतिनिधियो की जोश–खरोश से बहस चल रही थी इस प्रत्यक्ष (प्रथम) दर्शन मे देशबधुदास जी के विशाल व्यक्तित्व एव प्रतिभा का प्रभाव इद्र विद्यावाचस्पति जी पर पडे बगैर नहीं रहा इद्रजी को इसी अवसर पर आदर्श, स्वतत्र एव राष्ट्रीय दृष्टिकोण के पत्रकार कस्तूरी रगा आयगर को भी देखने का अवसर मिला वे मद्रास के प्रसिद्ध दैनिक 'हिदू' की ओर से मार्शल ला सबधी घटनाओ एव कॉग्रेस की प्रगति का अध्ययन करने के लिए अमृतसर पहुँचे थे

अमृतसर अधिवेशन से दो दिन पूर्व ब्रिटिश सरकार ने सम्राट् का एक वक्तव्य प्रकाशित कराया, जिसमे यह विश्वास दिलाया गया था कि– 'सम्राट् धीरे–धीरे भारत को स्वराज्य देना चाहते हैं, और उसकी पहली किश्त के रूप मे मार्शल ला के कैदी जेल से छोडे जा रहे हैं' इस वक्तव्य से कॉग्रेस के घर मे फूट पड गई जिससे वह तीन विभागो मे विभाजित हुई सरकारी दमन व अत्याचार की निदा करने के लिये सभी सहमत थे, पर सम्राट् के ताजे घोषणा पत्र के सबध मे स्पष्ट मतभेद था महात्मा गाधी घोषणा का स्वागत करने के लिए कटिबद्ध हो गये लोकमान्य तिलक प्रतियोगी सहयोग (रिस्पेन्सिव कोओपरेशन) के अनुकूल हुए, और देशबधुदास सरकार के प्रति असतोष को और उग्र करने के पक्ष मे थे, क्योकि उन्हे सम्राट् की घोषणा नितात एक धोखा नजर आती थी अधिवेशन के प्रथम दिन लोकमान्य तिलक का जलूस निकला. स्वाधीनता के देवता लोकमान्य तिलक का प्रचड जन–समुदाय ने देवी देवताओ के समान स्वागत किया इस अद्वितीय स्वागत को देख इद्रजी का यह सुनिश्चित मत हो गया कि प्रस्ताव सबधी नीति मे लोकमान्य तिलक जी की विजय अवश्य होगी, पर अधिवेशन शुरू होने पर नेताओ का मतभेद स्पष्ट तो हुआ, परतु बहुत ही नरम ढग से, क्योकि जीवन भर विरोधी शक्तियो का मुकाबला करने वाले और अणुमात्र भी न झुकने वाले तिलक

ने महात्मा गाधी जी से समझौता कर लिया था अधिवेशन मे कॉग्रेस ने जो प्रस्ताव स्वीकार किया, उसमे सम्राट् की घोषणा का स्वागत भी किया गया था और साथ ही अग्रेजो द्वारा किये गये अत्याचारो की निदा की गई थी इद्रजी इस अधिवेशन मे प्रतिनिधि के रूप मे सम्मिलित हुये थे तिलक–गाधी के समझौते की गध जब लोकमान्य के शिष्यो तक पहुँची, तो उन्हे दु खमिश्रित आश्चर्य हुआ वे सभी मिलकर तिलक जी के पास पहुँचे और उनसे निवेदन किया कि– "कॉग्रेस मे आपकी बात जरूर स्वीकार की जायेगी, क्योकि बहुमत आपके पक्ष मे है" इन शिष्यो मे इद्रजी भी शामिल थे उन्होने सबको समझाते हुए कहा, "मै अब थक गया हूँ अधिक समय तक कार्य नही कर सकता भविष्य मे देश को जिस व्यक्ति का नेतृत्व स्वीकार करना चाहिये, वह गाधीजी ही है मैं सब लोगो को ही सलाह देता हूँ कि वे गाधी जी को ही देश का भावी राजनैतिक नेता स्वीकार करे"[५७] इन वाक्यो का इद्रजी के हृदय पर गहरा प्रभाव पडा वृद्ध नेताओ को युवको के सिर पर नेतृत्व का मुकुट किस प्रकार रखना चाहिये इसका आदर्श था– लोकमान्य का व्यक्तित्व ससार के हो–हल्ले और सघर्ष से बहुत दूर जगल (गुरुकुल) मे रहते हुये भी देश की हर धडकन व राजनैतिक उथल–पुथल से वे परिचित रहते थे असहयोग आदोलन (१९२१) जैसे सघर्ष के क्षणो मे गुरुकुल मे इसीलिये रहे कि– 'अपने आचार्य एव पिता की आज्ञा मानना उनका धर्म था और यह पिता कोई सामान्य पिताओ की तरह पिता नही था जहाँ वह राष्ट्रीय शिक्षणालय गुरुकुल कागडी का सस्थापक व सचालक था, वहाँ वह देश का भी महान् नेता था लोकमान्य तिलक ने तो अपने 'गीता रहस्य' मे प्रतिपादित 'कर्मयोगी सन्यासी' का साकार रूप तो उन्ही मे देखा था[५८] ऐसे महान् पिता की बात को टालना बेटे के लिए आसान नहीं था ऐसे क्रान्ति–पर्व मे एकान्त गुरुकुल मे रहना विद्यावाचस्पतिजी के लिए आपद्धर्म था, पुनरपि उनकी आत्मा देश–सेवा के लिए छटपटाती रहती थी इसका अनुभव स्वामी श्रद्धानद को होता था, इसीलिए उन्होने अपने पत्र मे लिखा था, "कल प्रात काल से जेल के लिए तैयार हूँ, न जाने कब लौटना हो अब इतिहास के कार्य से मै निश्चित हुआ तुम वहाँ से हिलने का नाम मत लो, यह मेरी तथा देश की सेवा इस समय है यदि तुम हिले तो मेरे काम वे विघ्न पडेगा तुम्हारा हृदय छटपटायेगा, मै तुम पर अत्याचार नही करने लगा हूँ, परन्तु गुरु की आज्ञा मानना तुम्हारा धर्म है"[५९] विद्यावाचस्पति जी के भाजे श्री सत्यकाम जी विद्यालकार ने प्रो विद्यावाचस्पति जी के गुरुकुल से देर से दिल्ली वापिस आने का एक कारण लोकमान्य तिलक का स्वर्गवास भी माना है, क्योकि उससे प्रकाश पाने वाला युवक फिर दिल्ली क्या जाता?[६०]

अमृतसर (१९१९) की कॉग्रेस के पश्चात् प्रो इद्र अहमदाबाद कॉग्रेस के अधिवेशन (१९२१ दिसबर) मे सम्मिलित हुए, जहाँ उन्हे चारो तरफ 'खादी का साम्राज्य' दिखाई दिया महात्मा गाधीजी ने भारतीय राजनीति को राष्ट्रीयता का एक वेश बना दिया था अमीर–गरीब, नेता–कार्यकर्ता, नर–नारी सब खद्दर के वेश मे थे मच पर की कुर्सी–टेबल का स्थान चटाई–चादरो ने ले लिया था कॉग्रेस कुछ श्रेणियो की न रहकर जनता की चीज हो गई थी तिलक युग के बाद इद्रजी को गाधी युग उठते हुये यौवन की दशा मे दृष्टिगोचर हुआ[६१] अधिवेशन मे इद्रजी का डेरा आर्यसमाजी राष्ट्रवादियो के कैंप मे था यहाँ पर उन्हे अपने प्रारभिक राजनैतिक शिक्षक स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक का भाषण सुनने का सौभाग्य मिला फौलादी इच्छा शक्ति और क्रिया शक्ति का बल रखने वाले कर्म प्रधान पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल इस सभा के स्वागताध्यक्ष थे[६२] इस अधिवेशन मे महात्मा गाधी जी ने कॉग्रेस के डिक्टेटर का कँटीला ताज अपने ही हाथो अपने सिर पर रख देश को अहिसात्मक लडाई लडने के लिए सन्नद्ध रहने का आह्वान किया था इस अधिवेशन की एक महत्वपूर्ण घटना इस प्रकार है–

अहमदाबाद अखिल भारतीय कॉग्रेस कमेटी का अधिवेशन बगाली नेता देशबधु चितरजनदास द्वारा बगाल प्रातीय राजनैतिक सम्मेलन मे आतकवादी नवयुवक गोपीनाथ साहा को प्रदत्त 'बधाई–प्रस्ताव' का समर्थन करने से महात्मा गाधी असतुष्ट थे इसलिए उन्होने बगाल प्रातीय सम्मेलन के बधाई प्रस्ताव के विरोध मे एक प्रस्ताव रखा बहुमत से देशबधु जी विजयी हुये और गाधी जी पराजित देशबधु ने गाधीजी को एक 'शान की शिकस्त'[५३] दी थी पराजय के बाद जब अत मे महात्मा जी बोलने लगे, तो उनका गला भर आया था ऑखो से ऑसू टपक पडे थे उस समय सभा भवन का दृश्य अदभुत बन गया था कोकिलकठा नायडू ऊँचे स्वर से रो रही थी अलीबधु दहाड मारकर रो रहे थे गाधीजी को दु ख पहुँचाने के कारण अनेक सदस्यो को दु ख हो रहा था इद्र जी ने भी दास पक्ष मे सम्मति दी थी महात्मा गाधी के ऑखो मे ऑसू देखकर उन्हे भी अतिशय खेद हुआ था उन्हे यह पूर्व ही मालूम हो जाता कि परिणाम इतना करुणाजनक होगा तो वे निष्पक्ष रहते [५४] अहमदाबाद की राष्ट्रीय आदोलन की उमग से वे इतने सराबोर हो गये कि पुण्यभूमि (गुरुकुल) न जाकर दिल्ली लौट आये [५५] क्योकि गुरुकुल का क्षेत्र सीमित था और वे अपनी व्यापक सार्वजनिक भूख को मिटाना चाहते थे प्रो इद्र विद्यावाचस्पति जी ने ३१ अक्तूबर १९२२ को गुरुकुल छोडा अब दिल्ली ही उनकी कर्मभूमि बन गयी १९२२ के अत मे गया मे कॉग्रेस का अधिवेशन होने जा रहा था महात्मा गाधीजी को जेल हो चुकी थी सत्याग्रह के स्थगित होने पर किस नीति का आश्रय लिया जाय इसका अधिवेशन मे निश्चय होने वाला था इद्रजी के पिता स्वामी श्रद्धानद जी भी 'गुरु का बाग' सत्याग्रह के सदर्भ मे पजाब की जेल काटकर गया पहुँचे इद्रजी भी एक प्रतिनिधि के रूप मे एक सप्ताह पूर्व ही 'गया' पहुँच चुके थे गया–कॉग्रेस अधिवेशन मे 'धारा–सभा प्रवेश' प्रस्ताव के सबध मे जोरदार वाग्युद्ध हुआ एक ओर देशबधु चितरजन दास, मोतीलाल नेहरू, तो दूसरी ओर राजा राजगोपालाचार्य, सरदार वल्लभभाई पटेल व राजेद्रप्रसाद थे इन अपरिवर्तनवादी त्रिमूर्तियो के वक्तव्यो से प्रभावित होकर भी इद्रजी का झुकाव देशबधु व मोतीलाल नेहरू के पक्ष मे रहा [५६] गया कॉग्रेस के अवसर पर ही परिवर्तनवादी प्रो इद्र स्वराज्य पक्ष के सदस्य बन गये थे प 'इद्र विद्यावाचस्पति' की सर्वप्रथम प्रामाणिक एव सफल जीवनी लेखक सत्यकाम जी विद्यालकार ने लिखा है, "जब इद्रजी का सदस्यता पत्र मोतीलाल नेहरू के हाथो मे गया, तो बूढे नेहरू के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा उनको अनुभव हुआ कि दिल्ली को उन्होने फतेह कर लिया है [५७] केद्रीय असेबली मे दिल्ली को भी एक स्थान प्राप्त था प्रो इद्र के स्वराज्य पक्ष मे सम्मिलित होने से दिल्ली मे एक स्वराज्य पार्टी को प्रवक्ता मिल गया था इद्रजी ने यह उत्तरदायित्व कुशलता से वहन किया 'अर्जुन' दैनिक के माध्यम से वे स्वराज्य पक्ष के दृढ स्तभ, जबरदस्त प्रवक्ता व नेना बन गए जैसा पिता का पुत्र के प्रति भाव बना रहता है, वैसा ही प मोतीलाल जी का भाव इद्रजी के प्रति बना रहा, पर मोतीलाल नेहरू के अनेक बार आग्रह करने पर भी उन्होने दिल्ली से स्वय चुनाव लडना पसद नही किया निष्काम भाव से इद्रजी ने अपनी सारी शक्ति स्वराज्य पक्ष एव उसके प्रत्याशी श्री प्यारेलाल को सफल बनाने मे लगा दी दिल्ली के राजनैतिक क्षेत्र मे इद्रजी का उल्लेखनीय स्थान था वे दिल्ली कॉग्रेस कमेटी के मत्री थे[५८] (१९२२) सप्रति दिल्ली के वयोवृद्ध नेता स्वामी श्रद्धानद व हकीम अजमल खॉ की भी सहानुभूति स्वराज्य पक्ष के साथ ही थी [५९]

परिवर्तनवादियो और अपरिवर्तनवादियो मे मेल कराने के लिये सितबर १९२३ मे देहली मे कॉग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ, प्रो इद्र विद्यावाचस्पति और श्री आसफ अली सप्रति स्वराज्य पार्टी के दिल्ली मे नेता थे स्वागत समिति मे प्रो इद्र और आसफअली के पक्ष का अत्यधिक बहुमत होने के कारण ही कॉग्रेस के सभापति मौलाना अबुल कलाम आजाद का चुना जाना सभव हुआ था [६०] दिल्ली के एक और नेता डॉ असारी अपरिवर्तनवादी थे इस अधिवेशन मे उन्होने कोई विशेष रूचि न ली. वे उदासीनो की तरह तटस्थ ही रहे इस अवसर पर परिवर्तनवादी कॉग्रेस की सम्मति और

आशीर्वाद से स्वराज्य–पार्टी धारा–सभा मे प्रवेश करना चाहती थी इसी समय पर स्वराज्य पार्टी की ओर से यह बात कही गई कि – स्वराज्य पक्ष गाधी जी को जेल से छुडाने और कॉग्रेस के कार्यक्रम को आगे बढाने के लिये धारा–सभा मे प्रवेश करना चाहती है अपरिवर्तनवादियो की तरह वह भी धारा सभा के कार्य को व्यर्थ मानती है पर वह अग्रेज सरकार के पाखडी ढकोसले चेहरे का धारा सभा मे जाकर ही पर्दाफाश करना चाहती है, और इस भ्रम को मिटाना चाहती है कि अग्रेज सरकार प्रजातात्रिक ढग से काम कर रही है इस अधिवेशन तक अपरिवर्तनवादियो का उग्र रूप सौम्य हो गया था मौलाना मुहम्मद अली धारा–सभा प्रवेश के पक्षधर बन चुके थे पुरुषोत्तमदास टडन, जवाहरलाल नेहरू, कोडा वेकेटय्या इस शर्त के साथ समझौते के पक्ष मे थे कि – धारा सभा मे प्रवेश करने वालो को रोका न जाय और कॉग्रेस को चुनाव के पक से पृथक् ही रखा जाय देहली के इस अधिवेशन मे इद्र जी का परिवर्तनवादी दास पक्ष ही विजयी हुआ यह प्रस्ताव पास हो गया कि 'कॉग्रेस जन 'लेजिस्लेटिव कॉसिल' के सदस्य बनकर उसका कार्य कर सकते है "[७१]

इस अधिवेशन के स्वागतमन्त्री प्रो इन्द्र विद्यावाचस्पति औरे मिस्टर आसफ अली थे विद्यावाचस्पति जी को अनेक राष्ट्रीय महापुरुषो का स्वागत करने का और उनके निकट सपर्क मे आने का अवसर मिला अधिवेशन मे सम्मिलित होने वालो मे प्रमुख थे– सर्वश्री हार्डीकर साहब (महाराष्ट्र), प जवाहरलाल नेहरू (सयुक्त प्रान्त), नेताजी सुभाषचन्द्र बोस (बगाल), बाबू राजेन्द्रप्रसाद आदि[७२] इस १६२३ के दिल्ली अधिवेशन मे उन्हे राजसूय यज्ञ के श्रीकृष्ण की तरह अनेक राष्ट्रीय महापुरुषो की सेवा एव दर्शन करने का सौभाग्य मिला था यह अधिवेशन अपने आप मे महत्वपूर्ण था कॉग्रेस के ध्येय को पूर्ण स्वाधीनता के ध्येय तक पहुँचाने का सर्वप्रथम प्रयास इसी अधिवेशन मे हुआ था इस सिलसिले मे श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल ने जो अपील निकाली थी, वह एक आर्यसमाजी प्रेस मे प्रकाशित हुई थी क्रान्तिकारी दल के सगठक श्री सान्याल के शब्दो मे– 'देहली के एक 'आर्यसमाजियो के प्रेस' से यह अपील छपवाई थी प्रेस ने मेरी अपील छाप तो दी सभव था कि दूसरे प्रेस इस काम को न करते[७३] इस विषय मे मेरा यह अनुमान है कि श्री सान्याल की यह अपील विद्यावाचस्पति के 'अर्जुन प्रेस' मे ही छपी होगी उस समय सभवत देहली मे आर्यसमाजियो के दो ही प्रेस थे एक 'स्दधर्म प्रचारक' प्रेस और दूसरा 'अर्जुन' प्रेस

२.६ एकता सम्मेलनः-

सन् १६२४ मे बकरीद पर दिल्ली मे दगा हो गया सन् १६१६ मे जिस हिदू–मुस्लिम एकता की वाटिका को दिल्ली मे सिपाहियो की गोलियो से बहाये गये रक्त ने हरा–भरा किया था, उस प्रेमिल एकतामय महल को इद्रजी ने १६२४ की एक शाम खडहरो के रूप मे शहर मे बिखरा हुआ देखा. दगा पूर्व नियोजित था, पर अग्रेज सरकार को उससे क्या मतलब, वह तो 'मार्जर न्याय' (दो बिल्लियो को लडाकर) के अनुसार अपना काम निकालना चाहती थी दिल्ली मे जो साप्रदायिक दगा हुआ उसका प्रभाव पूरे भारत पर पडा महात्मा जी ने २१ दिन का उपवास किया स्वामी श्रद्धानद, हकीम अजमल खॉ और मुहम्मद अली ने दिल्ली मे एकता सम्मेलन बुलवाया, जिसमे महात्मा गाधी, पडित मदनमोहन मालवीय, मौलाना अबुल कलाम आजाद, जिन्ना आदि अखिल भारतीय स्तर के लब्धप्रतिष्ठ हिदू–मुसलमान सम्मिलित हुये थे इस एकता सम्मेलन को सफल बनाने मे प्रो इद्र ने भी विशेष भाग लिया – "प्रो इद्र ने इस अवसर पर बडे धैर्य से काम लिया अपने अनुयायियो और भक्तो को कठोर अनुशासन के नियत्रण मे रखा तथा प्रतिशोध की भावना को सफलता से दबाया "[७४] एकता सम्मेलन मे इद्रजी के पिता स्वामी श्रद्धानदजी पर शुद्धि कार्य बद करने के लिए जब जोर डाला गया, तब उन्होने स्पष्ट किया– "यदि मुसलमानो के सब प्रचारक लौट आयेगे, तो मै भी शुद्धि सभा के कार्यकर्ताओ को वापिस बुला लूँगा "[७५] मौलाना मुहम्मद अली ने उलेमाओ के पैरो

मे टोपी रखकर प्रचारको को वापिस बुलाने की प्रार्थना की, पर किसी ने एक न सुनी और इस प्रकार एकता सम्मेलन एकता के सपनो को साकार करने की दिशा मे व्यावहारिक रूप मे सफल नहीं हो पाया" सन् १६२५ मे कानपुर मे कॉग्रेस का अधिवेशन हुआ इद्र विद्यावाचस्पति भी उसमे सम्मिलित हुये अधिवेशन मे यह निश्चित हुआ कि स्वराज्य दल कॉग्रेस की ओर से धारा–सभा का निर्वाचन लडे इससे पूर्व १६२१ मे महात्मा गाधी धारा–सभा प्रवेश के विरोधी थे ५ मार्च १६२२ मे उन्हे गिरफ्तार कर फरवरी १६२४ मे उन्हे छोडा गया स्वराज्य दल के प्रयत्नो के कारण ही उन्हे जेल से छोडा गया था कारावास से छूटने के बाद वे भी स्वराज्य दल के पूर्णत अनुकूल न होते हुए भी उन्होने विरोध करना छोड दिया था, और धारा–सभा प्रवेश के निर्णय को समर्थन दे दिया था

१६२६ मे धारा–सभा के नये चुनाव हुये मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय ने हिदू हितो के लिये राष्ट्रवादी दल (नेशनलिस्ट पार्टी) की स्थापना की थी इद्रजी के अनेक निकटवर्ती साथी उस पार्टी मे शामिल हो गये मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय व स्वामी श्रद्धानद ने इस चुनाव मे कॉग्रेस के विरोध मे अपने प्रत्याशियो को चुनाव के मैदान मे उतारने का निश्चय कर लिया था वे इद्रजी को भी अपने साथ लेना चाहते थे, इद्रजी को मनाने के लिये लाहौर से तार द्वारा लालाजी को बुलाया गया इद्रजी उन्हे पितृवत् श्रद्धा की दृष्टि से पूजते थे[७६] पिताजी की उपस्थिति मे लाला लाजपतराय जी ने समझाने–बुझाने के बाद चेतावनी देते हुये कहा, 'याद रखो कि इस चुनाव मे तुम्हे सफलता न मिलेगी स्वामीजी व मै लाला शिवनारायण के समर्थक है' इद्रजी ने भी दृढता के साथ कहा, "मै प्रयत्न मे कोई कसर नही छोडूँगा सफलता ईश्वराधीन है" चुनाव खूब जोरो से लडा गया इद्रजी इस पहाड जैसे धर्मसकट के सामने विचलित नहीं हुये उन्होने दृढता के साथ दिल्ली–गोरखपुर आदि मे राष्ट्रवादी दल का विरोध और कॉग्रेस का समर्थन किया जहॉं भी वे चुनाव प्रचार के लिये जाते थे, तो स्वामीजी व लालाजी के हस्ताक्षरो वाले पोस्टर सामने कर दिये जाते थे फिर भी इद्रजी ने अपनी आत्मा के आदेशानुसार ही कार्य किया इस चुनाव परिणाम मे न कॉग्रेस का प्रत्याशी जीता न राष्ट्रवादी दल का एक तीसरा ही व्यक्ति जीत गया था विद्यावाचस्पति राजनैतिक चुनाव मे कॉग्रेस का समर्थन करना प्रत्यक भारतवासी का कर्तव्य मानते थे इस दृष्टि से वे सोलह आने कॉग्रेस के समर्थक थे[७७]

२.७ प्रथम जेल यात्रा -

देश–सेवा का मार्ग उन दिनो प्रत्येक देश–सेवक को जेल अवश्य ले जाता था छात्रावास मे ही उनके मन मे यह भावना उत्पन्न हो चुकी थी कि एक न एक दिन जेल मे जाना होगा[७] बरसो से वह जेल जाने की प्रतीक्षा कर रहे थे वह दिन भी आ गया पुलिस के दो इसपैक्टर 'अर्जुन' कार्यालय मे आये और उन्होने इद्रजी व पत्र सपादक को गिरफ्तार कर लिया १३ दिसबर १६२७ को कोई अपराध न होते हुए भी उन्हे जेल की सजा दी गई बात यह थी कि उनके द्वारा मुद्रित व प्रकाशित पत्र 'अर्जुन' मे, उनकी अनुपस्थिति मे वे सत्यकाम विद्यालकार जी के सपादकत्व मे प्रकाशित, कुछ तथाकथित साप्रदायिक लेखो के आधार पर सपादक के साथ उन्हे भी घसीट लिया गया इद्रजी को साढे पॉंच साल की सजा और सपादक को इससे कुछ कम सजा मिली बाद मे इद्रजी की सजा छ महीने और सपादक की तीन महीने कर दी गई इतने मामूली से कारण पर ऐसी कठोर सजा देने के कारण को स्पष्ट करते हुए इद्रजी लिखते हैं, "दिल्ली की हुकूमत ने उस (उपर्युक्त) अभियोग पर नहीं, प्रत्युत 'अर्जुन' की ओर मेरी फाइल पर सजा दी"[७९] इद्रजी की यह सजा दिल्ली और फिरोजपुर जेल मे बीती

२.८ द्वितीय जेल यात्राः-

दिल्ली के पुलिस अफसरो ने पुन दूसरी बार 'अर्जुन' के कुछ लेखो को आधार बनाकर

इद्रजी पर १२४ ए का अभियोग चलाया,[८०] और उनके कुछ भाषणो को भी आपत्तिजनक बताकर नमक सत्याग्रह (१६३०) आरभ होने से कुछ सप्ताह पहले ही उन्हे गिरफ्तार कर लिया इद्रजी की यह गिरफ्तारी बडे ही नाटकीय ढग से हुई इद्रजी के शब्दो मे उसका मनोरजक वर्णन प्रस्तुत है– "प्रात काल का समय था, मैं अभी स्नान आदि से निवृत्त नहीं हुआ था कि मेरे एक सहोद्योगी राष्ट्रीय कार्यकर्ता (श्री नारायणदास गर्ग) मेरे घर पर पहुँचे, और मुझे सूचना दी कि उनका (गर्ग का) वारट निकला हुआ है पुलिस उनकी तलाश मे फिर रही है वह मुझसे यह सलाह करने आये थे कि उन्हे किस प्रकार गिरफ्तार होना चाहिये मैंने उन्हे सलाह दी कि खूब धूमधाम से गिरफ्तार होना चाहिये इसका उपाय यह सोचा गया कि हम लोग जलूस बनाकर नारे लगाते हुए उनके साथ कोतवाली तक जाये, और वहॉ अपने आपको पुलिस के सुपुर्द कर दे "[८१] निश्चयानुसार जलूस निकला और "कोतवाली के दरवाजे तक पहुँचते–पहुँचते जलूस मे कई हजार आदमी इकट्ठे हो गये दरवाजे पर हमारे स्वागत के लिए बहुत सी बदूकधारी पुलिस खडी थी जलूस के वहॉ पहुँचने पर दो सब इसपैक्टर आगे बढे और गर्गजी को दोनो ओर से पकड लिया गर्गजी तो स्वय गिरफ्तार होने आये थे, तब इस बल प्रदर्शन की क्या आवश्यकता है यह समझकर मैंने सब–इसपैक्टर से कहा– यह तो स्वय ही जाने को तैयार हैं, आप इन्हे घसीटते क्यो हैं? इसका उत्तर सब–इसपैक्टर ने यह दिया कि, "आपको डिप्टी साहब ने याद किया है, आप भी साथ चले चलिये" 'बहुत अच्छा' कहकर मैं भी उनके साथ हो लिया हमे अदर लेकर कोतवाली के बडे द्वार की खिडकी बद होने पर सब–इसपैक्टर ने मुझसे कहा– "प्रोफेसर साहब ! आपका भी वारट है "[८२] इद्रजी को इस बार ६ मास की कठोर कारागार की सजा हुई उनका यह सजा–काल दिल्ली जेल मे ही बीता

२.६ तृतीय जेल-यात्राः-

सन् १६३२ मे महात्मा गाधीजी के इग्लैंड से भारत लौटने पर इद्रजी ने बबई जाकर उनका स्वागत किया जिस दिन उन्होने बबई से दिल्ली की ओर प्रस्थान किया उसी रात गाधीजी और कॉग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य गिरफ्तार कर लिये गये लार्ड विलिग्डन ने इस समय एक साथ बारह आर्डिनेन्स जारी किये थे कॉग्रेस को अवैध घोषित कर दिया गया था इद्रजी इस समय दिल्ली कॉग्रेस कमेटी के प्रधान थे वे जब चॉदनी चौक स्थित कॉग्रेस कार्यालय की सीढियो पर चढ ही रहे थे कि उन्हे पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया आश्चर्य की बात यह रही कि जिस अधिकारी ने गिरफ्तारी के वारट पर हस्ताक्षर किये थे, उसीने जज बनकर सजा दी और वही मुख्य जेलर भी बना[८३] दफा ४४८ के अतर्गत उन्हे छह मास की कडी कैद और दो सौ रुपये का जुर्माना हुआ यह सजा इद्रजी ने दिल्ली, न्यू सेट्रल जेल मुल्तान व लाहौर मे बडे ही स्वाभिमान के साथ काटी इद्रजी के परिवार का प्रत्येक सदस्य बलिदान, त्याग और सेवा के लिए सदैव तैयार था परिवार का कोई भी ऐसा सदस्य नहीं था, जिसने जेल की (तीर्थ) यात्रा न की हो वीर सन्यासी स्वमी श्रद्धानद जी को कौन नहीं जानता वे उनके पिता थे उन्होने तीन महीने ७ दिन अग्रेज सरकार की मियावाली जेल मे बिताये थे[८४] इद्रजी के बडे भाई श्री हरिश्चन्द्र प्रथम महायुद्ध शुरू होने पर सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी राजा महेद्रप्रताप के साथ विदेश चले गये थे[८५] इद्र विद्यावाचस्पतिजी की तरह उनकी धर्मपत्नी श्रीमति चद्रवती वाचस्पति भी 'स्वतत्रता आदोलन मे तीन बार जेल गई '[८६] इद्रजी की बहन श्रीमति वेदकुमारी व सुपुत्र श्री जयत वाचस्पति ने १६४२ की अगस्त क्रान्ति मे कारावास की सजा भुगती थी इस प्रकार विद्यावाचस्पतिजी का पूरा परिवार ही राष्ट्राभिमानी परिवार था प्रथम जेल यात्रा (१३ दिसबर १६२७ से १० मई १६२८ तक) के बाद इद्रजी पर जो सबसे बडी विपत्ति आयी, वह पत्नी के देहात की थी इद्रजी की धर्मपत्नी विद्या ने उनके राष्ट्रीय कार्यों मे सदैव उत्साह से हाथ बॅटाया था इद्रजी के शब्दो मे ही एक सस्मरण प्रस्तुत है.– (विद्या के देहात से) ८ मास पहले मैंने जब यह सुझाव

रखा था कि मुझे पॉच सौ रुपये जुर्माना और सत्यकाम को तीन या छ मास की जेल हुई है, तो मेरा विचार है कि मैं जुर्माना न देकर जेल जाऊँ तुम्हारी क्या राय है? तब विद्या ने मेरे पाव पकडकर कहा था, 'यही ठीक है आपको मेरी खातिर अपने धर्म का त्याग नही करना चाहिए मैं इसका विरोध नहीं करती' यद्यपि कई बातो से विद्या बहुत साहसिक प्रतीत नहीं होती थी, परतु जहॉ वस्तुत देश–धर्म या आत्मसम्मान का सबध हो, वहॉ आज तक (अतिम समय तक) कभी उसने मेरे रास्ते मे रुकावट नहीं पैदा की उल्टा साहस बढाया है वह दिखावटी नहीं, अपितु असली अर्थों मे वीरागना थी"[८७] विद्या के निधन से इद्रजी के लिये ससार सूना हो गया था अग्रज हरिश्चन्द्र तो १६१४ मे ही विदेश चले गये थे २६ दिसबर १६२६ को उनके पिताजी की मौत से उनकी स्थिति आकाश और पृथ्वी के बीच लटके त्रिशकु के समान हो गई थी जेल–यात्रा के बाद पत्नी का निधन हो गया एक पर एक आघात लगने से बहन वेदकुमारी के स्नेहिल प्रेम के सिवाय सब प्रेम के दूसरे सयोग विदा हो चुके थे[८८] अत १६२८ व २६ ये दो वर्ष इद्रजी के 'अंधकारमय काल' के रूप मे व्यतीत हुये[८९] '३ मार्च १६२६ को उनका पुनर्विवाह हुआ' महात्मा नारायण स्वामी जी के अनुसार प्रथम पत्नी के देहान्त और द्वितीय पत्नी के साथ पुनर्विवाह मे कम समय का अतर होने के कारण विद्यावाचस्पति जी को देहली की आर्य जनता के उग्र रोष भरे विरोधी आन्दोलन का शिकार होना पड़ा, अन्यथा उनके पुनर्विवाह मे अन्य कोई दोष नहीं था[९०] उन्होने पुनर्विवाह करते समय ऐसी ही वधू का निर्वाचन किया था जो उनके 'सार्वजनिक जीवन से सहानुभूति रखे'[९१]

विद्यावाचस्पति ने सन् १६२६ मे पजाब के नेता डॉ सत्यपाल को दो वर्ष की सजा देने के विरूद्ध 'अर्जुन' मे सपादकीय लेख लिखा, जिस कारण उन पर लाहौर के हाईकोर्ट मे मानहानि का मुकदमा चलाया गया मुकदमे मे उन्हे चेतावनी दी गई और जुर्माना लेकर बरी कर दिया गया[९२] १६३० के आरभिक दो मासो मे हम उन्हे गॉव की गहराई मे पाते हैं शाहदरा, समीपुर व नजफगढ की किसान कान्फ्रेस के वे एक प्रमुख स्तभ थे[९३]

२.१० दिल्ली के लोकप्रिय नेताः-

दिल्ली शहर को विशिष्ट रूप देने मे भी इद्रजी का प्रमुख हाथ रहा सर्वप्रथम रौलेट एक्ट (१६१६) के दिनो मे उनके 'विजय' दैनिक ने पूरा भारत का ध्यान दिल्ली की ओर आकृष्ट किया था १६३० मे दिल्ली के नागरिको का मन दिल्ली म्युनिसिपैलिटी को कार्पोरेशन मे बदलने के लिए आदोलित हो उठा कराची को कार्पोरेशन का स्तर मिल जाने से दिल्ली वालो का भी उत्साह बढ गया उनका तर्क था कि– यदि कराची को बदरगाह होने के कारण कार्पोरेशन मिल सकता है, तो दिल्ली को भी राजधानी होने के कारण कार्पोरेशन का स्तर प्राप्त होना चाहिये

कॉग्रेस के अवैध घोषित किये जाने के कारण दिल्ली के नागरिको ने अपने कार्य को अनवरत रूप से जारी रखते हुए इद्रजी की अध्यक्षता मे राष्ट्रवादी दल (नेशनलिस्ट पार्टी) का गठन किया था दिल्ली को कार्पोरेशन प्राप्त कराने मे इद्रजी का प्रमुख हाथ रहा है दिल्ली के नागरिको मे कार्पोरेशन की इच्छा का बीजवपन करने वाले प्रो इद्र ही थे,[९४] इद्रजी कॉग्रेसी होते हुए भी पूर्णत अहिसावादी नहीं थे, वे 'शरादपि' नीति के समर्थक थे, लोकमान्य तिलक, केशवराव कोरटकर, देशबधु चितरजनदास, गणेश शकर विद्यार्थी व माखनलाल चतुर्वेदी की तरह वे क्रातिकारियो के साथ पूरी सहानुभूति रखते थे क्रातिकारियो से उनका भावात्मक तादात्म्य 'दो शरीर एक प्राणवत्' था उन्होने सन् १६२१ मे अहमदाबाद कॉग्रेस अधिवेशन मे महात्मा गाधीजी के 'साहा–निदा–प्रस्ताव' से असहमत होते हुए प्रस्ताव के विरोध मे मतदान कर आतकवादी गोपीनाथ साहा के कार्य को बधाई योग्य ही माना था बात सन् १६३१ की है इन्द्र विद्यावाचस्पति म्युनिसिपल कमेटी की सीट के लिये चुनाव के अखाडे मे उतर चुके थे इद्रजी की ओर पूरी जनता थी, तो दूसरी ओर सारी कॉग्रेस नौकरशाही

इद्रजी का प्रतिस्पर्धी अपनी विजय के बारे मे पूर्णत निराश था, क्योकि इद्रजी का पलडा भारी था चुनाव से एक दिन पहले इद्रजी के खेमे के राष्ट्रीय कार्यकर्ता अपनी विजय के प्रति पूर्णत आश्वस्त थे, परतु मतदान वाले दिन प्रात काल ही यह दु खद समाचार फैला कि वीर क्रातिकारी सरदार भगतसिह को पिछली रात फॉसी दे दी गयी जब सहृदय इद्रजी ने यह समाचार सुना, तो मतदान बद कर देने की घोषणा कर दी साथियो के समझाने–बुझाने पर भी उन्होने यही कहा– "नहीं, मतदान नही होगा "[६५] स्पष्ट है कि इद्रजी के मन मे सर हथेली पर रखकर चलने वाले आतकवादी क्रातिकारी नौजवानो के प्रति भी अप्रतिम आस्था थी, और उनका निस्पृह–निष्काम व्यक्तित्व वैयक्तिक महत्वाकाक्षाओ से अतिशय दूर था

१६३१ मे इद्रजी दिल्ली सूबा कॉग्रेस कमेटी के प्रधान बनने पर, कॉग्रेस दल पर लाला शकरलाल के पक्ष का ही प्रबल नियत्रण रहा, किन्तु शकरलाल के नेतृत्व मे कॉग्रेस दिन–प्रतिदिन दुर्बल होती जा रही थी, अत दिल्ली के राष्ट्रीय जीवन को मूर्त रूप देने के लिये इद्र जी ने कॉग्रेस कमेटी से पृथक् हो डेमोक्रेटिक पार्टी (प्रजातात्रिक दल) का गठन किया १६२६ मे इद्रजी के जो साथी कॉग्रेस छोडकर लाला लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानद, मदनमोहन मालवीय जी के राष्ट्रवादी दल मे शामिल हो गये थे, वे सभी इद्रजी के इस नये दल मे सम्मिलित हो गये कुछ ही समय मे इद्रजी का दल प्रबल हो गया कॉग्रेस के जनरल सेक्रेटरी के नाते प जवाहरलाल नेहरू इन दोनो (इद्र–शकरलाल) दलो मे समझौता कराने आये थे[६६] जुलाई मे जो चुनाव हुआ, उसमे प्रजातात्रिक दल के शत–प्रतिशत प्रत्याशी विजयी हुये थे जब सन् १६३२–३३ मे गाधीजी राजनीति से अल्पकालिक सन्यास लेकर हरिजन कल्याण के मिशन मे लग गये तब सभी कॉग्रेसी गाधीजी के मुख्य धारा से कट जाने के कारण चितित हो उठे सेनापति महात्मा गाधी की अल्पकालिक राजनैतिक विरक्ति से उत्पन्न स्थिति पर विचार करने के लिये पुणे मे अखिल भारतीय कॉग्रेस कमेटी का अधिवेशन हुआ जेल से बाहर आये सभी नेताओ और कार्यकर्ताओ की तरह इद्रजी भी इसमे सम्मिलित हुये थे[६७]

१६३३ का सुप्त राजनैतिक जीवन बिहार के भूकप से गतिमय हुआ भूकप के लगभग एक सप्ताह पश्चात् २३ जनवरी १६३४ को इद्रजी भी कुछ सहयोगियो के साथ भूकप पीडित स्थानो पर पहुँचे[६८] पटना के प्रधान कार्यालय मे पहुँचने पर उन्हे काले कबल पर बैठे हुये राजेद्र बाबू दिखाई दिये जिस समय भूकप आया राजेद्र बाबू कारागृह मे थे, और दमे का इलाज करा रहे थे जेल से रिहाई के बाद उनकी रात अस्पताल मे और दिन रिलिफ दफ्तर मे बीतता था रोगी शरीर, मिलने वालो की भीड, काम की अत्यत अधिकता होने पर भी पुरुषरत्न राजेद्र बाबू के चेहरे पर इद्रजी ने मुस्कराहट और वाणी मे माधुर्य देखा उन्होने तपस्वी राजेद्र को तन्मयता से सेवाकार्य मे ही रत देखा उन्होने गया कॉग्रेस मे राजेद्र बाबू के आदर्शमय व्यक्तित्व का प्रारभ देखा, तो रिलिफ कार्यालय मे उसका यौवन देखा और उसी समय वे इस निश्चय पर पहुँचे कि राजेद्र बाबू का राष्ट्र मे सर्वोच्च स्थान होगा, और उनके तपस्वी त्यागी जीवन के समक्ष राष्ट्र एक न एक दिन अवश्यमेव श्रद्धा से नतमस्तक होगा[६६] राजेद्र बाबू ने देश सेवा के यज्ञ मे तन–मन–धन ही नहीं, अपना अह भी त्याग दिया था, जिससे इद्रजी विशेष रूप से प्रभावित हुये थे पटना से दिल्ली आने पर इद्रजी को हम (२७ जनवरी १६३४ को) बिहार रिलीफ कैंप जैसी सस्थाओ की स्थापना मे उत्साह से सम्मिलित हुआ देखते हैं[१००] इद्रजी दिल्ली के अत्यत लोकप्रिय नेता बन चुके थे २६ सितबर १६३४ को जिला कॉग्रेस कमेटी के चुनाव हुये दिल्ली के सभासदो ने इद्रजी को प्रधान पद पर निर्वाचित किया यह उत्तरदायित्व उन्होने कई वर्षों की अस्वीकृति के बाद स्वीकार किया था।[१०१] इद्रजी ने इस वर्ष देहरादून, ऋषिकेश, मेरठ, दिल्ली, नई दिल्ली आदि अनेक स्थलो पर आयोजित कॉग्रेसी सभा–जलसों

मे व्याख्यान दिये[१०२] जनमानस के राष्ट्रीय भावो को प्रबुद्ध करने के लिये इद्रजी ने अनेक स्थानो का तूफानी दौरा किया इसी वर्ष के अत मे कॉंग्रेस को नि शेष समझकर लॉर्ड विलिग्डन ने केद्रीय असेबली के चुनावो की घोषणा की इस समय तक कॉंग्रेस ने जेल जाने का मार्ग छोडकर कौसिलो मे जाने का निश्चय कर लिया था[१०३] लार्ड विलिग्डन के सपनो को चकनाचूर करने के लिये वह पूरी हिम्मत के साथ चुनाव के अखाडे मे उतर गई थी इद्रजी व डॉ असारी के नेतृत्व मे दिल्ली ने भी विलिग्डन की धारणाओ के किले ढा दिये वाइसराय और उनके कौसिल के सदस्य नेशनल जनरल लिमिटेड के डाइरेक्टर रायसाहब नानक चद के समर्थक थे, तो प्रो इद्र कॉंग्रेसी प्रत्याशी बैरिस्टर आसफ अली का समर्थन कर रहे थे जनता इद्रजी की प्रत्येक बात पर जितना विश्वास करती थी, उतना अन्यो की बात पर नही इसी चुनाव के दौरान जब कुछ नेता दिल्ली क्लॉथ मार्केट के व्यापारियो से वोट मॉंगने गये, तब व्यापारियो ने नेताओ से साफ–साफ कह दिया था, "यदि प्रो इद्र वोट मॉंगने आयेगे, तो उनका वोट कॉंग्रेस को मिलेगा "[१०४] सप्रति इद्र दिल्ली प्रान्तीय कॉंग्रेस कमेटी के प्रधान थे उनके निस्पृह व्यक्तित्व और परिश्रम ने कॉंग्रेसी प्रत्याशी को विजय दिलाई आसफ अली विजयी हुए और प्रो विद्यावाचस्पति जी का परिश्रम सार्थक हुआ वे सही अर्थों मे दिल्ली के नेता सिद्ध हुये

'भारत सरकार १९३५' कानून के अनुसार सघराज्य बनाने हेतु प्रान्तीय स्वशासन के अधिकार भारतीय सविधान मे समाविष्ट किये गए सनद् १९३६ मे २२ से २६ अगस्त तक बबई मे अखिल भारतीय कॉंग्रेस कमेटी का अधिवेशन हुआ, जिसमे विद्यावाचस्पतिजी सम्मिलित हुये अधिवेशन मे उन्हे सरोजिनी नायडू, श्री नारायणप्रसाद आदि नेताओ से अभीष्ट विषयो पर विचार–विमर्श करने का अवसर मिला १९३७ के प्रारभ होने वाले धारा–सभाओ के चुनाव हेतु प जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेल ने भगीरथ प्रयत्न किया था, जिसका परिणाम यह हुआ कि देश की राष्ट्रीय विचारो वाली जनता कमर कसकर चुनाव के लिये उद्यत हो गई इस सफलता मे चुनाव युद्ध के प्रधान सेनापति सरदार वल्लभभाई पटेल का प्रमुख भाग था रणक्षेत्र मे जोश दिलाने का श्रेय नेहरू जी को था, तो सेना–सचालन का श्रेय सरदार पटेल को था दिल्ली प्रातीय कॉंग्रेस कमेटी का प्रधान होने के कारण, इद्रजी को इन धारा–सभाओ के चुनाव के सदर्भ मे, सन् १९३५ मे सरदार बल्लभभाई पटेल और सन् १९३६ मे प जवाहरलाल नेहरू के अतिशय निकट रहने का अवसर मिला जब १९३५ मे सरदार पटेल दिल्ली आये, तब दिल्ली की कॉंग्रेस कमेटी ने शहर से दस मील की दूरी पर एक गॉव मे राजनैतिक सभा रखी थी उन्हे सभा मे पहुँचाने का कार्य इद्रजी के ही सुपुर्द किया गया था उस समय लगभग पाच छ घटो तक मोटर मे सरदार पटेल के साथ बैठने का इद्रजी को अवसर मिला, विभिन्न विषयो पर उनकी बातचीत हुई, पर जिस प्रसग का सर्वाधिक प्रभाव इद्रजी के मन पर पडा वह उन्हीं के शब्दो मे शब्दाकित है –

"हमारी मोटर कई गावो मे से होकर निकली गाव के निवासियो की गरीबी और फटी हालत देखते हुए हम जगल के रास्ते मे पहुँचे हरा–भरा जगल था, स्थान–स्थान पर मोर निश्चितता से विहार करते दिखाई देते थे मोर वाले जगल को देखकर काठियावाड का मौरवी प्रदेश याद आ गया उन्होने कहा, "मौरवी मे भी इसी प्रकार मोर निर्भय होकर विचरते हैं " थोडी देर रुककर बोले, "स्वामी दयानद ने मौरवी मे जन्म लिया था, जिस प्रदेश मे भारत की जागृति के पिता ने जन्म लिया, उसके सुदर स्थानो मे इससे भी अधिक दरिद्रता पाई जाती है, ऐसा सदुर देश और ऐसी भीषण दरिद्रता, यह हमारी दासता का ही परिणाम है" इन शब्दो को कहते समय सरदार का गला भर आया था और ऑखो मे पानी झलक रहा था. इद्रजी ने सरदार के उन गीले नेत्रो से झलकते हुये एक भावुक और अत्यत कोमल हृदय को प्रत्यक्ष रूप मे देखा और यह अनुभव किया कि अत्यत

गंभीर और प्रत्यक्ष मे कुछ कठोर दीखने वाले सरदार के अतस्तल मे एक अत्यत अनुभवशील, भावुक हृदय का निवास है [७५] सन् १६३६ मे इद्रजी ने राष्ट्रपति (कॉग्रेस के अध्यक्ष) प जवाहरलाल नेहरू के साथ धारा–सभा के चुनावों मे कॉग्रेस को विजयी कराने के लिये अनेक तूफानी दौरे किये थे एक–दो बार तो प जवाहरलाल नेहरू पजाब का चुनाव दौरा कर इद्रजी की आर्यसामाजिक कर्मभूमि 'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा' मे भी ठहरे थे [७६] प मोतीलाल नेहरू व स्वामी श्रद्धानदजी जैसे अखिल भारतीय लब्धप्रतिष्ठ राष्ट्रीय नेताओ के पुत्र व समवयस्क होने के कारण प नेहरू व प्रो इद्रजी मे अच्छी मैत्री थी दोनो के पिता विद्यार्थी जीवन मे सहपाठी थे दोनो ने जलियावाला बाग हत्याकाड मे आहतो की अपने–अपने ढग से अभूतपूर्व सेवाये की थीं हत्याकांड जॉच समिति के प्रमुख मोतीलाल थे और सेवा समिति के प्रमुख स्वामी श्रद्धानद थे राष्ट्रपति (राष्ट्रीय महासभा कॉग्रेस के अध्यक्ष) प जवाहरलाल नेहरू के साथ दिल्ली प्रातीय कॉग्रेस कमेटी के अध्यक्ष प्रो इद्रजी ने बुलदशहर, हापुड, गाजियाबाद, मेरठ, रसाना आदि क्षेत्रो का तूफानी दौरा किया था [७७] स्वतत्र रूप मे भी इद्रजी ने चुनाव–सग्राम मे कॉग्रेस को सफल बनाने के लिये रोहतक, मेरठ, मुजफ्फरनगर, बिजनौर, देहरादून और खुर्जा आदि मे अपने व्याख्यान–चुनाव अभियान से विरोधियो के दुर्ग को भी निष्प्रभ बना दिया जिस कारण कॉग्रेस को असाधारण सफलता मिलने मे सहायता हुई [७८]

राष्ट्रीय आदोलन को जन सामान्य तक पहुँचाने के लिये दिसबर के अत मे अखिल भारतीय कॉग्रेस का अधिवेशन फैजपुर गॉव मे हुआ फैजपुर मे दिल्ली के सदस्यो ने दिल्ली प्रातीय कॉग्रेस कमेटी के अध्यक्ष की हैसियत से इद्रजी के जिम्मे यह काम सौंपा कि वे 'ऑल इडिया कॉग्रेस कमेटी' की बैठक मे आगामी अधिवेशन दिल्ली मे ही निमत्रित करे इद्रजी जब दिल्ली अधिवेशन सबधी निवेदन को लेकर महात्मा गाधी के पास पहुँचे तो उन्होने कॉग्रेस का अधिवेशन दिल्ली मे निमत्रित न करने की सलाह दी. फिर भी इद्रजी अनुत्साहित नहीं हुये और उन्होने इस विचार से निमत्रण दे डाला कि सभव है बहुमत से अखिल भारतीय कॉग्रेस कमेटी दिल्ली निमत्रण को स्वीकार ही कर ले, अन्यथा निमत्रण आगे के लिए तो सुरक्षित बना रहेगा कमेटी मे बहुमत गुजरात के पक्ष मे रहा उसी दिन की साय की घटना है–इद्रजी खादी प्रदर्शनी मे घूम रहे थे कि अचानक प्रो कृपलानी ने उन्हे दूर से पुकारा और इद्रजी के निकट आने पर घाव पर मरहम लगाने वाले मसीहे के समान कहा, "भाई ! आपका निमत्रण तो स्वीकार नहीं हुआ, पर कॉग्रेस के सामने शीघ्र ही कन्वेन्शन करने का प्रस्ताव आ रहा है, यदि वह स्वीकार हो गया, तो क्या आप लोग एक महीने की नोटिस पर कन्वेन्शन का अधिवेशन कर सकेगे? वह भी कॉग्रेस जितना ही बडा होगा जवाहरलाल जी यह जानना चाहते हैं " इद्रजी ने उत्तर मे 'हॉ' कहा.[७९] उन्होने यह स्वीकृति अपने साथियो से विचार–विमर्श किये बिना ही दी थी इससे यह स्पष्ट होता है कि उनमे अद्भुत आत्मविश्वास था और अल्पावधि में अखिल भारतीय स्तर के बडे से बडे कार्य करने की असाधारण क्षमता व सयोजन दृष्टि भी थी साथ ही उन्हे यह भी विश्वास था कि समय आने पर विविध राष्ट्रीय सामाजिक सस्थाओ के स्वयसेवक, वरिष्ठ कार्यकर्ताओ और नेताओ का पूर्ण सहयोग मिलेगा यह सब यही सिद्ध करता है कि इद्रजी देहली के कर्मठ, आदर्श व लोकप्रिय नेता थे

१६३७ के प्रारभ मे प्रातीय विधान–सभाओ के निर्वाचन मे यशस्वी होने के बाद प्रातीय कॉग्रेस कमेटी ने दिल्ली म्युनिसिपल के चुनाव भी इद्रजी की अध्यक्षता मे ही लडने का निश्चय किया गया इस उत्तरदायित्व को भी इद्रजी ने सहर्ष स्वीकार किया और अच्छी तरह पूर्णतया निभाया भी विधान सभाओ के निर्वाचन की तरह दिल्ली म्युनिसिपल के चुनावो मे भी कॉग्रेस के टिकट पर खडे हुये सभी प्रत्याशी विजयी हुये एक के बाद एक विजयश्री प्राप्त करने से दिल्ली के सार्वजनिक जीवन व नागरिको मे इद्र जी का स्थान क्या था–यह इससे स्पष्ट होता है

फैजपुर अधिवेशन के निश्चानुसार मार्च १६३७ के मध्य मे अखिल भारतीय कॉंग्रेस का विशेष अधिवेशन दिल्ली मे शुरू हुआ इस अधिवेशन मे कॉंग्रेसी प्रतिनिधियो के अतिरिक्त धारा सभाओ के लिए विजयी कॉंग्रेसी सदस्य भी पधारे थे अधिवेशन के प्रारभ मे सभी कॉंग्रेसी सदस्यो ने प्रतिज्ञा की, "मैं यह वचन देता हूँ कि कॉंग्रेस का अनुशासन मानते हुये कॉंग्रेस के आदर्श और उद्देश्यो को सफल बनाना हमेशा मेरा काम होगा[११०]" इस प्रतिज्ञा को पहले अध्यक्ष ने पढा था, और फिर सब सदस्यो ने उसे दुहराया था अधिवेशन के अध्यक्ष प जवाहरलाल नेहरू व स्वागताध्यक्ष प इद्र विद्यावाचस्पति थे यह एक विचित्र सयोग ही था, क्योकि आज से १८ साल पहले इन दोनो के पिता कॉंग्रेस के अमृतसर अधिवेशन मे अध्यक्ष व स्वागताध्यक्ष थे अतर इतना ही था कि दिल्ली का यह अधिवेशन विशेष था और अमृतसर का अधिवेशन वार्षिक था इस अधिवेशन के सामने सबसे बडा महत्वपूर्ण प्रश्न यह था कि 'जिन आठ प्रातो मे कॉंग्रेस को असाधारण बहुमत मिला है,[१११] वहाँ मत्रीमडल बनाया जाय या नहीं? कॉंग्रेस के नेता और कार्यसमिति इस प्रश्न को लेकर विभक्त थी 'कुछ मत्रीमडल बनाने के पक्ष मे थे, तो कुछ विपक्ष मे इन दोनो के बीच पुल बनाने के लिए यह अधिवेशन बुलाया गया था'[११२] इस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष प्रो विद्यावाचस्पति का उत्तरदायित्व कम महत्वपूर्ण नहीं था यह स्वागताध्यक्ष का पद केवल खान–पान की व्यवस्था करना मात्र नहीं था, और न ही केवल शोभा मात्र था हरेक विचार के व्यक्ति को अपने–अपने विचार का प्रचार करने की सुविधा प्रदान करना भी उसका उत्तरदायित्व था दिल्ली के पुराने नेताओ मे इस समय कोई नहीं रहा था श्री विद्यावाचस्पति और मि आसफ अली ही केवल सन् १६१६ के विख्यात नेताओ मे शेष रह गए थे स्वागताध्यक्ष विद्यावाचस्पति जी ने अपने अनथक प्रयासो से इस अधिवेशन को सम्पन्न कराया अधिवेशन मे अनुकूल परिस्थिति होने पर काग्रेसी मत्रीमडल बनाने का निश्चय हुआ श्री विद्यावाचस्पतिजी को इस बात की पूर्ण आत्मसन्तुष्टि थी कि – 'कन्वेन्शन बडी सफलता के साथ सपन्न हुआ'[११३] यह राष्ट्रीय सम्मेलन बहुत ही थोडे समय की सूचना से करना पडा था इस कारण प्रान्तीय कॉंग्रेस कमेटी को ही स्वागत का सारा बोझ उठाना पडा था[११४] एक ढग से यह सारा बोझ विद्यावाचस्पतिजी पर ही था, क्योकि वे दिल्ली प्रान्तीय कॉंग्रेस कमेटी के प्रधान और इस राष्ट्रीय सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष थे स्वागताध्यक्ष की हैसियत से उन्होने नेताजी सुभाषचन्द्र बोस को नजरबन्दी से मुक्त किये जाने पर बधाई देते हुए दिल्ली मे आयोजित इस राष्ट्रीय सम्मेलन हेतु विशेष रूप से निमत्रित किया था,[११५] पर वे अस्वस्थ होने के कारण नहीं आ सके गाधीजी जैसे वरिष्ठ नेताओ से सुभाष बाबू के मतभेदो को जानते हुए भी उन्हे विशिष्ट रूप से निमत्रित करना विद्यावाचस्पतिजी के असाधारण स्वतत्र व्यक्तित्व का ही द्योतक है कई बार अत्यधिक आत्मविश्वास भी इन्सान को धोखा दे जाता है सन् १६३८ मे विद्यावाचस्पतिजी भी आवश्यकता से अधिक आत्मविश्वासी होने के कारण धोखा खा गये स्थानीय (दिल्ली) चुनावो मे उन्हे पराजय का मुह देखना पडा इद्र जी के मुख्य विरोधी शकरलाल थे वे १६३१ से ही अपनी पराजय का बदला लेने के लिए समय की ताक मे बैठे थे इद्र दल अपनी विजय के सबध मे निश्चित था, और स्वय को अजेय समझा बैठा था. परिणाम विपरीत रहा हरिपुरा कॉंग्रेस मे सम्मिलित होने वाले प्रतिनिधियो के निर्वाचन मे इद्रजी श्री नरसिह नामक अपने ही पुराने मित्र और सहयोगी से कुल सात मतो से पराजित हो गये

इद्रजी के समग्र जीवन का अध्ययन करने पर मेरा तो यह मत बना है कि प इन्द्रजी की पराजय का एक बहुत बडा कारण यह रहा है कि वे सीधे–सादे रास्तो से अपनी मजिल तय किया करते थे टेढे–मेढे रास्तो से मजिल तय करना उनके स्वभाव के विरूद्ध था चुनाव रणनीति के कुटिल पजे–छक्को से उनका नाता हो ही नहीं सकता था. इस कारण और अपने आपको अजेय समझ लेने के कारण उन्हे पराजित होना पडा. 'उनकी यह पराजय कॉंग्रेस मे नये तत्व के आगमन

की सूचना थी कॉग्रेस मे निष्ठावान सेवको के बदले मे स्वार्थ साधक लोग बडी संख्या में आ गये थे इनका उद्देश्य कॉग्रेस की ताकत बढाना नहीं था, बल्कि अपनी आर्थिक स्थिति सुधारना था ठेके प्राप्त करना और तिजोरियॉ भरना था परतु कॉग्रेस के पास उस समय इस ओर सोचने के लिए समय नही था [११६] हरिपुरा कॉग्रेस के प्रतिनिधि न चुने जाने पर भी इद्रजी अखिल भारतीय कॉग्रेस अधिवेशन–हरिपुरा मे सम्मिलित हुये इस अधिवेशन मे वे आर्यसमाजियो के कैंप मे ठहरे हुए थे [११७]

कॉग्रेस के विशिष्ट पदाधिकारी न रहते हुए भी इद्रजी कॉग्रेस के बहुविध कार्यो मे व्यस्त रहे कभी नेताओ की स्वागत सभा मे नजर आते हैं,[११८] तो कभी विविध विषयो पर व्याख्यान देते हुए दिखलाई देते हैं,[११९] कहीं हस्पताल कमेटी[१२०] मे तो कहीं जिला कॉग्रेस वर्किंग कमेटी मे सक्रिय रूप से विचार–विमर्श व निश्चय–निर्णय करने के लिये उपस्थित हैं,[१२१] तो कभी भारतीय आकाक्षाओ के प्रतीक प जवाहरलाल नेहरू से विचार–विमर्श कर रहे हैं,[१२२]

३ मई १६३६ को भव्य, तेजस्वी एव स्वभावसिद्ध नेता, नेताजी सुभाषचद्र बोस ने अग्रगामी दल (फारवर्ड ब्लाक) की स्थापना की,[१२३] यह दल कॉग्रेस का प्रतिद्वन्द्वी दल नहीं था, प्रत्युत उसके अतर्गत ही एक नया सगठन था जो बिखरी हुई शक्तियो को एकत्रित कर आदोलन को एक नया रूप देना चाहता था अग्रगामी दल व महात्मा गाधी के क्रमश सक्रिय अभियान व आशीर्वाद (समर्थन) से वैयक्तिक सत्याग्रह का सूत्रपात हुआ दिल्ली मे 'व्यैक्तिक सत्याग्रह' के अभियान सचालन का कार्यभार इद्रजी को सौपा गया सत्याग्रह को सम्यक् दिशा देने के लिए और आदोलन को सफल आदोलन बनाने के लिये इद्रजी ने तुगलका बाग के 'श्रद्धा निकेतन' मे सत्याग्रह कैंप लगाया यह स्थान ब्रिटिश चादमारी के स्थान के पास व अहिसक सत्याग्रहियो की शिक्षा व अभ्यास के लिए बडा ही उपयुक्त था इस सत्याग्रह कैप का कार्य ५ सितबर को प्रारभ किया गया था [१२४] इसी वर्ष (१६३६) बदरपुर मे इद्रजी के सभापतित्व मे गाधी जयती मनायी गई इद्रजी के प्रामाणिक जीवनी लेखक श्रीयुत सत्यकाम जी विद्यालकार के अनुसार– "शायद यह अतिम कॉग्रेसी सभा थी जिसका सभापतित्व इद्रजी ने कॉग्रेस के एक पदाधिकारी के रूप मे किया था इ"[१२५] इद्रजी पद पर रहे हो या न रहे हो पूर्ण तन्मयता से वे कॉग्रेस के साथ एकनिष्ठ रहे, अनेक बार तो उनके घर पर ही कॉग्रेसियो की सभा–मिटिगे हुआ करती थीं, और उनका घर कॉग्रेस–भवन के रूप मे परिवर्तित हो जाता था [१२६]

२.११ आर्य सत्याग्रह : हैदराबाद मुक्ति संग्राम के एक संचालकः-

इद्रजी कॉग्रेस के साथ–साथ सप्रति आर्यसमाज के भी एक महत्वपूर्ण स्तभ थे सामाजिक, सास्कृतिक ही नहीं राष्ट्रीय कर्तव्यो के प्रति सतर्क एव सजग रहने वाली सस्था आर्यसमाज ने सन् १६३८–३६ मे हैदराबाद राज्य के नागरिको के मूलभूत अधिकारो की रक्षा के लिये फासिस्ट निजामशाही से जबरदस्त टक्कर ली थी आर्य सत्याग्रह सग्राम का प्रारभिक शखनाद करने वालो मे इंद्र विद्यावाचस्पतिजी प्रमुख थे ३० अप्रैल १६३८ को सार्वदेशिक सभा की विशेष बैठक मे इद्रजी ने आर्य–सत्याग्रह के सबध मे १४ सूत्री प्रस्ताव रखा था जिसमे 'आर्य रक्षा समिति' को यह आदेश दिया गया था कि – 'वह महाराष्ट्र मे किसी ऐसे केद्र मे, जो हैदराबाद के समीप हो, एक आर्य सम्मेलन करने की व्यवस्था करे, जिसमे हैदराबाद की समस्या पर विचार हो, तथा अन्य सब आवश्यक उपायो को काम मे लाकर हैदराबाद मे आर्यसमाज के अधिकारो की रक्षा का प्रयत्न करे'[१२७] 'आर्य रक्षा समिति' ने आर्य सत्याग्रह से लगभग चार मास पूर्व (८ अक्तूबर १६३८ को) सविनय कानून भग आदोलन जारी किया था इस 'आर्य रक्षा समिति' के प्रधान इद्र विद्यावाचस्पतिजी थे. ३१ जनवरी १६३६ को आर्य सत्याग्रह शुरु हुआ था सार्वदेशिक सभा के पदाधिकारियों को सत्याग्रह को बाहर

से सहयोग व शक्ति पहुँचाने के लिये सक्रिय सत्याग्रह से दूर रखा गया था. इंद्रजी इस समय सार्वदेशिक सभा के उपप्रधान थे बाहर रहकर आर्य सत्याग्रह की प्राणशक्ति सिद्ध होने वाले प इद्र विद्यावाचस्पति जैसे आर्यनायको के सबध मे, आर्य सत्याग्रह के सर्वप्रथम सर्वाधिकारी श्री नारायण स्वामीजी महाराज ने सत्याग्रह की समाप्ति पर जेल से छूटने के बाद कहा था, "वे लोग जिन्होने कभी सत्याग्रह आदोलन मे भाग नहीं लिया है, अच्छी तरह जानते हैं कि जेलो से बाहर रहकर सत्याग्रह आदोलन चलाने वालो को, जेल मे बद हो जाने वालो की अपेक्षा अधिक काम करना पडता है हमारे सत्याग्रह मे भी यही सत्य दिखाई दिया, यदि जेल से बाहर रहकर भी उन्होने अपने कर्तव्यो का पालन इतने उत्साह और लगन के साथ न किया होता, तो हमारा सत्याग्रह इतनी जल्दी समाप्त न हो सकता था मुझे यह कहते हुए अभिमान का अनुभव होता है कि उन सब भाइयो ने, जो प्राय अनिच्छापूर्वक अपने निश्चय के विरूद्ध जेलो से बाहर रहे, अपने कर्तव्यो का अत्यत प्रशसनीय रूप मे पालन किया "[१२८] सत्याग्रह की समाप्ति पर सत्याग्रह शास्त्र के आचार्य महात्मा गाधी ने कहा था, "आर्य सत्याग्रह मेरे सत्याग्रह की अपेक्षा यदि अधिक अच्छा नहीं, तो अधिक बुरा भी नहीं हुआ "[१२९] सरदार पटेल ने हैदराबाद की विजय पर अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा था, "यदि आर्यसमाज ने यहॉ पहले से भूमिका तैयार न की होती, तो तीन दिन मे पुलिस कार्यवाही सफल होनी मुश्किल थी आज तो सहसा उस परिस्थिति की कल्पना करना भी कठिन है [१३०] इस प्रकार स्पष्ट है कि जिस आर्य सत्याग्रह ने हैदराबाद मुक्ति सग्राम मे ही नहीं, किन्तु विशाल भारतीय गणतत्र की स्थापना मे महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी, उस आर्य सत्याग्रह के प्रवर्तको व सचालको मे इद्र जी का महत्वपूर्ण हाथ था. 'आर्य रक्षा समिति' के प्रधान व 'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा' के उपप्रधान के नाते आर्य सत्याग्रह को सचालित, सगठित करने व सफल बनाने का उत्तरदायित्व आप पर ही था [१३१]

प इद्र विद्यावाचस्पति का व्यक्तित्व बहुमुखी था. वे राजनैतिक नेता होने के साथ–साथ राष्ट्रीय साहित्यकार के रूप मे भी प्रख्यात थे अपने राष्ट्रीय साहित्य व राजनैतिक जीवन केसेमध्य उस विशाल साम्राज्य की जडे खोखली करने में सदैव सलग्न रहे सन् १६४१ की डायरी से पता चलता है– उनके व्याख्यानो के विषय प्राय. 'हिन्दुस्तानी राष्ट्रीयता'[१३२] एव 'भारतीय राष्ट्रीयता'[१३३] से सबद्ध होते थे भारतीय किसान के सामने अपने व्यक्तित्व को देशप्रेम की बातो मे सराबोर कर राष्ट्रीयता की अलख जगाने तथा जनोद्‌बोधन करने में वे सदैव सर्व प्रकारेण अभियान निरत रहते थे उनका परिचय क्षेत्र बडा ही व्यापक था दिल्ली के 'महाराष्ट्र समाज' मे उनके व्याख्यान होते थे,[१३४] तो मिलिट्री की ओर से श्री विद्यावाचस्पतिजी द्वारा सचालित 'वीर अर्जुन' के पूरे स्टॉफ को चाय दी गई थी [१३५] क्या जवान और क्या किसान सभी विद्यावाचस्पतिजी के व्यक्तित्व से प्रभावित थे. स्वदेशी के वे भक्त थे जब कभी खादी की प्रदर्शनी लगती, तो वे बडी रुचि से एक दर्शक या भेंटदाता के रूप मे उसमे सम्मिलित होते थे [१३६] खद्दरधारी तो वे आजीवन रहे महाराष्ट्र के प्रसिद्ध लोकमान्य श्री माधव श्रीहरि अणे जैसे राष्ट्रीय नेताओं के साथ महत्वपूर्ण गभीर विषयों पर प्राय उनकी चर्चा होती थी.[१३७]

श्री विद्यावाचस्पतिजी ने अपनी डायरी मे लिखा है, "मैं तभी डायरी पकडता हूं, जब मैं जीवन के किसी मोड पर पहुँचता हूँ"[१३८] सन् १६४२ की राष्ट्रीय डायरी में, जहॉ उनके १६ जनवरी को हिन्दू यनिवर्सिटी की जुबली मे शामिल होने का उल्लेख मिलता है, वहाँ ५ मार्च को शिवाजी दिवस व ३७ अप्रैल को राष्ट्रीय शिक्षणालय गुरुकुल कागडी के वार्षिकोत्सव मे शामिल होने का भी उल्लेख मिलता है इस प्रकार हम उन्हे भारतीय राष्ट्रीयता को समृद्ध बनानेवाली हर गतिविधि में सम्मिलित पाते हैं, ८ अगस्त १६४२ को महात्मा गाधी जी ने जब कॉंग्रेस महासमिति के मच से बंबई मे 'अंग्रेजो, भारत छोडो' की घोषणा की, तब ६ अगस्त को उन्हें तथा अन्य वरिष्ठ नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया था, उस समय के क्रान्तिमय परिवेश को श्री विद्यावाचस्पतिजी ने अपनी हस्तलिखित

डायरी मे इस प्रकार से अकित किया था– ६ अगस्त बबई मे कॉग्रेस की कार्यकारिणी गिरफ्तार, हडताल–जलसे, १० अगस्त देशव्यापी हडताल–उपद्रव १ सितबर सरकारी प्रतिबन्धो के कारण 'अर्जुन' पत्र बन्द हुआ ११ सितबर 'अर्जुन' फिर जारी हुआ

श्री विद्यावाचस्पतिजी का पत्रकारिता के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण स्थान था दिल्ली मे जो अखिल भारतीय सपादक सम्मेलन निमत्रित किया गया उसके प्रमुख सयोजको मे प्रो इद्र विद्यावाचस्पति (हिंदी), श्री देशबधु गुप्त (उर्दू) और देवदास गाधी (अग्रेजी) प्रमुख व्यक्ति थे[१३९] इद्र विद्यावाचस्पतिजी अखिल भारतीय समाचार पत्र सपादक सम्मेलन के स्वागत मत्री थे जिन उद्देश्यो को लेकर अखिल भारतीय सपादक सम्मेलन का आयोजन हुआ, लगभग उन्हीं उद्देश्यो को लेकर अखिल भारतीय हिन्दी पत्रकार सघ सम्मेलन का दिल्ली मे आयोजन किया गया था प इद्र विद्यावाचस्पति इस पत्रकार सघ सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष थे इसी वर्ष विद्यावाचस्पतिजी को हिदी साहित्य सम्मेलन के हैदराबाद अधिवेशन मे 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि प्रदान की गयी[१४०]

२.१२ राज्यसभा-सदस्य के रूप में श्री विद्यावाचस्पति जी:-

मार्च १९५२ मे श्री इद्र विद्यावाचस्पतिजी उत्तर प्रदेश की ओर से राज्यसभा (राज्य परिषद्) के सदस्य चुने गए राज्यसभा के ये छ वर्ष भी गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय का परिवर्धन करने मे सपन्न हुए इस ससदीय जीवन का क्रियात्मक मूल्य केवल गुरुकुल का परिवर्धन करना था ससदीय अनुभव के आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके थे– "राज्यसभा या लोकसभा की सदस्यता केवल एक शोभा है, कुछ लोगो के लिए वह एक रोजगार भी है विशेषत उनके लिए जो मिनिस्टरी आदि की तलाश मे हैं, सफलता पाने के लिये खुशामद चाहिए और अपने विचारो को दबाने की प्रवृति भी चाहिये मै इसे ईश्वर की कृपा समझता हूँ कि मै उस परीक्षा से अछूता निकल आया हूँ गुरुकुल की स्थिति बहुत कुछ स्थिर हो चुकी है, मेरे अनुभवो का भडार भी भर गया है अब मै अधिक स्वतत्रता से लिख बोल और काम कर सकता हू"[१४१] वैसे तो इद्रजी राज्यसभा मे बहुत कम जाते थे, शायद वे यही सोचते थे कि जहॉ कलम, वाणी और कर्म का स्वातत्र्य नहीं, वहॉ जाने से क्या फायदा राज्यसभा सदस्य के रूप मे उन्होने भाषा के आधार पर प्रान्तो के विभाजन का तीव्र विरोध किया था उन दिनो भाषाई आधार पर हैदराबाद राज्य के विभाजन का प्रश्न पूर्ण उग्र रूप धारण किये हुए था

उस समय के राज्यसभा सदस्य और राष्ट्रीय साहित्यिक पत्रकार बनारसीदास चतुर्वेदी जी ने लिखा है, "जब वे राज्य सभा के सदस्य बने तब भी उनके दर्शन वहॉ बहुत कम हुआ करते थे इद्रजी ब्राह्मण वृत्ति के साहित्यिक तपस्वी थे, सत्तात्मक राजनीति के प्रति उनके मन मे कोई आकर्षण न था चुपचाप अपना काम करना उनका स्वाभाविक गुण बन गया था"[१४२] ससदीय जीवनकाल मे राष्ट्रीय नीति के प्रचार–प्रसार हेतु पूर्ण स्वाधीनता से आपने 'इण्डियन एक्सप्रेस' प्रकाशन से सबद्ध 'जनसत्ता' दैनिक का सन् १९५२–५३ मे लगभग एक वर्ष तक सपादन किया था सन् १९५५ मे विद्यावाचस्पतिजी 'यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन' के सलाहकार व 'भारत शिक्षा मत्रालय' की 'विश्वकोश परामर्श समिति' के सदस्य तथा भारत सरकार के 'सस्कृत आयोग' के सलाहकार सदस्य भी थे सक्षेप मे कॉग्रेस के राजनीतिक आकाश मे विद्यावाचस्पति रूपी सूर्य का उदय काल सन् १९११ से १९२० तक है १९२१ से १९४२ तक मध्याह्न काल है और १९४३ से १९६० तक उपसहार काल है कॉग्रेस की नीतियो से असन्तुष्ट होते हुए भी कॉग्रेस दलीय अनुशासन को ध्यान मे रखते हुए सभव है विद्यावाचस्पतिजी कई बार मौन रहे होगे, पर 'अर्जुन' रूपी पत्रकार विद्यावाचस्पति कभी मौन नहीं रह पाया, जब कभी मौका आया, उसने गाण्डीव के तीर छोडे ही, फिर चाहे सामने गाधी हो, नेहरू हो या उनकी कॉग्रेस हो कॉग्रेस की वकालत करते समय और कॉग्रेस की आलोचना

करते समय देशहित ही उनके सामने महत्वपूर्ण रहा उनकी यह धारणा थी कि 'राजनीतिक दल का चुनाव हमे वर और वधू के समान करना चाहिये' अपनी इस धारणा के अनुसार अन्तिम समय तक वे कॉग्रेस से जुडे रहे वैयक्तिक स्तर पर उन्होने किसी प्रकार की निन्दा–स्तुति व उपेक्षा की परवाह नही की, उनका पूर्ण राजनीतिक जीवन निम्नाकित श्लोक के अनुरूप था –

'न त्वह कामये राज्य न स्वर्ग ना पुनर्भवम्। कामये दु ख तप्ताना प्राणिनामार्त्तिनाशनम्।।'

२.१३ चिररोगी फिर भी धैर्य धुरंधरः-

सन् १६४२ की देशव्यापी राज्यक्राति के दिनो मे काम का जोर पडने और अनेक महत्वपूर्ण पदो के उत्तरदायित्व के कारण दिनचर्या मे अव्यवस्था आ जाने से इन्द्र विद्यावाचस्पति पर एक साथ दो व्याधियो का आक्रमण हो गया इससे पूर्व सन् १६२७, '३० व '३२ मे भुगती जेल त्रासदियो के फलस्वरूप उनके पेट मे रह–रहकर दर्द हो उठता था, फिर भी वे मिशनरी स्पिरिट से लेखन व वक्तव्य द्वारा समाज–प्रबोधन का कार्य कर रहे थे

इद्रजी के पिता स्वामी श्रद्धानदजी ने अपनी आत्मकथा, ''कल्याण मार्ग का पथिक'' मे लिखा है, 'देवी (सहधर्मिणी शिवदेवी निधन ३१ अगस्त १८६१) ने चार सतान छोडीं– १) वेद कुमारी–१० वर्ष, २) हेमत कुमारी, जिसका यज्ञोपवीत सस्कार के समय नया नाम रखा गया– ''अमृत कला''–६ वर्ष, ३) हरिश्चन्द्र–४वर्ष, ४) इन्द्र–२वर्ष इनमे से इद्र उस समय भी ज्वर और दस्तो से पीडित था और छ मास पहिले भी उसे निमोनिया हो चुका था''[१४३] इस प्रकार स्पष्ट है कि इद्र बचपन से रोगी थे, पर १६४२ से पूर्व उनके शरीर को देखकर कोई यह अनुमान नहीं लगा सकता था कि वे चिररोगी हैं इसके दो कारण थे– एक तो यह कि उन्होने अपने दादाजी और पिताजी से विशाल शारीरिक विभूति प्राप्त की थी इसलिए उनका शरीर भरा हुआ दिखाई देता था और दूसरा यह कि वे सदा रहन–सहन मे साधारण परहेज से काम लेते थे तथा थोडे–बहुत व्यायाम का भी उन्हे सदा शौक बना रहा था[१४४] इद्रजी ने सार्वजनिक जीवन की भाति निजी जीवन मे भी सघर्ष किया है उन्होने कई भयकर बीमारियॉ देखीं थीं उनके घरेलू डॉ असारीजी ने उन्हे यह सलाह दी थी, 'बायॉ फेफडा बिल्कुल निकम्मा हो गया है, इसलिये उतना ही बोझ उठाओ जितना एक फेफडे से उठाया जा सके ऐसी स्थिति मे भी काम वैसे ही चलता रहेगा जैसा एक हाथ कटने पर आदमी का काम चलता रहता है, पर व्याख्यान देने से फेफडो पर जोर पडता है, अत व्याख्यान देना बद करना पडेगा ' इद्रजी ने खाने–पीने और पहिनने की तो सावधानी रखी, पर व्याख्यान देना बद नहीं किया[१४५] इस समय वे 'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा' के मत्री (१६४३, ४४, ४५), 'अखिल भारतीय हिदी पत्रकार सघ–सम्मेलन' के अध्यक्ष (१६४३, ४४), 'गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय' के मुख्याधिष्ठाता व कुलपति (१६४३–४८), 'आर्य प्रतिनिधि सभा' पजाब के उपप्रधान (१६४३) व 'चतुर्थ आर्य सम्मेलन' के अध्यक्ष (२०–२२ फरवरी १६४४) थे जन साधारण ने राष्ट्रीय साहित्यकार होने के कारण ही उन्हे सन् १६४४ मे जयपुर मे सपन्न होने जा रहे हिदी साहित्य सम्मेलन का अध्यक्ष भी निर्वाचित किया था[१४६] स्वाभाविक रूप से उन्हे इन सब कार्यों का उत्तरदायित्व वहन करने के लिये लिखने और बोलने का कार्य करना पडता था विविध कार्यों के बोझ से वे १६४२ के सितबर मास के अत मे अपचन व तीव्र खॉसी के शिकार हो गये और रोग व चिकित्सा के चक्रव्यूह मे लगभग दस महीने तक फॅसे रहे, पुनरपि उन्होने सार्वजनिक सस्थाओ के उत्तरदायित्वो से मुँह नहीं मोडा और दो–तीन वर्षों मे थोडा सा स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करते ही फिर उन्होने गाडीव ('वीर अर्जुन' तथा 'जनसत्ता' दैनिक) से तीर छोडने शुरु कर दिये

राजनीतिक क्षेत्र की तरह विद्यावाचस्पति का सामाजिक, शैक्षिक और पारिवारिक क्षेत्र भी उनकी राष्ट्रीय भावनाओ का अनुगामी था वे अपने घरेलू प्रश्नो को बहुमुखी सार्वजनिक जीवन मे गौण कर

दिया करते थे इसी कारण जिन्दगी के ६० वर्ष बीत जाने पर भी वे अपना कोई घर नहीं बना पाये थे सन् १६३० मे उन्हे जो नींव युक्त प्लॉट पसद आया था उसे वे पूरी तरह ५ सितबर १६४२ को खरीद पाये थे,[१४७] और ७ अक्टूबर १६५१ में उस पर अपना घर बना पाये थे, क्योकि राष्ट्रीय, शैक्षिक व सामाजिक क्षेत्र मे सारा ध्यान बॅट जाने के कारण वे इस ओर ध्यान ही नहीं दे पाये थे विद्यावाचस्पति का यह पारिवारिक मनोरथ १६५१ मे मागलिक यज्ञ के साथ सपन्न हुआ

२६ दिसबर १६५१ को विद्यावाचस्पति के साथ बडी कष्टदायक दुर्घटना घटी अपने निवास स्थान पर ही चलते समय उनकी कुल्हे की हड्डी टूट गई [१४८] इस समय की अपूर्व सहन शक्ति व असाधारण धीरज का वर्णन करते हुए उनके भॉजे श्री सत्यकाम विद्यालकार ने लिखा है, ''डॉक्टरो ने आपके फेफडो की कमजोरी के कारण क्लोरोफार्म सुँघाने से मना कर दिया था समस्या थी कि बिना नि सज्ञ किये दो हड्डियो के बीच गरारी कैसे डाली जाय इद्रजी ने डॉक्टरो से कहा, ''आप अपना काम कीजिये, मेरे मुख पर रूमाल डाल दीजिये ऐसा ही किया गया बिजली की धारा चली, हड्डियो के बीच बर्मे को चलाया गया, हड्डियो मे छेद हो गया, इद्रजी ने उफ् नहीं की छेद हो जाने पर इद्रजी की टॉग छत से लटका दी गयी डॉक्टरो ने जब हड्डी मे छेदने का काम समाप्त किया, जब इद्रजी ने डॉ खेडा से कहा,— ''बस इतनी ही बात के लिए आप चिता कर रहे थे छत से टॉग टॅगी होने पर भी इद्रजी मिलने के लिये आने वाले सज्जनो से बात कर रहे थे हड्डी मे छेद करवाना और गरारी डलवाना अत्यत असाधारण बात है चेतनावस्था मे यह नहीं किया जाता, परन्तु इद्रजी ने चेतनावस्था मे यह कार्य होने दिया चिकित्सा जगत् मे यह एक बहुत बडा अद्भूत कार्य माना गया इस समय की असह्य वेदना को इद्र विद्यावाचस्पति ने जिस धैर्य से सहा, उसने उनके सब परिचितो को और वहॉं उपस्थित लोगो को उनकी धैर्यशीलता का विश्वास दिलाया''[१४९] इस कष्टदायक दुर्घटना के बाद अस्पताल वास के क्षणो मे राष्ट्रपति डॉ राजेन्द्रप्रसाद, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, सेठ जुगलकिशोर विडला व गुरुकुलवासियो से गहरी व सक्रिय सहानुभूति प्राप्त हुई श्री विद्यावाचस्पति मे कष्ट सहन करने की यही वह अपूर्व सहनशक्ति व असाधारण दृढता थी, जिसके कारण वे अपने जीवन मे बहुविध क्षेत्रो मे सदैव अग्रिम मोर्चे पर अग्रणी बनकर निर्भयता से सक्रिय रहे राजनीतिक जीवन की तरह उनका सामाजिक, शैक्षिक व साहित्यिक जीवन भी राष्ट्रीयता के पादप को पुष्ट करने में ही अर्पित रहा

२.१४ देहावसानः-

देहावसान से पन्द्रह महिने पूर्व श्री इद्र विद्यावाचस्पति को यमराज के नजदीक आने का पूर्वाभास मिल चुका था, २५ मई १६५६ को वे सहधर्मिणी के ऑखो मे ऑसू भरकर यह कहने पर, 'आप मेरे खातिर नर्सिंग होम मे जाना स्वीकार कर लीजिये' — वे दिल्ली के नर्सिंग होम मे प्रविष्ट हो गये थे जहॉं पहुँचने पर सबसे पहले उन्हे दीखना बन्द हो गया, फिर कानो ने काम करना छोड दिया और फिर उन्होने पूर्ण अन्धकार में डूब जाने का अनुभव किया शाम ६ बजे से रात १२ बजे तक वे अचेत ही थे उन्होने 'मृत्युद्वार के दर्शन' नामक लेख मे लिखा था, ''मैं उन बेहोशी के घण्टो को ही मृत्यु की ओर यात्रा के घण्टे समझ सकता हूँ उस दशा तक पहुँचने मे मुझे जिस मार्ग से जाना पडा, निश्चय ही वह मृत्यु का मार्ग था मैं द्वार तक पहुँच गया कि मेरे स्वजनो की प्रबल इच्छा तथा डॉक्टरो और नर्सों के अनथक परिश्रम ने मुझे मानो पल्ले से पकडकर पीछे की ओर खींच लिया''[१५०]

मृत्युद्वार के दर्शन करने के बाद भी वे निराश और हताश नहीं हुए तथा पुनश्च पूर्ववत् 'तावज्जीवितुमिच्छामि यावच्छक्नोमि सेवितुम्' की स्व—कामना के अनुसार वे अपने सार्वजनिक कर्मक्षेत्र मे तल्लीन हो गए उनके नेतृत्व मे ६ अप्रैल से १३ अप्रैल १६६० तक गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय

का ६० वॉ वार्षिकोत्सव हीरक जयन्ती के रूप मे धूम–धाम से मनाया गया १३ अप्रैल को हीरक महोत्सव की थकान के कारण उन्हे १०१ तक ज्वर था महोत्सव के लगभग पचास दिन बाद ४ जून १९६० को वे मानसिक और शारीरिक विश्रान्ति के लिए उक्त विश्वविद्यालय के उपकुलपति पद से सेवा–निवृत्त हुए २४ जुलाई १९६० को गुरुकुल विश्वविद्यालय की ओर से उन्हे भाव–भीनी विदाई दी गई इस अवसर पर किये गये अभिनन्दन के प्रत्युत्तर मे आपने कहा था, "मेरी यह अन्तिम हार्दिक इच्छा है कि मेरी अर्थी गुरुकुल मे ही निकले और मेरी भस्म भी गुरुकुल के खेत मे ही डाल दी जाय"[५१] २५ जुलाई को वे दिल्ली मे 'केंद्रीय सस्कृति बोर्ड' की बैठक मे और ३ अगस्त को 'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा' की बैठक मे सम्मिलित हुए ६ अगस्त को उन्होने 'भारतैतिह्यम्' नामक ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थ का ३० वॉ अध्याय पूर्ण किया १७ अगस्त को रात भर उनके सिर और छाती मे दद रहा २० अगस्त को उन्होने फिर एक बार अनुभव किया कि 'काय–यष्टि मृत्यु के महालय मे प्रविष्ट हो गई है' २२ अगस्त को कब्ज की शिकायत के अतिरिक्त कफ भी अटकता प्रतीत हुआ और जबान लडखडाने लगी डॉक्टरो ने पुन उन्हे 'सेन नर्सिंग होम' मे प्रविष्ट होने की सलाह दी नर्सिंग होम पहुँचने पर परिवार के विशेष आग्रह से फिर दस नम्बर का वही कमरा लिया, जहॉ से पन्द्रह महिने पूर्व वे स्वस्थ होकर वापिस लौटे थे, पर 'मौत का एक दिन मुअय्यन है'[५२] सुप्रसिद्ध है– 'जातस्य हि ध्रवो मृत्यु'[५३] मौत का वह अटल दिन नजदीक आ चुका था महाकवि कालिदास 'रघुवश' मे कह गये हैं – 'मरण प्रकृति शरीरिणा विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधै'[५४]

२३ अगस्त १९६० का दिन वस्तुत काल रात्रि सिद्ध हुआ शाम छ–सात बजे के मध्य श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति की सास वहाँ चली गई, जहाँ से लौटकर फिर कभी नही आती प्राण–पखेरू काय–यष्टि से सदा–सदा के लिए उडकर चले गए राष्ट्रपति डॉ राजेन्द्रप्रसाद जी ने श्री विद्यावाचस्पति के निधन के समाचार की पुष्टि होने के उपरान्त आकाशवाणी को उनके दु खद निधन का समाचार प्रकाशित करने का निर्देश दिया आकाशवाणी ने यह दु खद समाचार प्रसारित किया– 'राष्ट्रीय साहित्यकार एव पत्रकार श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति का ७१ साल की आयु मे अल्पकालीन बीमारी के बाद देहावसान हो गया' जिस–किसी ने सुना वह स्तब्ध रह गया दिल्ली अपने महान् नेता को खोकर शोक–सागर मे डूब गयी 'गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय' पर तो वज्रपात ही हो गया समस्त पत्रकार–जगत् और साहित्य–सेवी ससार मे शोक छा गया राष्ट्रपति की ओर से पार्थिव शरीर के सम्मान मे पुष्पचक्र अर्पित किया गया फूलो सजी अर्थी दिल्ली के निगमबोध घाट पर पहुँची और 'भस्मान्त शरीर, क्लीवे स्मर, कृत स्मर' के साथ चन्दन की चिता मे पार्थिव शरीर भस्म हो गया जो शेष रह गया वह उनका यश शरीर था पत्र–पत्रिकाओ की सम्पादकीय टिप्पणियो मे श्री विद्यावाचस्पति के निधन पर गहरा शोक प्रकट किया गया राष्ट्र के अनेक पत्रकारो और साहित्यकारो ने उनके देहावसान को साहित्य, सस्कृति एव राष्ट्र की महान क्षति बतलाया श्री जगन्नाथ गुप्त ने 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के 'इन्द्र–स्मृति अक' मे प्रकाशित, अपनी 'अब न वह हैं और न वैसे' नामक रचना मे श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति के बहुमुखी व्यक्तित्व और उसकी अनिर्वचनीयता की मीमासा करते हुए यह टिप्पणी की है, "जिस प्रकार तलहटी मे खडे होकर किसी विशालकाय पर्वत का सर्वांग चित्र मानस–पटल पर नहीं उतारा जा सकता, उसी प्रकार इन्द्रजी के बहुमुखी व्यक्तित्व का पूरा मूल्याकन किसी एक व्यक्ति के सामर्थ्य की बात नहीं है हॉ, इतना अवश्य है कि हरीतिमा–मडित और जल–सकुल पर्वत के एक पक्ष को देखकर उसके समूचे मागलिक अस्तित्व का अनुमान जरूर किया जा सकता है"

डॉ बनारसीदास चतुर्वेदीजी के शब्दो मे 'स्वर्गीय प इन्द्र विद्यावाचस्पति के देहावसान के साथ उत्तर भारत के सास्कृतिक और सामाजिक इतिहास का एक शानदार अध्याय समाप्त हो गया

उनका चरित्र आधुनिक युग मे एक उज्ज्वलतम प्रकाशस्तम्भ के समान था वह प्रथम श्रेणी के सम्पादक, लेखक और वक्ता थे हिन्दी पत्रकारिता को उनकी देन अत्यन्त मूल्यवान है '[१५५] दिल्ली के 'वेदप्रकाश' मासिक ने श्रद्धाजलि व्यक्त करते हुए कहा, 'प इन्द्रजी ने अपनी अमूल्य सेवाओ से पत्रकार जगत् मे, साहित्य--सेवा मे, राष्ट्र–सेवा तथा आर्यसमाज के क्षेत्र मे अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया था उनके इस अप्रत्याशित निधन से आर्यसमाज तथा देश ने एक नि स्वार्थ सेवक तथा सच्चा कार्यकर्ता खो दिया '[१५६] इलाहाबाद की सुप्रसिद्ध 'सम्मेलन पत्रिका' ने कहा– स्व प्रो इन्द्र हिन्दी ससार के बडे पुराने तथा उच्चकोटि के पत्रकार थे उन्होने अपना समस्त जीवन हिन्दी तथा पत्रकारिता की सेवा मे समर्पण कर दिया वह अपनी स्वतत्र लेखनी के धनी, निर्भीक आलोचक, सफल पत्रकार, स्वतत्रता सग्राम के एक प्रमुख सेनानी तथा हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक थे भारतीय जीवन मे उन्हे उच्च प्रतिभा प्राप्त थी फलत उनकी कृति मे यथाशक्य सुलभ उपादानो का जितनी उत्तमता एव वैज्ञानिक दृष्टि से उपयोग किया गया है, वह अन्य जन सुलभ नही था[१५७] गुजरात की 'टकारा–पत्रिका' ने इस महान दिवगत साधक को श्रद्धान्जलि अर्पित करते हुए कहा "श्री प इद्रजी ने अपने पूज्य पिता स्वामी श्रद्धानद जी के चरणो पर चलते हुए सारी आयु देश जाति और आर्यसमाज के कार्यो मे बिताई ऐसे कर्मठ व्यक्ति का आर्यसमाज से उठ जाना वस्तुत एक अपूरणीय क्षति है "[१५८] 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन'– प्रयाग की स्थायी समिति ने अपने अधिवेशन मे हिन्दी के वरेण्य साहित्यकार और देशनायक के रूप मे स्व सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, प जवाहरलाल नेहरू और प इन्द्र विद्यावाचस्पति को श्रद्धाजलि देते हुए यह सकल्प ग्रहण किया– 'स्वर्गीय साहित्यकारो की भावनाओ के अनुकूल यह सम्मेलन हिन्दी की सेवा मे दत्तचित्त रहेगा, और उनके द्वारा अगीकृत मार्गो का अनुसरण करेगा '[१५९] 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' ने 'इन्द्र–स्मृति–अक' निकालकर भावपूर्ण श्रद्धाजलि प्रस्तुत करते हुए कहा– 'श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति 'दैन्य–दासता के युग मे पौरुष के अवतार' होने के साथ–साथ एक यशस्वी पत्रकार, तपे हुए राष्ट्रीय कार्यकर्ता, सुलझे हुए इतिहासकार एव शिक्षा शास्त्री थे वह राजधानी दिल्ली मे, जो एक पीढी पहले उर्दू का गढ थी, हिन्दी का पौधा पल्लवित करने वाले अग्रणी व्यक्ति थे पत्रकारिता के आचार्यों मे उनकी गणना की जा सकती है विद्यावाचस्पति जैसे नि स्पृह, ईमानदार एव कर्मठ पत्रकारो की लेखनी की निर्भीकता और सच्चाई हम अपनाते रहेंगे, जब तक हम उन उदात्त आदर्शों और लक्ष्यो को स्मरण कर उन्हे प्राप्त करने के लिए प्रवृत्त रहेंगे, तब तक ऐसी विभूति का उत्सर्ग कभी व्यर्थ न जायेगा, प्रत्युत अधिकाधिक हमारे लिए प्रेरणा का आलबन बना रहेगा '[१६०] इन विविध सम्मतियो के आधार पर यह नि सदेह कहा जा सकता है कि– श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति के व्यक्तित्व एव साहित्य की यश–सुरभि हिन्द एवं हिन्दी जगत् को अनन्त काल तक सुरभित करती रहेगी

संदर्भ

१ पत्रकारिता के अनुभव–प्रकाशकीय निवेदन–१
२ इन्द्र विद्यावाचस्पति–२
३ कल्याण मार्ग का पथिक–२१३
४ मेरे पिता–२६६
५ तत्रैव–२७१
६ तत्रैव–२६८
७ तत्रैव–११
८ तत्रैव–२१
९ तत्रैव–२२
१० तत्रैव–२०१
११ पत्रकारिता के अनुभव–१०
१२ तत्रैव–२
१३ गुरुकुल कॉगडी के साठ वर्ष–१०
१४ मेरे पिता–२५
१५ तत्रैव–६७
१६ तत्रैव–१०४
१७ तत्रैव–१२८
१८ मेरे नौकरशाही जेल के अनुभव–१
१९ मेरे पिता–१३४
२० तत्रैव–१३६
२१ आर्य समाज का इतिहास द्वितीय भाग–४१
२२ इन्द्र विद्यावाचस्पति–८
२३ तत्रैव–१३
२४ तत्रैव–१६
२५ तत्रैव–१८
२६ श्रद्धानद स्मृति ग्रन्थ–६५
२७ भारतीय स्वाधीनता सग्राम का इतिहास–६६
२८ मेरे पिता–१३३
२९ इद्र विद्यावाचस्पति–२०
३० तत्रैव–२६
३१ तत्रैव–२६
३२ तत्रैव–१७
३३ तत्रैव–३०
३४ साप्ताहिक हिन्दुस्तान २६ फरवरी १९६१–१२, ४६
३५ इन्द्र विद्यावाचस्पति–२६
३६ तत्रैव–३०
३७ मेरे पिता–२०१
३८ इन्द्र विद्यावाचस्पति–३६
३९ हिन्दी पत्रकारिता विविध आयाम–१८५
४० इन्द्र विद्यावाचस्पति–३६
४१ तत्रैव–४४
४२ तत्रैव–४५
४३ विनायकराव अभिनंदन ग्रथ–५
४४ आधुनिक भारत मे वक्तृत्व कला की प्रगति–३
४५ हिन्दी नवजीवन ६–१–१९२७
४६ तत्रैव–१–६–१९२४
४७ तत्रैव–६–१–१९२७
४८ मेरे समकालीन–५२७
४९ गुरुकुल कॉगडी के साठ वर्ष–२१
५० आधुनिक भारत मे वक्तृत्व कला की प्रगति–४
५१ इन्द्र विद्यावाचस्पति–६४
५२ मेरे पिता–२१२
५३ तत्रैव–२१८
५४ तत्रैव–२२०
५५ तत्रैव–२२१
५६ आर्यसमाज का इतिहास द्वितीय भाग–३६४
५७ आधुनिक भारत मे वक्तृत्व कला की प्रगति–३३
५८ लोकमान्य तिलक याच्या आठवणी व आख्यायिका–२५८
५९ इन्द्र विद्यावाचस्पति–१४८
६० तत्रैव–४८

६१. मेरे पिता–२३६
६२ आधुनिक भारत मे वक्तृत्व कला की प्रगति–५२
६३ हिन्दी नवजीवन २५–६–१६२५
६४ आधुनिक भारत मे वक्तृत्व कला की प्रगति–४५
६५ पत्रकारिता के अनुभव–३०
६६ इन्द्र विद्यावाचस्पति–४८
६७ तत्रैव–४८
६८ तत्रैव–६६
६६ तत्रैव–६६
७० तत्रैव–५३
७१ बन्दी जीवन–३१०
७२ तत्रैव–३०३
७३ तत्रैव–३०६
७४ इन्द्र विद्यावाचस्पति–५४
७५ मेरे पिता–२६३
७६ तत्रैव–२७०
७७ तत्रैव–२६६
७८ मेरे नौकरशाही जेल के अनुभव–१–३
७६ पत्रकारिता के अनुभव–४८
८० हिदी पत्रकारिता विविध आयाम–६८४
८१ मेरे नौकरशाही जेल के अनुभव–५२
८२ तत्रैव–५३
८३ तत्रैव–५६
८४ स्वामी श्रद्धानद जी महाराज–१८
८५ हिदी पत्रकारिता विविध आयाम–१८५
८६ गुरुकुल पत्रिका मई १६७३–४२५
८७ इन्द्र विद्यावाचस्पति–६७
८८ तत्रैव–६७
८६ तत्रैव–७२
६० तत्रैव–७१/आत्मकथा–२११
६१ इन्द्र विद्यावाचस्पति–७१
६२ पत्रकारिता के अनुभव–४६
६३ आर्यकुमार डायरी–१६३० (हस्तलिखित)
६४ इन्द्र विद्यावाचस्पति–७४
६५ तत्रैव–१५६
६६ तत्रैव–७६
६७ इडियन डायरी–१६३४ (हस्तलिखित)
६८ हमारे कर्मयोगी राष्ट्रपति–४१
६६ तत्रैव–२६
१००. इडियन डायरी–१६३४ (हस्तलिखित)
१०१ इन्द्र विद्यावाचस्पति–८०
१०२ इडियन डायरी–१६३४ (हस्तलिखित)
१०३ हिदी पत्रकारिता विविध आयाम–१६३
१०४ इन्द्र विद्यावाचस्पति–८१
१०५ मैं इनका ऋणी हूँ–८१–८२
१०६ इडियन डायरी–१६३६ (हस्तलिखित)
१०७ तत्रैव–८ सितबर १६३६
१०८ इन्द्र विद्यावाचस्पति–८१
१०६ प जवाहरलाल नेहरू–१०२
११० तत्रैव–१०६
१११. भारतीय स्वाधीनता सग्राम का इतिहास–३१३
११२ इन्द्र विद्यावाचस्पति–८२
११३ प जवाहरलाल नेहरू–१०६
११४ भारतीय स्वाधीनता सग्राम का इतिहास–३१४
११५ मैं इनका ऋणी हूँ–६७
११६ इन्द्र विद्यावाचस्पति–८२
११७ हस्तलिखित डायरी १६३८
११८ तत्रैव–प गोविदवल्लभ पत के पत्र–२२ जनवरी १६३८
११६ तत्रैव–रियासतो के सबध मे भाषण १४ फरवरी १६३८
१२० तत्रैव–बदरपुर हस्पताल कमेटी मे–१३ जून १६३८

१२१ तत्रैव–१४ जून १६३८ को दिल्ली मे

१२२ हस्तलिखित डायरी ६ नवबर १६३६

१२३ नेताजी सुभाष दर्शन–८७

१२४ इन्द्र विद्यावाचस्पति–६१

१२५ तत्रैव–६१

१२६ पाकेट डायरी १६३६ हस्तलिखित–२० सितबर

१२७ इन्द्र विद्यावाचस्पति–६२

१२८ आर्यसमाज का इतिहास द्वितीय भाग–३१८

१२६ तत्रैव–३१४

१३० हैदराबाद के आर्यों की साधना और सघर्ष–५

१३१ इन्द्र विद्यावाचस्पति–६२

१३२ सदाचार डायरी (हस्तलिखित) १४ जनवरी १६४१

१३३ तत्रैव–११ मार्च १६४१ पहाडगज कॉग्रेस की ओर से व्याख्यान

१३४ तत्रैव–१२ फरवरी १६४१ महाराष्ट्र समाज मे व्याख्यान–८ बजे

१३५ तत्रैव–११ मार्च १६४१

१३६ तत्रैव–२ अक्टूबर १६४१–अलवर मे खादी प्रदर्शनी के अवसर पर

१३७ तत्रैव–२२ फरवरी १६४१ नेशनलिस्ट पार्टी के सबध मे लोकनायक अजमेर विचारो से पूर्णतया सहमत

१३८ इन्द्र विद्यावाचस्पति–५६

१३६ तत्रैव–१०३

१४० तत्रैव–१२५

१४१ तत्रैव–१३२

१४२ नवनीत मई १६६७–६५

१४३ कल्याण मार्ग का पथिक–२१३

१४४ मैं चिकित्सा के चक्रव्यूह से कैसे निकला–२

१४५ तत्रैव–३

१४६ साप्ताहिक हिदुस्तान २६ फरवरी १६६१ – सपादकीय–६

१४७ राष्ट्रीय डायरी १६४२ (हस्तलिखित)

१४८ इन्द्र विद्यावाचस्पति–१२७

१४६ तत्रैव–१२८

१५० नवनीत मई १६६०–२५

१५१ इन्द्र विद्यावाचस्पति–१३७

१५२ दीवान–ए–गालिब–३०३–गजल क्रमाक–१६२

१५३ वैदिक गीता–२–२७

१५४ रघुवश महाकाव्यम्–अष्टम सर्ग, श्लोक–८७

१५५ आजकल अक्टूबर १६६०– सपादकीय–४३

१५६ वेद प्रकाश अक्टूबर १६६०–२१४

१५७ सम्मेलन पत्रिका चैत्र–ज्येष्ठ, आषाढ–भाद्रपद, शक–१८८३, १४४, १७८

१५८ टकारा पत्रिका अक्टूबर १६६०–५, ३०

१५६ सम्मेलन पत्रिका पौष–ज्येष्ठ, शक १८६३, १६०

१६० साप्ताहिक हिन्दुस्तान २६ फरवरी १६६१–३, ४

३

विद्यावाचस्पति जी का संस्मरण साहित्य

३.१ संस्मरणः स्वरूप, विवेचनः-

'सम्' उपसर्ग पूर्वक 'स्मृ–स्मरणे' धातु से सस्मरण शब्द बना है, जिसका अर्थ है स्मरण करना 'भावभीना सम्यक स्मरण ही सस्मरण'[१] कहलाता है स्मृति रक्षा इसका सबसे बडा प्रयोजन है, यह सहृदय के स्मृति–कोष की अमूल्य आनददायिनी निधि है लेखक लिखते समय जो भी स्मरण कर सकता है, उसीका उसमे वर्णन होता है डॉ पद्मसिह शर्मा 'कमलेश' के अनुसार 'तथ्यात्मक या इतिवृत्तात्मक पद्धति को छोडकर जब किसी व्यक्ति के जीवन की चारित्रिक विशेषताओ को प्रकट करने वाली रोचक घटनाओ या परिस्थितियो का वैयक्तिक सपर्क के आधार पर लेखा–जोखा प्रस्तुत किया जाता है, तो वह सस्मरण होता है'[२] सस्मरण के अतर्गत लेखक जीवन की उन घटनाओ या व्यक्तियो को याद करता है, जिन्हे वह भुला नहीं सका था, जो उसकी मानसिक चेतना के अभिन्न अश बन गये हैं 'सस्मरण मे भावुक कलाकार किसी व्यक्ति के सपूर्ण जीवन या उसके किसी भाग का वर्णन परम सुपरिचित ढग से इस प्रकार व्यक्त करता है कि उस व्यक्ति की सच्ची जीवन गाथा के साथ–साथ कलाकार का हृदय भी मुखरित हो उठता है'[३] उपन्यास व कथा मे जिस तरह का सबध है, उसी प्रकार का सबध जीवनी–आत्मकथा तथा सस्मरण मे है, सस्मरण मे लेखक का जीवन भी बीच–बीच मे से झॉकता है, जैसे शरद् ऋतु मे बदली के हट जाने पर आकस्मिक रूप से सूर्य किरणो के माध्यम से प्रकाश एव उष्णता सुलभ होती है, उसी प्रकार सस्मरणो मे जहॉ–तहॉ लेखक का जीवन झॉकता है[४] जीवनी और आत्मकथा दोनो से सबद्ध होने के कारण सस्मरण की दो श्रेणियॉ हैं प्रथम श्रेणी के सस्मरण का विषय लेखक के निजी जीवन का विशिष्ट पहलू होता है और द्वितीय श्रेणी का सस्मरण जीवनी के समान अपने से इतर व्यक्तित्व के विश्लेषण से सबधित होता है इस तरह के 'सस्मरण मे लेखक के व्यक्तित्व का वही स्थान होता है, जो कि किसी माला मे सूत्र का होता है' इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुये महादेवी वर्मा ने कहा है कि, 'अधेरे की वस्तुओ को अपने प्रकाश की धुधली या उजली परिधि मे ही लाकर देख पाते हैं मेरा निकटता जनित आत्मविज्ञापन उस राख से अधिक महत्व नहीं रखता जो आग को बहुत समय तक सजीव रखने के लिए ही अगारो को घेरे रहती है'[५] उपरोक्त दोनो प्रकार के सस्मरणों का क्रमश आत्मचरित्र और जीवन–चरित्र से गहरा सबध है. जीवनीकार का समकालीन होना जरूरी नहीं है पर सस्मरण नायक का समकालीन होना जरूरी है इसीके साथ यह भी ध्यान मे रखना चाहिये कि जीवनी लेखक इतिहासकार पहले और साहित्यकार बाद मे होता है इसके विपरीत सस्मरण लेखक साहित्यकार पहले और इतिहासकार बाद मे होता है यहॉ पर सस्मरण और 'मेमोयर' का अतर भी स्पष्ट कर लेना जरूरी है – सस्मरण के लिये ऐतिहासिक महत्व अनिवार्य तत्व नहीं है, जब कि मेमोयर्स ऐतिहासिक महत्व के ही होते हैं

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि – सस्मरण मूल रूप से जीवनी परक साहित्य का एक अग है, जिसमे लेखक के जीवन की कुछेक उल्लेखनीय

घटनाओ का भावात्मक अकन होता है, परतु इसमे जीवनी या आत्मकथा की–सी व्यापकता नहीं होती, फिर भी उन घटनाओ का प्रभाव पाठक के अत करण पर पडता है निष्कर्ष रूप मे यह कहना समुचित होगा कि सस्मरण वास्तविक जीवन से सबद्ध, सक्षिप्त, रोचक, चित्ताकर्षक, भावुकतापूर्ण, लेखक के व्यक्तित्व की आभा से युक्त, चरित्र की गरिमा से मडित, साकेतिक एव प्रभावपूर्ण ढग से लिखित अविस्मरणीय घटना होने के कारण साहित्य की एक स्वतत्र विधा है, आधुनिक कालीन साहित्य की यह एक नूतन विधा है, जिसका आगमन अन्य नवीन साहित्यिक विधाओ के अनुसार पश्चिम से हुआ है

३.२ विद्यावाचस्पति का संस्मरण साहित्यः-

हिदी मे सस्मरण विधा के लेखको मे प इन्द्र विद्यावाचस्पति का उल्लेखनीय स्थान है उनके सस्मरण परिमाण एव गुण दोनो दृष्टियो से उच्चकोटि के हैं 'दिल्ली के वे स्मरणीय बीस दिन', 'मैं चिकित्सा के चक्रव्यूह से कैसे निकला', 'मेरे नौकरशाही जेल के अनुभव', 'हमारे कर्मयोगी राष्ट्रपति', आधुनिक भारत मे वक्तृत्व कला की प्रगति', 'मेरे पिता', 'मैं इनका ऋणी हूँ', 'पत्रकारिता के अनुभव' इन आठ कृतियो मे उनके सस्मरण सकलित है श्री विद्यावाचस्पति जी के सस्मरण साहित्य की अपनी विशेषताये हैं

वर्ण्य विषयः- श्री विद्यावाचस्पति के सस्मरणो का वर्ण्य विषय पर्याप्त व्यापक एव विस्तृत है उन्होने पर–सस्मरण और आत्म–सस्मरण दोनो प्रकार के सस्मरणो की रचना की है उनके अधिकाश सस्मरण अनेक राजनीतिक, धार्मिक व साहित्यिक जननायको से सबधित हैं सस्मरणो के वर्ण्य–विषय का वैविध्य एव सस्स्मरण–नायको का विस्तृत जीवन–परिधि से चयन लेखक की विद्वत्ता का परिचायक है

प्रसिद्ध व्यक्ति के जीवन से सबद्ध होने से सस्मरण मे प्रभविष्णुता आ जाती है श्री विद्यावाचस्पति ने ऐसे व्यक्तियो के सबध मे सस्मरणो की रचना की है, जो किसी न किसी क्षेत्र मे महान् हैं, जिनका व्यक्तित्व किसी न किसी दृष्टि से विशिष्ट है कुछ भाग्यशाली महानुभाव ही इतनी कीर्ति अर्जित कर लेते हैं, जिनके नामो का उल्लेख इतिहास मे हो पाता है, पर अधिकाश लोग ही ऐसे होते है, जो असाधारण होते हुये भी उपेक्षित रहते है जिन्हे प्रसिद्धि प्राप्त नही होती और अपने भौतिक अस्तित्व के साथ ही उनका नाम भी विस्मृति के गहन गर्त मे विलीन हो जाता है श्री विद्यावाचस्पति ने ऐसे अप्रसिद्ध किन्तु अपनी विशिष्टताओ के कारण असाधारण व्यक्तियो के सबध मे अपने सस्मरणो की रचना की है श्री विद्यावाचस्पति ने अपने जेल जीवन और पत्रकारिता के काल मे सपर्क मे आने वाले व्यक्तियो के अतिरिक्त उन व्यक्तियो के भी सस्मरण शब्दाकित किये, जिनमे भलाई–बुराई, साहस और विनय, चतुराई और अदूरदर्शिता का अद्भुत मिश्रण[1] पाया गया खासकर उन लोगो को याद करके श्री विद्यावाचस्पति भावविह्वल हो जाते हैं, जो अनेक प्रलोभनो के होते हुए भी स्वाधीनता के पथिक बनने के बाद तिलमात्र भी नहीं डगमगाये उन्होने उस आग को प्रज्वलित रखा जो अत मे अग्रेजो को देश से निकालने मे सफल हुई श्री विद्यावाचस्पति ने अपनी पैनी दृष्टि से इन सभी व्यक्तियो की प्रतिभा एव महत्व को देखा और भावपूर्ण ढग से अकित किया दैनिक 'अर्जुन' के प्रकाशक श्री विद्यावाचस्पति पर जब मिथ्या अभियोग चलाया गया, तो उनकी ओर से सफाई देने का काम उनके मामा पजाब के प्रसिद्ध बैरिस्टर, फौजदारी वकील श्री रायजादा भगतराम जी ने किया था दिल्ली मे कई प्रसिद्ध खूनी मुकदमो के लिये वह आ चुके थे, जिससे उनकी ख्याति चरम सीमा तक पहुँच चुकी थी श्री विद्यावाचस्पति अपने मामा भगतराम के बारे मे लिखते हैं,– "मामा जी के बारे मे यह मशहूर था कि वह अभियुक्तो को फॉसी के तख्ते पर से छुडा लाने मे भी बहुत सिद्धहस्त थे रिवायत थी कि जब कोई आदमी गडासा लेकर दूसरे को मारने के

लिये घर से निकलता और उसे दूसरा आदमी यह कहकर रोकता कि 'अरे कत्ल करेगा तो फॉसी पर चढेगा' तो वह उत्तर देता था कि– 'अभी भगतराम जिदा है कोई डर नहीं '[७] डाके के अभियुक्त का वर्णन करते हुए उन्होने रहस्योद्घाटन किया है कि डाकू एक ही रात मे चार स्थान पर इसलिये डाका डालते है कि अदालत मे दो घटना स्थलो के गवाह जब एक ही समय बताते हैं, तो डाकू छूट जाते है, 'क्योकि एक आदमी एक ही समय मे दो जगह डाका कैसे डाल सकता है '[८] फिरोजपुर जेल के सुपरिन्टेडेट रायसाहब के विषय मे विद्यावाचस्पति जी लिखते हैं,–'(रायसाहब) तबियत के सादे, प्रबध मे दब्बू और विद्याव्यसनी थे, मुझे पुस्तके प्राप्त करने मे इनके निजी पुस्तकालय से बहुत सहायता मिली जब जेल देखने के लिये आते, कोई न कोई बढिया किताब साथ ले आते सज्जनता का यह हाल था कि शायद ही कभी किसी को कठोर दड देते हो '[९] फिरोजपुर जेल के अकडबाज पारसी सिविल सर्जन के बारे मे श्री विद्यावाचस्पति कहते हैं, ' उनकी विशेषताये केवल उनकी व्यक्तिगत विशेषताये नहीं थीं, वह उस युग के अग्रेजी हुकूमत के कलपुर्जो की सामान्य विशेषताये थीं' वह श्री विद्यावाचस्पति के तबादले पर तो खुश था, पर रिहाई पर नहीं इस सदर्भ मे श्री विद्यावाचस्पति लिखते हैं, 'इस नौकरशाही के पुराने घाघ को मुझसे इतना विरोध क्यो था, इस प्रश्न का उत्तर मे नहीं दे सकता' पर एक सज्जन के अनुसार 'आपको रिहा होना ही था, तो कम से कम पाच सौ की थैली मेम साहब के पास पहुँचा देनी थी, अगर आपकी तरह सब कैदी फोकट मे रिहा हो जाया करे, तो बेचारे ऊँचे अधिकारियो का काम कैसे चले '[१०] राजनीतिक देशभक्त बदियो को अधिकतम सुविधाये देने के लिये सदैव तत्पर रहने वाले प बधवाराम जेलर की साहसिकता का वर्णन करते हुए श्री विद्यावाचस्पति लिखते हैं,– ''जब एक दिन सायकाल के समय मुलाकात के पश्चात् मेरे परिवार को घर वापस जाने के लिए तागा न मिला, तो उन्होने अपनी विक्टोरिया गाडी जुतवाकर उसमे परिवार को भेज दिया हम लोगो के कहने पर एक बार हमारे घर से ग्रामोफोन भी मगवा दिया था हम स्वयं आश्चर्य किया करते थे कि एक भारतीय जेल का दरोगा इतना साहस कैसे कर सकता है ''[११] अपने चिकित्सक व दिल्ली जेल जीवन के साथी डॉ असारी के सदर्भ मे श्री विद्यावाचस्पति कहते हैं, 'अधिक समीप रहने से मनुष्यो मे एक–दूसरे के लिये तिरस्कार का भाव पैदा हो जाता है इसी कारण जेल के सहवास को मनुष्य के आदर–सत्कार की कसौटी कह सकते हैं जेल के सहवास मे मैने बडे–बडे बुतो को टूटते देखा है जिन्हे जेल के बाहर देवता समझकर पूजा जाता था, जेल के सहवास ने उनके चरित्र का ऐसा गदा रूप प्रकट किया कि स्वयसेवक तक उन्हे तुच्छ और पतित समझने लगे परन्तु डॉ असारी के चरित्र का सबसे बडा गुण यह था कि जितना ही उनके समीप जाओ, उनके प्रति आदरभाव उतना ही बढता था उनकी देश–भक्ति कुदन की तरह खरी थी और उनकी सज्जनता हीरे की तरह उज्ज्वल और ठोस थी '[१२] मुलतान जेल के साथी मौलाना आरिफ के सबध मे वे लिखते हैं, 'मौलाना आरिफ उन इने–गिने मुसलमान राष्ट्रभक्तो मे से थे, जो परीक्षा मे कभी अनुत्तीर्ण नहीं हुये देश के हर प्रकार के कार्य मे वह हमेशा सिपाहियो की अगली पक्ति मे दिखाई देते थे यूँ शरीर से बहुत ही दुबले–पतले थे देखने से मालूम होता था कि किसी ने बास के ढॉचे पर खद्दर मढ दिया हो, वह शायर भी थे एक बडा उगालदान और मसनद जेल मे भी उनके साथ रहते थे पान के तो वह दीवाने थे, जागते हुए शायद ही कोई क्षण ऐसा हो, जब पान उनके मुँह मे न रहता हो, यहाँ तक कि बात करते हुए उनके मुँह मे पान का भरा रहना आवश्यक–सा हो गया था वह कई बरस तक दिल्ली की जिला कॉग्रेस कमेटी के अध्यक्ष रहे उन्हे जेलवाले नवाब साहब कहा करते थे ' मौलाना आरिफ हसवी का पानदान और उगालदान ड्योढी मे ही रख लेने पर जो उनकी दयनीय स्थिति बन गई उसका वर्णन करते हुये भी श्री विद्यावाचस्पति कहते हैं, 'जब मैं मौलाना से मिला तो उनकी गाले पिचककर आपस मे मिल गई मालूम होती थीं, और बोलने की शक्ति लगभग जाती रही थीं, क्योकि सात दिन से पान नहीं

मिले थे मौलाना दीवारो से चूना खुरच–खुरचकर अपनी जबान के व्यसन को पूरा करा रहे थे उनकी यह दशा देखकर हम लोगो को ऑखो मे ऑसू आ गए"[13]

इस प्रकार श्री विद्यावाचस्पति ने अधिकतर प्रसिद्धि प्राप्त स्वतत्रता सग्राम कालीन राष्ट्रनायको व समाज सेवियो के सस्मरण लिखे हैं, पर उनके जेल–जीवन और पत्रकार जीवन से सबद्ध आत्म–सस्मरणो मे अप्रसिद्ध किन्तु अपनी असाधारण विशिष्टताओ के कारण असामान्य प्रतीत होने वाले व्यक्तियो के सबध मे भी आपने सस्मरणो की रचना की है श्री विद्यावाचस्पति के वर्ण्य–विषय मे सरसता, स्पष्टता, सक्षिप्तता, सरलता, रोचकता आदि गुण प्राप्त होते हैं श्री विद्यावाचस्पति के अधिकाश सस्मरण सक्षिप्त हैं इसी सक्षिप्तता के कारण उनमे पाठको पर अमिट प्रभाव डालने की क्षमता है ये सस्मरण 'नावक के तीर' के समान मार्मिक और प्रभावशाली हैं उनके कुछ सस्मरण अपेक्षाकृत दीर्घ होने के बावजूद भी उनकी सहृदयता, आत्मीयता, शैली की चारुता, विषय सबद्धता एव स्पष्टता के कारण उनमे सरसता का सचार हो गया है, इसी कारण वे हृदयस्पर्शी भी हैं वर्ण्य–विषय की स्पष्टता श्री विद्यावाचस्पति के सस्मरणो की महती विशिष्टता है लेखक ने पूरी प्रमाणिकता से वर्ण्य विषय का वर्णन किया है अपने सस्मरण–नायको से विद्यावाचस्पति का घनिष्ठ सबध है इसी कारण वे उनके चरित्र से सबधित वर्ण्य घटनाओ, स्थितियो एव मनोदशाओ के चित्रण मे न्याय कर पाये हैं

३.३ संस्मर्ण्य का चरित्रांकनः-

श्री विद्यावाचस्पति ने सस्मरणो मे चरित नायको के व्यक्तित्व एव शील का स्पष्ट, यथार्थ एव मनोहारी वर्णन किया है पात्रो के जीवन की विशिष्ट घटना के वर्णन द्वारा वे उसके पूरे जीवन की झाकी प्रस्तुत कर देते है किसी भी सस्मरण को पढकर पाठक का हृदय उस व्यक्ति की महत्ता एव विशेषता से प्रभवित हो उठता है श्री विद्यावाचस्पति व्यक्तित्व के बाह्यातर रूपो को चित्रित करने मे सिद्धहस्त हैं उनके द्वारा अकित व्यक्तित्व के बाह्य रूप के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है–

टी पी सिन्हा की आकृति, वेशभूषा एव स्वभाव के विषय मे वे लिखते हैं, 'सिर पर लबे एव घुँघराले बाल रखते थे, दिन मे किसी समय एक बार बालो मे कघी कर लेते थे अन्यथा उनमे गर्द, तिनके आदि अनेक पदार्थ उलझे रहते थे, वेश बिहारियो का–सा था खद्दर का लबा कुर्ता, धोती और चप्पल ! मूछे और दाढी भी बढी हुई थीं रूप, रग मे जो कमी थी, वह उनके वाक्‌चातुर्य से पूरी हो जाती थी '[14] इसी प्रकार सरदार भगतसिह के प्रथम परिचय की झॉकी इन पक्तियो मे द्रष्टव्य है, 'एक भव्य सिख नौजवान जिसके दाढी के बाल अभी केवल दीखने लगे थे, आया और अपना अर्जुनसिह नाम बतलाकर उसने पत्र के सपादकीय विभाग मे काम करने की इच्छा प्रकट की नौजवान की ऑखो में कुछ ऐसा आकर्षण था कि कुछ अधिक पूछताछ किये बिना मैंने उसे कार्य पर लगाने की स्वीकृति देते हुए पूछा कि क्या पहले किसी हिंदी पत्र मे काम भी किया है? नौजवान ने उत्तर दिया– 'मैं कानपुर के 'प्रताप' मे बहुत दिनो तक उपसपादक रहा हूँ'[15] 'आधुनिक भारत की वक्तृत्व कला की प्रगति' मे देशभक्त गोपाल कृष्ण गोखले के व्यक्तित्व की झांकी श्री विद्यावाचस्पति ने इस प्रकार दी है, 'मैंने देखा कि एक भव्यमूर्ति मच की ओर आगे बढी मध्यम दर्जे का कद, गोरा भरा हुआ रोबीला चेहरा, गभीर और प्रतिभापूर्ण सुदर ऑखें और विशाल माथा उस मूर्ति की भव्यता को बढा रहे थे, सिरपर दक्षिणी ब्राह्मणो जैसी लाल पगडी, उस चेहरे की शोभा को द्विगुणित कर रही थी बंद गले का कोट और गले में किनारीदार दुपट्टा, गोखले महोदय का सदा साथी था जब इस वेष में वे व्याख्यान वेदी की ओर बढे, तो सारा उत्सव–मडप तालियो की कर्णभेदी ध्वनि से गूँज उठा वक्ता के दाये हाथ मे कुछ कागज थे, जिसमे सभवत व्याख्यान के लिए नोट थे दूसरा हाथ खाली था ! खडे होते ही आपने सभापति को सबोधन करके शातभाव से बोलना आरभ कर दिया

गोखले जी की आवाज मध्यम, मधुर और अत्यत परिमार्जित थी वह दूर तक सुनाई देती थी, पर उसमे चिल्लाहट या बहुत अधिक उतार–चढाव का अभाव था'[१६] अपने पिताजी के सहपाठी और एक पूरी आयु के बाद अकस्मात् पिताजी से मिलने वाले प मोतीलाल नेहरू का बाह्य व्यक्तित्व स्पष्ट करते हुए वे लिखते है, 'पडित जी का सारा सूट (कोट–पैंट आदि) सफेद रेशम के थे सफेद हैट हाथ मे पकडी हुई थी, श्वेत वर्ण चेहरे पर, किनारो पर से ऊपर की ओर मुडी हुई शानदार सफेद मूछे राजपूती चेहरे का स्मरण करा रही थीं गति मे दृढता थी और ऑखो मे तेज था, जिस समय सफेद खद्दर के रूप मे परिष्कृत होकर पडित जी अपनी गभीर गति से कौसिल चेम्बर मे प्रविष्ट होते थे, उस समय सरकारी कुर्सियो पर बैठने वाले अग्रेज महापुरुषो को भी सहमकर खडे हो जाना पडता था''[१७] महात्मा गाधी के शारीरिक गठन का वर्णन करते हुए श्री विद्यावाचस्पति ने अपनी सक्षिप्त–सी टिप्पणी मे कहा है, "महात्मा जी का शरीर बहुत ही सक्षिप्त–सा था उसे शरीर का केवल टोकन कह सकते हैं चेहरे मे भौतिक सुदरता भी नहीं थी कठ स्वर तो स्पष्ट था, परतु ऊँचा या थर्राता हुआ नही था उसमे उतार–चढाव भी बहुत नहीं होते थे भावानुभाव का यह हाल था कि प्राय बैठकर बोलते थे बोलने के समय शरीर को बहुत ही कम हिलाते डुलाते थे केवल एक हाथ उठाने की चेष्टा छोडकर भाषण के समय कोई चेष्टा नही करते थे''[१८] (राष्ट्रपति) राजेद्रप्रसाद के प्रथम–दर्शन का श्री विद्यावाचस्पति के मन पर जो प्रभाव पडा वह हुलिया गाव के किसी किसान का (सा) था, लीडर क्लास के किसी कॉग्रेसी का नहीं गहरा सॉवला रग, लबा छरहरा शरीर, मोटे खद्दर के कपडे, सिर पर पीछे की ओर झुकी हुई खद्दर की टोपी और बडी घनी मूछे'[१९]

चरित्राकन करते समय श्री विद्यावाचस्पति ने अपने चरित्र नायको के केवल बाह्य चित्र ही नहीं दिये, अपितु उनके क्रिया कलाप, स्वभाव एव रुचियो का भी चित्ताकर्षक वर्णन किया है ऐसी अवस्था मे पात्रो के व्यक्तित्व का अत चित्रण भी उनका लक्ष्य रहता है गाधीजी के आतरिक व्यक्तित्व की झाकी श्री विद्यावाचस्पति ने इन सारगर्भित शब्दो मे अकित की है, 'महात्मा जी के शब्दो को ओजस्वी और बलशाली बनाने वाली सबसे प्रमुख जो वस्तु थी, वह यह कि 'उनके राई जितने शब्द के अदर पर्वत जितनी क्रिया अन्तर्हित रहती थीं' दूसरे शब्दो मे '(उनके) एक शब्द की पीठ पर सौ क्रियाओ की गठरी लदी होती थी'[२०] उपन्यास सम्राट् प्रेमचद जी का सरलता–सादगी का विश्लेषण श्री विद्यावाचस्पति ने इन शब्दो मे प्रस्तुत किया है, 'सरलता, बनावट का अभाव और निर्व्याज हँसी, ये प्रेमचद जी के नैसर्गिक गुण थे, जो उनके प्रत्येक व्यवहार से प्रकट हो जाते थे प्रेमचद की वह हँसी उनकी अपनी ही चीज थी, कभी–कभी यह समझना कठिन हो जाता था कि वह क्यो हँसे? कोई बाह्य कारण समझ मे नहीं आता था असल बात यह थी कि उनकी हँसी उनके हृदय की सादगी का प्रत्यक्ष उद्गार हुआ करती थी, वह बच्चो की सी सरल हँसी थी प्रौढो की सी नियमित या पेचीदा हँसी नहीं, उनके मित्र जानते हैं कई अशो मे वह अन्त तक बच्चो की तरह सरल रहे'[२१] पूरे सप्ताह मे भी जो कार्य सपन्न न हो उसे एक ही दिन मे पूर्ण करने वाले तारिणीप्रसाद सिन्हा की कार्यप्रणाली पर प्रकाश डालते हुए श्री विद्यावाचस्पति लिखते हैं, 'नए से नए आदमी को तो दो मिनिट मे दोस्त बना लेते थे दिन भर उसके साथ घूमकर चार–पॉच उसके काम बना देना और पॉच–सात अपने काम निकाल लेना साधारण बात थी, हम लोग उन्हे कहा करते थे आप सचमुच टी पी सिन्हा हैं क्योकि वे घर से कभी नाश्ता लेकर नहीं चलते थे, जिस किसी के यहॉ जाते थे उसी के यहॉ चाय (टी) पीते थे'[२२] श्री विद्यावाचस्पति के अग्रज श्री हरिश्चद्र द्वारा चलाये गये 'विजय' का एक ही दिन में डिक्लेरेशन लाकर टी पी सिन्हा ने श्री विद्यावाचस्पति को आश्चर्यजनक धक्का देते हुये उस पत्र का पुनर्जीवन करने मे सहयोग दिया था

श्री विद्यावाचस्पति के 'सत्यवादी' व 'अर्जुन' पत्र के सपादकीय विभाग मे काम करने वाले

क्रातिकारी सरदार भगतसिह के आतरिक व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए स्वय विद्यावाचस्पति लिखते हैं, 'अर्जुनसिह की हिन्दी तो बहुत अच्छी थी ही, उसके विचार और भी अधिक परिमार्जित थे, जब कभी हिंदू–मुस्लिम समस्या पर बात छिडती वह सदा साप्रदायिकता के विरुद्ध पक्ष लेता अन्य सब विषयो पर भी उसके विचार उदार और निर्भीक होते थे उसकी कई असाधारण बातो मे एक यह भी थी कि वह कभी अपने घर या परिवार के सबध मे चर्चा नहीं करता था यदि कोई पूछताछ करता, तो हसकर टाल देता उसकी दूसरी विशेषता यह थी कि अन्य सब चीजो मे नियमित होता हुआ भी उपस्थितियो मे बहुत अनियमित था बिना पूर्व सूचना दिये एक दो दिन के लिये डुबकी लगा जाना तो साधारण बात थी, कभी–कभी सप्ताह भर तक लापता रहता था पहले तो उसका यह व्यवहार बुरा लगा, परतु कुछ दिनो के बाद सदेह–जनक और फिर रहस्यात्मक प्रतीत होने लगा ऐसा भला आदमी किसी सामान्य कारण से बार–बार अनुपस्थित नहीं हो सकता, यह विचार मन मे आने लगा और हल्की–सी आशका होने लगी कि हो न हो यह नौजवान क्रातिकारियो से सबध रखता है '[२३] प मोतीलाल नेहरू की वक्तृत्व कला और जिंदादिली का विश्लेषण करते हुए श्री विद्यावाचस्पति लिखते है, 'पडित जी का भाषण सारगर्भित और युक्तिपूर्ण होता था, वे सदा श्रोताओ के मस्तिष्क पर प्रभाव डालने का यत्न करते थे एक योग्य वकील को जिस भाषण शैली से काम लेना चाहिये, पडितजी उसके उस्ताद थे अग्रेजी और उर्दू दोनों भाषाओ पर उनका पूर्ण प्रभाव था साथ ही जिदादिली उनका विशेष गुण था बडे से बडे कठिन समय मे वे विनोद कर सकते थे खिलखिलाकर हॅस सकते थे और गभीर से गभीर कठिनाई को हॅसी मे उडा सकते थे उनका यह गुण भाषण के प्रभाव को बढाने मे बहुत ही उपयोगी सिद्ध होता था वे विरोधी की अनर्गल युक्तियो का उत्तर देने मे अधिक परिश्रम नहीं करते थे, प्रत्युत उसे विनोद की चुटकियो मे उडा देते थे '[२४] पडित मदनमोहन मालवीय जी नरम और गरम दल दोनो के साथ सहानुभूति रखते थे, इसकी कारण मीमासा स्पष्ट करते हुए श्री विद्यावाचस्पति लिखते हैं, 'उनका मस्तिष्क शीतल होने के कारण नरम दल के साथ था और हृदय अत्यत भावुक होने के कारण राजनीति और सामाजिक के क्षेत्र मे काम करने वाले उग्र से उग्र दल के साथ था यही कारण है कि प्रत्येक परिवर्तन के आरभ मे वे उससे असहमत होते थे, परतु जब देखते थे कि परिवर्तन से प्रजा का हित होगा और परिवर्तनकारी अपने रास्ते से डिगनेवाले नहीं है, तब वे न केवल उस परिवर्तन को आशीर्वाद दे देते थे, स्वय उसके पथदर्शक भी बन जाते, उस समय उनका मस्तिष्क हृदय का सहायक बन जाता था'[२५]

अपने पिता श्री मशीराम (स्वामी श्रद्धानद) के सदर्भ में श्री विद्यावाचस्पति लिखते हैं, 'पिताजी कोई निश्चय करने के पश्चात् परिस्थितियो की चिता न करते हुए अपने निश्चय को साकार करने मे कटिबद्ध हो जाते थे (वे) अपने निजी जीवन मे और सार्वजनिक जीवन मे इति–कर्तव्यता का निश्चय करते हुए युक्तियो या परिस्थितियो पर कभी विचार नहीं करते थे.[२६] उनका प्रत्येक कदम. अतरात्मा की आवाज पर उठता था और वह अटल होता था.[२७] वे 'श्रद्धा प्रधान भावुक व्यक्ति' थे, 'उन्हे किसी भी परिणाम पर पहुँचने मे और उसके अनुसार बडा कदम उठाने मे देर नहीं लगती थी '[२८] किसी विशेष परिस्थिति के आने पर वे जब कोई नई छलाग मार जाते थे, तो उनके पुराने साथी खाई के इसी ओर मुँह ताकते रह जाते थे, और पीछे रहने के समर्थन मे प्राय पिताजी के कार्यों की आलोचना किया करते थे '[२९] किसी बात का निश्चय हो जाने पर निर्णय लेने मे मुशीराम जी को देरी नहीं लगती थी अलीबधु–मौलाना मुहम्मद अली और शौकत अली की विशेषताओ का उल्लेख करते हुए श्री विद्यावाचस्पति लिखते हैं, उन दोनो की विशेषता यह थी कि उनकी ऑखो मे ऑसू और मुह मे कहकहा दोनो ही सदा तैयार रहते थे कब क्या फूट पड़े, इसका कोई ठिकाना नहीं था, दोनो ही पहले दर्जे के दबग थे'[३०] प जवाहर लाल नेहरू के कॉग्रेस नेता और प्रधानमत्री

बनने की पृष्ठभूमि का वर्णन श्री विद्यावाचस्पति ने बडा ही सुदर किया है वे लिखते हैं, "जैसे प मोतीलाल जी ने अपने पुत्र के प्रभाव से अपने आपको बाईं ओर झुका दिया था वैसे ही महात्मा जी ने कई अवसरो पर अपने को केवल प जवाहरलाल जी के लिहाज से बाई ओर झुकाया इसकी प्रतिक्रिया भी कुछ कम नहीं हुई महात्मा जी के व्यवहार ने जवाहर लाल जी को भी कई अशो मे दक्षिण पार्श्व की ओर झुकाया इस सारी क्रिया–प्रतिक्रियाओ का ही परिणाम है कि जवाहर लाल जी कॉंग्रेस के नेता भी हैं और भारत के प्रधानमत्री भी"[31]

डॉ श्यामाप्रसाद मुखर्जी की वक्तृत्व कला एव व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए श्री विद्यावाचस्पति लिखते है, 'उन्होंने ससद मे विरोधी दल के नेता का स्तर इतना ऊँचा उठा दिया था कि अब वहॉं तक पहुँचना कठिन–सा प्रतीत होता है जब ससद की गोल चार दीवारी मे यह समाचार प्रसिद्ध हो जाता था कि डॉ मुखर्जी बोल रहे हैं, तो राजसभा और लोकसभा के सदस्य जो इधर–उधर घूम रहे या गप–शप कर रहे होते थे, तो भाग–भागकर लोकसभा भवन मे आ बैठते थे यह देखा गया था कि प्रधानमत्री नेहरू, जो लोकसभा भवन मे बहुत कम दिखाई देते हैं, डॉ मुखर्जी के बोलने के समय प्राय अपने आसन पर विराजमान होते थे बोलते समय डॉ मुखर्जी की ऑंखे नेहरू जी की ओर लगी रहती थीं जिस समय डॉ मुखर्जी सरकार की आलोचना मे शब्दो के शर फेकने लगते थे, तब प्राय कॉंग्रेसी सदस्यो के दिल भी दहल जाते थे मुखर्जी की ऑंखो मे जितना तेज था, शब्दो मे भी उतना ही था जब कभी जनता मे यह प्रश्न उठता था कि यदि कभी नेहरूजी ने प्रधानमत्री पद छोडा, तो उनका स्थान कौन लेगा, तब एक यही उत्तर मिलता था– डॉ श्यामाप्रसाद मुखर्जी'[32] इसी प्रकार श्री विद्यावाचस्पति राजेद्रबाबू के व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुये उन्हे 'प्रच्छन्न योगी' कहते हैं और इतिहास से उनकी उपमा ढूँढते हुए उन्हे 'राजा जनक'[33] की उपाधि से विभूषित करते हैं इस तरह स्पष्ट है कि श्री विद्यावाचस्पति ने सस्मरणो मे अपने चरित नायको के अतर्बाह्य व्यक्तित्व के चित्रण मे पर्याप्त कुशलता का परिचय दिया है

यहॉं यह स्पष्ट कर देना भी जरूरी है कि श्री विद्यावाचस्पति ने चरित्राकन मे सतुलित दृष्टिकोण अपनाया है वे सस्मरण नायको के व्यक्तित्व की गरिमा, चरित्र की महत्ता एव शील–उत्कर्ष का दिग्दर्शन अवश्य करना चाहते हैं, पर साथ ही वे गुणो की महिमा के गान के साथ वे चरितनायको के दोषो की ओर भी सकेत करते हैं उनके पात्रो का चरित्र एकागी नहीं हैं, फिर भी श्री विद्यावाचस्पति ने नायको के गुणो की ओर ज्यादा ध्यान आकृष्ट किया है क्योंकि वे चाहते हैं, 'पाठक राष्ट्र के इन सस्मरणीय पुष्पो के गुण रूपी रस के भौंरे ही बने' श्री विद्यावाचस्पति के कुछ आलोचक मित्रो ने जब उनसे यह शिकायत की कि – आपने 'नायको के गुण ही गुण दिखाये हैं, दोष एक भी नहीं,' तब श्री विद्यावाचस्पति का यही उत्तर रहा कि –'सस्मरणो को लिखने का प्रयोजन इन महानुभावो का गुण–दोष विवेचन नहीं, अपितु उनकी उन विशेषताओ का प्रदर्शन करना है, जिनके कारण वे राष्ट्र के लिये उपयोगी सिद्ध हुए और जिनके कारण ही प्रत्येक भारतीय उनका ऋणी है मेरे पिता नामक सस्मरण मे श्री विद्यावाचस्पति ने इसी प्रकार के हृदयोद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा है– "मैंने पिताजी के स्वभाव की जो विशेषताये लिखी हैं, उनके लिए जान–बूझकर विशेषता शब्द का प्रयोग किया है, वह गुण थे या दोष इस विषय में मैंने कोई सम्मति नहीं दी उनके जीवनकाल मे इस विषय मे सब लोग एक मत नहीं हो सके और न कभी हो सकेगे किसी सुदर चित्र, उत्कृष्ट काव्य और महान् पुरूष की विशेषताये गुण हैं या दोष, इस विषय मे एक मत हो भी नहीं सकता यदि ऐसे पदार्थो के गुण–दोष के सबध मे एक मत हो जाय, तो उनकी असाधारणता जाती रहे, तब तो वह साधारण पदार्थ बन जाय,"[34] फिर भी श्री विद्यावाचस्पति इस तथ्य से अच्छी तरह सुपरिचित हैं, 'मनुष्य चाहे बडा हो या छोटा, गुणो और दोषो का पुज है, निर्दोष तो केवल ईश्वर है, परतु जहॉं

मूल रूप से गुण और आनुषगिक रूप मे दोष हो, वहाँ गुणो की प्रधानता होती जाती है और वस्तुत गुण ही भक्ति के मूल स्रोत है जब हम किसी महापुरूष के चरित्र चित्रण करने लगते हैं तब श्वेत और कृष्ण दोनो पहलू सामने आते हैं, परतु जो चित्र बनता है, उसका महाकवि कालिदास ने इन दो पदो मे सुदरता से वर्णन किया है– 'एको हि दोषो गुण सन्निपाते। निमज्जतीन्दो किरणेष्विवाड्क ।।' जैसे पूर्ण चद्रमा की उज्वल किरणो मे काला धब्बा डूबकर विलीन हो जाता है, वैसे ही अनेक गुणो की चमक से दबकर एक दोष भी परोक्ष हो जाता है''[३६] इन सब धारणाओ का समर्थन करने के बावजूद भी अपने सस्मरणो के बारे मे श्री विद्यावाचस्पति कहते हैं ' यदि पाठक सस्मरणो को ध्यान से पढेगे तो उन्हे बीच–बीच मे वर्णनीय नर–चन्द्रमाओ के धब्बो का आभास भी मिल जायेगा [३७] इसी दृष्टिकोण को सामने रखते हुए बडी खोज के बाद दृष्टिगोचर हुए सस्मरण मे वर्णित नर–चद्रमाओ के धब्बो पर भी एक नजर डाली जा रही है

श्री विद्यावाचस्पति ने श्रीमती ऐनीबेसेट की बातो मे 'भारतवासियो के हृदय को प्रभावित न कर पाने की दुर्बलता'[३८] होने तथा बगाल मे गरम दल के प्रमुख नेता श्री विपिनचद्र पाल की वक्तृत्व कला को खडन मे तेज बतलाते हुए भी 'मडन मे ढीला'[३९] बतलाया है प मदनमोहन मालवीय द्वारा 'मस्तिष्क और हृदय का सतुलन न बिठा पाने'[४०] तथा चाहे व्याख्यान वेदी हो या रेलवे स्टेशन 'निर्धारित समय–सारणी की उपेक्षा करने की उनकी वृत्ति'[४१] की ओर भी वे सकेत करते हैं श्री विद्यावाचस्पति ने उन्हे 'दीर्घभाषी' और 'अनथक अनत वक्ता' कहा है, उनके अनुसार मालवीय जी का हृदय 'स्त्रियो से भी अधिक भावुक' है 'विचारो मे वे सनातनी'[४२] हैं और समय पडने पर नीति के रूप मे कुछ समय के लिये व 'असत्य का भी प्रयोग' कर सकते हैं जैसे, वास्तविकता तो यह थी कि एक बार विलब से स्टेशन पर आने के कारण उनकी गाडी छूट गयी, पर वायसराय की स्पेशल ट्रेन आने पर उन्होने उनसे यह कहा कि आपकी स्पेशल ट्रेन के कारण हमारी गाडियाँ रुकी रही, फिर उसी वायसराय की स्पेशल ट्रेन से उन्होने आगे का सफर भी तय किया [४३] श्री विद्यावाचस्पति ने सुवक्ता मे पाये जाने वाले 'भौतिक सौंदर्य और भाव–अनुभाव आदि का महात्मा गाधी जी मे अभाव'[४४] बताया है, और गाधी जी के तथाकथित शिष्य होते हुए भी अली बधुओ को उन्होने सत्य, अहिसा और साप्रदायिकता विरोधी गाधीवादी विचारधारा से अत्यत ही अछूता पाया है श्री विद्यावाचस्पति की दृष्टि मे उनकी वक्तृत्व कला 'मदारी के करतबो सी'[४५] निम्न कोटि की वक्तृत्व कला है मदनमोहन मालवीय जी की तरह प जवाहर लाल नेहरू भी 'दीर्घ भाषी हैं' और वक्तव्य देते समय 'अटकते–तुतलाते'[४६] हैं

श्री विद्यावाचस्पति ने हकीम अजमल खॉ के मुह मे 'सोते–जागते पान'[४७] होने का सकेत किया है, वैसे ही आपने 'आनद भवन' की दीवारो को हिला देने वाले मोतीलाल नेहरू के क्रोध का भी उल्लेख किया है [४८] सस्मरणकार के भ्रातृतुल्य और स्वाधीनता सग्राम के भामाशाह 'शिवप्रसाद गुप्ता, वक्तृत्व और लेखन कला की दृष्टि से अयशस्वी रहे ' गुप्तजी के अत्यधिक मोटापे का वर्णन करते हुए उन्होने लिखा है कि गुप्तजी का मोटापा इतना अधिक था कि तागेवाला उनके चौगुने दाम लेता था शरीर के इस मोटापे के कारण उनकी नाक से नींद के समय इतनी जोर से आवाज होती थी कि वह स्वय कई बार अपनी आवाज से ही चौंककर जाग उठते थे ' गुप्तजी प मदनमोहन मालवीय के निजी सचिव थे और जब कभी वह जाने–अनजाने उनके सामने होते थे, तो मालवीय जी पूरी तरह तिरोहित हो जाते थे [४९] इसी प्रकार श्री विद्यावाचस्पति ने गुप्तजी की तरह महात्मा गाधी के पुत्र देवदास गाधी को भी 'स्वास्थ्य के प्रति लापरवाह'[५०] दर्शाया है महात्मा गाधी सुबह तीन बजे उठते थे, तो देवदास जी सूर्योदय के साथ उनका शरीर भारी होने के कारण बापू के शरीर से बिल्कुल मेल नहीं खाता था ऑखों के नीचे–ऊपर के आवरणो मे भी भारीपन दिखाई देता था [५१]

श्री विद्यावाचस्पति ने अपने कागडी गुरुकुलीय छात्र जीवन के गुरुवर्य काशीनाथ जी के 'सुँघनी सूँघने के व्यसन'[५२] तथा 'जल तो पदार्थ है वह दो गैसो से कैसे बन सकता है'[५३] जैसी गुरुकुलीय सस्कृत अध्यापको की उक्तियो को भी अपनी कृति मे स्थान दिया है गुरुकुल के प्रारभिक विद्यार्थी हरिश्चद्र–इद्र (स्वय लेखक) ने जब अपने आचार्य प्रवर व पिताश्री महात्मा मुशीराम जी से गुरुकुल की शिक्षा से असतुष्टि व्यक्त करते हुए बनारस भेजने का अनुरोध किया, तब उन्होने सरस्वती यात्राओ का आयोजन कर वत्स द्वय व अतिम दो कक्षाओ के विद्यार्थियो की निराशा को किस प्रकार अत्यत ही चतुराई से छिन्न–भिन्न कर दिया था, इसका वर्णन किया है 'मनुष्यो (छात्रो) के मनो को अपने मनोभावो की इच्छानुसार ढालने की प्रवृत्ति इद्र जी के शब्दो मे नेता (आचार्य) की विशेषता हो सकती है,[५४]' पर हमे तो यहाँ चतुराई ही अधिक नजर आती है भौतिक परिसर व वातावरण से दूर, जगलो और पथरीली नदी–नालियो से घिरे गुरुकुल की चार दीवारी मे बद विद्यार्थियो को रेलवे इजन की सचालन प्रणाली, जगलात कॉलेज, ऑब्जरवेटरी सस्थाये, देहरादून और सहस्त्रकुड के दर्शन कराकर आचार्य मुशीराम जी ने बनारस जाकर सस्कृत पडित बनने की मुख्य भावना को तिरोहित कर दिया '

श्री विद्यावाचस्पति का उद्देश्य अपने नायको की विशेषता बतलाना है, गुण या दोष नही पर तटस्थ पाठक या समालोचक इन विशेषताओ मे से गुण और दोष का पृथक्करण कर सकते है राजद्रोहादि आरोपो व सरकारी कोप से गुरुकुल की सुरक्षा के लिए आचार्य द्वारा अग्रेज अधिकारियो को दिये गए निमत्रण को एक प्रकार से तत्कालीन अग्रेज सत्ता की खुशामद भी कहा जा सकता है गुरुकुल मे तत्कालीन अग्रेज अफसर की आवभगत करना, उन्हे आलू–पकौडो के साथ तुलसी की चाय पिलाना, सस्कृत मे उनकी स्तुति मे अभिनदन पत्र पेश करना[५५] और वायसराय के चमडे के जूते उतारकर कपडे के जूते पहनाने की प्रवृत्ति, तत्कालीन गुरुकुलीय खुशामदी प्रवृत्ति की ही तो द्योतक है यह सब खुशामद नहीं, तो और क्या है? श्री विद्यावाचस्पति ने इस सबका स्पष्टीकरण देते हुए कहा है, 'पिताजी गौण मे समझौता करने को सदा उद्यत रहते है, किन्तु मुख्य सिद्धात को आच नहीं आने देते ' इसे सोदाहरण स्पष्ट करते हुए उन्होने लिखा है, 'पिताजी ने अग्रेज सरकार की आर्थिक सहायता लेने तथा गुरुकुल विश्वविद्यालय को चार्टर प्राप्त यूनिवर्सिटी माने जाने के उपहार को अस्वीकार कर दिया था '[५६] यह सब होने के बावजूद भी यह कहा जा सकता है कि गौण स्तर पर भी यदि समझौता या खुशामद न की जाती तो आचार्य प्रवर का व्यक्तित्व और भी अधिक तेजस्वी प्रतीत होता, पर लगता है वे गुरुकुल के माध्यम से भारतीय सस्कृति का पुनर्जागरण कर भारतीयता के प्रहरी तैयार करना चाहते थे इसलिए उन्होने कुछ समय के लिए सुरक्षात्मक नीति के उपाय के रूप मे अग्रेज सरकार के सामने विनम्र होना स्वीकार कर लिया था 'प्रधानाप्रधानयो प्रधाने कार्ये सप्रत्यय '

किसी भी क्षेत्र के कार्यकर्ता मे प्रतिपक्षियो द्वारा ऊल–जलूल किये गए आक्षेपो को हँसी मे टाल देने की प्रवृत्ति होनी चाहिये, पर इस प्रकार की प्रवृत्ति लेखक के भावुक पिताश्री मुशीराम मे नजर नहीं आती और आर्य प्रतिनिधि सभा लाहौर की रात्रि मे सपन्न मीटिंग मे किये गए आरोपो को जब वे सह नहीं पाते हैं, तब सप्ताह भर मे ही उनके सिर–दाढी और मूछ के आधे बाल सफेद हो जाते हैं इसे भी एक प्रकार से सवेदनशील आचार्य मुशीराम की मानसिक दुर्बलता या सघर्ष शक्ति का अभाव कहा जा सकता है सभवत इसीलिये वे कॉग्रेस की कार्यसमिति, हिदू महासभा, शुद्धि सभा आदि से त्यागपत्र देते रहे त्यागपत्र न देते हुए सस्थागत अपप्रवृत्तियो से सघर्ष करना सभवत उन्हे असंभव प्रतीत हुआ, शायद इसीलिये उन्होने गुरुकुल की योजना, सर्वमेघ–यज्ञ व सन्यास, सत्याग्रह–प्रवेश आदि नए–नए रत्न या नये क्षेत्रो को चुना[५७] दृढता के साथ किसी भी क्षेत्र

विशेष मे स्थिर रहकर सघर्ष करने का प्राय उनमे अभाव था अपने पिताजी की इन स्थितियो और तथ्यो को स्पष्ट करते हुए श्री विद्यावाचस्पति लिखते हैं, 'कुछ लोग जो सार्वजनिक जीवन मे प्रवेश करते हुए अपनी अनुभवशीलता को पीछे छोड जाते हैं, वे विरोधी आलोचनाओ से अधिक प्रभावित नहीं होते पिताजी का हृदय इस दृष्टि से बहुत नरम और अनुभवशील था मैने उन्हे कई बार दूसरे का दु ख देखकर ऑसू बहाते देखा है प्राय कोई वृत्तात सुनाते हुए या पढते हुए मार्मिक स्थल के आने पर उनकी ऑखे ऑसुओ से भर जाती है जब कभी वह अपनी आलोचना सुनते, तो कभी–कभी रातो नहीं सो सकते थे, सोचते रहते थे कि ये लोग ऐसे नासमझ क्यो हैं? ऐसे ही अवसरो पर प्राय उन्हे रोग आ घेरता, जो कभी–कभी महीनो तक व्याकुल करता था हम लोग जो उनके बहुत समीप रहते थे, वे हृदय से चाहते थे कि वे इतने अनुभवशील न होते उनका मानसिक दु ख देखकर हम लोगो को बहुत दु ख होता था और वे तो दु खी रहते ही थे' सस्कृत की उक्ति है– 'अति सर्वत्र वर्जयेत् मराठी की कहावत है– 'अति तेथे माती' जहॉ किसी बात मे अति होती हैं वहॉ सर्वनाश होता है प्रो विद्यावाचस्पति के अनुसार पिताजी मे भावुकता का अश बहुत अधिक था उनके भाव चेहरे के चित्रपट पर तत्काल प्रतिबिबित हो जाते थे हृदय की प्रत्येक भावना, ऑख, नाक और होठो पर स्पष्टता से झलकने लगती थी और स्वर भी तदनुसार ही प्रभावित होता था [५८] "जिस व्यक्ति का सारा जीवन विरोधी शक्तियो से सीधी टक्कर लेने मे व्यतीत हुआ",[५९] उनकी इस प्रकार की भावुकता और सवेदनशीलता को देखकर आश्चर्य होता है" भावुकता के अतिरिक्त स्वामी श्रद्धानद की वक्तृत्व कला के अवगुणो की ओर सकेत करते हुए श्री इद्र विद्यावाचस्पति ने लिखा है, 'उनका भाषण अधूरे असगत वाक्यो और विभाव–अनुभाव रहित होता था'[६०]

इस प्रकार स्पष्ट है कि श्री विद्यावाचस्पति ने अपने सस्मरण नायको के केवल गुणात्मक विशेषताओ की ओर ही नही, अपितु त्रुटिपूर्ण विशेषताओ की ओर भी सकेत किया है इस तरह सस्मरण नायको के चरित्राकन मे उन्होने मानवीय गुण–दोष का अत्यत सहृदयता पूर्वक अकन किया है

३.४ संस्मरणकार का व्यक्तित्वः-

सस्मरण मे लेखक के निजी व्यक्तित्व की आभा सर्वत्र छिटकी रहती है वैयक्तिकता को सस्मरण का एक प्रमुख गुण माना जाना चाहिये सस्मरण उन्हीं व्यक्तियो, घटनाओ एव स्थानो के विषय मे होते है, जो लेखक की सवेदना को झकृत कर पाते हैं अत प्रत्येक शब्द प्रत्येक पक्ति सस्मरणकार के सहृदयरस से सिक्त होकर उसकी समस्त सवेदना मे आवृत्त होकर व्यक्त होती है श्री विद्यावाचस्पति के सस्मरण उनके निजी व्यक्तित्व से अनुस्यूत हैं उस स्थिति मे जब कि उन्होने अपने आपको प्रयत्नपूर्वक रगमच की पृष्ठभूमि मे या कलम के पीछे छिपाकर ही रखने का प्रयास किया है[६१] फिर भी पाठक चरितनायक के समानातर लेखक से आत्मीयता का सबध स्थापित कर लेता है श्री विद्यावाचस्पति के सस्मरणो मे उनकी कृतवेदिता एव राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति दर्शनीय है 'बचपन से ही वे वीरता के पुजारी हैं, वीर मूर्ति, वीर शब्द और साहसिक कार्य उन्हे पागल बना देते है'[६२] सस्मरण का ८५ प्रतिशत भाग उन्होने राष्ट्रनायको को ही समर्पित किया है अपने राजनैतिक जीवन मे उन्हे अनेक महापुरुषो के सूक्ष्म निरीक्षण का सौभाग्य मिला जब जीवन मे पहली बार उन्होने कॉग्रेस की व्याख्यान वेदी पर जय–जयकारो के मध्य तिलक महाराज को आते और बैठते देखा तो उनका मन भावुकता की पराकाष्ठा तक पहुॅच गया था यदि सभापति का अथवा लोक–लाज का भय न होता, तो वेअपने स्थान से उठकर अवश्य ही तिलक महाराज के चरण पकड लेते'[६३] प्रो इद्र विद्यावाचस्पति की दृष्टि मे मनोवैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से जेल एक अत्यत उपयुक्त परीक्षण शाला है १९३० के नमक सत्याग्रह मे महात्मा गाधी के सुपुत्र देवदास गाधी और सस्मरणकार कई महीने तक दिल्ली के डिस्ट्रिक्ट जेल मे साथ–साथ रहे थे

"उपन्यासकार जैनेंद्र भी उनके साथ जेल मे थे"

प्रो विद्यावाचस्पति स्वतत्रचेता और दृढनिश्चयी थे स्वामी श्रद्धानद और लाला लाजपतराय से विचार–वैपरीत्य होने पर लालाजी द्वारा समझाये जाने के बावजूद भी इद्रजी अपने इस मत पर दृढ रहे कि राजनीतिक चुनाव मे कॉग्रेस का समर्थन करना प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है सन् १६२६ के कौंसिल चुनावो मे लालाजी और मदनमोहन मालवीय ने हिदू हितो की रक्षा हेतु नेशनलिस्ट पार्टी की योजना बनाकर कॉग्रेस के विरोध मे अपने प्रत्याशी खडे किये थे दिल्ली की ओर से कॉग्रेस ने मिस्टर आसफ अली को खडा किया और राष्ट्रवादी दल ने लाला शिवनारायण को स्वामी श्रद्धानद और 'पितृतुल्य' लाला लाजपतराय जैसे पूज्यपादो के विरोध की परवाह न करते हुए आपने अपनी 'अतरात्मा की आवाज'[६६] के अनुसार कॉग्रेस और मिस्टर आसफ अली का ही डटकर समर्थन किया था इससे प्रो विद्यावाचस्पति के दृढ व्यक्तित्व का पता चलता है यह स्मरण रहे कि प्रो विद्यावाचस्पति लाला जी को 'पिता के समान' मानते थे और लाला लाजपतराय जी के निधन पर उन्हे ऐसा प्रतीत हुआ था 'मानो पिताजी को दूसरी बार शहादत प्राप्त हुई हो'[६७] कभी–कभी जीवन मे लिहाज या भय के कारण चोरी छिपे या गुप्त रूप से व्यक्ति को कुछ कार्य करने पडते हैं श्री विद्यावाचस्पति के विद्यार्थी जीवन मे भी इस प्रकार के क्षण आये जिस समय वे सातवीं कक्षा मे पढते थे तब आर्य प्रतिनिधि सभा मे उनके पिताजी के विरोध मे रुपयो के गबन, कुर्बानी का ढोग, हिसाब की गलती आदि के अनेक आरोप लगाये गये थे पिताजी पर लगाये गये ये तथा इस प्रकार के अन्य कटाक्षपूर्ण आरोप 'हितकारी' नामक अखबार मे छपते थे उसे लेकर हरिश्चद्र–इद्र सहोदर बधु गगा के किनारे किसी घनी झाडी मे जा बैठते थे और उसका पारायण करते थे '[६८] प्रो विद्यावाचस्पति का कवि व्यक्तित्व 'देवदास गाधी' शीर्षक सस्मरण से प्रकट होता है प्रो विद्यावाचस्पति लिखित देशभक्ति का गीत गाधीजी के सत्याग्रह आश्रम मे भी गाया जाता था[६९] उनका राष्ट्रीय व्यक्तित्व महात्मा गाधी, मोतीलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, नेताजी सुभाषचद्र बोस इत्यादि सस्मरणो मे प्रकट हुआ है लगभग पचास वर्ष बाद जब श्री विद्यावाचस्पति अपने जालधर स्थित पैतृक हवेली को शौक से देखने गए, तो उसके बदले हुए रूप को देखकर दिल दु खी हो गया पिताजी ने यह हवेली गुरुकुल को दान में दी थी उसके परिवर्तित रूप को देखकर श्री विद्यावाचस्पति ने जो कुछ अनुभव किया वह उन्हीं के शब्दो मे निम्न प्रकार है –

'पिताजी ने जिस भावना से, बडे प्रेम से बनायी हुई वह कोठी गुरुकुल को दान दी थी, गुरुकुल की स्वामिनी सभा (आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब) उस भावना से उसकी रक्षा न कर सकी यदि सभा उस कोठी की यथार्थ रूप मे रक्षा करती, तो भारत के विभाजन के पश्चात् उसे कार्यालय के लिये दर–दर का भिखारी न बनना पडता उन्हे बना–बनाया खूब शानदार कार्यालय मिल जाता, परतु सभा ने फूल को पत्तो के भाव बेचकर, जहाँ भावना का तिरस्कार कर दिया, वहाँ अपनी भी हानि की, आवश्यकता होने पर उन्हे फूल तो क्या पत्ते भी न मिले'[७०] प्रो विद्यावाचस्पति के इन हृदयोद्‌गारो मे उनका सौम्य आक्रोश व विक्षोभ छिपा हुआ है इसी प्रकार स्वामी श्रद्धानद जी की शहादत के समय इद्र जी ने डॉ असारी और पुलिस को एक साथ ही टेलिफोन किया था डॉ असारी पहले आये और पुलिस बाद मे इस पर प्रो विद्यावाचस्पति ने आक्रोश व्यक्त करते हुए कहा है, 'अनहोनी हो जाने पर शान दिखाना यह हिदुस्तानी पुलिस की विशेषता है'[७१] जिस आत्मीयता से उन्होने हिंदू राष्ट्रनायको का चरित्र चित्रण किया, उसी आत्मीयता से या उससे भी कुछ अधिक आत्मीयता से हकीम अजमल खॉ, डॉ असारी, मौलाना अबुल कलाम आजाद जैसे मुस्लिम राष्ट्रनायको का भी चरित्र चित्रण किया है डॉ असारी उनके ही नहीं उनके पिताजी के भी १६१६ से जीवन के अतिम समय तक विश्वसनीय डॉक्टर थे प्रो विद्यावाचस्पति की लबी बीमारी के समय भी डॉ असारी ही

चिकित्सक रहे यह तो स्पष्ट ही हो चुका है कि मिस्टर आसिफ अली का चुनाव–प्रचार करते समय तो उन्होने अपने पिताजी और पितृतुल्य लालाजी का भी विरोध सहन किया था, जिससे स्पष्ट है कि इद्र जी का व्यक्तित्व और दृष्टिकोण पूर्णत प्रगतिशील, राष्ट्रीय, असाप्रदायिक और मानवतावादी था बिहार के भयकर भूकप के पश्चात् वे अपने सहयोगियो के साथ भूकप पीडित स्थानो पर सेवा कार्य सगठित करने के लिये भी गये थे इस प्रकार श्री विद्यावाचस्पति के सस्मरणो मे उनका व्यक्तित्व भी बीच–बीच मे झॉकता है, जिसके कारण उनके सस्मरण पाठक के लिए सहज ग्राह्य एव विश्वसनीय बन गये है

३.५ परिवेश वर्णनः-

परिस्थिति एव परिवेश के चित्रण द्वारा सस्मरणो मे वास्तविकता एव सजीवता आ जाती है और पाठको पर उनका गहरा प्रभाव पडता है सस्मरण मे वातावरण का चित्रण इसलिए आवश्यक है, क्योकि देश और काल की पृष्ठभूमि के बिना पात्रो एव लेखक का व्यक्तित्व स्पष्ट नही होता देशकाल मे वास्तविकता लाने के लिए स्थानीय ज्ञान भी आवश्यक है श्री विद्यावाचस्पति के सस्मरणो मे देशकाल के सजीव चित्रण है 'मैं इनका ऋणी हूँ,' तथा 'आधुनिक भारत मे वक्तृत्व कला की प्रगति' मे सन् १९०६ (सूरत अधिवेशन) से १९५१ के मध्य के भारतीय स्वतत्रता सघर्ष व गणतत्र के उदय तक का परिवेश चित्रित है भारतीय ग्राम्य जीवन की भीषण दरिद्रता[७२] अग्रेजो का दमन चक्र[७३], जलियॉवाला हत्याकाड,[७४] स्वतत्रता के लिये जनता की आतरिक तडप आदि का वर्णन प्रो विद्यावास्पति की सस्मरणात्मक रचनाओ के प्रत्येक पृष्ठ पर देखा जा सकता है १९२७ से लेकर १९३२ तक की भारतीय जेलो का यथार्थ वर्णन[७५] भी उनके सस्मरणो मे अकित है इसी प्रकार बिहार राज्य मे सन् १९३४ मे आये भूकप का वर्णन प्रो विद्यावाचस्पति ने साकेतिक किन्तु प्रभावशाली ढग से किया है भयानक भूकप ने बिहार का अग–भग कर दिया था, घायल बिहार की आह सुनकर देश के कोने–कोने से सेवक लोग पटना पहुँच रहे थे 'कर्मयोगी राष्ट्रपति' सस्मरण मे इस भूकप की अनुगूँज और भूकप पीडित राहत कार्य का वर्णन है[७६] आर्यसमाजी पिता के पुत्र होने के कारण सन् १८९६ से १९२६ तक का आर्यसमाज का परिवेश उनके सस्मरणो मे विद्यमान है गुरुकुल कागडी के यशस्वी सस्थापक के सुपुत्र होने के कारण सन् १९०२ से १९१७ तक की गुरुकुलीय वातावरण की झॉकी भी उनके सस्मरणो मे विद्यमान है, जिसमे 'गुरुकुल कागडी के प्रारभिक विकास से सबद्ध लबे समुद्र मथन का अत्यत रोचकता के साथ वर्णन किया गया है'[७७] महान् पिता के पुत्र तथा देशभक्त राष्ट्रीय पत्रकार होने के कारण कॉग्रेस के १९०६ से १९५१ तक की राजनैतिक गतिविधियो का परिवेश भी प्रो विद्यावाचस्पति की सस्मरणात्मक कृतियो मे विद्यमान है १९१६ से १९३६ तक के कॉग्रेस के सभी अधिवेशनो मे वे सम्मिलित हुए थे

काल वर्णन के साथ–साथ प्रो विद्यावाचस्पति के सस्मरणो मे 'देश' वर्णन की विशिष्टता भी विद्यमान है डॉ शाति खन्ना के अनुसार– 'कहीं–कहीं सस्मरणो मे हम किसी स्थान विशेष या नगर का वर्णन देखते हैं ऐसे सस्मरण तभी सफल हो सकते हैं, यदि लेखक ने उस स्थान या नगर को देखा हो'[७८] श्री विद्यावाचस्पति के सस्मरणो मे ऐसे अनेक स्थलो का रोचक वर्णन मिलता है उनके 'सरदार वल्लभभाई पटेल' सस्मरण से पता चलता है कि दिल्ली के आस–पास जाटो के इलाके मे मोर का शिकार नहीं हो सकता हरियाणे के बहुत से प्रदेशो मे मोर बेफिक्री से नाच सकते है और मौरवी मे भी मोर इसी प्रकार निर्भय होकर विचरते हैं[७९]

श्री आसिफ अली के पूर्वज दो पीढी पहले नगीने से आकर दिल्ली मे बसे थे बस इसी आधार पर श्री विद्यावाचस्पति लिखते है, "उत्तर प्रदेश की सस्कृति पर दिल्ली के तमद्दुन की कलम लगी हुई थी उनमे दिल्ली की पुरानी सस्कृति और बिल्कुल नई सस्कृति का ऐसा सुंदर

मेल था कि यदि हम उन्हे दिल्ली के व्यतीत काल को वर्तमान से जोडने वाली सुनहली शृखला कहे तो अनुचित न होगा उनके लिये गालिब और तुलसी मे कोई भेद न था समय आने पर वह गालिब और तुलसी दोनो के उद्धरण देते थे"[८०] दिल्ली की एक और विशेषता का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं, "प्रतिष्ठित नामो के पीछे 'साहब' शब्द का प्रयोग दिल्ली की उस समय की सस्कृति का आवश्यक अग था"[८१] मौलाना अबुल कलाम आजाद सस्मरण मे श्री विद्यावाचस्पति ने अपरोक्ष रूप से महाराष्ट्र को अडियल और हठीला कहा है, "डॉ खरे बहुत अडने वाले व्यक्ति थे एक तो महाराष्ट्र के निवासी, फिर स्वभाव से हठीले"[८२]

सन् १६२४ मे हुए साप्रदायिक दगो का विवरण देने के बाद दिल्ली की प्रभावोत्पादिका शक्ति का वर्णन करते हुए प्रो विद्यावाचस्पति लिखते है, 'दिल्ली भारत का हृदय है कलकत्ता और बबई आकार मे बडे है, उसमे ऐश्वर्य और शिक्षा की बहुतायत है यह सब कुछ होते हुए भी यह मानना पडेगा कि दिल्ली देश की अनुभव शक्ति का केद्र है उसके हर्ष और शोक का असर देश पर तुरत और व्यापी होता है जब दिल्ली मे एकता का झोका उठा तब देश भर मे सुखकारी पवन बहने लगा और जब दिल्ली मे साप्रदायिक झगडे का उत्पात मचा, तो भारत प्रकपित हो उठा'[८३] अपने 'दिल्ली के वे स्मरणीय बीस दिन' सस्मरण मे उन्होने महाभारत काल से लेकर अग्रेजो के काल तक का दिल्ली के उत्थान--पतन का इतिहास बताते हुए इस नगरी की उस मिट्टी की विशेषता की ओर सकेत किया है, जो नये--नये शासको को अपनी ओर आकृष्ट करती है[८४] "बेरिस्टर विनायकराव विद्यालकार' सस्मरण मे अपने सहाध्यायी व हैदराबाद राज्य के कॅबिनेट मत्री बने श्री राव जी की सादगी और सहज अनौपचारिक स्वभाव पर प्रकाश डालते हुए श्री विद्यावाचस्पति जी ने अप्रत्यक्ष रूप से दिल्ली के अभिनव मत्री महोदयो के परिवर्तित होते हुए परिवेश और स्वभाव का निम्न प्रकार से बडा ही हृदयस्पर्शी और मनोरम चित्रण किया है

"मुझे गत आठ वर्षो मे दर्जनो मत्री महोदयो के बगलो पर जाने का अवसर मिला होगा, दिल्ली के मत्री गण, राज्यमत्रियो और उपमत्रियो के रहन--सहन और रग--ढग को तो दिन--रात ही देखता हू श्री विनायकराव के बगले पर जाकर मैंने अन्य मत्रियो से जो भेद पाया, उसने मेरे मन पर बहुत प्रभाव डाला प्राय देखा जाता है कि मत्री अथवा उपमत्री पदारूढ होते ही पहला काम यह करते है कि बढिया खद्दर के अथवा खद्दर भडार के रेशम के कुछ सूट बनने के लिये दे देते हैं, ताकि सप्ताह दो सप्ताह मे वे स्टैण्डर्ड मिनिस्टिर बन सके श्री विनायक राव के वेश मे मैंने कोई परिवर्तन नहीं पाया वे लगभग उसी वेश मे रहते थे, जिसमे मत्री बनने से पहले रहा करते थे मत्री--पद पर आरूढ होने के पश्चात् पहली चिता यह होती है कि निवास स्थान पर दो--चार फालतू टेलीफोन लगाये जाये एक टेलीफोन तो सभी के यहाँ होता है मत्री महोदय के यहाँ भी एक ही टेलीफोन हो, तो फिर भेद ही क्या रहा? प्राय देखा जाता है कि मत्रियो के दफ्तर मे, शयनागार मे, वेटिग रूम, और पी ए के कमरे मे, अलग--अलग टेलीफोन लगाये जाते हैं कभी--कभी एक ही मेज पर दो--दो टेलीफोन भी धरे रहते हैं सुनते हैं कि इतने टेलीफोन भी काफी नहीं समझे जाते और प्राय अधिक माग बनी रहती है मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ तथा प्रसन्नता भी हुई कि हैदराबाद राज्य के वित्तमत्री के बगले मे केवल एक ही टेलीफोन था, और उसके पास कोई पी ए साहब भी विराजमान नहीं थे पूछने पर श्री विनायकराव ने कहा, "मुझे घर पर पी ए की कोई आवश्यकता मालूम नहीं होती, वह दफ्तर मे ही बैठता है टेलीफोन सुनने के लिये चपरासी ही काफी है आवश्यकता होने पर वह मुझे बुला लेता है" हमारे कुछ मत्रियो तथा उपमत्रियो को अपने बगले के अदर शरीर रक्षा के लिये गन--मैनो की जरूरत होने लगी है कभी--कभी तो बगले पर गारद पड जाते हैं श्री विनायक राव के बगले पर मैंने कोई गन--मैन नही देखा अपने जीवन की

ममता तो श्री विनायकराव को भी होगी ही, परन्तु प्रतीत होता है कि उनके मन मे किसी से भय की आशका नही थी वह शहर मे प्राय खुले घूमते थे लोग कहते थे कि वह अब भी वैसे ही नि शक भाव से सबसे मिलते है, जैसे मत्री बनने से पहले मिला करते थे''[८५]

'पजाब भारत वर्ष का बारूद घर है'– एक अग्रेज लेखक के इस कथन से सहमत होते हुए प्रो विद्यावाचस्पति कहते है, 'पजाब मे समस्याये पैदा होती हैं, जिन्हे भारतवर्ष सुलझाता रहता है'[८६] पजाब के ही मालवा और माझा नामक अचल के सदर्भ मे उन्होने कहा है, ''यह प्रदेश अपने शारीरिक बल और जोश के लिए प्रसिद्ध है पजाब का पुराना राष्ट्रगीत' 'पगडी सभाल ओ जट्टा' की अतरा का– 'माझे दे जोर नाल, मालवे दे शोर नाल, कदी नइयो हारना'– पद इन्हीं दो प्रदेशो पर अभिमान प्रकट करता था ''फिरोजपुर पजाब के उक्त जोरदार प्रदेश का ही हिस्सा है 'सारे भारत भर से अग्रेजी सरकार जितने सिपाहियो की भरती करती थी, उसका लगभग आधा हिस्सा पजाब से लिया जाता था और उसमे भी कम से कम एक चौथाई हिस्सा उस इलाके से भरती होता है, जिसका केद्र फिरोजपुर है फिरोजपुर का इलाका सिपाहियो (और डाकुओ) का इलाका है वहाँ लबे–चौडे और सुलभ अन्न–दूध से पले हुए किसान धूम–धाम से जीना और बेफिक्री से मरना जानते हैं गुरु गोविद सिह ने चिडियो से बाज को परास्त किया था और अग्रेजी सरकार ने जिनके भरोसे पर दुनिया को ललकारने की हिम्मत रखी थी उन सिपाहियो को जन्म देने वाली भूमि इन्हीं इलाको मे है''[८७] अपनी राष्ट्रीय वृत्ति के फलस्वरूप श्री विद्यावाचस्पति को फिरोजपुर की जेल मे रहने का सौभाग्य मिला और इसी जेल ने उन्हे 'वस्तुत जीवित मनुष्यो को देखने का अवसर दिया ' वहाँ उनके इतिहास सुने और विचारो का जो अध्ययन किया वह उनके लिए 'सैकडो पुस्तको से अधिक ज्ञानवर्धक अनुभव था' इस प्रकार प्रो विद्यावाचस्पति ने गुरुकुल कागडी, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, मौरवी–गुजरात, दिल्ली, फिरोजपुर–पजाब, महाराष्ट्र आदि स्थानो की विशेषताओ का रोचकता के साथ वर्णन किया है निष्कर्ष यह है कि श्री विद्यावाचस्पति ने सस्मरणो मे अत्यत सजगता के साथ परिवेश तथा देश–काल परिस्थिति का चित्रण किया है, जिससे उनके सस्मरण यथार्थ, सजीव एव प्रभावशाली बन गये है

३.६ विचारधारा एवं उद्‌देश्यः-

सस्मरणकार यद्यपि स्वान्त सुखाय रचना करता है, तथापि वह अपने अनुभवो एव विचारो को दूसरो तक पहुँचाकर आत्मसतोष अनुभव करता है, पर लेखक की यह विचारधारा प्रकरणानुसार एव सबद्ध होनी आवश्यक है प्रो विद्यावाचस्पति ने भी अपने सस्मरणो मे अपनी मान्यताओ और रूचियो को यत्र–तत्र प्रकट किया है 'दिल्ली के वे स्मरणीय बीस दिन' से लेखक के इतिहास विषयक ज्ञान का परिचय मिलता है,[८८] तो 'मेरे नौकरशाही जेल के अनुभव' से अग्रेजो की आतक और अन्यायपूर्ण प्रशासकीय नीति का यथार्थ रूप पाठको के सामने उजागर होता है, तथा 'मैं चिकित्सा के चक्रव्यूह से कैसे निकला' सस्मरण से लेखक के एलोपॅथी, आयुर्वेदिक व होम्योपैथी चिकित्सा सबधी विचारो का पता चलता है 'उस जीवन के सुख–दु ख' सस्मरण से लेखक के पर्वतारोहण, तैराकी व क्रिकेट विषयक ज्ञान का परिचय मिलता है[८९] 'महापुरुष' सस्मरण मे उन्होने अग्रेजी भाषा विषयक पाश्चात्य मानसिकता पर तीव्र प्रहार किया है प्रकरातर से इससे उनकी राष्ट्रभाषा विषयक आस्था का सकेत मिलता है[९०] 'शैशव' सस्मरण मे पुराने कागजो, कापियों और फाइलों को सम्भालकर रखने की लेखकीय प्रवृत्ति का परिचय मिलता है[९१] इससे लेखक की पुरातत्वीय अभिरूचि का भी आभास मिलता है इसी प्रकार 'पत्रकारिता के अनुभव' से लेखक के पत्रकारिता विषयक दृष्टिकोण का ज्ञान प्राप्त होता है[९२] धार्मिक शिक्षा–दीक्षा होने के बावजूद भी लेखक की राजनीतिक जीवन मे आस्था है प्रो विद्यावाचस्पति ने धार्मिक नेता के रूप मे आर्यसमाज के सस्थापक स्वामी दयानद में आस्था व्यक्त

की है तो राजनैतिक नेता के रूप मे लोकमान्य तिलक मे आस्था अभिव्यक्त की है उनका धार्मिक दृष्टि से वेद मतानुयायी आर्यसमाजी होना मानवतावादी दृष्टिकोण का घातक नहीं, अपितु पूरक है,इसलिये भी वे हकीम अजमल खॉ, डॉ असारी, मौलाना अबुल कलाम आजाद और मिस्टर आसफ अली के सबध मे उत्कृष्ट सस्मरण लिख पाये हैं, जिससे उन्होने यह भी सूचित किया है कि वेद व आर्यसमाज से प्राप्त वैचारिक दृष्टि हर प्रकार की सकीर्णता से मुक्त होती है इससे लेखक के सप्रदाय निरपेक्ष आदर्श व्यक्तित्व का परिचय मिलता है

सक्षेप मे अभिप्राय यह है कि प्रो विद्यावाचस्पति के सस्मरणो मे उनके विचारो की अनेकत्र स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है, जिससे उनके सस्मरण प्रेरणाप्रद होने के साथ–साथ स्वान्त सुखाय भी हैं श्री विद्यावाचस्पति के अनुसार लोक कल्याण के उद्देश्य या सदेश से हीन साहित्य महान् नहीं हो सकता

३.७ भाषा शैली:-

प्रो विद्यावाचस्पति जी के सस्मरणो की शैली प्रभावोत्पादक तथा सुसगठित है, वह आत्मीयता एव सक्षिप्तता के गुणो से युक्त है, और उनके द्वारा किया गया विविध शैलियो का प्रयोग प्रशसनीय है उनके सस्मरणो मे मुख्य रूप से छ शैलियो का प्रयोग मिलता है– १ निबधात्मक, २ आत्मकथात्मक, ३ भावात्मक, ४ व्यग्यात्मक, ५ चित्रात्मक और ६ दार्शनिक

१. निबंधात्मक शैली- इस शैली मे सस्मरण लेखक निबधकार के पर्याप्त समीप होता है 'हिदी साहित्य कोश' मे इस विषय मे लिखा है, "सस्मरण लेखक जो स्वय देखता है, जिसका वह स्वय अनुभव करता है, उसीका वर्णन करता है उसके वर्णन मे उसकी अपनी अनुभूतियॉ सवेदनाएँ भी रहती हैं इस दृष्टि से वह शैली मे निबधकार के समीप है"[६३] इस प्रकार सस्मरण लेखक की प्रमुख शैली निबधात्मक शैली मानी जा सकती है प्रो विद्यावाचस्पति ने अपने सस्मरणो मे इस शैली का प्रयोग किया है वे निबधकार की भाति किसी विषय पर अपनी विचाराभिव्यक्ति अथवा घटना एव स्थल का वर्णन प्राय इसी शैली मे करते हैं निबधात्मक शैली मे लिखे गए अनेक सस्मरणो मे गतिशीलता एव प्रवाह तथा ह्रदय को प्रभावित करने का सामर्थ्य भी है एक उदाहरण देखिये –

दिल्ली भारत की ५ हजार वर्ष पुरानी राजधानी है अर्जुन ने खाडव वन नाम के बीहड जगल को जलाकर इद्रप्रस्थ पुरी के लिए स्थान खाली किया था और महाराज युधिष्ठिर की आज्ञा से चतुर शिल्पी मय ने इद्रप्रस्थ के दुर्ग का निर्माण किया था, तब से अब तक दिल्ली के सिर पर किसी न किसी रूप मे भारत का ताज रहा है इस बीच मे यहॉ कई जातियॉ बबडर की तरह आई, और बबडर की तरह चली गई सैकडो राजवश विजेता बनकर सिहासनारूढ हुए और यहॉ मिट्टी मे अपनी हड्डियो को छोडकर नाम शेष रह गए बहुत से शासको ने इसे बनाया, बढाया और अनेक लुटेरे विजेताओ ने भी इसे जी खोलकर लूटा यहॉ के निवासियो का कत्लेआम किया, और अपनी समझ मे इसे बिल्कुल खोखला करके घर को वापिस चले गए, परतु न जाने इस नगरी की मिट्टी मे क्या विशेषता है कि नये शासको ने फिर इसी को अपना महल बनाकर मरघट बनाना उचित समझा."[६४]

निबधात्मक शैली के अतर्गत प्रो विद्यावाचस्पति के कुछ सस्मरणो मे विवरणात्मक निबधो की शैली द्रष्टव्य है– एक उदाहरण प्रस्तुत है, "जब चार अप्रैल के दिन दोपहर बाद की नमाज के पीछे जामा मस्जिद मे मुसलमानो का एक विशाल जलसा हो रहा था और उसमे मौलाना अब्दुल्ला चूडीवाले ने आवाज देकर कहा, 'स्वामी श्रद्धानद जी की तकरीर होनी चाहिये, तो 'नारा–ए–तकबीर' से मस्जिद गूँज उठी दो–तीन जोशीले नौजवान उठे और तागे पर जाकर नये बाजार से स्वामीजी को लिवा लाये 'अल्ला–हो–अकबर' के नारो के साथ स्वामीजी मस्जिद की

वेदी पर आरूढ हुए शायद यह भारत के ही नहीं, इस्लाम के इतिहास मे पहला अवसर था कि एक मुसलमानेतर व्यक्ति ने जुम्मा मस्जिद की वेदी पर वे वाज किया. स्वामीजी ने ऋग्वेद के एक मत्र से अपना व्याख्यान आरभ किया और 'ओ३म् शान्ति शान्ति शान्ति' के साथ समाप्त किया "[५५] हमारे कर्मयोगी राष्ट्रपति के अधिकाश सस्मरण निबधात्मक शैली मे ही लिखे गये हैं कई सस्मरणो मे इस शैली की इतनी अधिकता है कि वे सस्मरण की अपेक्षा सस्मरणात्मक निबध अधिक प्रतीत होने लगते हैं जैसे 'आधुनिक भारत मे वक्तृत्व कला की प्रगति' सग्रह के 'कॉग्रेस मे गाधी युग', 'गाधी युग के वक्ता', 'त्रिमूर्ति', 'द्विमूर्ति', 'गणतन्त्र मे' आदि सस्मरणो मे इस निबधात्मक शैली का सुदर प्रयोग मिलता है

२. आत्मकथात्मक शैली- इस शैली के सस्मरण उत्तम पुरुष के रूप मे लिखे जाते है आत्म–सस्मरणो मे इस शैली का प्रयोग होता है सस्मरणो मे भी इस शैली का प्रयोग सहज सभव है बचपन से ही सहयात्री बनी अपनी विविध व्याधियो के विषय मे प्रो विद्यावाचस्पति 'आत्मकथात्मक' शैली मे लिखेते है, "वस्तुत मैं खासी का आजन्म रोगी हूँ, जब से मैने होश सभाला, तभी से मैं खॉसी का मरीज समझा जाता हूँ, दो साल की आयु मे बाये फेफडे का निमोनिया, ४ साल की आयु मे डबल निमोनिया, १६ साल की आयु मे बाये पार्श्व की प्लुरसी और ३४ वर्ष की आयु मे ब्राको निमोनिया–इन सब आक्रमणो ने मेरे फेफडो को सामान्य रूप से और बाये फेफडे को विशेष रूप से बहुत निर्बल और छलनी–सा कर दिया था "[५६] जीवन की झाकियॉ' के तीनो खड क्रमश 'दिल्ली के वे स्मरणीय बीस दिन', 'मै चिकित्सा के चक्रव्यूह से कैसे निकला', तथा 'मेरे नौकरशाही जेल के अनुभव' नामक सस्मरण प्रमुखतया आत्मकथात्मक शैली मे लिखित कृतियॉ हैं

३. भावात्मक शैली- प्रो विद्यावाचस्पति के कई सस्मरणो मे पात्रो का चरित्राकन भावुकतापूर्ण हुआ है नेताजी सुभाषचन्द्र बोस सस्मरण मे उनकी मृत्यु पर लिखित प्रो विद्यावाचस्पति के ये उद्‌गार उनकी भावात्मक शैली का एक अत्यन्त सुन्दर उदाहरण है एक दिन प्रात काल समाचार पत्रो मे पढा कि नेताजी सुभाषचन्द्र बोस जापान जाते हुए हवाई जहाज की दुर्घटना मे समाप्त हो गए भारतवासी उस समाचार को पढकर स्तब्ध रह गए, मेरे लिए तो उनकी स्मृति उस चित्र के रूप मे विद्यमान है जिस पर उनके हस्ताक्षर हैं मैं उसे देखता हूँ और कहता हूँ "बहुत गौर से सुन रहा था जमाना, तुम्ही सो गए दास्ता कहते कहते"[५७]

४. व्यंग्यात्मक शैली- प्रो विद्यावाचस्पति के व्यग्य अत्यत चुटीले होते हैं वे थोडे से शब्दो मे गहरी चोट करने मे सिद्धहस्त है उनकी इस व्यग्यात्मक शैली ने उनके सस्मरणो मे एक अनूठी मिठास भर दी है इस शैली के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं– बाबू राजेद्रप्रसाद की सादगी का वर्णन करते हुए अगूठा काटकर शहीद होने वाले अन्यो की प्रवृत्ति पर श्री विद्यावाचस्पति ने मार्मिक व्यग्य किया है, "वह (राजेद्र बाबू) छोटे से छोटा काम, छोटे से छोटे तरीके पर करने को उद्यत हो जाते हैं कई लोग छोटा काम तो कर लेगे, परतु धूमधाम से, यदि सादे कपडे पहनेगे, तो एक वक्तव्य देकर, यदि कुदाल से जमीन खोदेगे, तो 'एसोसिएटेड प्रेस' को सूचना देकर, यदि गाव मे काम करने जायेगे, तो रिपोर्टरो को साथ लेकर" तथाकथित नेताओ की ढोल की पोल खोलते हुए वे कहते हैं, 'नेता तो कौडियो है, परतु उनमे अधिकाश ऐसे हैं, जिन्हे हम अनुयायी विहीन नेता कह सकते हैं ऐसे नेताओ मे से कई अखबारो की कृति हैं, अखबारो की कृपा से ही वे प्रसिद्ध हो गये हैं अधिकाश ऐसे भी हैं जो महात्मा (गाधी) जी की कृति हैं वे केवल महात्मा जी की इच्छा से ही बने या बिगडे हैं डॉ राजेद्रप्रसाद से मुलाकात का वर्णन करते हुए नगर मे फैली पाश्चात्य मानसिकता पर उन्होने पैना व्यग्य किया है, "डॉ राजेद्रप्रसाद से मिलने का समय निश्चित किया, मुख्यद्वार पर जो पाटी (साइन बोर्ड) लगी हुई थी उसमे केवल हिदी और उर्दू मे 'राजेद्रप्रसाद' इतना लिखा

हुआ था जिस नई दिल्ली की सडको पर साधारण टुटपूजिये कोठीवाले के दरवाजे पर भी अग्रेजी की पाटियाँ दिखाई देती हैं, उसमे एक उच्च अधिकारी के द्वार पर अग्रेजी का बहिष्कार देकर चित्त प्रसन्न हो उठा''[९८] 'थोथा चना बाजे घना' या 'अधजल गगरी छलकत जाय' की प्रवृत्ति पर व्यग्य करते हुए वे लिखते है, 'भारतवर्ष मे रोगी का हाल–चाल पूछने के समय प्रत्येक व्यक्ति के अदर उतनी देर के लिये धन्वतरि की आत्मा प्रवेश कर लेती है'[९९] एक ही शब्द या वाक्य मे व्यग्य किस प्रकार कूट–कूट भरा जा सकता है यह तो प्रो विद्यावाचस्पति से ही सीखा जा सकता है प जवाहरलाल नेहरू को वे पट्टशिष्य न कहकर पटुशिष्य कहते है[१००] ध्यान रहे कि सरदार पटेल महात्मा गाधी के पट्टशिष्य थे और उनकी तुलना मे नेहरू को पटुशिष्य कहा गया है प्रशासकीय विभाग मे विशेषकर पुलिस विभाग मे उत्कोच पाकर या खा–पीकर सतुष्ट होने की परपरा बहुत पुरानी है पुलिस की इस प्रवृत्ति पर व्यग्य करते हुए प्रो विद्यावाचस्पति लिखते हैं, 'घर वालो ने हमारे साथ फल, मिठाई, सोहन हलुवा आदि जो कुछ भी रक्खाथा, वह सब हमने पुलिस देवता को अर्पण कर दिया इससे देवता प्रसन्न हो गये और कम से कम मुँह से कडवी बात कहना बद कर दिया''[१०१] इस प्रकार प्रो विद्यावाचस्पति ने व्यग्यात्मक शैली का सुदर प्रयोग किया है और चुभते हुए व्यग्यो के छींटे उनके सस्मरणो मे सर्वत्र विकीर्ण हैं

५. चित्रात्मक शैली- सस्मरणनायको का चरित्राकन करते समय श्री विद्यावाचस्पति ने चित्रात्मक शैली का सुदर प्रयोग किया है अपने नायको के व्यक्तित्व का रेखाकन उन्होने चित्रो जैसा किया है स्थान–स्थान पर प्रो विद्यावाचस्पति का शब्द–शिल्प एव भाषा की चित्रोपमता दर्शनीय है लोकमान्य तिलक का एक शब्द–चित्र देखिए, 'मैने लोकमान्य को कई दशाओ मे देखा– हँसते हुए भी देखा, मराठी शैली मे व्यग्यपूर्ण उपहास करते हुए भी देखा और महाराष्ट्रीय ब्राह्मणो की तरह केवल धोती पहनकर भोजन करते भी देखा'[१०२] मिस्टर आसिफ अली के विषय मे प्रो विद्यावाचस्पति लिखते हैं, 'सिर पर लखनवी ढग की दुपल्ली टोपी, सुदर सफेद अचकन और तग पायजामा, पैरो मे तिलई जूता, बोली मे अजीब नजाकत और नफासत' प्रो विद्यावाचस्पति ने डॉ असारी के 'चेहरे पर अनवरपाशा की शान' को बरसते हुए देखा है और 'मार्शल स्टालिन की मूछो के समान सरदार पटेल की मूछो को उनके होठो मे अतर्हित भावो को छिपाने और चेहरे को कठोर रूप देने मे सहयोगिनी' दर्शाया है

प्रो विद्यावाचस्पति द्वारा किया गया मुलतान सेट्रल जेल के जेलर फजलुद्दीन का शब्द चित्र भी दर्शनीय है ''मेजर फजलुद्दीन का सभी कुछ चर्चा के योग्य था, मध्यम कद था, रग ऐसा काला था कि तवे से उपमा देने मे अत्युक्ति का दोष नहीं आ सकता था शरीर खूब गठा हुआ था चलते हुये गरदन या कमर मे जरा सी भी लचक नही आती थी जिस समय वह जेल के दौरे को आते थे, तब कोट पैन्ट और हैट पहने, बायाँ हाथ पैंट की जेब मे, हाये हाथ मे पुलिस वालो की रेव्यूलेशन स्टिक लिए गर्दन बिल्कुल अकडी हुई और चेहरा मुट्ठी की तरह बधा हुआ होता था इस हुलिये को देखकर यही कहने को जी चाहता था कि यह मनुष्य नहीं अपितु लोहे के कल पुर्जो का आदमी है जो चाबी के बल पर घूम रहा है''[१०३] इस प्रकार व्यक्ति चित्रो के रूप मे प्रो. विद्यावाचस्पति की चित्रात्मक शैली के अनेक उदाहरण उनकी रचनाओ मे प्राप्त होते हैं

६. दार्शनिक शैली:- प्रो विद्यावाचस्पति प्रकाड विद्वान् एव अद्भुत प्रतिभा सपन्न चितक और विचारक थे अत उनके समस्त साहित्य की तरह सस्मरणात्मक रचनाओ मे भी दार्शनिक का सा गाभीर्य प्राप्त है विषय गाभीर्य की अतिशयता प्राय सस्मरणो की रोचकता को नष्ट कर देती है, पर कहीं–कहीं इस शैली का प्रयोग इसकी चारुता को बढा देता है प्रो विद्यावाचस्पति के सस्मरणो मे से इस शैली का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है, 'यदि आप किसी इलाके की मानवी विशेषताओ

को परखना चाहे, तो उसके केंद्र मे बने हुए जेल का अध्ययन कीजिये वहाँ आपको मनुष्य प्रकृति का काला रूप अपने अकृत्रिम ढग पर दिखायी देगा' प्रो विद्यावाचस्पति के अनुसार जेल मनुष्य की 'परीक्षण शाला ' है, वे 'जेल के सहवास को मनुष्य के आदर–सत्कार की कसौटी' भी कहते हैं [१०४]

३.८ मूल्यांकनः-

प्रो विद्यावाचस्पति के सस्मरणात्मक गद्य की अनेक विशेषताओ के विवेचन के अनतर उनकी सीमाओं का उल्लेख भी आवश्यक है सस्मरणो में उन्होंने अपनी विचारधारा को कहीं पर भी आरोपित करने का प्रयत्न नहीं किया है इसी कारण उनके सस्मरण बोझिलता के दोष से पूर्णतया मुक्त हैं, पर उनकी 'पत्रकारिता के अनुभव' नामक सस्मरण पुस्तक तथ्यात्मक अधिक है और भावात्मक कम [१०५] प्रस्तुत पुस्तक मे सगृहीत 'समाचार–पत्र का प्रारभ काल', 'समाचार पत्र के उपयोग', 'समाचार–पत्रो की शक्ति', 'भारत मे पत्रकारिता–क्या मिशन से व्यवसाय बनेगी?' ये ६ वे परिच्छेद से १२वें परिच्छेद के प्रकरण तो पत्रकारिता से संबधित विशुद्ध निबध हैं उनमे सस्मरण–कला का लव–लेश भी नहीं है 'मेरे पिता' स्वतत्र सस्मरणात्मक जीवनी संरचना है फिर भी उसका २२ पृष्ठो में सार–सक्षेप 'मैं इनका ऋणी हूँ' मे दिया गया है. 'हमारे कर्मयोगी राष्ट्रपति' के प्रारभ मे सस्मरणकार के मित्र श्री बालकृष्ण द्वारा लिखित राष्ट्रपति राजेद्रप्रसाद की ११ पृष्ठीय सक्षिप्त जीवनी भी दी गई है, जो सभव है आजादी के उष.काल मे आवश्यक रही भी हो, पर अब अनावश्यक ही प्रतीत होती है. एक विधा की रचना मे दूसरी विधा की रचना को स्थान देना अटपटा व सस्मरण की सरलता के लिये घातक सा प्रतीत होता है. 'आधुनिक भारत मे वक्तृत्व कला की प्रगति' सस्मरणात्मक रचना के प्रारभ में दी गई प्रस्तावना सस्मरण की दृष्टि से न सही, पर वक्तृत्व कला की दृष्टि से अत्यत ही उपयोगी व आवश्यक है, पर इस रचना के 'कॉग्रेस मे गांधी युग', 'गाधी युग के वक्ता', 'द्विमूर्ति', 'गणतत्र में' आदि सस्मरण, सस्मरणात्मक निबध बन गए हैं, इनमे कहीं–कहीं निबध तत्व प्रधान और संस्मरण तत्व गौण हो गया है इन सीमाओ के होते हुए भी श्री विद्यावाचस्पति की गणना हिदी के प्रमुख संस्मरणकारो मे होती है उनके सस्मरण यथार्थ जीवन से संबद्ध हैं उनमे घटनाओ के नाटकीय विकास द्वारा रोचकता का सचार हुआ है इनमे वर्णित सभी वृत्त मनोहारी हैं विद्यावाचस्पतिजी के सस्मरण वैविध्यपूर्ण हैं प्रमुख रूप मे उनमे अपने समय के राष्ट्रीय गणमान्य नेताओ की राष्ट्रीय सेवाओ का मर्मस्पर्शी उल्लेख है, तो कहीं–कहीं धर्म, सस्कृति, इतिहास, शिक्षा, साहित्य, चिकित्सा, स्वास्थ्य, पत्रकारिता एव कारावास के क्षेत्र मे सपर्क मे आये स्मरणीय व्यक्तियो के, राष्ट्र के लिए उपयोगी विशेषताओ का, गुणगान किया है और कहीं–कहीं समाज की उपेक्षित प्रतिभाओ को प्रकाश मे लाने का काम भी किया है कहीं 'अर्जुन' प्रेस के मशीनमैन–उस्ताद काशीराम[१०६] जैसे जन–सेवको का और कहीं 'रोजी'[१०७] (कुत्ते) जैसे मूक पशुओं को आलोक में लाने का स्तुत्य प्रयास किया है उनके ये संस्मरण इतने मार्मिक और हृदयस्पर्शी बन पडे हैं कि पाठक की आँखें अश्रुसिक्त हो जाती हैं प्रो. विद्यावाचस्पति के सस्मरणों में पाठक की भावना को उद्वेलित एव चेतना को उदबुद्ध करने की अदभुत क्षमता है श्री विद्यावाचस्पति ने इन सस्मरणो द्वारा समसामयिक इतिहास का भी यथार्थ चित्रण किया है. कला रूप की दृष्टि से विद्यावाचस्पतिजी के संस्मरण, रेखाचित्र, कहानी और निबंध का अदभुत समन्वय हैं, इनमें कहानी की मनोरजकता, निबध की सुसंगठितता, रेखाचित्र का सूक्ष्म विवरण और शब्द विधान तथा संस्मरण का सवेदन विद्यमान है.

संदर्भ

१ साहित्य शास्त्र–३७
२ हिन्दी गद्यः विधाये और विकास–११२
३. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त–५०४
४ आलोचना दिसम्बर १९६६–७६
५. अतीत के चलचित्र–८
६ मेरे नौकरशाही जेल के अनुभव–५१
७ तत्रैव–३६
८ तत्रैव–३७
९ तत्रैव–४६
१० तत्रैव–५०
११ तत्रैव–५७
१२ तत्रैव–६०
१३ तत्रैव–६४
१४ पत्रकारिता के अनुभव–१७–१८
१५ तत्रैव–३४
१६ आधुनिक भारत मे वक्तृत्व कला की प्रगति–४–५
१७. तत्रैव–४१
१८. तत्रैव–२८
१९ तत्रैव–५२
२० तत्रैव–२९
२१ मैं इनका ऋणी हूँ–१११
२२. पत्रकारिता के अनुभव–१८
२३. तत्रैव–३४–३५
२४. मैं इनका ऋणी हूँ–२५–२६
२५ आधुनिक भारत मे वक्तृत्व कला की प्रगति–१५–१६
२६. मेरे पिता–१६५
२७. तत्रैव–१८८
२८. तत्रैव–२६७
२९. तत्रैव–१७२
३०. आधुनिक भारत में वक्तृत्व कला की प्रगति–४७
३१. तत्रैव–५५
३२ तत्रैव–७३
३३ हमारे कर्मयोगी राष्ट्रपति–३८
३४. मैं इनका ऋणी हूँ–प्राक्कथन–१
३५. मेरे पिता–१७१
३६. मैं इनका ऋणी हूँ–५२–५३
३७. तत्रैव–प्राक्कथन–१
३८ आधुनिक भारत में वक्तृत्व कला की प्रगति–८
३९ तत्रैव–११
४० तत्रैव–१५
४१. मैं इनका ऋणी हूँ–४२
४२. तत्रैव–४४
४३. तत्रैव–४६
४४. आधुनिक भारत मे वक्तृत्व कला की प्रगति–२९
४५ तत्रैव–४८
४६ तत्रैव–५५
४७. मैं इनका ऋणी हूँ–३४
४८. तत्रैव–३०
४९ तत्रैव–७०–७५
५०. तत्रैव–१२१
५१. तत्रैव–११६
५२. मेरे पिता–५५
५३ तत्रैव–१२६
५४. तत्रैव–११२
५५. तत्रैव–१४३
५६. तत्रैव–१५३
५७. तत्रैव–१७३
५८. तत्रैव–१७८–७९
५९. तत्रैव–२५०
६० तत्रैव–१८१
६१. तत्रैव–२६५

६२ मैं इनका ऋणी हूँ–६१

६३ आधुनिक भारत मे वक्तृत्व कला की प्रगति–६

६४ मैं इनका ऋणी हूँ–११७

६५ मेरे नौकरशाही जेल के अनुभव–७२

६६ मैं इनका ऋणी हूँ–५८

६७. तत्रैव–५६

६८ मेरे पिता–१२८

६९ मैं इनका ऋणी हूँ–३५

७० मेरे पिता–६

७१ तत्रैव–११७

७२ मैं इनका ऋणी हूँ–८१

७३ मेरे पिता–८६

७४ तत्रैव–६०

७५ मेरे नौकरशाही जेल के अनुभव–७३

७६ हमारे कर्मयोगी राष्ट्रपति–४१–४२

७७ हिदी गद्य साहित्य–१६७

७८ आधुनिक हिंदी का जीवनी परक साहित्य–२७१

७९ मैं इनका ऋणी हूँ–८१

८० तत्रैव–१०६–१०७

८१ तत्रैव–१०१

८२. तत्रैव–६२

८३ मेरे पिता–२६०

८४ दिल्ली के वे स्मरणीय बीस दिन–७

८५ विनायकराव अभिनदन ग्रथ–३२

८६. दिल्ली के वे स्मरणीय बीस दिन–३०

८७ मेरे नौकरशाही जेल के अनुभव– ३१–३२

८८. दिल्ली के वे स्मरणीय बीस दिन–७–१५

८९ मेरे पिता–७९–८२

९० हमारे कर्मयोगी राष्ट्रपति–२६

९१. पत्रकारिता के अनुभव–२

९२ तत्रैव– २८, ६५, ७५, ७८, ८५, ६४, १०२

९३ हिदी साहित्य कोश–८०३

९४ दिल्ली के वे स्मरणीय बीस दिन–७

९५ तत्रैव–२२

९६ मेरे नौकरशाही जेल के अनुभव–४१–४२

९७ मैं इनका ऋणी हूँ–१००

९८ हमारे कर्मयोगी राष्ट्रपति–२२, २०, २६

९९ मैं चिकित्सा के चक्रव्यूह से कैसे निकला–१६

१०० आधुनिक भारत मे वक्तृत्व कला की प्रगति–६८

१०१ मेरे नौकरशाही जेल के अनुभव–२६

१०२ मैं इनका ऋणी हूँ–११

१०३ मेरे नौकरशाही जेल के अनुभव–६१–६२

१०४ तत्रैव–३२, ६०

१०५. हिंदी गद्य साहित्य–१६८–१६६

१०६ पत्रकारिता के अनुभव–४२

१०७ धर्मयुग १० अगस्त–१६५८

४

विद्यावाचस्पति जी का जीवनी साहित्य

४.१ जीवनीः स्वरूप, विवेचनः-

जीवनी के पर्यायवाची के रूप मे 'जीवन चरित' और 'जीवन–चरित्र' नाम भी प्रचलित है कतिपय व्यक्ति 'जीवनी' ओर 'जीवन–चरित्र' मे यह अतर करते हैं कि जीवनी मे तथ्यो पर और जीवन–चरित्र मे चरित्र विश्लेषण पर अधिक बल दिया जाता है जीवनी को अनेक विद्वानो ने परिभाषित करने का प्रयास किया है डॉ गुलाबराय के शब्दो मे "जीवनी एक मनुष्य के अतर और बाह्यस्वरूप का कलात्मक निरूपण है"[1] इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार 'जीवनी एक वर्णनात्मक रचना है जो सफलतापूर्वक कलात्मक शैली मे एक व्यक्ति के कार्यों का प्रामाणिक विवरण देती है और उसके व्यक्तित्व का पुनर्निर्माण करती है'[2] न्यू इनसाइक्लोपीडिया अमेरिकना मे जीवनी का स्वरूप प्रस्तुत करते हुए प्रतिपादित किया है कि– 'व्यक्ति के जीवन का इतिहास तथा उसके जीवन की घटनाओ का इतिहास एव उसके मत, धारणा और समय की व्याख्या जीवनी है'[3] 'हिन्दी साहित्य कोश' मे व्यक्ति विशेष के जीवन वृत्तान्त को जीवनी[4] कहा गया है एडगर जानसन का मत है 'जीवनी मे तथ्यो को साहित्यिक रूप मे अकित किया जाता है'[5] प्रारभ मे व्यक्ति विशेष का प्रशसात्मक दृष्टिकोण से वर्णन करना ही जीवनी कहलाता था, परतु सप्रति चरित्रकार के लिये यह आवश्यक हो गया है कि वह व्यक्ति के गुणदोषो का समभाव से चित्रण करे, यदि जीवनी मे आदर्श ही आदर्श दिखलायेगे तो एक ओर ऐतिहासिकता खण्डित होने का भय होता है और दूसरी ओर पाठको का साधारणीकरण भी नही हो पाता अत. 'जीवनीकार का दृष्टिकोण सर्वथा तटस्थ होना बहुत जरूरी है'[6] यदि चरित्र लेखक व्यक्तिगत राग द्वेष को प्रधान मानकर किसी व्यक्ति का चरित्राकन करेगा तो वह अपने चरित्र नायक के साथ न्याय नहीं कर पायेगा

जीवनी मूलत इतिहास की एक शैली होते हुए भी इतिहास न होकर साहित्यिक विधा है जीवनी मे मनुष्य को व्यक्तिगत रूप मे चित्रित किया जाता है जब कि इतिहास मे मनुष्य का चित्रण सामूहिक रूप मे किया जाता है. जीवनी मे जहाँ इतिहासकार का सत्य है वहाँ उपन्यासकार का सर्जनात्मक दृष्टिकोण भी जीवन चरित्र मे घटनाओ को ऐतिहासिक सत्य के आधार पर निरखना–परखना भी अत्यावश्यक होता है यह सब होते हुए भी जीवनी मे घटनाओ के सयोजन के लिए कल्पना का आश्रय लिया जा सकता है, किन्तु इतिहास मे इसके लिए कोई स्थान नहीं

जीवनी और आत्मकथा मे पर्याप्त अतर है आत्मकथा मे लेखक स्वय अपनी कथा कहता है जब कि जीवन चरित्र मे 'राम तुम्हारा चरित स्वय ही काव्य है, कोई कवि बन जाय सहज सभाव्य है' वाली बात होती है जीवनी का लेखक किसी अन्य की कथा को अपने वर्ण्य विषय के रूप मे ग्रहण करता है जीवनी और आत्म–कथा की तरह जीवनी और सस्मरण भी दो भिन्न विधाये हैं जीवनी में लेखक की दृष्टि अधिक वस्तुपरक होती है, जब कि संस्मरण मे वैयक्तिक दृष्टिकोण की प्रधानता होती है सक्षेप मे जीवनी, इतिहास, आत्मकथा, सस्मरण आदि के निकट होते हुए भी अपने आप मे एक स्वतत्र साहित्यिक विधा है जिसमे मनुष्य विशेष के अन्त बाह्य जीवन का कलात्मक चित्रण होता है

४.२ जीवनी के तत्त्वः-

जीवन चरित्र मे जीवनी के इन पाच तत्त्वो का होना अत्यावश्यक है. १) वर्ण्य विषय २) चरित्र चित्रण ३) वातावरण--सृष्टि ४) उद्देश्य ५) भाषा शैली. प्रामाणिक विश्वसनीय घटनाओ के आधार पर चरित्रनायक के सश्लेषण–विश्लेषण से जीवनी के वर्ण्य विषय का निर्माण होता है वर्ण्य विषय मे वास्तविकता, ऐतिहासिकता, तटस्थता, वैज्ञानिकता, रोचकता, सबद्धता एव सक्षिप्तता का होना अत्यावश्यक है चरित्र–चित्रण मे मुख्य पात्र के अतर्बाह्य स्वरूप का विश्लेषण और गुण–दोष का सहृदयतापूर्ण वर्णन होता है वातावरण सृष्टि का तत्त्व चरित्र नायक के जीवन को उभारने के उद्देश्य से जीवनी मे आवश्यक है पर यह तत्त्व चरित्र मे गौण रुप में ही होता है जीवनी का उद्देश्य अपने चरित्रनायक को अमरत्व प्रदान करना एव पाठकों को उसके जीवनालोक से प्रेरणा प्रदान करना है जीवन–चरित्र की शैली मे सुसगठितता एव एकान्विती तथा उसकी भाषा मे सुबोधता–सजीवता के अतिरिक्त साहित्यिक माधुर्य का भी होना अत्यावश्यक है इन्हीं तत्त्वो से युक्त जीवनी साहित्यिक विधा का रूप ग्रहण कर सकती है, अन्यथा वह ऐतिहासिक विवरण मात्र हो जायेगी जीवनी मे चरित्रनायक के साथ ही उसकी सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा आर्थिक स्थिति का असली चित्र भी अनायास दिखलायी देता है

४.३ विद्यावाचस्पति जी का जीवनी साहित्यः-

श्री विद्यावाचस्पति के सर्जनात्मक वाड् मय मे जीवनी साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है हिन्दी मे जीवनी विधा के प्रमुख उन्नायको मे उनकी गणना की जा सकती है 'सफल जीवन–चरित्र लेखन उतना ही कठिन है, जितना कि सफल जीवन को अपने जीवन मे निबाह ले जाना'[७] के अनुसार जीवनी लिखना एक अत्यत उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य है. श्री विद्यावाचस्पति ने पूर्ण निष्ठा से इस उत्तरदायित्व का निर्वाह किया है उनका जीवनी साहित्य इस प्रकार है– १) नैपोलियन बोनापार्ट (सन् १९१२), २) प्रिस बिस्मार्क (सन् १९१४), ३) महावीर गेरीवाल्डी (सन् १९१६), ४) महर्षि दयानद (सन् १९२७), ५) लाला लाजपतराय (सन् १९३०), ६) शहीद जतीन्द्रनाथदास का जीवन–चरित्र (सन् १९३१), ७) सम्राट रघु (सन् १९४४), ८) प जवाहरलाल नेहरू (सन् १९४५), ९) जीवन ज्योति (सन् १९५६), १०) मेरे पिता (सन् १९५७), ११) लोकमान्य तिलक और उनका युग (सन् १९६३) इस सूची से स्पष्ट है कि विद्यावाचस्पति का जीवनी वाड् मय परिमाण मे प्रचुर है साथ ही विविध क्षेत्रो से सबधित महत्त्वपूर्ण व्यक्तियो के जीवन चरित और चरित्र लेख होने के कारण उसमे विषयगत वैविध्य भी विद्यमान है उनका जीवनी वाड् मय पर्याप्त समृद्ध है यहाँ अग्रिम पक्तियो मे उनकी साहित्यगत विशिष्टताओ का मूल्याकन प्रस्तुत है

४.४ वर्ण्य विषयः-

जीवनी के वर्ण्य विषय मे चरित्रनायक के जीवन की विविध घटनायें रहती हैं जीवनीकार उनका अन्वेषण एव सचयन कर उन्हे एकसूत्रता मे बाध जीवनी का रूप प्रदान करता है. विद्यावाचस्पति के जीवनी वाड् मय के वर्ण्य विषय में, सर्वप्रथम विशेषता के रूप मे वर्ण्य विषय के वैविध्य को लिया जा सकता है उन्होने विभिन्न क्षेत्रो से सबधित विशिष्ट व्यक्तियों के जीवन चरित लिखे हैं. वर्ण्य विषय के आधार पर उस जीवनी वाड्.मय को पाच वर्गों मे बांटा जा सकता है– १– विदेशी स्वाधीनता प्रेमियों कीजीवनियॉं, २– स्वदेशी–क्रान्तिकारी–देशभक्तों की जीवनियाँ, ३– धार्मिक महापुरुषो की जीवनियॉं, ४– राजनैतिक महापुरुषों की जीवनियॉं, ५– सकीर्ण–चरित लेख.

'नैपोलियन बोनापार्ट', 'प्रिंस बिस्मार्क', 'महावीर गेरीवाल्डी' क्रमशः फ्रान्स, जर्मनी व इटली

के स्वाधीनता योद्धाओ की जीवनियाँ हैं. 'अमर शहीद जतीन्द्रनाथदास' राष्ट्रीय स्वाधीनता सग्राम के सेनानी हैं, जिन्होने राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए, क्रान्तिकारी जीवन का मार्ग अपना कर सर्वस्व न्यौछावर कर दिया था धार्मिक महापुरुषो से सबधित जीवनियो मे महर्षि दयानद जीवनीकार के धार्मिक गुरु हैं, और स्वामी श्रद्धानद तो उनके पिताजी के साथ–साथ आचार्य भी हैं राजनैतिक महापुरुषो से सबधित जीवनियो मे सम्राट् रघु, लाला लाजपतराय, प. जवाहरलाल नेहरू तथा लोकमान्य तिलक की जीवनियॉ प्रस्तुत की हैं सकीर्ण चरित्र लेखो मे पुरुषोत्तम राम, योगेश्वर कृष्ण, महात्मा बुद्ध, श्री गुरू नानकदेव, झॉसी की रानी, उपन्यास सम्राट् प्रेमचन्द, कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर, डॉ शान्तिस्वरूप भटनागर, आचार्य चन्द्रशेखर वेकटरमन, डॉ राजेद्रप्रसाद व प. श्यामजी कृष्ण वर्मा आदि पौराणिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक, साहित्यिक तथा वैज्ञानिक क्षेत्र से सबधित जीवन वृत्त हैं इस प्रकार विभिन्न क्षेत्रो से सबधित नायको की जीवनियॉ या जीवन वृत्त लिखने के कारण प विद्यावाचस्पति के वर्ण्य विषय मे विविधता का समावेश हुआ है जीवनी वाड्मय के वर्ण्य विषय मे विविधता श्री विद्यावाचस्पति के अपने जीवन एव व्यक्तित्व की विविधोन्मुखता की ओर निर्देश करती है क्योकि आन्द्रे मॉरवा के कथनानुसार जीवनी, लेखक के लिए आत्म प्रकाशन का साधन है 'जीवनीकार स्वय अपने भावो तथा अनुभवो को चरित नायक के जीवन को माध्यम बनाकर प्रस्तुत करता है'[८] प विद्यावाचस्पति राजनीतिज्ञ, इतिहासज्ञ, स्वाधीनता सेनानी, देशभक्त, आर्यसमाजी व वैदिक धर्म के अनुयायी थे इसलिये इन विविध क्षेत्रो से चरितनायको का चयन करना उनके लिए सहज–स्वाभाविक था

जीवनी का वर्ण्य विषय प्रामाणिक एव यथार्थ घटनाओ पर आधारित होना चाहिये इतिहास और जीवनी मे अन्तर होने पर भी जीवनी मे इतिहास तत्त्व का निषेध नहीं होता, प्रत्युत् जीवनी लेखक भी इतिहास लेखक की भाति तथ्यो एव तिथियो के अन्वेषण एव उनके सक्रिय क्रमिक निर्देशन के प्रति सजग रहता है जीवनी लेखक कल्पनाशील बन सकता है, पर उसकी सामग्री कल्पित नहीं होनी चाहिये, उसे बीती हुई घटनाओ पर गर्व करना चाहिये.[९] आन्द्रे मॉरवा का मत है, जीवनी विषयक प्रामाणिक तथ्यो के सचय के लिए तद्‌विषयक रचनाओ, मौलिक पत्रो एव डायरियो के रूप मे लिखित ज्ञात प्रमाणो का अध्ययन आवश्यक है.[१०] टी शिप्ले जीवन चरित लिखने के लिए चरित्र नायक द्वारा लिखित दस्तावेजो को महत्वपूर्ण उपादान स्वीकार करते हैं[११] अत.एव बोस्वाल ने स्वीकार किया है 'जीवनी लेखन साहित्य की अन्य विधाओ की अपेक्षा श्रमसाध्य है'[१२] क्योकि जीवनी लेखक अपने कार्य का आरभ लिखित एव मुद्रित पत्रो के समूह एव ज्ञात प्रमाणो के ढूढँने तथा अनुसधान की छानबीन से करता है

प विद्यावाचस्पति ने अपने जीवनी नायको के जीवन–वृत्त की प्रामाणिकता का पूरा ध्यान रखने का प्रयास किया है जीवन–वृत्त के सचय के लिए उन्होने चरितनायक से साक्षात् सपर्क के साथ–साथ अन्य सभी उपादानो का भी समुचित उपयोग किया है 'प जवाहरलाल नेहरू' के वृत्तसचय के सबध मे विद्यावाचस्पति का कथन है– 'मेरे सौभाग्य से मुझे उनके जीवन चरित्र लिखने की ऐसी उत्तम सामग्री प्राप्त हो गई जिसके बिना यह प्रयास कभी सफल न होता.'[१३] यह सामग्री थी प जवाहरलालजी लिखित अग्रेजी आत्मचरित्र की मूल कापी, जिसके बिना प नेहरू की जीवनी पूरा करना विद्यावाचस्पति के लिए अत्यन्त ही कठिन होता महर्षि दयानद विषयक जीवन सामग्री भी उन्हे स्वामी दयानद के प्रत्यक्षदर्शी, अनुयायी, आर्यसमाज के यशस्वी नेता व अपने पिताश्री व आचार्य श्रद्धानंद तथा श्री मामराज आदि अनुसधित्सुओ से प्राप्त हुई थी.[१४] केवल सुनी–सुनायी बातो के आधार पर जीवनी लिखने में विद्यावाचस्पति का विश्वास नहीं है 'नामूलं लिख्यते किञ्चित् नानपेक्षितमुच्यते'[१५] मे उनका पूर्ण विश्वास था

स्वामी दयानन्द लेखक के धार्मिक गुरु थे. अपने धार्मिक गुरु के व्यक्तित्व विकास की कथा को उन्होने १८ परिच्छेदो मे अकित किया है उनके जीवन की अनेक छोटी–बडी घटनायें अत्यत मर्मस्पर्शी बन पडी हैं स्वामीजी का जीवन सत्यप्रियता, निर्भीकता, सघर्ष–शीलता त्याग एव बलिदान की घटनाओ से ओतप्रोत है एक शैव कुलोत्पन्न जिज्ञासु विभिन्न पौराणिक मत–मतान्तरो का सशोधन करते हुए सह्रदयता के साथ ईसाइयत और इस्लाम मत का भी खण्डन–सशोधन करता है, और अत मे पूर्ण मानवतावादी बन जाता है पं विद्यावाचस्पति ने बडे मनोयोग से स्वामीजी के जीवन की छोटी–बडी घटनाओ को सुसबद्ध एव श्रृखलाबद्ध रूप मे चित्रित किया है एक घटना दूसरी घटना को जन्म देती है और उसी के साथ कार्य–कारण की श्रृखला आगे बढ जाती है इसी प्रकार नैपोलियन बोनापार्ट, प्रिस बिस्मार्क, महावीर गेरीवाल्डी, शहीद जतीनदास में घटनाओ का सागोपाग एव कालक्रमानुसार सुसबद्ध वर्णन है

विदेशी–देशी स्वाधीनता प्रेमियो की गौरव–गाथा लिखकर लेखक ने भारतवासियो मे स्वाधीनता की चाह जगाने का प्रयास किया है स्वाधीनता के पिपासुओ के लिए उनकी ये जीवनियाँ दीपस्तभ हैं स्वय लेखक के शब्दो मे– 'जो लोग समझते हैं कि भू माता वीरो से बाझ हो गयी है, वे गैरीवाल्डी के जीवन को पढे यदि वे स्वाधीनता के प्यासे हैं, तो उन्हे आशा का जल मिलेगा, और यदि वे दूसरो की स्वाधीनता का कलेवा किये बैठे हैं, तो उन्हे एक उपदेश और सावधान होने का इशारा मिलेगा '[१५] 'शहीद जतीनदास' तो भारतीय स्वाधीनता के लिए आत्माहुति देने वाले शहीद को लेखक की भावभीनी श्रद्धाजलि है

१६ अध्यायो और दो परिशिष्टो मे सपन्न प जवाहरलाल नेहरू की जीवनी भारत के प्रधानमत्री की जीवनी नहीं, अपितु १६४२ के 'अग्रेजो ! भारत छोडो !!' के वर्ष मे लिखी गयी जीवनी है अग्रेजो की साम्राज्य मद से उत्पन्न मनोवृत्ति के प्रति ह्रदय मे विद्रोह भाव रखने वाले[१७] युवक की जीवनी है लेखक 'अपटूडेट वैरिस्टर' की ओर आकृष्ट नहीं हुआ है, अपितु 'खद्दरदारी विद्रोही'[१८] की ओर आकृष्ट हुआ है 'स्वाधीनता प्राप्ति के लिए अत तक बगावत जारी रखने का सदेश देने वाले'[१९] जवाहर को उन्होने 'स्वस्थ युवक से अधिक जोशीला', एक साधक से अधिक तपस्वी, और एक मजदूर से अधिक परिश्रमी'[२०] पाया है प विद्यावाचस्पतिजी की मरणोपरान्त १६६३ मे प्रकाशित हुई जीवनी का नाम है– 'लोकमान्य तिलक और उनका युग' यह जीवनी ४५ परिच्छेदो मे सपन्न हुई है लोकमान्य तिलक प विद्यावाचस्पति के राजनीतिक क्षेत्र के गुरू थे[२१] इस प्रकार हमे लेखक किशोरावस्था से जीवन के अतिम चरण तक अपने जीवन और लेखनी द्वारा स्वाधीनता के मन्त्र का जप करते हुए दिखलायी देते हैं वेदरत्न आचार्य रामप्रसाद वेदालकार ने ठीक ही कहा है कि–'जीवन चरित्रो के आकलन मे विद्यावाचस्पति की क्रान्तिकारी चेतना का विस्फोट उपलब्ध होता है निष्काम राष्ट्र–सेवा, स्वातत्र्य की कसक, बलिदान का सकल्प और नवचेतना का उन्मेष उनके व्यक्तित्व और लेखन मे कूट–कूट कर भरा है'[२२] प विद्यावाचस्पति द्वारा लिखित 'जीवन–ज्योति' मे लघु निबधाकार तेरह जीवनियो का सकलन है इनके वृत्त वर्णन मे क्रमबद्धता तो है, पर सागोपाग वृत्त नहीं, योगेश्वर श्रीकृष्ण के मृत्यु–प्रसग का तो लेखक ने उल्लेख भी नहीं किया है

४.५ चरित्र चित्रणः-

जीवनी मे केवल घटनाओ का उल्लेख ही नहीं, किन्तु चरित्रनायक का शील निरूपण भी होता है. आधुनिक जीवनियों मे तो विशेष रूप से चरित्र विश्लेषण को महत्व प्राप्त है उपन्यास आदि विधाओ की अपेक्षा जीवनी का चरित्राकन अधिक यथार्थ होने के कारण पाठक पर उसका अधिक प्रभाव पडता है इसीलिए जीवनी लेखन चरित्र मे वृत्तो एव घटनाओ के माध्यम से नायक के चरित्र की विशेषताओ को अकित करता है. परिस्थितियो के बीच उसके चारित्रिक विकास को

दिखलाता है और साथ ही उसकी मनोदशा का विश्लेषण करता है यह सब तभी सभव है जब लेखक जीवनी नायक से तादात्म्य का सबध रखता हो

प विद्यावाचस्पति ने जीवनी नायको के चरित्र का मार्मिक एव प्रभावशाली ढग से अंकन किया है उन्होने अपने चरित्र नायको की विशेषता उनके अतर्बाह्य स्वरूप के चित्रण द्वारा प्रस्तुत की है बाह्य घटनाओ का नायक के मन पर क्या प्रभाव पडता है, उसके मन मे उस घटना की क्या प्रतिक्रिया होती है इसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है– "गेरीवाल्डी स्वधीनता देवी का उपासक था और मातृभूमि का सच्चा पुत्र था उसने होश सभालकर चारो ओर नजर दौडाई तो अपनी मातृभूमि को विदेशियो के लोहेदार जूतो के तले कुचले जाते हुए देखा उसके शुद्ध और तेजस्वी आत्मा को यह सह्य न हो सका उसके अदर प्रेम, करुणा, जोश, साहस, ईश्वर प्रेम आदि जितने गुण थे वे सब एक ही गुण 'मातृभूमि के प्रति भक्ति' के दास हो गए एक व्यापी भाव ने अन्य सब गुणो को दबा लिया किन्तु मारकर नही, अपितु अपने लिए सहायक बनाकर"[२३] उक्त उद्धरण से गेरीवाल्डी की मनोव्यथा का, उसकी राजनीतिक चेतना का और साथ ही कर्तव्य परायणता की भावना का एक साथ दिग्दर्शन हो जाता है इसी प्रकार 'महावीर गेरीवाल्डी' मे नायिका की चारित्रिक महत्ता का निदर्शन भी द्रष्टव्य है– "जब गेरीवाल्डी ने रोम की रक्षा के लिए तलवार पकडी और आग की भट्टी मे छलाग लगायी, तब एनिटा ने उसकी मगल कामना की, उसका हाथ पकडकर रोका नहीं जब रोम का पतन होने पर एक व्यक्ति ने फ्रास, आस्ट्रिया और नेपल्स, तीनो को खुला चेलेज देकर जगल का रास्ता लिया तब किसी ने उसे मूर्ख कहा और किसी ने कम समझ पुकारा किन्तु एनिटा–सती एनिटा के मुँह से एक शब्द नहीं निकला, स्वतत्रता की देवी की भाति मनुष्य वेश मे घोडे पर सवार हो पति की छाया बनना ही उसने अपना कर्तव्य समझा"[२४]

प विद्यावाचस्पति प्रणीत जीवनियो मे नायको का चरित्र गत्यात्मक है, और उनका विकास अत्यन्त स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक आधार पर हुआ है घटनाये एव परिस्थितियॉ ऐसी आती हैं कि नायक के चरित्र को अग्रसर कर जाती हैं 'प्रिंस बिस्मार्क', 'महावीर गेरीवाल्डी', 'महर्षि दयानद' और 'लोकमान्य तिलक' ऐसे ही चरित्रनायक हैं, जिनका जीवन निरन्तर विकसित होता रहता है स्वामी दयानद के संबंध मे प विद्यावाचस्पति का कथन द्रष्टव्य है– "बनारस के शास्त्रार्थ के कारण स्वामीजी की ख्याति सारे देशे मे फैल गयी देश की दशा से चिंतित सुदूरवर्ती महानुभावो ने, काशी के पण्डितो को पराजित करने वाले वावदूक के वृत्तान्त पढकर हृदय को ढाढस दिया उधर कलकत्ता, बबई आदि के पण्डितो पर स्वामीजी की धाक बध गयी ...यश के विसतार के साथ स्वामीजी का दृष्टिक्षेत्र भी विस्तृत होने लगा धीरे–धीरे स्वामीजी का कार्य करने का ढग बदलने लगा पुरानी केवल शास्त्रार्थ की या अपने डेरे पर प्रचार करने की रीति को छोडकर नियमपूर्वक सभायें करने और उनमे व्याख्यान देने की पद्धति का अनुसरण होने लगा, स्वामीजी अब तक केवल सस्कृत में व्याख्यान देते थे, उसमे परिवर्तन हो गया, आप हिन्दी में व्याख्यान देने लगे, अब तक केवल कौपीन धारण किए रहते थे–आश्रम पर, सभा में, शास्त्रार्थ के समय, इसी वेष में रहते थे, वह भी बदलने लगा, सभा मे आप कपडे पहिनकर जाने लगे, इसी समय सत्यार्थप्रकाश भी लिखा ... यह परिवर्तन कार्य को अधिक विस्तृत और लोकोपयोगी बनाने का साधन हुआ"[२५]

प. विद्यावाचस्पतिजी ने अपने जीवनी नायकों के बहिरग एव अंतरंग की बडी कुशलता से अकन किया है, बहिरंग वर्णन में उनकी आकृति वेश–भूषा एव कार्यों का उल्लेख है तथा उनके अतरग चित्रण मे उनकी मनोदशाओ स्वभाव एव गुण–दोषो का निरूपण है, चरित्र चित्रण मे पं. विद्यावाचस्पतिजी का दृष्टिकोण सर्वत्र तटस्थ वैज्ञानिक के समान है, वे पात्रो की सबलताओं एव दुर्बलताओ दोनो का उद्घाटन करते चलते हैं, उन्होने अपनी जीवनियों मे चरित्र नायको के चरित्राकन

के लिए इन पाच विधियो का आश्रय लिया है (क) चरित्र नायक के क्रिया—कलाप वर्णन द्वारा, (ख) चरित्र—नायक के वक्तव्यो द्वारा, (ग) चरित्र—नायक के संवादो द्वारा, (घ) अन्य व्यक्तियो के सस्मरणो द्वारा, (ड) लेखकीय वक्तव्य द्वारा

(क) चरित्र-नायक के क्रिया-कलाप वर्णन द्वारा- इस चित्रण विधि के द्वारा प विद्यावाचस्पतिजी चरित्र नायक के जीवन की घटनाओ एव कार्यो का उल्लेख कर उनके चरित्र के किसी पक्ष का उद्घाटन करते हैं "क्रमिक सस्मरणात्मक जीवनी 'मेरे पिता' मे ऐसी अनेक घटनाओ का सजीव वर्णन है, जिनसे स्वामी श्रद्धानन्द की दृढता, सहनशीलता, स्पष्टवादिता, श्रद्धा, देशभक्ति, प्राचीन गुरुकुलीय शिक्षा के प्रति आस्था, अदम्य साहस, स्वाभिमान आदि गुणो की अभिव्यक्ति मिलती है 'लोकमान्य तिलक और उनका युग' से स्पष्ट होता है कि तिलक इस बात मे विश्वास नहीं रखते कि केवल भीख मागने या प्रस्तावो से स्वाधीनता मिल जायेगी स्वाधीनता के लिए वे 'केवल शब्दो को नहीं अपितु क्रिया'[२५] को महत्व देते थे सन् १९१८ मे होमरूल आन्दोलन को तीव्र करने के लिए घुटनो मे दर्द और घाव होते हुए भी उन्होने रेल और मोटर से कुल मिलाकर दो हजार मील का सफर किया और पचास से भी अधिक भाषण दिये थे[२७] इससे वृद्धावस्था मे भी अपने सुख—चैन और नींद की उपेक्षा करने वाले लोकमान्य तिलक की असाधारण तीव्र देशाभिमान की झलक मिलती है इसी प्रकार नैपोलियन बोनापार्ट, प्रिस बिस्मार्क, शहीद जतीनदास, प जवाहरलाल नेहरू आदि के देशप्रेम, त्याग एव बलिदान को प विद्यावाचस्पतिजी ने घटनाओ और कार्यो के माध्यम से व्यजित किया है वस्तुत किसी व्यक्ति के क्रिया कलाप ही उसके व्यक्तित्व एव चरित्र को साकार करने वाले होते हैं, और प विद्यावाचस्पतिजी ने जीवनी नायको के कार्यो एव घटनाओ द्वारा उनका व्यक्तित्व रेखाकित किया है

(ख) चरित्र-नायक के वक्तव्यों द्वारा- चरित्र नायको के वक्तव्य भी उनके चरित्र को प्रकाशित करने मे सहायक होते हैं महान् व्यक्ति की वाणी और क्रिया मे साम्य होता है वह जो कुछ कहता है वह उसके व्यक्तित्व का ही अग होता है महावीर गेरीवाल्डी का एक भाषणाश द्रष्टव्य है— "मैं तुम्हे नये युद्ध और नये यश दिलाऊगा, जो मेरे साथ चलना चाहे वह अपना होगा, किन्तु उनका मूल्य परिश्रम और खतरा है मैं तुमसे मातृभूमि से प्रेम के सिवाय कुछ नही मागता और बदले मे न वेतन दे सकता हूँ, न आराम दे सकता हूँ, और न नियमपूर्वक खाने को भोजन ही दे सकता हूँ, जो इस भाग्य से सन्तुष्ट न हो वह पीछे रह सकता है"[२८] इस वक्तव्य से गेरीवाल्डी की उस धैर्य—निष्ठा का पता चलता है जो आपत्ति मे भी सुदृढ बनी रहती है, और डगमगाने का नाम तक नहीं लेती जर्मनी को एकता के सूत्र मे पिरानेवाले प्रिस बिस्मार्क का 'वज्रादपि कठोराणि' रूप किसे नहीं मालूम? पर हम यहाँ एक ऐसा वक्तव्य उद्धृत करते हैं, जिससे हमे उनका 'मृदूनि कुसुमादपि' वाले रूप का भी परिचय मिलता है समस्त जर्मनी को एक करने के बाद दक्षिण जर्मनी की एक रियासत बवेरिया को जर्मन मे शामिल करना शेष रह गया था बिस्मार्क असन्तुष्ट बवेरिया को जबरदस्ती जर्मनी मे शामिल करने की अपेक्षा स्वेच्छा से जर्मनी मे मिलने के इच्छुक बवेरिया रियासत की प्रतीक्षा करने के लिए तैयार था एतदर्थ उसने बवेरिया से सन्धि करके उसे अन्य समस्त रियासतो की तुलना मे बहुत—सी रियायते दीं, जिसे पाकर बवेरिया खुशी—खुशी जर्मनी मे आ मिला इस सशर्त मेल पर लोगो ने बिस्मार्क को बहुत दोष दिये, पर बिस्मार्क ने 'कार्य हो गया, एकता पूरी हो गयी' की घोषणा करने के बाद जो वक्तव्य दिया, उससे राजनीतिज्ञ बिस्मार्क का लचकीला रूप ही प्रस्फुटित होता है— "पत्र सपादक सन्तुष्ट नहीं होगे, इतिहास लेखक सभवत हमारे मेल को सिद्धात विरूद्ध कहेगे शायद वे कहेगे कि मूर्ख आदमी (बवेरिया रियासत से) अधिक माग सकता था, उसे अवश्य मिल जाता उन्हे देना ही पडता उसका बल ही उसका अधिकार था, किन्तु मेरी इच्छा थी कि ये

लोग यहाँ से सतुष्ट जाय उन सन्धियो का लाभ क्या है, जिन पर लोगो से बलात्कार द्वारा हस्ताक्षर कराया जाय मैं उनकी निर्बल दशा का लाभ नहीं उठाना चाहता मेल मे दोष है, किन्तु उन दोषो के कारण ही वह अधिक प्रबल है "[२९]

चरित्र नायक के भाषणो के अतिरिक्त लेखो से भी उसके व्यक्तित्व पर प्रकाश पडता है इस दृष्टि से दैनिक केसरी के तेजस्वी सपादक लोकमान्य तिलक के कतिपय लेखाश द्रष्टव्य हैं– "यथार्थ मे इस देश के जो बुरे रीति–रिवाज हैं, उनकी रोक या सुधार के काम से 'केसरी' ने कभी मुँह नहीं मोडा है, वरन् वह सदैव अपना मत इस प्रकार प्रकट करता रहा है कि इन्हे धीरे–धीरे दूर करना चाहिए "[३०] "स्वराज्य के बिना हमारी जिदगी और हमारा धर्म व्यर्थ है "[३१] स्पष्ट है कि तिलक समाज–सुधार की तुलनामे स्वराज्य को प्राथमिकता देते थे

३० अप्रैल १९०८ को, खुदीराम बोस नामक बगाली युवक ने प्रजा मे फैले असन्तोष को, मुजफ्फरपुर के न्यायाधीश मिस्टर कॅनेडी पर बम प्रहार कर अभिव्यक्त किया 'केसरी' मे 'देश का दुर्भाग्य' शीर्षक से इस घटना पर टिप्पणी करते हुए तिलक जी ने लिखा– "मुजफ्फरपुर काण्ड एक गभीर दुर्घटना है हम इसकी निदा करते हैं और इसके विरूद्ध अपना मत प्रकट करते है, परन्तु हम यह नहीं समझते कि सरकार तक केवल इतने भाव प्रकाशित करने से हमारे कर्तव्य का पूरा पालन हो जाता है ऐसे अवसरो पर यह सोचना आवश्यक हो जाता है कि अधिकार सपन्न लोग देशवासियो की अभिलाषाओ की कहाँ तक उपेक्षा कर सकते हैं और (उसे) किस सीमा के आगे प्रजा के धैर्य की प्रतीक्षा नही करनी चाहिये"[३२] तिलक इस प्रकार की घटनाओ को इस बात का चिह्न मानते थे कि देश वर्तमान राजनीतिक गुलामी से इतना असतुष्ट है कि यहाँ इसमे शीघ्र ही सुधार न किया गया तो देश के नवयुवक धैर्य खो बैठेगे, चाहे फिर उनका नाम वासुदेव चाफेकर हो या खुदीराम और कुछ इसी दृष्टि विशेष के कारण भारतीय क्रान्तिकारियो के प्रति एक विशिष्ट सहानुभूति लोकमान्य के अन्त स्थल मे अतर्निहित थी

'आर्कटिक होम इन दी वेदाज' की भूमिका मे लिखा लोकमान्य तिलक का लेखाश प्रस्तुत कर प विद्यावाचस्पतिजी ने तिलक की उस विद्वत्ता की ओर सकेत किया है, जिसने वेदो के समय के सबध मे पाश्चात्य विद्वानो द्वारा एक शताब्दी से की जा रही कल्पनाओ की जडो को हिला दिया था चर्चित लेखाश इस प्रकार है– "वेद के (यूरोपीय) विद्वानो ने उस समय वेदो का जो समय निर्धारित किया उसका आधार केवल वैदिक साहित्य का युगो मे मनमाना विभाजन था, उनके हिसाब से वैदिक काल २४०० ई पूर्व से अधिक नहीं हो सकता था मैंने 'दि ओरियन' (सन् १८९३) मे यह दिखाने का यत्न किया था कि उनके वे सब हिसाब न केवल बहुत ही छोटे, स्पष्ट और अनिश्चित भी थे मैंने यह भी दिखाया कि वेद मे ज्योतिष सबधी जो निर्देश पाये जाते हैं, उनके आधार पर वैदिक समय का निर्णय अधिक प्रामाणिक रूप से किया जा सकता है "[३३]

तिलक यदि राजनीतिज्ञ न होते तो एक अतर्राष्ट्रीय कीर्ति के महापडित होते सार्वजनिक जीवन मे व्यस्त रहने के कारण उन्हे लेखन का अवसर ही नहीं मिल पाता था विद्यावाचस्पतिजी ने उनके जेल जीवन सबधी लेखाश देते हुए उनके भाष्यकार, अध्यवसायी व बहुभाषाविद् व्यक्तित्व को व्यक्त किया है, जेल जीवन विषयक तिलकजी का चर्चित लेखाश इस प्रकार है– "वर्षो से मेरा यह विचार था कि भगवद्‌गीता पर आजकल जो टीकाये प्रचलित हैं, उनमे से किसी मे उसका रहस्य ठीक प्रकार से नहीं बताया गया अपने इस विचार को कार्यरूप में परिणत करने के लिए मैंने पश्चिमी और पूर्वी तत्वज्ञान की तुलना करके भगवद्‌गीता का भाष्य लिखा ग्रथ लेखन के अतिरिक्त मैंने फ्रेंच, जर्मन और पाली भाषाओ का स्वयमेव अध्ययन किया, गणित, ज्योतिष आदि के चितन मे भी थोडा–बहुत समय दिया है और उसके सबध मे कुछ टिप्पणियाँ भी तैयार की हैं "[३४]

(ग) चरित्र नायक के संवादों द्वारा- चरित्र चित्रण मे चरित्र के वक्तव्यों और लेखाशो की अपेक्षा वार्तालाप के माध्यम से अकित चरित्राकन की प्रणाली अधिक कलात्मक होती है जीवनी मे कथनोपकथन का पृथक् महत्व नहीं, फिर भी यदा-कदा चरित्र नायक की बातचीत का उसमे समावेश रहता है इस बातचीत से नायक की उत्कृष्टता-निकृष्टता सहज अनुमेय हो जाती है प विद्यावाचस्पतिजी ने 'नैपोलियन बोनापार्ट', 'प्रिस बिस्मार्क', 'महावीर गेरीवाल्डी', 'महर्षि दयानद' और 'लोकमान्य तिलक और उनका युग' मे यत्र-तत्र कथनोपकथन द्वारा भी चरित्र-चित्रण किया है स्वामी दयानन्द की निर्भीकता उसके इस सवाद से व्यजित है-

कर्णसिह- 'तुम गगाजी को नहीं मानते?'

स्वामीजी- 'जितनी गगाजी उतनी मानते हैं '

कर्णसिह- 'कितनी?'

स्वामीजी- 'हम लोगो की तो गगाजी कमण्डलु मे है '

(इस पर कर्णसिह ने गगास्तुति के कुछ श्लोक पढे)

स्वामीजी- 'यह सब तुम्हारी गप्प है वह केवल पीने का पानी है, उससे मोक्ष नहीं हो सकता, मोक्ष तो केवल कर्मों से होता है तुमको पोपो ने बहकाया है? (फिर स्वामीजी ने उसके माथे पर तिलक छाप देखकर कहा) 'तुमने क्षत्रिय होकर माथे पर यह भिखारियो का चिह्न क्यो धारण किया है'

कर्णसिह- 'हमारे स्वामीजी के सामने आपसे बातचीत भी न होगी तुम तो उनके सामने कीडे के तुल्य हो तुझ-से तो उनके जूते उठाते हैं'

स्वामीजी ने हॅसकर कहा- 'अपने गुरु को शास्त्रार्थ के लिए बुलाओ, यदि उनमे आने का सामर्थ्य न हो तो वहाँ चले ' (इस पर कर्णसिह बेतुकी कहने लगा और स्वामीजी को धमकाने लगा, स्वामीजी ने धमकी के उत्तर में चक्राकित सप्रदाय का खण्डन करते हुए कहा) 'तुम क्षत्रिय हो जो रामलीला मे लौंडो का स्वाग भरवाकर और महापुरुषो की नकल उतरवाकर उनको नचवाते हो, अगर तुम्हारी बहू-बेटी को कोई नचवाये तो तुम्हें कैसे बुरा लगे.' (यह सुनकर कर्णसिह की आँखे लाल हो गयीं और हाथ तलवार की मूठ पर गया.. दयानद ने ...केसरी के सदृश गरज कर कर्णसिह से कहा) 'अरे धूर्त यदि शस्त्रार्थ करना है तो जयपुर और धौलपुर के राजाओं से जा लडो, और यदि शास्त्रार्थ करना है तो अपने गुरु रंगाचार्य को वृन्दावन से बुलवा लो.' (इतने में वहाँ उपस्थित राजपूत कर्णसिह को ललकारने लगे, कायर कर्णसिंह अपने पहलवानों के साथ वहाँ से चला गया. लोगों ने प्रार्थना की कि इस घटना की सूचना पुलिस में दी जाय इस पर स्वामीजी ने कहा) 'यदि वह अपने क्षत्रियत्व को पूरा न कर सका तो हम क्यो अपने सन्यास धर्म से पतित होवें, संतोष करना ही परमधर्म है.'[३५]

इसी प्रकार 'लोकमान्य तिलक और उनका युग' में तिलक की दृढ़ता भी अग्रिम संवाद में व्यंजित है. बात सूरत अधिवेशन की है. लोकमान्य तिलकजी ने स्वागताध्यक्ष के पास यह लिखकर भेज दिया था कि- जब अध्यक्ष के नाम का प्रस्ताव तथा अनुमोदन हो चुके तब अधिवेशन को स्थगित करके मुझे सशोधन का प्रस्ताव उपस्थित करने का समय दिया जाय सुरेन्द्रबाबू के प्रस्ताव के बाद पं. मोतीलाल नेहरू समर्थन के लिए खडे हुए. उन्होंने थोडे से शब्दों में घोष के नाम का अनुमोदन किया उनका भाषण समाप्त होते ही प्रतिनिधियों से सम्मति लिये बिना ही स्वागताध्यक्ष ने डॉ. घोष से अध्यक्ष की कुर्सी पर बैठकर भाषण प्रारभ करने की प्रार्थना की डॉ. घोष 'लेडीज एण्ड जेंटलमेन' से आगे कुछ कहते कि लोकमान्य उनकी मेज के सामने खड़े हो गये और बोलना प्रारंभ किया-

'प्रतिनिधि भाइयो, मैंने एक सशोधन उपस्थित करने की सूचना दी थी, मैं उसे उपस्थित करने आया हूँ'

स्वागताध्यक्ष मि मालवीय आवेशपूर्ण स्वर मे बोले– 'आपको इस समय बोलना नियम विरूद्ध है'

लोकमान्य ने उत्तर दिया– 'आप इस समय सभापति नहीं है'

इस पर डॉ घोष ने यह समझकर कि मि मालवीय सभापति नहीं, तो मैं हूँ, लोकमान्य से कहा– 'मैं व्यवस्था देता हूँ कि आपका बोलना नियम विरूद्ध है'

लोकमान्य ने तुरन्त उत्तर दिया– 'आप नियमपूर्वक अध्यक्ष नहीं चुने गये'[३६]

(घ) अन्य व्यक्तियों के संस्मरणों द्वारा चरित्र नायक का चरित्र चित्रण- जीवनी मे सस्मरणो का उपयोग केवल जीवनीगत तथ्यो की प्रामाणिकता के लिए नहीं, वरन् नायक के चरित्र निरूपण की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है 'महावीर गेरीवाल्डी', 'महर्षि दयानद', 'प जवाहरलाल नेहरू' और 'लोकमान्य तिलक और उनका युग' मे प विद्यावाचस्पति ने अपने व अन्य व्यक्तियो के सस्मरणो के माध्यम से चरित्र नायको के व्यक्तित्व एव चरित्र को अकित किया है 'महावीर गेरीवाल्डी' के साहसी स्वभाव के विषय मे 'एक दर्शक' का सस्मरण है– 'यह रहस्यमय विजेता कीर्ति की अद्भुत चमक से घिरा हुआ था, वह न राजसभा के विवादो को जानता था और न जानना चाहता था जिस दिन रिपब्लिक पर आक्रमण होने वाला था, उसी दिन वह रोम मे घुसा रोमन लोगो के आत्माओ ने स्वय ही जान लिया कि सारा जनसमूह आशा और रक्षा का एकमात्र आधार समझकर उसी की ओर झुक पडा'[३७]

सन् १६३७ मे प नेहरू जी द्वारा किये गए धारासभाई चुनाव के तूफानी दौरो का वर्णन करते हुए प विद्यावाचस्पतिजी ने प नेहरू जी की समयबद्धता के बारे मे टिप्पणी की है– 'प्रात काल ५ बजे उठकर नित्यकर्मों से निवृत्त होकर सुबह का नाश्ता और ठीक सात बजे दौरे के लिए रवाना होना यदि नाश्ता सात बजे से दो–चार मिनिट भी पीछे आया तो प्रबधको की मुसीबत हो जाती थी पडित जी छोटा एटेचीकेस हाथ मे लेकर ठीक सात बजे चल पडते, यदि चाय पिलाने वालो को गरज हो तो भागकर कहीं रास्ते मे चाय पिला सकते थे, यदि सडक व मोटर तैयार मिली तो ठीक अन्यथा कभी कभी पैदल ही रवाना हो जाते थे मोटर पीछे से आती रहती थी मैने कई बार यह भी देखा कि यदि उनके सेक्रेटरी के तैयार होने मे पाच मिनिट लग गये तो उसे जोरदार झाड खाने के अलावा पीछे छूटना पडता था।"[३८]

(ड) लेखकीय वक्तव्य द्वारा चरित्र चित्रण- प विद्यावाचस्पति ने चरित्र नायको के सबध मे अधिकतर अपनी ओर से ही वर्णन किया है प्रथम पुरुष मे अपनी प्रिय ऐतिहासिक शैली मे वे अपने पात्रो का चरित्राकन करते हैं इस प्रकार वे नायक के अतरग और बहिरग के मार्मिक चित्र प्रस्तुत करते हैं जर्मन साम्राज्य की पुनर्स्थापना करने वाले प्रिंस बिस्मार्क के सबध मे प विद्यावाचस्पतिजी लिखते हैं– "उसके स्वभाव मे सबसे बडा अग यह था कि वह और किसी की सम्मति को अपनी सम्मति से ऊँचा मानने को तैयार न होता था, वह सम्मतियो मे बडा हठीला था "[३९] लोकमान्य तिलक के बाह्य व्यक्तित्व के विषय मे प विद्यावाचस्पति का कथन है– "उनके मुखमण्डल पर असाधारण बुद्धि, गभीरता और तपश्चर्या के चिह्न स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहे थे थोडी देर तक उनके शात चेहरे को देखते हुए यह प्रतीत होने लगता था कि हम सचमुच एक क्रातिकारी को देख रहे हैं माथे पर विचार की रेखाये थीं, मानो क्राति का शरीरधारी पुतला हो "[४०] राष्ट्र के लिए 'विषपान' कर 'अमृतदान' देने वाले गेरीवाल्डी की महत्ता का वर्णन करते हुए प

विद्यावाचस्पति कहते हैं– 'गेरीवाल्डी आदि देशभक्त अपनी जाति को अत्याचारो की श्रृखलाओ से छुडाना चाहते थे, अत उनके भाग्य मे कैदखाना, निर्वासन, भूख और दरिद्रता लिखे थे इस बात को वे भी जानते थे और जानकर भी मोक्ष के मार्ग को नहीं छोडना चाहते थे महात्माओ का यही तो महत्व है "[४१] बालक मूलशकर (दयानन्द) की उत्तरोत्तर वैराग्योन्मुख होती हुई प्रवृत्ति के सबध मे वे लिखते है– 'तपे हुए लोहे पर चोट लगी मूलशकर का हृदय बहिन की मृत्यु के दृश्य से पहले ही नरम हो चुका था इस दूसरी चोट ने (चचा की मृत्यु ने) उसे पूरी तरह वैराग्य की ओर झुका दिया ''[४२] इसके अतिरिक्त स्वलिखित जीवनियो की प्रस्तावनाओ मे भी प विद्यावाचस्पतिजी ने अपने नायको के महत्वपूर्ण गुणो का सक्षिप्त परिचय दिया है प नेहरू के स्वभाव का अकन वे इन शब्दो मे करते हैं– 'जवाहरलाल जी की साहसपूर्ण स्वाधीन चिंतन शैली पर यूरोपियन शिक्षा का गहरा प्रभाव है,[४३] 'मानी स्वभाव, अटूट साहस, नेतृत्व और निर्भयता जैसे सब गुण जवाहरलाल जी को अपने पिता से ही प्राप्त हुए है '[४४] महावीर गेरीवाल्डी के गुणो का सक्षेप मे परिचय देते हुए प विद्यावाचस्पति जी ने टिप्पणी की है– "गेरीवाल्डी मुखिया था उसका जीवन नि स्वार्थता और बहादुरी के शास्त्र का एक आवश्यक अध्याय था ''[४५]

जीवन चरित्र मे जीवनी नायक के अतिरिक्त उसके घनिष्ट सपर्क मे आने वाले अनेक पात्र होते हैं प विद्यावाचस्पति जी ने ऐसे व्यक्तित्वपूर्ण पात्रो की यत्र–तत्र झलक दी है गेरीवाल्डी के गुरु मेजिनी के विषय मे विद्यावाचस्पति जी लिखते हैं– "सरकार ने मेजिनी को किले मे बद कर दिया और उसका यश और प्रभाव बधन तोडकर चारो दिशाओ मे भाग निकला शासक लोगो ने उसके लेख छापने वाले समाचार पत्र बद कर दिये, तो बीसियो गुप्त मार्गो से होकर उसके देशभक्ति पूर्ण लेख नदी प्रवाहो की भाति दिग्दिगन्तर मे फैलने लगे मेजिनी के गुण–सुवर्ण पर सरकार के अत्याचारो ने आग का काम किया वह और भी चमकने लगा वह चमक फैलती गयी और नवयुवक इटली को जीवन की चमक दिखाने लगी ''[४६] विद्यावाचस्पति जी ने गेरीवाल्डी के गुरु मेजिनी को 'स्वतत्रता का हृदय' कहा है तो गेरीवाल्डी के सहयोगी पत्रकार एव राजनीतिज्ञ कावूर को 'सिर' तथा 'स्टीम ऐजिन' कहा है [४७] 'महावीर गेरीवाल्डी' मे विद्यावाचस्पति जी ने पीडमौंट के राजा विक्टर इम्मेनुअल का भी रेखाचित्र अकित किया है [४८] 'महर्षि दयानन्द' मे महर्षि के गुरु ब्रह्मर्षि विरजानन्द,[४९] समसामयिक सुधारक केशवचन्द्र सेन,[५०] और थियोसॉफिकल सोसाइटी के सस्थापक मॅडम ब्लैवेट्स्की,[५१] 'प जवाहरलाल नेहरू' मे नेहरू के पिता मोतीलाल,[५२] सहधर्मिणी कमला[५३] तथा महात्मा गाधी[५४] का चरित्र अत्यन्त सजीव एव मार्मिक है 'लोकमान्य तिलक और उनका युग' जीवनी मे तिलक जी के पारिवारिक सदस्यो के अतिरिक्त महात्मा फुले, लोकहितवादी,[५५] विष्णुशास्त्री चिपलूणकर,[५६] महादेव गोविद रानडे,[५७] गोपाल गणेश आगरकर,[५८] पण्डिता रमाबाई,[५९] गोपाल कृष्ण गोखले,[६०] महात्मा गाधी[६१] आदि गणमान्य नेताओ के चरित्र भी अकित हैं चरित्रनायक की जीवन यात्रा के कितने ही अन्य सहचर भी लेखक की सहृदयता के कारण इसमे चित्रित हैं प विद्यावाचस्पति जी के चरित्राकन की एक अन्य विशिष्टता उनका तटस्थ वैज्ञानिक दृष्टिकोण है चरित्र नायको का चरित्राकन करते समय वे उन्हे मानवीय रूप मे प्रस्तुत करते हैं, वह उनके जीवन का उज्जवल पक्ष एव कुरूपता का सत्य एव यथार्थ अकन करते हैं समाज सुधार की तुलना मे राजनीतिक स्वाधीनता को प्राथमिकता देने वाले लोकमान्य तिलक का चरित्राकन करते हुए विद्यावाचस्पति जी ने प्रतिपादन किया है, "तीव्र समाज–सुधार का विरोध उनके विश्वास का अग नहीं था, अपितु नीति का अग था" "जहाँ लोकमान्य तिलक विचारो मे समाज सुधार के समर्थक थे और हिन्दू जाति मे प्रचलित हानिकारक रूढियो को तोडना आवश्यक मानते थे वहाँ राजनैतिक आन्दोलन मे समाज–सुधार, हानिकारक न हो जाय, यह सोचकर समाज–सुधार की गाडी को थाम–थाम कर चलाने के पक्षपाती थे ''[६२]

महात्मा गाधी के यथार्थ रूप का चित्रण करते हुए विद्यावाचस्पति जी कहते हैं– "महात्मा जी केवल सत ही नही, बहुत बडे सगठन कर्ता हैं– इसका परिचय मुझे स्लेट पर लिखे हुए इस उत्तर के बाद मिला– 'मेरी तो सलाह है कि तुम इस वर्ष कॉग्रेस को दिल्ली मे निमन्त्रित मत करो मेरे चेहरे पर जो असर हुआ उसे महात्मा जी भाप गये कि मेरे अदर विद्रोह की भावना जागृत हुई है मेरे आश्रम से आने के कुछ मिनिट पीछे ही गाधी–ससार की मशीनो के कल–पुर्जे घूमने लगे आश्रम से कैंप मे पहुँचकर सदेश वाहको ने गुजरात, महाराष्ट्र आदि गाधीवादी प्रान्तो के नेताओ को आदेश दे दिया कि दिल्ली के निमत्रण का विरोध किया जाय"[६३]

प नेहरू की हिन्दुस्तानी मे व्याख्यान देने से घबडाने की प्रारभिक स्थिति का उल्लेख करते हुए विद्यावाचस्पति जी ने विवेचन किया है "इग्लैंड मे इतने वर्षो तक रहने के कारण हिदुस्तानी भाषा पर इतना प्रभुत्व नहीं था, और जबान परदेसी–सी प्रतीत होती थी, परन्तु किसान तो अग्रेजी समझते नही थे, और उनसे कुछ कहे बिना जवाहर लाल जी से न रहा गया इसलिए लाचार होकर आपको हिन्दुस्तानी मे व्याख्यान देने का अभ्यास डालना ही पडा"[६४] नेहरू जी की निर्बलता का स्पष्टरूपेण उल्लेख करते हुए विद्यावाचस्पति जी लिखते हैं– जवाहरलाल जी मे सदा एक निर्बलता रही है जहाँ महात्मा गाधी उनके विरुद्ध हो वहाँ वह झुक जाते है कलकत्ते मे उनके पूर्ण स्वाधीनता सबधी प्रस्ताव के स्वीकार हो जाने की पूरी आशा थी, यदि महात्मा जी अपने उदार और नरम हथियारो से जवाहरलाल जी को निर्जीव करके न डाल देते"[६५] इन सबसे विद्यावाचस्पति जी की चरित्र–चित्रण सबधी तटस्थता एव वैज्ञानिकता का परिचय मिलता है इस प्रकार प विद्यावाचस्पति जी अपने जीवन–साहित्य के चरित्र–चित्रण मे अत्यन्त सफल रहे हैं, उन्होने अपने जीवनी नायको को मानवीय धरातल पर चित्रित किया है

४.६ परिवेश वर्णन :-

जीवन–चरित्र का नायक देश–काल की सीमा मे आबद्ध होता है उसके कार्य दूसरे के कार्यो से सबधित एव उसका जीवन सम–सामयिक परिस्थितियो से प्रभावित होता है इसलिए वातावरण का चित्रण जीवनी लेखक के लिए अनिवार्य हो जाता है प विद्यावाचस्पति जी मे वातावरण चित्रण की अद्भुत क्षमता है देश–काल के चित्रण मे विद्यावाचस्पति जी ने चरित्र नायक से सबद्ध स्थानो एव परिवेश का सजीव एव यथार्थ रूप प्रस्तुत किया है, विद्यावाचस्पति जी के जीवनी साहित्य मे देश–काल का फलक अत्यन्त विशद है देश–वर्णन मे विद्यावाचस्पति जी ने विभिन्न प्रदेशो, नगरो एव गावो का भौगोलिक एव ऐतिहासिक परिचय दिया है उनके गहन ऐतिहासिक पाण्डित्य का सर्वत्र दिग्दर्शन होता है और साथ ही भारतीय प्रदेशो की यात्रा का उनका स्वानुभूत परिचय भी है 'महावीर गेरीवाल्डी' मे विद्यावाचस्पति जी ने गेरीवाल्डी की जन्मभूमि का जो ऐतिहासिक परिचय दिया है, वह द्रष्टव्य है– "इटली मे नाईस नाम का एक नगर है, जो देश के एक छोर पर होने के कारण कई हाथो मे घूम चुका है पहले वह इटालियन लोगो के पास था, फिर उस पर टर्की के बेडे ने धावा किया फ्रेंच वीरो ने उसे दो बार सर किया और नैपोलियन के पीछे वह सार्डिनिया की रियासत के अधीन हो गया एक विलक्षण चरित्र वाले महापुरुष की जन्म–पुरी मे जैसी विलक्षणता होनी चाहिये वह नाईस मे विद्यमान थी"[६६]

प जवाहर लाल जी के उपनाम 'नेहरू' मे समाविष्ट देश विशेष का स्पष्टीकरण करते हुए विद्यावाचस्पति जी लिखते हैं "पहले यह परिवार 'दरियाकौल' कहलाता था, परन्तु दिल्ली मे चान्दनी चौक की नहर के किनारे रहने के कारण 'नेहरू' नाम से पुकारा जाने लगा"[६७] इसी प्रकार 'प्रिस बिस्मार्क' मे प्रशिया[६८], 'महर्षि दयानन्द' मे हिमालयीन प्रदेश[६९], 'प जवाहरलाल नेहरू' मे काश्मीर[७०], 'लोकमान्य तिलक और उनका युग' मे मुबई[७१] आदि का वर्णन प्रासगिक रूप मे हुआ है कहीं–कहीं

पर इन स्थलो की भौगोलिक स्थिति और कहीं पर उनके ऐतिहासिक महत्त्व आदि का यथार्थ परिचय भी विद्यावाचस्पतिजी ने दिया है, पर उनकी वृत्ति देश–विदेश के चित्रण की अपेक्षा देशवासियो के चित्रण मे अधिक रही है स्थान वर्णन मे विद्यावाचस्पति जी का ध्यान प्राकृतिक सौन्दर्य की ओर गया तो है, पर बहुत कम प्रकृति चित्रण उनके साहित्य मे मुख्य तत्व के रूप मे नहीं, अपितु सहयोगी तत्व के रूप मे आया है 'प्रिस बिस्मार्क' मे लडाई के वर्णन का चित्रण करते हुए सूर्य भगवान को विद्यावाचस्पतिजी ने दर्शक के रूप मे चित्रित करते हुए कहा है – "रात भर गोलियॉ दनदनाती रही खूब नरहत्या हुई आखिर प्रभात हुआ पूर्व दिशा से उदित होते हुए भगवान् भास्कर ने बर्लिन की गलियो को लहू से लाल देखा सूर्य भी प्रात काल पूर्व दिशा मे सिदूर बिखेरता है, किन्तु उसका प्रयोजन रक्षा होता है, नाश नहीं देव और मनुष्य मे यही भेद है मनुष्य का बखेरा हुआ सिन्दूर उसके राक्षसीय भावो का परिचायक होता है[७२]" सक्षिप्त मे काश्मीर का सौन्दर्य वर्णन करते हुए विद्यावाचस्पतिजी लिखते हैं– "काश्मीर का आकर्षण भी असाधारण है वहॉ पहुँचकर छूटना आसान नहीं है उन हरी–भरी घाटियो मे गजब की मनमोहिनी शक्ति है[७३]" हरिद्वार के सप्तस्रोत से उत्तर की ओर दिखाई देने वाले प्राकृतिक दृश्य का जो मनोरम चित्र विद्यावाचस्पतिजी ने खींचा है, वह द्रष्टव्य है – "पर्वत के पीछे पर्वत, जगल के ऊपर जगल, यही क्रम बराबर चला गया है यहॉ तक कि हिमालय की गगनभेदिनी चोटियॉ चादी के सदृश चमकते हुए बर्फ के मुकुट मे अतर्धान हो गई हैं इस चादी का पिघला हुआ प्रवाह, घाटियो, कन्दराओ और तलहटियो मे से होकर हरिद्वार के पास से गुजरता है, जल क्या है, नीलमणियो की छवि से प्रतिबिम्बित शुद्धतम अमृत है, जिसकी शीतलता सोने मे सुगध के समान है"[७४]

एकाधिक स्थानो मे विद्यावाचस्पतिजी देश वर्णन के अतर्गत उस भू–भाग का भौगोलिक परिचय देने के अतिरिक्त वहॉ के निवासियो और उनके स्वभाव विशेष का भी उल्लेख करते हैं उन्होने पजाब की मीमासा इस प्रकार की है, "पजाब का हृदय नर्म है, उस पर प्रभाव डालनासहज है पजाबियों के हृदय प्रभाव को शीघ्र ले लेते हैं और फिर उसके अनुसार क्रिया और प्रतिक्रिया के आरभ होने मे देर नहीं लगती पजाबी के सोचने और करने मे थोडा ही अन्तर है अन्य प्रान्तो के लोग समझ ही नहीं सकते कि एक पजाबी ने कब सोचा, कब कहा और कब किया? जितनी देर मे उनका सोचना समाप्त होता है उतने मे पजाबी कर डालता है"[७५] महाराष्ट्र के विषय मे विद्यावाचस्पति जी ने प्रतिपादित किया है, "महाराष्ट्र प्रान्त भौतिक दृष्टि से अपनी कठोरता के लिए प्रसिद्ध है वहॉ मैदान कम और ऊॅची–नीची पहाडियॉ अधिक हैं महाराष्ट्र के निवासियो की परिश्रमशीलता और खरेपन का यह भी एक कारण है खरेपन से मेरा अभिप्राय यह है कि उनमे अभिधा का प्रेम अधिक और व्यजना का कम है और जब व्यजना आती भी है तो अभिधा की कठोरता को नरम नहीं करती, अपितु उसकी सहायक बन जाती है, जो लोग महाराष्ट्र की इस विशेषता को नहीं समझते, वे प्राय उस प्रान्त के सबध मे गलत राय बना लेते हैं साधु भाषा में शिवाजी की चतुराई को 'धूर्तता' कहना या किसी राजनीतिज्ञ को बुरा लिखने के स्थान पर 'लबाड' लिखना भाषा की अभिधा प्रधानता का सूचक हो सकता है, विद्वेष या खोट का सूचक नहीं"[७६]

कुभ मेले को भारतभूमि की एकता को सिद्ध करने वाला बतलाते हुए विद्यावाचस्पतिजी ने कहा है – "भीड मे दृष्टि उठाकर देखिए कहीं अनघड पजाबी का साफा दिखलायी देता है, तो कहीं लखनऊ के शौकीन की दुपल्ली टोपी मे से घुगराले बाल दृष्टिगोचर होते हैं, कहीं मद्रासी के नगे सिर पर गोखुर से दुगुनी शिखा नजर आती है, तो कहीं नाजुक गुजराती के नाटे शरीर के शिरोभाग पर लाल पगडी सुहाती है सारांश यह है कि भारत भर के हिन्द निवासी एक डोरी मे बधे हुए हैं कुभ के मेले पर अविश्वासी से अविश्वासी हृदय भी इस बात पर विश्वास किये बिना

न रहेगा.''[७७] यूरोप के विषय मे विद्यावाचस्पतिजी ने टिप्पणी की है, वहॉ पर 'किसी भले मानस को बिना कोट पहने मिलना उसका अपमान समझा जाता है'[७८]

काल–वर्णन मे प विद्यावाचस्पतिजी ने राजनीतिक, सामाजिक एव धार्मिक, आर्थिक परिस्थितियो का यथार्थ चित्रण किया है 'प जवाहरलाल नेहरू' मे शोषित किसान के सघर्ष का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करते हुए विद्यावाचस्पतिजी ने लिखा है – ''अवध के किसान भारत के दरिद्रतम प्राणी हैं उनकी परिस्थिति मनुष्यो की भी नहीं सरकार और ताल्लुकेदार इन दो भारी शिलाओ के नीचे आकर उनके शरीर की हड्डियॉ तक पिस रही हैं. जमीन अनाज पैदा करे या न करे, उनके पास खाने योग्य अन्न हो या न हो, लगान तो मिलना ही चाहिये, सीधी तरह न मिलेगा तो ताल्लुकेदार के कारिन्दे उनके पेट मे से निकालेगे किसानो की यह दशा हो रही थी कि मार खाये और रोने न पाये, उनके पेट से खुर्च–खुर्च कर मालगुजारी निकाल ली जाती थी और जब शिकायत करे तो पीटा जाता था जहॉ जमींदारी पद्धति है, वहॉ तो उन बेचारो की मौत है सरकार का पेट भरना चाहिये और जमींदार की रईसी भी चलनी चाहिये यह सब किसके सर पर? उस गरीब किसान के सर पर, जो रात और दिन मेहनत करके दो समय पूरा और पुष्ट भोजन नहीं पा सकता, न जिसके सिर पर छिपाने को मिट्टी का झोपडा है और न लज्जा ढकने को पूरा कपडा ''[७९] सन् १८६३ के जर्मन के राजनीतिक आन्दोलन के विषय मे प विद्यावाचस्पति ने प्रतिपादित किया है, ''इस समय प्रशिया मे क्या दशा थी? राष्ट्रीयता के विचार फ्रास और इग्लैण्ड से आकर प्रजा के दिलो मे स्थान पा चुके थे प्रजा राजा के तथा राजमन्त्रियो के अधिकारो को कम करके अपने अधिकारो को बढाना चाहती थी राजा पर प्रसिद्ध प्रशियन विश्वास की मात्रा कम हो रही थी राजसभा, जिसके देश के प्रतिनिधि, राजकार्यो पर विचार करते थे, राजा से और मन्त्रि दल से नाराज थी केवल नाराज ही नहीं थी, उसके दिल मे अक्षरश फ्रास की राज्य क्रान्ति का अनुकरण करने की लौ लग रही थी अपनी इच्छा को न मानने वाले राजा के लिए राज्य करना असभव हो जाय, यही उसका यत्न था ''[८०]

सन् १७८६ मे फ्रास के स्वाधीनता सग्राम की शौर्य गाथा 'नैपोलियन बोनापार्ट' मे चित्रित की गई है 'प्रिस बिस्मार्क' मे सन् १८११ से १८७१ तक के जर्मनी स्वाधीनता के इतिहास का अनुशीलन कर जर्मन साम्राज्य की पुन स्थापना की पूर्व पीठिका प्रस्तुत की गई है सन् १८२० से १८७१ तक की इटली के स्वाधीनता सग्राम की गौरव गाथा 'महावीर गेरीवाल्डी' मे अभिव्यक्त हुई है 'अमर शहीद जतीनदास का जीवन चरित', 'प जवाहर लाल नेहरू', और 'लोकमान्य तिलक और उनका युग' मे भारतीय स्वाधीनता सग्राम के सुन्दर और उत्साहवर्धक चित्र प्रस्तुत करने मे प विद्यावाचस्पतिजी सफल रहे हैं सूरत अधिवेशन (सन् १६०६) के पश्चात लखनऊ अधिवेशन (१६१६) का चित्र प्रस्तुत करते हुए भारतीय राजनीतिक जागृति का अकन 'लोकमान्य तिलक और उनका युग' की इन पक्तियो मे द्रष्टव्य है ''वहॉ (लखनऊ मे) मानो त्रिवेणी सगम हो गया, कॉग्रेस की वेदी पर – गर्मदल, नर्मदल और मुस्लिम लीग – तीनो मिल गये वहीं पर पहले पहल गाधीजी, तिलक महाराज और सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी एक साथ कॉग्रेस के मच पर दिखाई दिये मानो राष्ट्रीय महासभा का उजडा हुआ घर फिर से आबाद हो गया ''[८१]

'महर्षि दयानन्द' तथा 'लोकमान्य तिलक और उनका युग' मे भारतीय समाज एव धर्म के अनेक चित्र हैं, जिनमे उनके शुक्ल पक्ष के साथ कृष्ण पक्ष भी हैं पं विद्यावाचस्पति जी के अनुसार भारत की सुन्दरता एव कुरूपता के दर्शन अनायास कुभ मेलो के अवसर पर हो जाते हैं. कुभ मेले मे दिखाई देने वाले उज्जवल पक्ष का विवेचन करते हुए वे लिखते हैं– ''हिन्दू जाति श्रद्धामयी है. उस श्रद्धा का कुभ के मेले मे मानो समुद्र उमड पडता है जहॉ एक ओर ऐसे वृद्ध पुरुष लठिया

टेक कर स्टेशन से धर्मशाला की ओर जाते दिखाई देगे, जिनकी कमर झुक गई है, दात मुँह को छोड भागे हैं, एक पाव यमपुरी की दहलीज पर धरा जा चुका है, वहाँ दूसरी ओर दूधमुँहे बच्चों को गोद मे लिये, धूप और प्यास का कष्ट सहन करती हुई, असूर्यंपश्या हिन्दू ललनाये भारत की माताओ के अतुल विश्वास और तप की सूचना देगी, कुभ पर गृहस्थ लोग लाखो की सख्या मे एकत्र होकर साधु–सतो के दर्शन करते हैं गगा के विशुद्ध शीतल जल मे स्नान करके अपने को धन्य मानते हैं, और अब तक भी हिन्दूपन जीवित है, इसकी सूचना देते हैं, ऐसे ही मेले भारत की आर्य जाति की एकता सिद्ध करते हैं"[८२] शुक्लपक्ष के उपरान्त कुभ मेले मे दिखाई देने वाले कृष्णपक्ष का वर्णन करते हुए विद्यावाचस्पति जी स्वीकार करते हैं – (वहाँ) "छलकपट आलस्य और स्वार्थ के पुतले बिना ढूँढे ही मिल जायेगे भोगमय त्याग, दुराचारमय साधु–स्वभाव और हृदय का विरोधी रूप आपको पग–पग पर दिखाई देगा जो गृहस्थ नहीं हैं, उनके अत पुर मे पुत्र–कलत्र, जिनकी आमदनी का कोई साधन नहीं है, उनके डेरो पर हाथी और घोडे, और जो त्यागी कहलाते हैं, उनके सन्दूको मे लाखो के तोडे, यह सब कुछ बिना विशेष यत्न के ही दीख जायगा सरल हृदय भक्त और भक्तिनो के विश्वास का घात करने वाला वेशधारी मठेश्वर भिन्न–भिन्न उपायो से अपने इन्द्रिय–सुख की साधना मे मग्न दिखाई देगे, जिसे हिन्दू धर्म की गिरी हुई दशा देखनी हो वह ऑखे खोलकर एक बार हरिद्वार के कुभ की सैर कर आये जहाँ एक ओर कुभ पर एकत्र हुआ जनसमूह देशभर के हिन्दुओ की मौलिक एकता को सूचित करता है वहाँ साथ ही वह हिन्दुओ की नासमझी और अधी श्रद्धा मे एकता को भी सूचित करता है"[८३]

हिन्दुओ के अज्ञान–अधकार को दूर करने के लिए समाज–सुधार का कार्य अत्यावश्यक था ब्रह्मसमाज, प्रार्थनासमाज, सत्यशोधक समाज और आर्यसमाज के कार्यकर्ता इस दिशा मे सक्रिय भी थे, पर एक वर्ग ऐसा भी था जो समाज–सुधार का कार्य लोगो की परपरागत साप्रदायिक भावनाओ को दुखाने वाला होने के कारण, कहीं वह राजनीतिक आन्दोलन मे बाधक न बने, यह सोचकर, समाज–सुधार के कार्य को रोक–रोक कर चलाने का पक्षपाती था वह देश मे फैली सामाजिक–धार्मिक परिस्थितियो के कृष्णपक्ष को नजर अन्दाज करके राजनीतिक स्वाधीनता को पहले प्राप्त करना चाहता था उन्हे यह भय था कि यदि स्वदेश की चेतन सत्ता ही नष्ट हो जायेगी फिर समाज–सुधार का प्रश्न भी लगभग समाप्त प्राय हो जायेगा, 'लोकमान्य तिलक और युग' मे देश की इस किकर्तव्यविमूढता का विश्लेषण करते हुए कहा गया है कि – "उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षो मे देश की राजनैतिक परिस्थिति दिनोदिन बिगड रही थी अग्रेजी शिक्षा और अग्रेजी सभ्यता का जादू राष्ट्र के आतरिक रस को चूस रहा था, ऐसी दशा मे स्वाधीनता की भावना से भरे हुए भारतीय हृदय यदि बेचैन हो उठे थे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं थी वे अनुभव करने लगे थे कि देश के सामने समाज–सुधार, शिक्षा–सुधार आदि की अनेक समस्याये विद्यमान होते हुए भी जो समस्या अन्य समस्याओ की जननी है, वह राजनैतिक दासता की समस्या है, पहले उसे हल कर लेना अनिवार्य है उसके रहते कोई समस्या भी पूरी तरह हल नहीं हो सकती"[८४] इस प्रकार प विद्यावाचस्पति जी ने अपने चरित्र ग्रथो मे आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक स्थिति का चित्रण किया है

देश–काल वर्णन की उपरोक्त विवेचना के पश्चात् यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि विद्यावाचस्पतिजी का गभीर ऐतिहासिक ज्ञान झलकता है साथ ही अनेक स्थानो की विद्यावाचस्पतिजी ने स्वय यात्रा की है, इसलिये उनके वर्णन सजीव यथार्थ एव स्वाभाविक प्रतीत होते हैं परिवेश वर्णन मे विद्यावाचस्पतिजी की दृष्टि समाज के सभी रूपों पर टिकी हुई प्रतीत होती है और सभी का वर्णन उनकी विभिन्न जीवनियों में है इसके अतिरिक्त परिवेश वर्णन मे कहीं–कहीं

उन्होने तुलनात्मक वर्णन भी प्रस्तुत किए हैं फ्रास, इटली और जर्मनी का वर्णन करते हुए विद्यावाचस्पतिजी भारतीय इतिहास की ओर भी सकेत करते हैं जर्मन साम्राज्य की पुन स्थापना का वर्णन करते हुए उन्होने लिखा है– "भारतवर्ष रूपी उद्यान किसी दिन हरा–भरा था, वह फलो और फूलो से लदा हुआ था, किसे अनुमान था कि इतना शीघ्र ही उस पर मुसलमानो का दल टिड्डियो की तरह आ टूटेगा और उसके सारे गौरव को मिट्टी मे मिला देगा "[५] इस प्रकार विद्यावाचस्पतिजी निजी जीवनी–कृतियो मे वातावरण का चित्रण कर इतिहास की झलक प्रस्तुत करते हैं इस तरह 'नैपोलियन बोनापार्ट', 'प्रिस बिस्मार्क' तथा 'महावीर गेरीवाल्डी' मे १८ वीं व १९ वीं सदी की यूरोप देशीय राजनीतिक उथल–पुथल की झाकी है 'महर्षि दयानद', 'अमर शहीद जतीनदास', 'प जवाहरलाल नेहरू' व 'लोकमान्य तिलक और उनका युग' मे उन्नीसवीं सदी से लेकर बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि अपने यथार्थ रूप मे प्रस्तुत है

४.७ शैली:-

जीवन–चरित मे शैली का महत्व सर्वाधिक है शैली की शक्ति से साधारण चरितनायक की जीवनी भी आकर्षक बन जाती है चरित्रकार को किसी काल्पनिक नायक की अवतारणा तो करनी नहीं होती, उसे केवल एक साचा तैयार करना होता है, जिसमे उसके चरित्रनायक की घटनाये सुसबद्ध रूप मे प्रस्तुत हो सके यही साचा शैली के नाम से पुकारा जाता है 'एक सफल शैलीकार की लेखनी के पारस–स्पर्श से ही जीवनी साहित्यिक विधा का रूप धारण कर पाती है इसलिये चरित्रनायक के जीवन की घटनाओ के समूह से अग्राह्य को त्यागकर, अपेक्षित को ग्रहण कर सम्यक् सामजस्य स्थापित करते हुए जीवनी मे सर्वत्र एकसूत्रता का निर्वाह करना चरित्रकार का सर्वोपरि कर्तव्य है "[५] इस दृष्टि से विद्यावाचस्पति जी हिन्दी के सफल जीवनी लेखक एव शैलीकार हैं उन्होने अपने चरित्रनायक से सबद्ध अपेक्षित तत्वो का सश्लेषण, विश्लेषण, निर्वाचन एव सस्थापन अत्यत बुद्धिमत्ता से किया है जीवन–वृत्त के वर्णन मे सर्वत्र सुसगठन एव अन्विति है, आवश्यक का समावेश एव अनावश्यक का परिहार है सर्वत्र, तटस्थ एव निरपेक्ष होकर अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व को विसर्जित न करते हुए विद्यावाचस्पति जी ने अपने चरित्रनायको के गुण–दोषमय व्यक्तित्व का वर्णन आकर्षक शैली मे किया है अधिकाश जीवनियाँ वर्णन–विश्लेषण प्रधान शैली मे ही लिखी गयी हैं कहीं–कहीं सवादात्मक एव सस्मरणात्मक शैली का प्रयोग कर विद्यावाचस्पतिजी ने वृत्तो को सहज एव भव्य रूप मे प्रस्तुत किया है इस दृष्टि से उनकी जीवनियाँ अत्यत सफल सिद्ध होती हैं

प विद्यावाचस्पतिजी की भाषा सर्वत्र सुबोध, सरस एव सहज है साथ ही उसमे साहित्य माधुर्य, सौष्ठव एव परिनिष्ठता भी है जीवन की किसी घटना का वर्णन हो, स्थान अथवा देश की स्थिति एव परिवेश का चित्रण हो, पात्रो के अन्तर्द्वन्द्व अकित करना हो, अथवा अपनी विचारधारा की अभिव्यक्ति करनी हो सर्वत्र विद्यावाचस्पतिजी की भाषा–शैली समर्थ एव सशक्त रूप मे वर्तमान है कहीं शिथिलता नहीं शैली द्वारा ही वे जीवनी के तथ्यो को रोचक रूप प्रदान कर सकते हैं उनकी जीवनियाँ औपन्यासिक शैली की तरह ही प्रवाहमयी हैं सरल भाषा शैली में महावीर गेरीवाल्डी के विवाह का वर्णन द्रष्टव्य है– "समुद्र के तट पर एक पहाडी थी दृष्टि दौडते–दौडते एक पहाडी पर पडी, देखा, तो वहाँ तीन–चार युवती कन्याये घूम रहीं थी, उनमे से एक पर नायक की दृष्टि जा पडी उसके अन्त करण ने कहा– 'यही सुन्दरी मेरी प्राणेश्वरी होगी ' जहाज किनारे पर लगाकर गेरीवाल्डी गाव के पास पहुँचा, इतनी देर मे कन्याये अपने–अपने घरो को चली गयीं थीं, अब उस प्राणेश्वरी को कहाँ ढूँढा जाय, न जाने वह किस घर की चाँदनी थी, घर–घर ढूँढना अनुचित था, तो भी गेरीवाल्डी गाव मे चक्कर लगाने लगा, एक द्वार पर एक महाशय खडे थे जो गेरीवाल्डी के पूर्व परिचित थे उन्होने गेरीवाल्डी को घर मे बुला लिया और आतिथ्य किया आतिथ्य करने के लिए

गृहपति ने कन्या को बुलाया दैवयोग देखिये वही कन्या गैरीवाल्डी को जहाज पर से दिखाई दी थी उसे ही उसने ऑखो की जयमाला पहनायी थी पिताजी की ऑख बचाकर मिलना तो कठिन कार्य न था दूसरे दिन न वहाँ गेरीवाल्डी था—न वह कन्या कन्या का नाम एनीटा था एनीटा को गेरीवाल्डी ने इतना ही कहा 'तू मेरी है' और वह उसकी हो गयी दोनो प्रेमी भुजा में भुजा दिये घर से बाहर हो गये यह एनीटा जगप्रसिद्ध एनीटा है गेरीवाल्डी के साथ एनीटा ने भी दीनो के दु ख हरने के लिए और स्वाधीनता की रक्षा करने के लिए अपना लहू बहाया था और जान को खतरे मे डाला था ''[८७]

प विद्यावाचस्पति की शैली मे तथ्य निरूपण एव वर्णन—विश्लेषणात्मक की प्रधानता है, पर प्रवाह सर्वत्र विद्यमान है भाषा मे सस्कृत के तत्सम्, तद्भव, देशी, विदेशी शब्द सहज स्वाभाविक रूप से आ जाते हैं तथा उसमे मुहावरो का प्रयोग भी दर्शनीय है. 'प्रिंस बिस्मार्क' से एक उदाहरण प्रस्तुत है – 'चाहे भिन्न समयो में एक ही देश की, और चाहे एक समय मे अनेक देशो की दशा पर दृष्टि डालिये, आप सब कुछ गडबड पायेगे काल रूपी मदारी की चालो को समझना लोहे के चने चबाना है इस प्रकार साधारणतया इतिहास पर दृष्टि डाले तो वह तूफान से इतराये हुए समुद्र की भाति प्रतीत होता है एक लहर आकाश से बाते कर रहीं है, तो दूसरी लहर किनारे से टक्कर मार रही है कहीं पानी का पहाड है, तो कहीं गहरा कुऑं है, किन्तु जरा गहरी दृष्टि से देखिए, और सारा दृश्य ही बदल जायेगा जो लोग इसकी निराली चालों को विवेक की गहरी नजर से परखते हैं, वे ही उस नुकीले मनको मे एक सूत्र पिरोया हुआ पाते हैं उनकी दृष्टि मे इतिहास एक 'बुझारत' नहीं रहता किन्तु ससार रूपी महासग्राम का क्रमबद्ध महाकाव्य हो जाता है. एक लडी मे सब घटनाये बध जाती हैं एक तागे मे सब मनके पिरोये जाते हैं ''[८८]

जीवनी की घटनाओ मे रोचकता का गुण अनिवार्य है यही रोचकता रसज्ञ मनोरजिनी शक्ति है, जो सहृदय पाठक को अभिभूत करती है, जीवनी मे यह रोचकता एक तो विषयगत होती है तथा दूसरी शैलीगत चरित्रनायक के जीवन—सघर्ष, मानसिक द्वन्द्व, घात—प्रतिघात एव घटनाओ के वैविध्य से प विद्यावाचस्पतिजी की जीवनियॉं रोचक हैं ही साथ ही शैलीगत रोचकता भी उनमे विद्यमान है. उनकी मार्मिक वर्णनात्मक शैली, प्रवाहमयी भाषा, चित्रात्मकता और घटनाओ के क्रमिक सयोजन से उनकी जीवनियो मे अद्भुत रोचकता एव सरसता का सचार हुआ है

इस प्रकार विद्यावाचस्पतिजी की शैली जीवन—वृत्त के तथ्यों के सश्लेषण—विश्लेषण के साथ उन्हे सुचारू रूप मे सयोजित करती हुई, दृष्टिगोचर होती है. तथ्य निरूपण एव वर्णनात्मक के प्रलोभन का सवरण न करती हुई भी वह आकर्षक सहज एव रोचक है. भाषा की सहजता एव स्वाभाविक माधुर्य उसकी अपनी विशिष्टता है

४.८ उद्देश्यः-

जीवनी का उद्देश्य अपने जीवनी के नायक को अमरत्व प्रदान करना तथा उसके जीवन चरित्र से पाठको को चरित्र निर्माण की प्रेरणा देना होता है. मनुष्य एक अनुकरणशील प्राणी है वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे ऐसा नेतृत्व चाहता है, जिसके पदचिह्नो पर चलकर वह अपने लक्ष्य तक सहजतया पहुँच सके इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए जीवनियों की रचना की जाती है सर सिडनी के शब्दों में 'सभ्य मानव मे यह स्वाभाविक अभिलाषा रहती है कि वह जनसाधारण में अपने चरित्र एवं कार्यों के द्वारा असाधारण अथवा महान् व्यक्तियों की स्मृति को जीवित रखे, जीवनी उसकी पूर्ति है ''[८९] इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये जीवनियों की रचना की जाती है. यदि आप सामाजिक क्षेत्र मे, क्रान्ति लाना चाहते हैं तो महर्षि दयानन्द, महात्मा फुले, डॉ. अंबेडकर, यदि आप राष्ट्र निर्माता

बनना चाहते हैं तो प्रिंस बिस्मार्क, अब्राहम लिंकन, सरदार पटेल, यदि आप यशस्वी साहित्यकार बनना चाहते हैं तो कालिदास, शेक्सपियर और महादेवी वर्मा के जीवन चरित आपके पथ–प्रदर्शक होगे, जीवनी मे लेखक के निजी विचारो की अभिव्यक्ति का भी परोक्ष रूपेण समावेश रहता है क्योकि लेखक की जो अनुभूतियॉं मन मे सचित होती रहती है, अभिव्यक्ति का मार्ग खोलती हैं, ओर जब लेखक और जीवनी के नायक मे समान भावना मिलती है तो वह जीवन–चरित्र की रचना करता है मनुष्य को साहित्य का लक्ष्य स्वीकार करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते है– "वास्तव मे हमारे अध्ययन की सामग्रीप्रत्यक्ष मनुष्य है आपने इतिहास मे इसी मनुष्य की धारावाहिक जय यात्रा की कहानी पढी है साहित्य में इसी के आवेगो, उद्‌वेगो और उल्लासों का स्पन्दन देखा है, राजनीति मे इसी की लुका–छिपी के खेल का दर्शन किया है, और अर्थशास्त्र मे इसी रीढ की शक्ति का अध्ययन किया है"[१०] इसी धारणा को डॉ चन्द्रभानु सोनवणे ने अत्यन्त ही सक्षेप मे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि– "साहित्य मनुष्य जीवन का अध्ययन है, कहीं यह अध्ययन कल्पना के सहारे किया जाता है और कहीं वास्तविक जीवन तथ्यो के माध्यम से"[११]

प विद्यावाचस्पतिजी की सभी जीवनी कृतियाँ सोद्देश्य हैं 'महावीर गेरीबाल्डी' (१८०७–१८८२) का आदर्श चरित्र प्रस्तुत करते हुये स्वय उन्होने कहा है– "हे भारत के देशभक्तो ! यूरोप के व्यापार भक्तो का अनुकरण छोडकर, सच्चे भक्त गेरीवाल्डी के पदानुगामी बनो स्वार्थ से सने हुए देशप्रेम का पाठ छोडकर स्वार्थ–त्यागयुक्त देशभक्ति की माला जपो, और आराम कुर्सी को देशभक्ति का पाठ पढाना छोडकर कार्य के मैदान मे खम ठोककर आओ, तभी मातृभूमि के दु ख दूर होगे और तभी हमारी आशाये पूर्ण होगी"[१२] गेरीवाल्डी की जीवनी को 'स्वाधीनता की अभिलाषा', 'स्वाधीनता के लिएयत्न' और 'स्वाधीनता की लब्धि' इन तीन भागो मे विभाजित कर लेखक ने पाठको को यह सकेत दिया था कि स्वाधीनता के प्रति ललक जगने पर जब उसके लिए एडी से चोटी तक यत्न किया जाता है तो वह स्वाधीनता निश्चित रूप से गलहार बन जाती है

'नैपोलियन बोनापार्ट' (१७६६–१८२१) और 'प्रिंस बिस्मार्क' (१८१५–१८६८) जीवनी भी विद्यावाचस्पतिजी ने पाठकों मे देशभक्ति के भाव भरने की दृष्टि से ही रची थी. उन्होंने 'प्रिंस बिस्मार्क' के द्वितीय अध्याय का शीर्षक ही 'स्वाधीनता की कथा' रखा था वे तो भारतवासियों को स्वाधीन देशो की कथा सुनाकर 'हिमाद्रि शिखरो'[१३] को पराधीनता के पाश से मुक्त कराने का सदेश दे रहे थे. प्राचीन आर्य राजनीति से विरक्त व अनभिज्ञ हुई भारतीय प्रजा को 'राजनीति का सुदीर्घ पाठ' पढाने के लिए ही उन्होने 'प्रिंस बिस्मार्क' नामक जीवनी लिखी थी इसी उद्देश्य से वे अमेरिका के देशभक्त जार्ज वाशिंगटन (१७३२–१७६६) की भी जीवनी लिखना चाहते थे.[१४]

६३ दिन तक भूख हड़ताल करने के उपरान्त भी न डगमगाने वाले 'अमर शहीद जतीनदास' की जीवनी लिखकर प विद्यावाचस्पतिजी ने पराधीन भारत के सामने उन देशभक्तो का आदर्श प्रस्तुत किया था जो कष्ट सहिष्णुता एवं बलिदान के माध्यम से ब्रिटिश सत्ता की जडें उखाड फेंकने मे प्रयत्नशील थे. शहीद जतीन को भावपूर्ण श्रद्धांजलि प्रस्तुत करते हुए उन्होंने टिप्पणी की थी, 'हे अग्नि के पतगे, तुम तो चल दिये पर गजब कर गए, इस सूखे हुए जंगल में आग लगा गये जलियाँवाले बाग ने वह आग नहीं लगायी जा तुमने लगा दी है. तुमने अपनी कुर्बानी से जो आग लगायी है, वह आसानी से न बुझेगी, वह ऐसी धधकेगी कि इसकी ज्वालाओं की ज्योति लदन के पार्लियामेंट के हॉल पर दिखाई देगी. इसकी तपिश किंग जार्ज की आरामगाह में पहुँचकर वहाँ के निवासियों को बेचैन कर देगी."[१५] इसी प्रकार 'लाला लाजपतराय' नामक जीवनी में प. विद्यावाचस्पतिजी ने प्रतिपादित किया था, 'स्वतंत्रता का सुकुमार पौधा जिस पोषक पदार्थ पर पनपता है, वह पोषक द्रव्य शहीद का खून है, फाँसी लगाने वाले की रस्सी या जल्लाद की कुल्हाडी या बन्दूकची की गोली व्यक्तित्व जीवन को बुझा देती है, किन्तु इससे आगे यह एक और काम करती है और वह यह कि

सामूहिक इच्छा को अधिक तीव्र और बलवती बना देती है"[६६]

'लोकमान्य तिलक और उनका युग' मे विद्यावाचस्पतिजी ने उस युग का चित्रण किया है जब देश की राजनीति भिक्षावृत्ति और वैधानिकता की बद कोठरी मे से निकल स्वाधीनता की माग हेतु चुनौती के खुले मैदान मे खडी हो गई थी, तथा 'प जवाहरलाल नेहरू' मे महात्मा गाधी के नेतृत्व मे लडी गयी स्वाधीनता के अतिम पर्व की लडाई का चित्रण किया है, जिसे 'असहयोग' और 'भारत छोडो' के नाम से सबोधित किया गया इस जीवनी मे प. नेहरू के साथ जुडी सन् १९४५ तक की घटनाओ का अकन और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है प विद्यावाचस्पतिजी द्वारा लिखी समाज–सुधारक 'महर्षि दयानन्द' की जीवनी भी आदि से अत तक देशभक्ति से ओतप्रोत है 'विशाल भारत' के अनुसार इसमे वर्णित "भारत की तत्कालीन दशा का वर्णन पढकर हृदय प्रकम्पित हो उठता है"[६७] एक क्षत्रिय राजा का सर्वांग परिपूर्ण आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए उन्होने कालिदास द्वारा विरचित 'रघुवश' के आधार पर 'सम्राट रघु' नामक जीवनी लिखी है निष्कर्ष रूप मे यही कहा जा सकता है प विद्यावाचस्पतिजी ने जीवनी साहित्य मे विदेशी महापुरुषो को नायक बनाया हो या स्वदेशी महापुरुषो को, चाहे वे फिर महापुरुष धार्मिक, साहित्यिक या वैज्ञानिक क्षेत्र के क्यो न हो, पर उनका एक मात्र उद्देश्य यही रहा कि देशवासियो मे स्वाधीनता की प्राप्ति व उसकी रक्षा की भावना कूट–कूट कर भरे उनकी समस्त जीवनियॉं राष्ट्रीय भावना के प्रचार–प्रसार के सुनिश्चित उद्देश्य को लेकर ही लिखी गई हैं इन जीवनियो मे स्थान–स्थान पर लेखक ने भी अपनी विचारधारा को प्रकट किया है, पर प्रमुखरूपेण चरित्र नायको के व्यक्तित्व, चरित्र एव उनके कार्यों द्वारा ही अपने अभीष्ट को अभिव्यक्त किया है

सन्दर्भ

१ काव्य के रूप–२३३
२ इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका–५६३
३ दि इनसाइक्लोपीडिया अमेरिकना–खण्ड=३–७२२
४ हिन्दी साहित्य कोश, ३०५
५ वन माइटी टोरैण्ट–४०
६ हिन्दी साहित्य मे जीवन चरित का विकास–१३
७ एमीनेट विक्टोरियस–७
८ आस्पैक्टस ऑफ बायोग्राफी–१०२
६ लिटरेरी बायोग्राफी–१
१० आस्पैक्टस ऑफ बायोग्राफी–२०
११ डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिटरेचर–७३
१२ दि पर्सफैक्टिव ऑफ बायोग्राफी–८
१३ प जवाहरलाल नेहरू–च
१४ आर्यसमाज का इतिहास प्रथम भाग–क
१५ मेरे पिता–३
१६ महावीर गेरीवाल्डी–झ
१७ प जवाहरलाल नेहरू–घ
१८ तत्रैव–ड
१६ तत्रैव–१४२
२० तत्रैव–१३७
२१ आधुनिक भारत मे वक्तृत्व कला की प्रगति–८
२२ प्रह्लाद त्रैमासिक–अप्रैल १६६०–१६
२३ महावीर गेरीवाल्डी–७–८
२४ तत्रैव–१२८
२५ महर्षि दयानद–७८–७६
२६ लोकमान्य तिलक और उनका युग–१२६
२७ तत्रैव–१६०
२८ महावीर गेरीवाल्डी–१२६
२६ प्रिस बिस्मार्क–१४६
३० लोकमान्य तिलक और उनका युग–३६
३१ तत्रैव–१३६
३२. तत्रैव–१५७
३३. तत्रैव–६२–६३
३४ तत्रैव–१६६
३५ महर्षि दयानद–५६–६१
३६ लोकमान्य तिलक और उनका युग–१५१
३७ तत्रैव–१०८–६
३८ प जवाहरलाल नेहरू–१०६
३६ प्रिस बिस्मार्क–१०
४० लोकमान्य तिलक और उनका युग–१८१
४१ महावीर गेरीवाल्डी–१२५
४२. महर्षि दयानद–८
४३ प जवाहरलाल नेहरू–घ
४४ तत्रैव–ड
४५ महावीर गेरीवाल्डी–ज
४६ तत्रैव–२२–२३
४७ तत्रैव–१४१–४२
४८ तत्रैव–१३७
४६ महर्षि दयानन्द–१६–२८
५० तत्रैव–८२–८६
५१ तत्रैव–१४५–१५०
५२ प जवाहरलाल नेहरू–३–६
५३ तत्रैव–४७–४८, ७७–७८
५४ तत्रैव–३३–३४, १०२
५५ लोकमान्य तिलक और उनका युग–६
५६ तत्रैव–७
५७ तत्रैव–८–६
५८ तत्रैव–१६–१७, ३४–३५
५६ तत्रैव–३५–३६
६० तत्रैव–१७०–७६
६१ तत्रैव–२२०

६२ तत्रैव–४२
६३ प जवाहरलाल नेहरू–१०२
६४ तत्रैव–२६–२७
६५ तत्रैव–६६–६७
६६ महावीर गेरीवाल्डी–१०
६७ प जवाहरलाल नेहरू–३
६८ प्रिस बिस्मार्क–७५, ८३–८४
६६ महर्षि दयानन्द–५०–५१
७० प जवाहरलाल नेहरू–१६
७१ लोकमान्य तिलक और उनका युग–१६
७२ प्रिस बिस्मार्क–४६
७३. प जवाहरलाल नेहरू–१६
७४ महर्षि दयानन्द–५०–५१
७५ तत्रैव–११७–११८
७६ लोकमान्य तिलक और उनका युग–७४
७७ महर्षि दयानद–४६
७८ प्रिस बिस्मार्क–६५
७६ प जवाहरलाल नेहरू–२५
८० प्रिस बिस्मार्क–७५
८१ लोकमान्य तिलक और उनका युग–१८०
८२ महर्षि दयानन्द–४६
८३ तत्रैव–५०
८४ लोकमान्य तिलक और उनका युग–७५
८५ प्रिस बिस्मार्क–१
८६ एमीनेट विक्टोरियस–८
८७ महावीर गेरीवाल्डी–४७–४८
८८ प्रिस बिस्मार्क–१–२
८६ दि पर्सफैक्टिव ऑफ बायोग्राफी–७
६० अशोक के फूल–१८०
६१ साहित्य शास्त्र–१५६
६२ महावीर गेरीवाल्डी–६
६३ प्रिस बिस्मार्क–२
६४ तत्रैव–५
६५ 'प्रह्लाद' (अप्रैल १६६०)–४
६६ तत्रैव–४
६७ मेरे पिता–परिशिष्ट–वाचस्पति पुस्तक भण्डार–सूचीपत्र–८

५
विद्यावाचस्पति जी का उपन्यास साहित्य

५.१ उपन्यासः स्वरूप, विवेचनः-

उपन्यास शब्द का निर्माण 'उप' उपसर्ग पूर्वक 'न्यास' शब्द से हुआ है—जिसका अर्थ है—निकट रखना 'उपन्यास के द्वारा साहित्यकार अपने कथा को पाठको के तहेदिल तक पहुँचाता है'[१] साहित्य की जीवनी, सस्मरण आदि विधाओ का समावेश तथ्याश्रित विधाओ के अतर्गत होता है तो उपन्यास, कहानी आदि का समावेश कल्पनाश्रित विधाओ के अन्तर्गत आधुनिक उपन्यास मे प्राचीन 'उपन्यास' के युक्तियुक्त ढग से अर्थ की प्रस्तुति व मनोरजन करने के भाव तो हैं ही, पर अब वह केवल इन दो गुणो तक ही सीमित नहीं रह गया है, अपितु अब उसके माध्यम से व्यापक जीवन की यथार्थ व्याख्या करने का महत्वपूर्ण कार्य भी हो रहा है प्रसिद्ध समालोचक राल्फ फाक्स के अनुसार— 'उपन्यास वह पहली गद्य विधा है, जिसमे मानव को उसकी सम्पूर्णता के साथ अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है'[२] आकार के दृष्टिकोण को सामने रखते हुए 'दि न्यू पिक्चर्ड इन्साइक्लोपीडिया' मे 'उपन्यास दीर्घ आकार की गद्य मे उस कल्पित कथात्मक रचना को कहा गया है, जिसमे जीवन के यथार्थ स्वरूप की परिचायक कथा तथा पात्र सर्जित किये गये हो' डॉ गुलाबराय के शब्दो मे 'उपन्यास कार्यकारण श्रृखला मे बधा हुआ वह गद्यात्मक कथानक है, जिसमे अपेक्षाकृत अधिक विस्तार एव पेचीदगी के साथ जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियो से सबधित वास्तविक या काल्पनिक घटनाओ द्वारा मानव जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है'[३] आधुनिक काल मे उपन्यास विधा का यथार्थवाद से अविभाज्य—सा सबध हो गया है हेनरी जेम्स ने भी उपन्यास मे यथार्थवाद की प्रवृत्ति को उसके स्वरूप निर्माण मे महत्वपूर्ण माना है आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी भी यथार्थ को उपन्यास साहित्य का प्राणतत्व मानते हुए कहते हैं— "कविता यथार्थवाद की उपेक्षा कर सकती है, सगीत यथार्थ को छोडकर भी जी सकता है, पर उपन्यास और कहानी के लिए यथार्थ प्राण है"[४] चरित्र चित्रणात्मकता की दृष्टि से सुप्रसिद्ध उपन्यासकार प्रेमचन्द ने उपन्यास की परिभाषा करते हुए लिखा है— "मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यो को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है"[५]

५.२ उपन्यास के तत्व एवं प्रकारः-

उपन्यास के मुख्य छ तत्व माने गये हैं, १) कथानक, २) चरित्र चित्रण, ३) सवाद, ४) देशकाल, ५) भाषा शैली और ६) उद्देश्य प्रथम पाच तत्वो के विषय मे भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानो मे सहमति है, किन्तु अतिम छटे तत्व के सबध मे मतभेद है पाश्चात्य विद्वान् हडसन ने छटे तत्व को 'उपन्यासकार द्वारा प्रस्तुत आलोचना, व्याख्या, अथवा 'जीवन दर्शन' कहा है,[६] तथा भारतीय विद्वानो ने इसी को 'उद्देश्य' की सज्ञा दी है[७]

तत्वो की दृष्टि से उपन्यासो के विभिन्न प्रकार हैं जिस उपन्यास मे जिस तत्व की प्रधानता होती है, उसी आधार पर उपन्यासों का विभाजन किया जाता है, उपन्यास मे कथानक की प्रधानता होने पर उसे कथानक प्रधान, चरित्र की प्रधानता होने पर चरित्र प्रधान कहा जाता है सवादो

के आधार पर उपन्यासो का विभाजन नहीं किया जाता[८] देश काल की प्रधानता होने पर आचलिक और ऐतिहासिक उपन्यासो के रूप मे विभाजन किया जाता है शैली तत्व की प्रधानता होने पर ऐतिहासिक शैली, आत्मकथा शैली पत्र व डायरी शैली के रूप मे विभाजन किया जाता है उद्देश्य तत्व के आधार पर आदर्शवादी, यथार्थवादी, प्रगतिवादी आदि अनेक वर्गों मे विभाजन किया जाता है वर्ण्य विषय की दृष्टि से भी उपन्यासो का विभाजन किया जाता है यथा मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, मार्क्सवादी, राजनीतिक आदि

विद्यावाचस्पतिजी के उपन्यासो का आत्यन्तिक रूप से विभाजन करना कठिन है, क्योकि उनके उपन्यास मनोवैज्ञानिक होते हुए भी सामाजिक हैं ऐतिहासिक होते हुए भी राजनैतिक हैं सामाजिक होते हुए भी जमीदारी प्रथा के विरोध के कारण प्रगतिवाद या प्रगतिशीलता की आधी से प्रभावित होने का सन्देह पैदा करते हैं उनके उपन्यास न तो शुद्ध ऐतिहासिक, न शुद्ध सामाजिक, न ही शुद्ध प्रगतिशील और न ही शुद्ध राजनैतिक कहे जा सकते हैं, क्योंकि उपन्यासकार बहुत समय तक तत्कालीन राजनीति और समाज–सुधार आन्दोलन के सक्रिय अग रह चुके थे, इसलिये उनके मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यासो मे राजनीतिक–सामाजिक विचार ऐसे घुल–मिल गए है कि उनको पृथक् नही किया जा सकता पुनरपि जिसमे जिस स्वर की प्रधानता है, उसी के आधार पर उन्हे ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक या सामाजिक उपन्यास कहा जा सकता है डॉ देवराज उपाध्याय का मत है कि, 'बीसवीं सदी के आरभ मे ही हिन्दी उपन्यास की विकासमूलक भूमिका मनोविज्ञान के क्रोड मे पालित–पोषित होने लगी थी '[९] डॉ विष्णुदत्त राकेश[१०] और डॉ धनराज मानधने[११] ने विद्यावाचस्पतिजी के 'अपराधी कौन' को मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहा है इसी प्रकार कथ्य की दृष्टि से स्थूल रूप मे उसके 'जमींदार' उपन्यास को प्रगतिवादी उपन्यास कहा जा सकता है पर वर्ण्य विषय की दृष्टि से उनके उपन्यासो को मुख्य रूप से दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है (१) ऐतिहासिक उपन्यास और (२) सामाजिक उपन्यास

५.३ विद्यावाचस्पतिजी का उपन्यास साहित्यः-

हिन्दी उपन्यास के विकास को चार युगो मे विभाजित किया जा सकता है १–प्रेमचन्द पूर्व युग अर्थात् भारतेन्दु युग २– प्रेमचन्द युग ३– प्रेमचन्दोत्तर युग ४– स्वातन्त्र्योत्तर युग विद्यावाचस्पतिजी प्रेमचन्द व प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यासकार हैं उन्होने विषय की दृष्टि से सामाजिक उपन्यासो की रचना की है, केवल 'शाह आलम की ऑखे' उपन्यास इसका अपवाद है, जिसे ऐतिहासिक तथ्यो के समावेश के कारण 'ऐतिहासिक उपन्यास' के नाम से सबोधित किया गया है

विद्यावाचस्पतिजी ने कुल छ उपन्यास लिखे हैं १– 'शाह आलम की ऑखे' (१९१८), २– 'अपराधी कौन' (१९३२), ३– 'जमींदार' (१९३६), ४– 'सरला की भाभी' (१९४४), ५– 'सरला' (१९४५) और ६– 'आत्म बलिदान' (१९४८) अन्तिम दो उपन्यास इस पद्धति से लिखे गये हैं कि उन्हे अपने पूर्ववर्ती 'सरला की भाभी' उपन्यास का विकसित रूप भी कहा जा सकता है, और स्वतत्र उपन्यास भी विद्यावाचस्पतिजी के उपन्यासो मे उनके व्यक्तित्व और युग की गहरी छाप है प्रो विजयेन्द्र स्नातक का यह मत है कि, 'यदि सामाजिक यथार्थ की भूमि पर उनके उपन्यासों का अध्ययन किया जाय तो वे प्रेमचन्द परम्परा के सफल उपन्यासकार स्वीकार किये जायेंगे.'[१२] हमारी दृष्टि में वे 'प्रेमचन्द–प्रेमचन्दोत्तर युग' के आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी उपन्यासकर है उन्होने ऐतिहासिक और सामाजिक दोनो प्रकार के उपन्यास लिखे हैं

५.४ ऐतिहासिक उपन्यासः-

विद्यावाचस्पतिजी का सर्वप्रथम ऐतिहासिक उपन्यास 'शाह आलम की ऑंखे' है, जो कि उनका

एकमात्र ऐतिहासिक उपन्यास है जिसे उन्होने १९१८ मे लिखा था [१३] तभी वह धारावाहिक रूप मे 'सद्धर्म प्रचारक' साप्ताहिक मे प्रकाशित हुआ था, पर उसका पुस्तक रूप मे प्रकाशन सन् १९३२ मे हो पाया उपन्यास के प्रकाशन मे विलम्ब होने का कारण स्वय लेखक के राष्ट्रीय आन्दोलन के भवर मे फॅस जाना है लेखक ने यह उपन्यास सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ हेनरी जार्ज कील द्वारा लिखित 'मुगल एम्पायर' नामक पुस्तक के आधार पर लिखा है [१४] इस उपन्यास की घटनाये लगभग सन् १७८० के आसपास की हैं सभी घटनाये इतिहास परक न होकर लेखक ने कल्पना का भी सहारा लिया है– सुल्तानपुर ग्रामवासी तेजसिह अपने ही ग्राम के निवासी गुलाबसिह की कन्या कमला से प्यार करने लगता है उसी ग्राम मे वसन्तोत्सव के काल मे शाह आलम का पर्दापण होता है शाह कमला को देखकर मन्त्रमुग्ध हो जाता है, और गुलाबसिह से अपनी कन्या को सौपने का अनुरोध करता है उसी समय शाह के सेवक कमला का अपहरण कर लेते हैं, किन्तु कमला एक सतर्क कन्या थी, वह मार्ग मे ही अवसर पाकर भाग निकलती है फलस्वरूप शाह अपने सेवक गुलाम कादिर को किले से बाहर निकाल देता है तेजसिह कमला के अपहरण से आग बबूला हो शाह के विरूद्ध कह उठता है कि– 'जो विदेशी है, वह जब तक मेरे देश की स्वाधीनता पर बध न डालता है, मेरा शत्रु है' [१५] उदयपुर के राजा प्रतापसिह और जोधपुर के युवराज विजयसिह से तेजसिह की भेट होती है, और सब मिलकर युद्ध की तैयारी मे लग जाते हैं, परतु अचानक तेजसिह एक आकस्मिक घटना का शिकार होकर देवालय मे शरण लेता है, जहाँ कमला उसकी सेवा करती है शाह के सेवको द्वारा अपहृत कमला गुलाम कादिर के चगुल से भाग आई थी, और वह तेजसिह की सेवा के बाद साधु का वेश धारण कर राष्ट्रीय जन–जागरण मे लग जाती है दूसरी ओर गुलाम कादिर का शाह के प्रति षडयत्र सफल हो जाता है, और वह शाह को बन्दी बनाकर स्वय राजगद्दी पर बैठ जाता है शाह के प्रति उसका विद्रोह बहुत भयकर है, वह शाह की ऑखे फोड देता है और उसके परिवार के साथ दुराचार करता है, जिससे उसकी सर्वत्र बदनामी फैल जाती है. तेजसिह और कमला गुलाम कादिर के विरोध मे सैनिक एकत्र कर लाल किले पर आक्रमण कर देते हैं तेजसिह और कमला के मिलन के साथ ही उपन्यास की यह कथा समापत हो जाती है

५.५ सामाजिक उपन्यासः-

कालक्रम के अनुसार विद्यावाचस्पतिजी की प्रथम सामाजिक औपन्यासिक कृति 'अपराधी कौन' है. 'बीजारोप', 'सिचन', 'केनिग', 'मजदूर जीवन', 'पाच वर्ष पीछे', 'हडताल', 'मजदूर से डाकू', 'डाकू से आजन्म कैदी' और 'हत्या' इन ६ परिच्छेदो मे उपन्यास विभक्त है रचनाकार ने इस उपन्यास के अत मे यह प्रश्न उपस्थित किया है कि आखिर 'असली अपराधी कौन था? उम्मेद या वह सामाजिक राजनीतिक सगठन जिसने उसे अपराधी बनाया' [१६] उम्मेद एक श्रमिक परिवार से सम्बद्ध व्यक्ति है, उसके पिता जवाहरसिह की मौत शराब पीने से हुई उस समय केवल वह ६ वर्ष का बालक था, उम्मेद की माँ अनारो उसी मिल मे नौकरी करने लगती है जिसमे उसके पति नौकरी करते थे. गरीबी के कारण अनारो अपने बेटे को स्कूल मे नहीं भेज पाती परिणामस्वरूप स्वच्छद वातावरण मे पलता हुआ वह शैतान पार्टी का मुखिया बन जाता है. इस बीच उसकी माँ बीमार हो जाती है और एक दिन नारगी लूटने की शैतानी के कारण उम्मेद पुलिस की चपेट मे आ जाता है और उसे कोतवाली में रखा जाता है. अनारो पुलिस के दरबार में पहुँचती है, और अपने 'उम्मेद को देखने की इच्छा व्यक्त करती है, किन्तु पुलिस के दुर्व्यवहार के कारण वह अपने बेटे से मिल नहीं पाती. अपनी माँ को धक्का देने वाले पुलिस को ईंट मारने पर पुलिस वाले उसे बारह बेतों की सजा देते हैं. तीन मास की जेल भुगतकर जब वह घर आता है तब उसे अपनी माँ की मृत्यु का समाचार मिलता है. अब वह समझ नहीं पाता कि क्या करे और

घूम–फिरकर उसी मिल मे मजदूरी करने लगता है जहॉ मॉ काम करती थी उसी समय उसका परिचय एक श्यामा नामक स्त्री से हो जाता है मिल के खजाची भरूचा के बलात्कार से मिल–मजदूरनी श्यामा को बचाने के सिलसिले मे वह मरते–मरते बचता है उम्मेद खजाची के षडयत्र मे फसकर नौकारी से निकाल दिया जाता है और श्यामा से भी उसका वियोग हो जाता है ऐसी स्थिति मे वह विद्रोही बन जाता है और जीवन बिताने के लिए अन्य कोई मार्ग न सूझने पर वह डाकू मानसिह के सपर्क मे आ डाकू बन जाता है खजाची भरूचा उम्मेद का इरादा समझ गया था इसलिए उसने श्यामा को अपनी वासना का शिकार बनाया और डाकू उम्मेदसिह को श्यामा की हत्या के लिए अपराधी करार दे दिया गया उसे आजन्म कारागार की सजा दे दी गयी सुलतानपुर की जेल मे उसे कठोर यातनाओ का सामना करना पडा परिणामस्वरूप उम्मेद का सारे जीवन भर का क्रोध अत्याचार करने वाले नम्बरदार कालेखॉ पर केन्द्रित हो गया "वह उसकी नजरो मे माता को धक्का देने वाले सिपाही, बचपन मे बेत लगाने वाले जेली, कारखाने मे अत्याचार करने वाले भरूचा और सुलतानपुर के सब जेल अधिकारियो का प्रतिनिधि–सा दिखाई दे रहा था"[७] इसका परिणाम यह हुआ कि जेल की दीवार फादकर भागने से पूर्व जब उसने पीछे मुडकर कालेखॉ को देखा तो भागने की स्कीम भूल उसकी गजी खोपडी पर कील ठोक उसकी हत्या के अपराध मे स्वय गिरफ्तार हो गया कैदियो के भाग जाने के जुर्म मे पकडे गये रहमतुल्ला और चन्दन अपनी पोल न खुले इसलिये अस्पताल मे उम्मेद का गला घोटकर हत्या कर देते हैं रहस्य खुलने पर रहमतुल्ला को भी फॉसी हो जाती है

उपन्यास के अन्त में प्रतीत होता है कि– उम्मेद के अपराधी बनने मे स्वय वह उतना उत्तरदायी नहीं है, जितनी की परिस्थितियॉ घर की गरीबी, आस–पडोस का दूषित माहौल, जेल के अधिकारियो का कूट सगठन और लालची कुप्रवृत्ति ये सब उसे अपराधी बनाने के लिए उत्तरदायी हैं अपराधी बनते नहीं, बनाये जाते हैं उम्मेद भी अपराधी न बनता अगर उसे उक्त परिस्थितियो से गुजरना न पडता विद्यावाचस्पतिजी ने अपनी यह औपन्यासिक कृति भारत के दरिद्र नारायण को समर्पित करते हुए कहा है– "हे भारत के अभागे गरीब यह तेरी दु ख कहानी तेरे ही चरणो मे समर्पित करता हूँ"[८]

विद्यावाचस्पतिजी की दूसरी सामाजिक औपन्यासिक कृति 'जमींदार' है उपन्यास की कथा ४४ परिच्छेदो मे विभक्त है इसमे उस काल का चित्रण है जब भारत मे जमींदारी प्रथा व्याप्त थी और नारियो की स्थिति बहुत ही दयनीय थी. उपन्यास के पात्र दो वर्गों मे विभाजित किये जा सकते हैं – एक वर्ग जमींदारी वर्ग से सबधित और दूसरा वर्ग मजदूर वर्ग से

औपन्यासिक कथा मे तुलसी नामक एक चमार है जो अपनी जाति में प्रतिष्ठित है उसके दो लडके थे बुन्दू और भज्जू दोनों सडक के किनारे गूलर के पेड के नीचे खाना खा रहे थे उसी समय तेज रफ्तार से आती हुई एक लारी बुन्दू को कुचलते हुए निकल जाती है, जिससे बुन्दू की घटनास्थल पर ही मृत्यु हो जाती है लारी का ड्राइवर वीरगढ के जमींदार रूपचन्द का आदमी था रूपचन्द के यहॉ लडकी की शादी थी, और बारात का आगमन हो रहा था, उसी समय ग्रामवासी बच्चे की लाश लेकर जमींदार के घर गये. अहकारी जमींदार खुद तो उनसे मिलने घर से बाहर नहीं निकला, पर उसने बडी क्रूरता से अपने लठैतों को भेजा, जिन्हे देखकर ग्रामवासी रफूचक्कर हो गये. बच्चे के पिता तुलसी भी बुन्दू की लाश छोडकर भाग गया. रूपचन्द का संकेत पाकर नौकर जुहूर बच्चे की लाश को एक पेड के नीचे दफना देता है. ग्रामवासी पुलिस की शरण मे जाते हैं, पर पुलिस भी जमींदार रूपचन्द से थरथर कांपती थी. आखिर तुलसी चमार भयभीत होकर अपना गाव छोडकर अपनी बेटी की ससुराल भागलपुर चला गया. उसकी बेटी भागलपुर की रानी दयावती

के यहाँ पशुओ की देख–रेख करती है रूपचन्द की रानी दयावती से अनबन थी जब रूपचन्द को इस बात की खबर लगी कि तुलसी चमार को रानी दयावती ने शरण दी है तो उसने क्षुब्ध होकर प्रतिशोध की भावना से तुलसी के पूरे गाव को ही जला डाला ग्रामवासियो और रूपचन्द के बीच मध्यस्थता करने वाला राजा रामसिह नामक व्यक्ति इतना चतुर है कि किसी को भी चैन से नहीं बैठने देता आखिर वह अपनी कपट बुद्धि से तुलसी को रूपचन्द के जाल मे फास देता है रूपचन्द उस पर चोरी का इल्जाम लगाकर जेल भिजवा देता है और उसके भाई खुशीराम को धोखे से मार डालता है रानी दयावती और रूपचन्द का टकराव तो चलता ही रहता है, पर दयावती का देवर गजेन्द्रसिह और राजा रामसिह भी जमींदार रूपचन्द से मिलकर दयावती के खिलाफ साठ–गाठ करते हैं, परिणामस्वरूप दयावती के पति राजा वीरेन्द्रसिह के मित्र रिपुदमनसिह और रूपचन्द आदि मे ठन जाती है रिपुदमनसिह अत्यन्त क्रोधी है वह जमींदार रूपचन्द के किसी भी अपशब्द को सहन नही कर सकता उधर रूपचन्द भी भडक कर रिपुदमन से कहता है– मैं तुम्हारे चेहरे पर नाक का भी निशान नही रहने दूगा रिपुदमनसिह भी आवेश मे प्रत्युत्तर देता है– 'आज से आठवे दिन के भीतर यदि रूपचन्द जिन्दा रहा तो मैं अपने हाथ से अपनी नाक काट दूँगा'[१६] अन्त मे रिपुदमनसिह और तुलसी मौका पाकर जमींदार रूपचन्द को मार डालते हैं

विद्यावाचस्पति जी की तीसरी सामाजिक औपन्यासिक कृति 'सरला की भाभी' है. जमींदार उपन्यास लिखने के बाद आपने जितने भी उपन्यास लिखे, उन सबके प्रमुख पात्र 'जमींदारी' परिवेश से जुडे हुए हैं 'सरला की भाभी' भी उनमे से एक है यह विद्यावाचस्पति जी का सबसे प्रिय उपन्यास है[२०] इसमे सरला एक बालिका के रूप मे है जो घर के सुख–दु खो को अनुभव करने लगी है 'भारतीय समाज की पारिवारिक रूढियो का दिग्दर्शन कराना' इस उपन्यास का उद्देश्य है[२१] जमींदार परिवेश के त्यागी–ब्राह्मण–जमींदारो की ओर सकेत करते हुए कहा गया है– 'वे इतने पुराणपथी थे कि लडकियो को पढाना तक पाप मानते थे'[२२] इस उपन्यास के चार परिच्छेद हैं– 'तीसरा विवाह', 'दो वर्ष बाद', 'गगास्नान' और 'अग्निपरीक्षा'

इस उपन्यास की नायिका चम्पादेवी है, जो 'सरला की भाभी' अर्थात् सरला की माँ है जमींदार वकील गोपीशरण की वह इकलौती पुत्री है. १५ वर्ष सम्पन्न होने के बाद उसका विवाह गोपालकृष्ण से होता है. गोपालकृष्ण भी संपन्न जमींदार परिवार से सबधित है और बैरिस्टरी करने हेतु विलायत जाने का इच्छुक है. सात महीने के विवाहित जीवन के बाद वह विदेश जाने लगता है, तब चम्पादेवी कहती है– 'नाथ ! परदेश जाकर इस दासी को भूल न जाना... मेरे सिर पर हाथ रखकर प्रतिज्ञा करो कि तुम मुझे भूलोगें नहीं,[२३] पर गोपालकृष्ण विलायत जाकर अपने प्रण को भूल जाता है, और एक विलायती मेम से दूसरी शादी कर लेता है. १६ वर्ष बीत जाते हैं. चम्पा की कन्या 'सरला' मैट्रिक उत्तीर्ण हो जाती है. जब गोपालकृष्ण विलायत से लौटते हैं तो चम्पा अपनी वियोग व्यथा की दारूण कथा सुनाती है, पर विरह के कारण कुरूप हुई चम्पा के मलिन वस्त्रो को देखकर गोपालकृष्ण अपनी भाभी देवकी से कहता है– 'हटाओ इस कुतिया (बुढिया) को, नहीं तो मैं बाहर जाता हूँ'[२४] कालान्तर में गोपालकृष्ण ने चम्पा के स्नेह सत्कार को भूलकर रामकली नाम की स्त्री से तीसरा विवाह कर लिया. देवर के इस तीसरे विवाह मे भाभी देवकी ने बडे उत्साह से भाग लिया. निर्धन कृषक कन्या रामकली के रूप यौवन पर गोपालकृष्ण इतना मुग्ध हुआ कि पुत्री सरला और पत्नी चम्पा को छोडकर चला गया जैसे ही रामकली को पुत्ररत्न की प्राप्ति होती है, परिवार मे सघर्ष बढता है. अब तक परिवार मे देवकी का ही पुत्र था. रामकली को पुत्रोत्पत्ति के समाचार से देवकी के मन मे ईर्ष्या उत्पन्न हो गयी. परिणामस्वरूप उसने यह कहना शुरू कर दिया कि– 'यह अवैध पुत्र है किसी नाई का बेटा है, रामकली का नहीं ' इस तरह परिवार मे सघर्ष बढ गया फलत परिवार के तीनो

भाई जमींदारी की सपत्ति को लेकर अलग–अलग हो गये माधवकृष्ण की पत्नी रमा के सिवाय असहाय चम्पा की ओर कोई भी ध्यान नहीं देता था कालान्तर मे रामकली के प्रति गोपालकृष्ण का आकर्षण समाप्त हो जाता है और वह पारिवारिक जीवन से उकताकर 'बेलूर' ग्राम मे निवास करने लगता है उन्हीं दिनो अनुज माधवकृष्ण उसे परामर्श देता है कि मन की अशान्ति चम्पा के सिवाय दूर नही हो सकती अत उसे अपने पास बुला लो चम्पा गोपालकृष्ण के साथ रहने लगती है और इसी के साथ गोपालकृष्ण की रामकली के प्रति विरक्ति और चम्पा के प्रति आकर्षण बढता है जब रामकली के प्रति अनासक्ति का भाव बहुत अधिक बढ गया तो गोपालकृष्ण ने उसे चम्पा से अलग करने का विचार किया और गगास्नान के बहाने उसे इलाहाबाद ले गया और 'कलकिनी' सिद्ध कर उसे वहीं छोड दिया रामकली विवश होकर मैके चली गयी, पर जब उसे अपने पुत्र के नामकरण सस्कार का पता चला तो वह बेलूर ग्राम पहुँची जहाँ से उसे अपमानित करके निकाल दिया गया अपमानित होकर जब रामकली उसी गाव के मदिर मे शरण लेती है तो अकस्मात् चम्पादेवी की उस मन्दिर मे रामकली से भेट होती है रामकली अपनी व्यथा–कथा को सुनाती है और चम्पादेवी उससे व्यथित हो अपने आपको कोसती हुई अपने पति, पुत्री व देवरानी रमा के नाम पत्र लिखकर अज्ञातवास के लिये निकल पडती है यह कोई नहीं जान पाता कि चम्पादेवी कब और कहाँ चली गई यहीं पर इस उपन्यास की कथा समाप्त हो जाती है

विद्यावाचस्पति जी की चौथी सामाजिक औपन्यासिक कृति 'सरला' है 'सरला का बबई आगमन', 'महिला आश्रम मे', 'भारतीबाई की जाच–पडताल', 'तीर्थयात्रा', 'सरला की वापसी', 'रामकली की मृत्यु', 'प्रकृति का न्याय' इन छ परिच्छेदो मे उपन्यास विभाजित है इसमे 'सरला बाह्य जगत् के सपर्क मे आती है और उसके खोटे–खरे रूप को देखती है 'धार्मिक दभ का भडाफोड इस उपन्यास मे हुआ है'[२५]

'सरला उपन्यास सरला को केन्द्र मे रखकर लिखा गया है प्रथम परिच्छेद मे सरला अपने पिता गोपालकृष्ण के साथ बबई मे दिखलायी देती है गुजरात से बबई आये २५ वर्षीय प्राणजीवन नामक युवक से सरला की भेट होती है प्राणजीवन उसी 'महिला आश्रम' मे प्रधानाचार्य है जिसमे सरला अध्ययन के लिए प्रविष्ट होती है दोनो एक–दूसरे के प्रति आकृष्ट होते हैं और भविष्य के विषय मे सोचने लगते है जब सरला को यह पता चलता है कि आश्रम की अधिष्ठात्री बालविधवा भारतीदेवी उसके और प्राणजीवन की घनिष्ठता को पसन्द नहीं करती तो वह आश्रम छोड देती है तत्पश्चात् उपन्यास मे सरला की माँ चम्पादेवी का वर्णन किया गया है

विद्यावाचस्पतिजी की पाचवी व अन्तिम सामाजिक औपन्यासिक कृति 'आत्म बलिदान' है, 'सरला की भाभी' और उसके बाद लिखे गये 'सरला' और 'आत्म बलिदान' ये तीनों उपन्यास एक ही श्रृखला की कडियाँ हैं प्रत्येक कडी सरला के जीवन के एक अध्याय की कहानी सुनाती है आत्म बलिदान उपन्यास की केन्द्रबिन्दु सरला ही है, 'भूकम्प', बैलूर में जीवन प्रवाह', जमींदारी का बटवारा', 'सरला का विवाह', 'सार्वजनिक जीवन की धूप–छाह' और 'बलिदान' नामक छ परिच्छेदो मे उपन्यास की कथा विभाजित की गई है जिसमे सरला विवाहित होकर सार्वजनिक जीवन के सघर्ष मे आती है, जहाँ स्वार्थ और अहकार के अत्याचारो से आहत होकर वह मातृभूमि की बलिदेवी पर अपनी आहुति दे देती है उपन्यास आदर्शोन्मुख यथार्थवादी है, क्योकि 'इसमे देश के स्वाधीनता प्राप्ति से पूर्व के राजनीतिक जीवन के एक तिरोहित भाग पर दीपक की ज्योति डाली गई है'[२६]

'आत्म बलिदान' उपन्यास का घटनाक्रम बिहार के भूकम्प से शुरू होता है सरला बिहार के जमींदार की कन्या थी, अत भूकम्प के समय जन–धन की अपार क्षति होने से सरला के माता–पिता उसे बबई ले आते हैं कुछ समय बाद पिता का निधन हो जाता है सरला और चम्पा भूकम्प पीडितो

की सेवा मे मग्न हो जाते हैं बनारस से आये हुए स्वयसेवक दल के नेता रामनाथ से इन दोनो का परिचय हो जाता है चम्पा रामनाथ के सौम्य व्यवहार से प्रभावित हो अपनी बेटी सरला का विवाह रामनाथ से कर देती है रामनाथ राजनीति मे सक्रिय हो जाता है और सरला उसकी सहयोगिनी बन जाती है राजनीतिक भाषण के कारण रामनाथ दो वर्ष की सजा पाते हैं और सरला राजनीति के क्षेत्र मे एकाकी रह जाती है और अपने सरल स्वभाव के कारण वह प्रान्त भर की 'अजातशत्रु' ही नहीं, अपितु प्रान्तीय कॉंग्रेस कमेटी की प्रधान भी चुन ली जाती है किन्तु यह उसके लिए शुभदायी सिद्ध नहीं होता रामनाथ सरला के विषय मे झूठी अफवाहे सुनता है, जिससे दोनो के सबध कटु हो जाते हैं कुछ समय बाद सरला को रूग्णावस्था मे छोड रामनाथ कॉंग्रेस पार्टी के वार्षिक अधिवेशन मे सम्मिलित होने बबई चला जाता है इधर गाधीजी का 'करो या मरो' का सन्देश प्राप्त कर सरला अगस्त १९४२ को पटना मे झडा हाथ मे लेकर निर्भीकता के साथ जुलूस का नेतृत्व करती है और इसी समय पुलिस की एक गोली उसके माथे को पार कर जाती है और वह वहीं शहीद हो जाती है यह सरला का परिवार के साथ—साथ राष्ट्र के लिए भी बलिदान साबित हो जाता है

५.६ विद्यावाचस्पतिजी की उपन्यास कलाः कथानकः-

उपन्यास के सात तत्वो मे सर्वप्रथम कथानक है यह कथानक कार्यकारण श्रृखला मे बधा हुआ और रोचक होता है विषय वस्तु की दृष्टि से कथानक की मौलिकता के साथ उसके प्रस्तुतीकरण का शिल्प भी सजीव होना आवश्यक है विद्यावाचस्पति जी का चाहे 'शाह आलम की ऑखें' (१९१८), नामक ऐतिहासिक उपन्यास हो, चाहे फिर 'सरला की भाभी' (१९४४) आदि सामाजिक उपन्यास हो, सभी जगह तथ्यात्मकता की प्रधानता है डॉ चन्द्रभानु सोनवणे के शब्दो मे 'उनके उपन्यासो मे तथ्यात्मकता की प्रधानता उनके पत्रकार होने के कारण आ गयी है '[२७] विद्यावाचस्पति जी एक सफल इतिहासकार भी थे उनका ऐतिहासिक उपन्यास पढते समय पाठक को आनन्द तो आता है, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है, मानो वह कल्पना की सूक्ष्मता के स्थान पर इतिहास का रोचक वर्णन पढ रहा हो डॉ ज्ञानवती दरबार ने टिप्पणी की है, 'इतिहास और कल्पना मे जो समन्वय थैकर ने स्थापित किया है उसका विद्यावाचस्पति जी की रचनाओ मे अभाव है '[२८] कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर का कथन है— 'अपराधी कौन' उपन्यास पढते समय वह एक सस्मरण ग्रथ मालूम होता है '[२९] इस प्रकार स्पष्ट है कि उपन्यासकार विद्यावाचस्पति पर उनका पत्रकार, इतिहासकार और सस्मरण लेखक हावी हो गया है 'अपराधी कौन का कथानक विषय की दृष्टि से मौलिकता व नवीनता से युक्त है समाज मे प्रचलित दण्डविधान की पद्धति पर उसमे गहरी चोट की गई है

उम्मेद एक निर्धन बालक था, मजबूरी ने उसे चोर बना दिया और अनावश्यक जेल की सजा पाकर वह डाकू बन गया उपन्यास का कथानक मौलिक और नवीन होते हुए भी उपदेशात्मकता के स्वर के कारण उपन्यास की सरसता, सहजता व रोचकता को आघात पहुँचा है विद्यावाचस्पति जी के सभी उपन्यासो मे स्थान—स्थान पर उपन्यासकार पाठको को संबोधित करते हुए दिखलायी देता है, जिससे उनकी शैली मे कथावाचक जैसी उपदेशात्मकता आ गयी है, पुनरपि कथ्य की दृष्टि से उनके उपन्यास प्रभावशाली हैं, पर 'कथा सयोजन की दृष्टि से उनके उपन्यासो मे हल्कापन आ गया है डॉ ज्ञानवती दरबार के अनुसार— 'कथा साहित्य की दिशा मे इन्द्र जी ने जो प्रयोग किये वे लोकप्रिय भले ही हुए हों, पर सपूर्ण सफल नहीं कहे जा सकते उनके उपन्यासो का कथानक कहीं—कहीं शिथिल है,'[३०] सक्षेप मे विद्यावाचस्पति जी के उपन्यासो का कथानक कार्य—कारण शृखला की दृष्टि से सुसगठित नहीं है कथा निर्माण की कलात्मक विशेषताओ का प्राय उनमे अभाव है, उनके ऐतिहासिक उपन्यास 'शाह आलम की ऑखें' मे तो इतिहास अधिक और कला—कल्पना कम है, विद्यावाचस्पति जी के उपन्यासो मे कथा शिल्प की इन न्यूनताओ का सर्व प्रमुख कारण उनकी

सोद्देश्यता है वे कला के सप्रयोजन उपयोग के समर्थक हैं उन्होने अपने उपन्यासो की रचना प्राय आर्यसमाज के सामाजिक और राष्ट्रीय नवजागरण की दृष्टि से प्रेरित होकर की है, अत एव विद्यावाचस्पति जी की उपन्यास कला पर समय–असमय उनका दर्शन हावी हो जाता है तथा कथा शिल्प अविकसित रह जाता है. कथा–शिल्प मे शैथिल्य का दूसरा बडा कारण उपन्यासकार का विवरण मोह प्रतीत होता है उनमे उपन्यासकार की अपेक्षा इतिहासज्ञ के तत्व अधिक प्रधान एव प्रभावशाली हैं, परिणामस्वरूप उपन्यास बोझिल बन गया है विद्यावाचस्पति जी ने अपने उपन्यासो को कथ्य के आधार पर कथा शीर्षको मे विभाजित किया है परिच्छेदो के शीर्षक देने से भी कथाशिल्प मे न्यूनता आ गयी है कथा विषयक पाठक की कौतूहल वृत्ति एव जिज्ञासु को ये शीर्षक शान्त कर देते हैं, और कथा को पढने की उत्सुकता समाप्त–सी हो जाती है 'अपराधी कौन', 'सरला की भाभी', 'सरला', 'आत्म बलिदान' मे परिच्छेदो के शीर्षक दिये गये हैं, पर 'शाह आलम की ऑखे' तथा 'जर्मीदार' मे परिच्छेदो के शीर्षक नही दिये गये हैं, पर इन उपन्यासो के शीर्षक ही ऐसे हैं जिनसे कथा का सकेत प्राप्त हो जाता है जिज्ञासा अथवा कौतूहल प्रेमचन्द–प्रसाद कालीन उपन्यासो का प्राणतत्व है विद्यावाचस्पति जी का इस ओर जितना ध्यान जाना चाहिये था, उतना नहीं जा पाया है निष्कर्ष यही है कि विद्यावाचस्पति जी का कथा सयोजन अप्रौढ एव अविकसित है पुनरपि उनके कथानको की विशिष्टता यह है कि उसमे उनका स्पष्ट जीवन–दर्शन प्रतिपादित हुआ है, तथा उसमे सफलता के साथ मानव–जीवन का चित्रण किया गया है कथा शिल्प के अपेक्षित कौतूहल एव जिज्ञासा के अभाव मे भी विद्यावाचस्पति जी के उपन्यास रोचक हैं यह रोचकता युद्ध एव साहस के प्रसगो तथा प्रेम–प्रसगो द्वारा वे अपने उपन्यासो मे लाते हैं वे इतिहास तथा कल्पना इन दो विरोधी तत्वो के बहुत कुछ सीमा तक समन्वय करने मे भी सफल हुए हैं उनके उपन्यासो के कथानको मे वैचारिक मौलिकता, घटनात्मकता के साथ सत्यता और पारस्परिक सम्बद्धता भी है.

५.७ चरित्र चित्रणः-

उपन्यास का दूसरा तत्व चरित्र चित्रण है. शास्त्रीय दृष्टि से उपन्यास के उपकरणो मे कथानक के पश्चात् चरित्र चित्रण को स्थान दिया जाता है. कथानक और चरित्र का इतरेतराश्रय सबध है. इन्हे एक दूसरे से कभी पृथक नहीं किया जा सकता चरित्र की व्याख्या करते हुए बाबू गुलाबराय ने कहा है – 'चरित्र से तात्पर्य है, पात्र के व्यक्तित्व का बाह्य और आतरिक स्वरूप.'[३१] मानव चरित्र मे स्वभावगत भिन्नता पायी जाती है. समस्त पात्र अपने–अपने स्वभाव के अनुसार वर्गो का प्रतिनिधित्व करते है वर्गो के आधार पर पात्रों को दो भिन्न श्रेणियो में रखा गया है. १– वर्ग प्रधान पात्र – जो अपनी सामान्य विशेषताओ एव आर्थिक हितों में समानता के कारण किसी विशेष वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं. २– व्यक्तित्व प्रधान पात्र – जो बौद्धिक दृष्टि से अपनी निजी विशेषताओं के कारण उपन्यास के अन्य पात्रों से किचित भिन्न एव विलक्षण होते हैं. चरित्र चित्रण का एक और भेद भी स्वीकार किया गया है – स्थिर और परिवर्तनशील. स्थिर चरित्र अपरिवर्तनशील होते हैं. प्राय. वे ऐतिहासिक या पौराणिक होते हैं तथा परिवर्तनशील चरित्र घात–प्रतिघातो से प्रभावित होते हुए उत्थान और पतन के झोके मे झूलते रहते हैं. विद्यावाचस्पति जी के 'शाह आलम की ऑखे' का शाह आलम स्थिर चरित्र है और 'अपराधी कौन' का उम्मेदसिंह गतिशील चरित्र है. प्रमुख रूप से चरित्र चित्रण की दो शैलियॉं हैं. १– विश्लेषणात्मक या ऐतिहासिक पद्धति और २– अभिनयात्मक या नाटकीय पद्धति, पहली प्रत्यक्ष पद्धति है और दूसरी परोक्ष. विद्यावाचस्पति जी ने प्रधान रूप से पहली विश्लेषणात्मक पद्धति को ही अपनाया है.

पात्र-चयन-परिधि - विद्यावाचस्पति जी ने ऐतिहासिक उपन्यास के प्रमुख पात्रो का चयन इतिहास से किया है शाह आलम, गुलाम कादिर, रामसिह और माधोजी सिधिया. मुगल कालीन

ऐतिहासिक पात्र हैं. इस उपन्यास मे लेखक ने इन प्रमुख पात्रो के अतिरिक्त काल्पनिक पात्रो की भी सृष्टि की है 'ह्रासोन्मुखी सामन्तवाद और मुगल साम्राज्य के पतनोन्मुख काल मे तेजसिंह जैसे स्वाभिमानी राजपूत की अवधारणा कर स्वातन्त्र्य चेतना का सूत्रपात लेखक ने किया है'[३२] उनके 'शाह आलम की ऑखे' के अतिरिक्त शेष सभी सामाजिक उपन्यासो के पात्र काल्पनिक हैं १८वीं १९वीं सदी के सजीव व्यक्तित्व विद्यावाचस्पति जी ने अपने पात्रो द्वारा प्रस्तुत किये हैं उनके पात्र विविध वर्गो से सबधित हैं, वे शासक व शासित, शोषक व शोषित, पूजीपति व श्रमिक वर्ग के पात्र हैं

चरित्र-निर्माण का स्रोत - लेखक का निजी व्यक्तित्व भी चरित्र चित्रण का एक बहुत बडा स्रोत होता है जर्मन उपन्यासकार गेटे ने अपने जीवन की अनेक समस्याओ एव विशिष्टताओ को वर्ण्य विषय के रूप मे प्रस्तुत किया है उनके उपन्यास 'विल्हेम मीस्टर्स अप्रेंटिसशिप' के नायक विल्हेम मिस्टर के विषय मे जार्ज ल्यू काक्स का कथन है कि – 'उसमे गेटे के बहुत से व्यक्तिगत गुण समाविष्ट हैं और उसके विकास मे उनके स्रष्टा के जीवन की अनेक घटनाये हैं'[३३] हेन्री जेम्स भी चरित्र निर्माण का एक बहुत बडा स्रोत लेखक को ही मानते हैं[३४] काल्पनिक पात्र तो विशेष रूप से लेखक के व्यक्तित्व व परिवेश के मूर्त रूप होते हैं यही स्थिति विद्यावाचस्पति जी के औपन्यासिक चरित्र नायकों की है बिहार भूकम्प सेवा कार्य के दिनो मे 'आत्म बलिदान' का नायक रामनाथ, देहाती खद्दरधारी हुलिया मे, अपनी अद्भुत सादगी के साथ रहने वाले राजेन्द्रबाबू के सामने आ जाने पर भी विद्यावाचस्पति जी की तरह यही पूछता है – 'राजेन्द्रबाबू नहीं आये क्या?'[३५] विद्यावाचस्पति जी ने भी गया काग्रेस के अवसर पर राजेन्द्रबाबू के भाषण देने के लिए खडे होने पर यही पूछा था कि "क्या राजेन्द्रबाबू उपस्थित नहीं हैं?"[३६] राजेन्द्रबाबू की टोपी का वर्णन जैसा 'आत्म बलिदान' मे है, वैसा ही अक्षरश उनके सस्मरणो मे है[३७] जब भयानक भूकम्प ने बिहार का अग–भग कर दिया, तो लेखक बिहार रिलीफ कमेटी के कार्यालय मे दिल्ली से पटना पहुँचा था, तब उन्होने जो कुछ अनुभव किया लगभग उसी प्रकार का अनुभव 'आत्म–बलिदान' का नायक रामनाथ करता है[३८]

'सरला की भाभी' उपन्यास का नायक गोपालकृष्ण है. वह अपनी विवाहिता पत्नी को उस समय छोडकर विलायत चला जाता है, जब वह गर्भवती थी. इस प्रसंग को पढते समय विद्यावाचस्पति जी के अग्रज हरिश्चन्द्र की प्रतिमूर्ति सामने नजर आने लगती है, वे भी अकस्मात् घर–ससार को छोड़कर विलायत चले गये थे. गोपालकृष्ण के विलायत रवाना होते समय चंपादेवी कहती है कि – 'मेरे सिर पर हाथ रखकर प्रतिज्ञा करो कि तुम मुझे भूलोगे नहीं.' ऐसा प्रतीत होता है कि यह हृदयद्रावक कथन चम्पा का नहीं, अपितु विद्यावाचस्पति जी की भाभी सुभद्रा का है जो जीवन भर के लिए विलायत जाकर अदृश्य हो जाने वाले अपने पति के दर्शन न तो स्वय कर पाती है और न ही अपने पुत्र को करा पाती है. 'सरला की भाभी' में अंग्रेज लड़की की आर्यसमाज मन्दिर में शुद्धि की गई है. शुद्धि या मत परिवर्तन के बाद उसे 'लूसी' से शान्तिदेवी बना दिया गया है.'[३९] वस्तुतः यह लूसी नहीं, अपितु कराची की 'असगरी बेगम है, जिसने स्वेच्छा से विद्यावाचस्पति के पिता स्वामी श्रद्धानद की उपस्थिति में देहली आर्यसमाज मे वैदिक धर्म स्वीकार कर 'शान्तिदेवी' नाम ही ग्रहण किया था.[४०] विद्यावाचस्पति जब तक जीवित रहे तब तक हर महीने उन्हें पत्र लिखा करते थे.[४१] दोनों में आजीवन भाई–बहिन का आत्मीय सबध बना रहा.

विद्यावाचस्पति जी के धर्मक्षेत्र के गुरु एव श्रद्धेय स्वामी दयानद थे. स्वामी जी के बाल्यावस्था के दो नाम थे – मूलशकर और दयाराम. कतिपय सन्यासियों में नया नाम ग्रहण करते समय अपने पूर्व नाम की स्मृति को किसी न किसी रूप में सुरक्षित रखने की प्रवृत्ति पायी जाती है. सभव है इस प्रवृत्ति से प्रेरित होकर स्वामीजी ने सन्यासाश्रम में प्रवेश करते समय अपना नाम दयाराम से

दयानद स्वीकार किया हो दयानद वस्तुत दयासागर थे. जब विद्यावाचस्पति जी को अपने जमींदार उपन्यास मे एक दयासागर स्त्री पात्र की सृष्टि करनी आवश्यक प्रतीत हुई, तब उन्होंने उसका नाम रानी दयावती ही रखा विद्यावाचस्पति जी ने प्रतिपादित किया है, 'कहा जाता है कि स्वामीजी को विष देने वाले रसोइए जगन्नाथ को जब पश्चात्ताप हुआ, तो उसने अपना दोष स्वामीजी के सामने स्वीकार किया स्वामीजी ने इस भय से कि लोग जगन्नाथ को कठोर दण्ड न दिलवा दे, सिरहाने के नीचे से पाच सौ रूपये की थैली देते हुए कहा– "जो हुआ सो हुआ, अब तुम इस रूपए को लेकर नेपाल भाग जाओ"[४२] इस घटना की स्मृति मस्तिष्क मे होने के कारण ही विद्यावाचस्पति जी ने अपने 'जमींदार' उपन्यास मे लिखा है – 'रानी दयावती ने ५००० रूपयो की थैली तुलसी के हाथ मे देते हुए कहा – "बस, अब एक मिनिट भी यहॉं पर मत रूको इसी समय रवाना हो जाओ और आम रास्ते को छोडते हुए बरेली तक पैदल चले जाओ. वहॉं से रेल पर सवार होकर पहाड की ओर चले जाना पहाडी रास्ते से जल्दी ही तुम नेपाल की सीमा मे पहुँच जाओगे"[४३]

विद्यावाचस्पति जी अपने राष्ट्रीय–राजनैतिक जीवन मे तीन बार दिल्ली–फिरोजपुर आदि स्थानो की जेलों मे रहे तत्कालीन जेल– जीवन के अनुभवो के आधार पर ही उन्होंने 'अपराधी कौन' नामक उपन्यास की रचना की है[४४]

विद्यावाचस्पति जी सामाजिक व धार्मिक क्षेत्र मे आर्यसमाज के साथ व राजनीतिक क्षेत्र मे कॉंग्रेस के साथ एकाकार हो गये थे उनके उपन्यास के पात्र भी सामाजिक रूढियो एव जर्जरित परम्पराओ के प्रति विद्रोह करते हैं, उनमे शोषण एवं अन्याय के विरूद्ध क्रान्ति की जबरदस्त भावना है. बिहार के भूकम्प और भारत छोडो आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर रचित 'आत्म बलिदान' उपन्यास की कथा उनके सामाजिक–राजनैतिक जीवन के निजी एवं निकट की घटनाओ से बुनी हुई है विद्यावाचस्पति जी के 'शाह आलम की ऑंखें', 'अपराधी कौन', 'सरला' आदि उपन्यासो मे क्रमश स्वामी कमलानद, स्वामी भूतानद एव स्वामी योगानन्द आदि साधु–सन्यासियो की सृष्टि हुई है इसका एक कारण यह भी है उनके पिता (स्वामी श्रद्धानद) सन्यासी थे. वह भी उदासीन मौनी बाबा सन्यासी नहीं, कर्मयोगी सन्यासी लोकमान्य तिलक ने एक बार इस निर्भीक वीर सन्यासी के बारे मे कहा था– 'मैंने 'गीताभाष्य' मे जिस कर्मयोग की व्याख्या की है, उसका साक्षात् रूप यदि देखना हो तो वह स्वामी श्रद्धानद मे है' विशेष रूप से 'सरला' उपन्यास में चित्रित साधना समाज के सर्वेसर्वा स्वामी योगानन्द के व्यक्तित्व पर आर्य सन्यासी स्वामी श्रद्धानन्द की छाया नजर आती है

पुरुष-पात्र- विद्यावाचस्पतिजी के उपन्यासो के पात्र मुख्य रूप से दो वर्गों मे विभाजित किये जा सकते है नायक और प्रतिनायक शेष पात्र इन दोनो वर्गों के सहयोगी पात्र हैं तेजसिह (शाह आलम की ऑंखें), उम्मेदसिह (अपराधी कौन), रामनाथ (आत्म बलिदान) नायक पात्र हैं शाह आलम (शाह आलम की ऑंखे), कालेखॉं (अपराधी कौन), रूपचन्द (जमींदार), प रामधन (सरला की भाभी) आदि प्रतिनायक या खलनायक पात्र हैं प्रथम वर्ग के नायक पात्रो के प्रति लेखक की सहानुभूति प्रकट हुई है, और प्रतिनायको के प्रति उनकी विरक्ति एव घृणा व्यक्त हुई है. इन प्रतिनायक पात्रों के अवगुणो को विद्यावाचस्पतिजी ने उभारा है नायक पात्र लेखक के निजी आदर्शों का प्रतिनिधित्व करते हैं, वे अन्याय–शोषण के विरूद्ध आवाज बुलंद करने वाले तथा समाज–सुधार व राष्ट्रोद्धार की भावनाओ का वहन करने वाले हैं. उनमे शूरवीरता, उत्साह, पौरूष आदि के गुण प्रायः समान हैं 'शाह आलम की ऑंखे' में ५५, 'अपराधी कौन' में ६३, 'जमींदार' मे ५८, 'सरला की भाभी' मे १७, 'सरला' मे १६ और 'आत्मबलिदान' में २४ पुरूष पात्र हैं

नारी-पात्र- विद्यावाचस्पति जी के उपन्यासो में सबल नारी चरित्रों का चित्रण होता है, पर 'कमलादेवी' (शाह आलम की ऑंखें) और रानी दयावती के सिवाय कोई भी नायिका या नारी फलागम

की स्थिति को प्राप्त नहीं कर पाती कमलादेवी साहसी है शाह आलम के अनुचर जब उसका अपहरण कर लेते हैं, तो वह साहस के साथ मार्ग में ही पलायन कर जाती है अपने क्षत्रिय प्रेमी के संकट में पडने पर वह उसकी देवालय मे सेवा करती है और तत्पश्चात् सन्यासिनी का वेश धारण कर स्वामी केवलानन्द के रूप मे राष्ट्रीय जन जागरण के लिए निकल पडती हैं गुलाम कादिर के कुकृत्य जब बहुत अधिक बढ जाते हैं, तब तेजसिह के साथ कमला भी सैनिको के सगठन मे लग जाती है, और लाल किले पर आक्रमण कर द्रोपदी और दुर्गा का रूप धारण कर लेती है गुलाम कादिर के यमपुर चले जाने के बाद गुलाब (तेजसिह) और चमेली (कमला) का पाणिग्रहण हो जाता है जब हम कमलादेवी का तेजसिह के साथ राष्ट्रीय जन–जागरण व युद्धभूमि मे साथ–साथ देखते हैं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि कथाकार जयशकर प्रसाद की कथा कला से विद्यावाचस्पति जी की चरित्र–चित्रण पद्धति निश्चित रूप से प्रभावित हुई है नारी चरित्रो मे रानी दयावती (जर्मीदार) का चरित्र भी उल्लेखनीय है उसमे पुरूषोचित साहस है, प्रजा के सुख के लिए वह अहर्निश चितित रहती है शरणागत के प्रति वह 'यथा नाम तथा गुण' है वह सज्जनो के लिए सर्वहितकारिणी और दुष्टों के लिए दुर्गा है

उम्मेदसिह की माँ अनारो (अपराधी कौन) एक अशिक्षित साधनहीन, निर्धन मजदूर महिला है, जो दवा के अभाव मे और पुत्र के वियोग मे असमय काल–कवलित हो जाती है चम्पा (सरला की भाभी) कर्तव्यपरायणा, अतिशय सहिष्णु और पतिव्रता नारी है, उसके पति (गोपालकृष्ण) द्वारा सतायी हुई अपनी सौत रामकली की व्यथा कथा जानकर वह अज्ञातवास को निकल पडती है रामकली (सरला की भाभी) का चित्रण एक जमींदार के विलासपूर्ण जीवन और वासना के चक्र मे फसी अभागी नारी के रूप मे किया गया है. सरला (सरला व आत्मबलिदान) उदात्त चरित्र वाली सुशिक्षित महिला है. स्वतत्रता सेनानी है झूठी अफवाहो के कारण जब दाम्पत्य सबध कटु हो जाते हैं, तब वह वैयक्तिक प्रेम के क्षेत्र मे न फसे रहकर १९४२ की अगस्त क्रान्ति का नेतृत्व करते हुए 'मातृभूमि पर अपना शीष चढा देती है' यही सरला का आत्म बलिदान है. विद्यावाचस्पति जी ने कमला (शाह आलम की ऑखे) को प्रेयसी के रूप मे, दयावती (जमींदार) को भागपुर की कुशल प्रशासिका जमींदार के रूप मे, अनारो (अपराधी कौन) को साधनहीन मॉ के रूप मे, चम्पा (सरला की भाभी) को कुशल गृहिणी के रूप मे व सरला (सरला व आत्म बलिदान) को राष्ट्र सेविका के रूप मे चित्रित किया है 'सरला की भाभी' रामकली के माध्यम से 'नारी की करूण स्थिति का चित्र' पाठको के सामने प्रस्तुत किया गया है 'शाह आलम की ऑखे' मे ४, 'अपराधी कौन' मे १०, 'जमींदार' मे १४, 'सरला की भाभी' मे १४, 'सरला' मे ६ और 'आत्म बलिदान' मे ६ नारी पात्र हैं कमला, अनारो, दयावती, चम्पा, रामकली, सरला ही विद्यावाचस्पति जी के उपन्यासो के मुख्य नारी पात्र हैं.

बहिरंग चित्रण- बहिरंग चित्रण का सबध पात्रो की आकृति, वेशभूषा, अवस्था, नाम, क्रिया, अनुभव आदि से होता है विद्यावाचस्पति जी के उपन्यासो मे पात्रो के बहिरग चित्रण की प्रवृत्ति अधिक है पात्रो के बहिरग चरित्र–चित्रण की ओर उनका झुकाव इस बात का परिचायक है कि चरित्र–चित्रण मे उनका दृष्टिकोण इतिहासकार का अधिक और उपन्यासकार का कम है

विद्यावाचस्पति जी को बहिरग चित्रण के अन्तर्गत पात्रो की आकृति एव वेशभूषा का वर्णन अभीष्ट रहा है. ऐसे वर्णनो से उनकी रचनाये भरी पडी हैं. 'शाह आलम की ऑखे' मे तेजसिंह की बाह्यकृति का वर्णन इस प्रकार है. –'उस राजपूत युवा की अवस्था लगभग २४ वर्ष होगी उसका ऊॅचा कद, उन्नत ललाट, विशाल ऑखे, विस्तीर्ण पेशानी और सुदृढ पट्टेदार शरीर स्पष्टतया सूचित कर रहे थे कि वह एक ऊॅचे वश का राजपूत है'[४५] 'अपराधी कौन' मे उम्मेदसिंह का हुलिया देखने लायक है – 'बाल खडे हुए, मुँह पर कालिमा, कपड़े मैले, पांव लडखड़ाते हुए, ऑखों मे थकान.

[४६] 'सरला' मे सरला की बाह्यकृति का वर्णन इस प्रकार किया गया है – 'रग बहुत गोरा न सही, साफ था, चेहरा लम्बाई पर होता हुआ भी गोलाई मे समाप्त हो जाता था. ऑखे चेहरे के अनुपात मे ठीक थी न बहुत लजीली, न सर्वथा नि.सकोच . सरला के चेहरे में सबसे अधिक सुदर और आकर्षक वस्तु उसकी ऑखे ही थीं नाक छोटी और नुकीली थी. होठ पतले और भावपूर्ण थे, माथा सामान्य से अधिक ऊँचा था '[४७] इसी प्रकार प्राणजीवन[४८] ('सरला'), रामकली[४९] ('सरला की भाभी'), कमलादेवी[५०] ('शाह आलम की ऑखे) इत्यादि के चरित्राकन मे भी उपन्यासकार ने उसकी बाह्यकृति का वर्णन किया है

आकृति के साथ पात्रो की वेशभूषा का भी सजीव वर्णन हुआ है 'अपराधी कौन' में हवालाती कालेखॉ के आकार–प्रकार एव वेशभूषा का चित्रात्मक वर्णन द्रष्टव्य है – 'वह कोई पैंतीस साल की उम्र का हट्टा–कट्टा आदमी था, लबा कद, बडी–बडी मूछे, भयावनी ऑखे, सिर पर पेशावरी टोपी, बदन पर लुगी, सलवार और कोट'[५१] 'अपराधी कौन' के नायक बाल–मजदूर उम्मेदसिह की वेशभूषा की ओर उपन्यासकार ने इस प्रकार सकेत किया है – 'उसके शरीर पर केवल दो कपडे थे एक पाजामा था, दूसरा फटा हुआ कुरता, सिर और पाव से वह नगा था. उन चीथडों मे से उसकी बडी–बडी ऑखे, गोल चेहरा और सुग्गे की–सी उभरी हुई नाक से प्रतीत हो रहा था, मानो कीचड मे से कमल का फूल झलक रहा है. इस समय उस कमल के फूल पर बहुत–सा गर्द गुबार पडा हुआ था.'[५२] इसी तरह अन्यत्र भी विद्यावाचस्पति जी ने चरित्राकन में पात्रों के आकार–प्रकार एव वेशभूषा का चित्रात्मक वर्णन किया है उपन्यास सम्राट् प्रेमचन्द के मतानुसार 'किसी चरित्र की रूपरेखा अकित करते समय हुलिया नवीसी की जरूरत नहीं. दो–चार वाक्यो मे मुख्य–मुख्य बाते कह देनी चाहिये.'[५३]

वस्तु जगत् की भाति उपन्यास जगत् के पात्रो का भी कोई न कोई नाम अवश्य होता है. यह नाम सार्थक एवं उसके चरित्र का व्यजक होता है पात्रों का नामकरण करते समय उपन्यासकार के सामने पात्रों का समूचा चरित्र विकास आ जाता है. उसके गुणावगुण उसे प्रत्यक्ष दिखलायी देते हैं. चरित्रचित्रण मे विद्यावाचस्पति जी ने पात्रों को यथोचित नाम प्रदान किये हैं, 'यथा नाम तथा गुण' की उक्ति उनके अनेक पात्रों पर चरितार्थ होती है. जैसे– 'जमींदार' उपन्यास में भागपुर की रानी का हृदय दयावान होने के कारण ही उसका नाम दयावती रखा गया है. 'रिपुदमनसिंह' दयावती के रिपु जमींदार रूपचन्द का दमन करता है, इसी कारण उसका नाम रिपुदमनसिंह है. 'अपराधी कौन' का उम्मेदसिंह एक ऐसा पात्र है, जिससे अन्याय के निवारण करने की हर हमेशा उम्मीद की जा सकती है. इसी उपन्यास का कालेखॉं रंग रूप से ही नहीं स्वभाव से भी भयानक है. 'सरला' उपन्यास की सरला वस्तुतः सरल हृदया है. ग्रामीण पात्रों के नाम अनारो, सुखदेई, घीसा ('अपराधी कौन'), बुन्दू, भज्जू, खचेडू, पीरू, कल्लू ('जमींदार'), चेतू, खुनिया, पुनिया, चुनिया ('सरला की भाभी'), हरदेई, गुलाबदेई, बदलू ('सरला'), टहलिनी ('आत्मबलिदान') आदि स्वाभाविक नाम हैं, जो ग्राम्य होने के साथ–साथ अशिक्षित वर्ग के प्रतीक हैं, अभिप्राय यह है कि विद्यावाचस्पति जी ने अपने कतिपय काल्पनिक पात्रों के नामकरण द्वारा भी उनके चरित्र की ओर संकेत किया है.

विद्यावाचस्पति जी ने यत्र–तत्र पात्रों के अनुभाव चित्रण के द्वारा भी उनके चरित्रों पर प्रकाश डाला है. देखिए विवाह हेतु कन्या (सरला) दर्शन के समय रामनाथ घर में किस प्रकार प्रविष्ट हो रहे हैं. –'तांगे से उतरने पर उसने अपने खद्दर के कुर्ते और धोती पर पड़ी हुई गर्द को अच्छी तरह झाडा. सिर पर खद्दर की जो गाधी टोपी थी, उसे साफ करके और नोक मिलाकर, फिर सिर पर कुछ थोड़ा–सा टेढा कोण बनाते हुए रख लिया और अन्त में आँखों पर से चश्मा उतारा, उसे रूमाल से पोंछकर नाटकीय अदा से उसे नाक पर लगा लिया.'[५४] गोपालकृष्णसिंह और चम्पा के

घर मे 'लूसी' मेम के बाद एक और सौत आ जाने से रमा–सरला अर्थात् चाची–भतीजी का एक मर्मस्पर्शी करूण अनुभाव भी दर्शनीय है. चम्पा की पुत्री – 'सरला की ऑखो से झर–झर ऑसू बहने लगे सरला अपना सिर रमा की गोद मे डालकर रोने लगी और उसके मुह को रमा की ऑखो से निकले हुए ऑसू भिगोने लगे'[५५]

विद्यावाचस्पति द्वारा चित्रित युद्ध–वर्णन के प्रसगो मे भी प्रेमी–प्रेमिका के अनुभावो का चित्रण मिलता है – ''तेजसिंह दरवाजे से कुछ आगे बढ गया पठान सिपाही खाई के पार ही ठहर गये कमलादेवी भागकर ऐन पास आ पहुँची. उस समय तेजसिह और कमलादेवी दोनो पास–पास थे और सब लोग कुछ दूरी पर थे औरो को धोखा देने के लिए तेजसिह ने जोर से डपटकर कमलादेवी से कहा – 'अरी पगली कहॉ भागी आती है और बिल्कुल पास ही जाकर कन्धे पर हाथ रखकर कान मे कहा– ''कमलादेवी तुम कहॉ'' कमलादेवी ने कान मे कहा– ''मैं अपने प्राणनाथ के पास'' दरवाजे पर और राजपूत तमाशा देख रहे थे तेजसिह ने देखा कि अन्यो के आने पर मामला बिगड जायेगा. धीरे से कमलादेवी के कान मे कहा– 'तुम पगली ही बनी रहो, मैं ठीक कर लूँगा.'' कमलादेवी जोर से चिल्लाकर कहने लगी ''मुझे छोड ! छोड ! कौन है, शिव की पार्वती को छूता है''[५६] सक्षेप मे यहॉ इतना ही सकेत करना पर्याप्त होगा कि विद्यावाचस्पति जी ने पात्रो के चरित्राकन मे उनका अनुभाव चित्रण भी किया है

अन्तरंग चित्रण- पात्रो के जीवन स्वरूप को जानने के लिए उनकी आन्तरिक चेतना को जानना, उसके अन्तर्मन का विश्लेषण करना अनिवार्य है विद्यावाचस्पति जी के उपन्यासो मे पात्रो के अर्न्तमन का विश्लेषण भी मिलता है, प्रमुख रूप से वे अपने नायको की विशेषताओ का ही वर्णन करते हैं, उनके अतर्द्वन्द्व के चित्रण मे उनकी बुद्धि विशेष रूप से नहीं रमती इसका कारण यह है कि उसके पात्र अपने स्रष्टा की तरह जीवन और जगत् के प्रति सुनिश्चित एव स्पष्ट विचारधारा रखते हैं वे अपने निर्धारित जीवन–दर्शन के अनुसार कार्य करते हैं पुनरपि पात्रों के स्वभाव वर्णन मे उनकी आन्तरिक प्रवृत्ति का चित्रण हो जाता है विद्यावाचस्पति जी ने पात्रो के अर्न्तमन का भी विश्लेषण कियाहै उम्मेदसिंह की हत्या मे सहभागी चन्दनसिह का बयान देखिए– ''मैंने पूरे जोर से उसके घुटमो का दबाया और उस पर बैठ गया रहमतुल्ला ने गर्दन दबा रखी थी, वह छाती पर बैठ गया एक बार गले से घरघराहट की आवाज सुनाई दी और बस उसके जीवन का टिमटिमाता–सा दिया बुझ गया जब उसका शरीर लाश होकर पड गया, तब मेरे दिल मे एक तीर–सा चुभ गया, मुझे अनुभव हुआ कि मैंने बुरा किया और मैं चुपचाप बाहर आ गया कोठरी मे लेटकर सोने की चेष्टा की, परन्तु उम्मेद के गले की वह अन्तिम घरघराहट की आवाज मेरे कानो मे आती ही रही मैंने ऑखें बन्द कीं, तो वह आवाज और भी जोर से आने लगी ! मैंने कान बद किए तो अदर से एक इस जोर की आवाज उठी कि मैं सह न सका और कोठरी से बाहर निकलकर एक दरख्त के नीचे बैठ गया.. वही घरघराती हुई आवाज मेरे कानो मे गूँज रही थी फिर क्या हुआ मुझे मालूम नहीं, मुझे जब होश आया तो मैंने अपने आपको पागलखाने के एक कमरे मे पाया यद्यपि अब मेरा होश ठिकाने है और मैं सब कुछ देख और समझ सकता हूँ, पर वह घबराहट की आवाज अब भी मेरे कानो मे गूजती रहती है. जब मैं उसे सुनता हूँ तो मेरा दिल धडकने और सिर घूमने लगता है''[५७]

इसी तरह अन्यत्र भी 'अपराधी कौन' (पृ ५७–५८, ६२, ६६–१००, १०६–७, २१२–१३, २२७–२८), 'शाह आलम की ऑखे' (१६३), 'सरला की भाभी' (२७, १७३), 'सरला' (३७, १६७, २२३–२४), 'आत्म बलिदान' (१०, ३७, ५८, ८०, ८१, ६४, १०१, २२२–२३, २३३) मे विद्यावाचस्पति द्वारा किये गये पात्रो के अर्न्तमन के विश्लेषण उदाहरण के रूप में देखे जा सकते हैं प्रो विजयेन्द्र

स्नातक ने ठीक ही कहा है कि – 'विद्यावाचस्पति जी ने 'कहीं–कहीं' मनोविश्लेषणात्मक पद्धति का अनुसरण किया है, किन्तु ऐसे स्थल अत्यल्प हैं.'[४८] उनकी दृष्टि पात्रों को उनके ऐतिहासिक रूप मे चित्रित करने की ओर अधिक रही है वे मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारो की तरह पात्रो के सघर्ष को उभार नहीं पाये उन्होने उपन्यासकार की अपेक्षा इतिहासकार की चरित्र चित्रण की पद्धति का अधिक उपयोग किया है इतिहासकार की पहुँच पात्र के व्यक्त अश तक ही होती है, अव्यक्त से उसका कोई सबध नहीं होता उनकी उपन्यास कला की शक्ति पात्रो के व्यक्त रूप अर्थात् आचार–व्यवहार को चित्रित करने मे ही लगी रही है अत. औपन्यासिक चरित्र चित्रण की दृष्टि से उन्हे यथेष्ट सफलता नहीं मिल पायी है अपने चरित्र–चित्रण मे उन्होने प्रत्यक्ष चित्रण पद्धति–वर्णनात्मक पद्धति के साथ–साथ चरित्राकन के लिए नाटकीय पद्धति का भी आश्रय लिया है, जिसमे घटनाओ, पात्रो की क्रियाओ–प्रतिक्रियाओ सवादो एव अन्य पात्रो के माध्यम से वे चरित्र–चित्रण प्रस्तुत करते हैं

५.८ संवादः-

सवाद उपन्यास का तीसरा तत्व है व्यक्ति वही होता है, जो अपने आपको अभिव्यक्त करे और अभिव्यक्ति का सबसे अच्छा माध्यम सवाद ही है उपन्यास मे प्राय दो अथवा अधिक पात्रो के वार्तालाप के लिए कथोपकथन या सवाद शब्द प्रयुक्त होता है, परन्तु कभी–कभी एक ही पात्र आत्मतल्लीनता की स्थिति मे स्वय से ही वार्तालाप करने लगता है इसे स्वगत कथन कहा जाता है प्रेमचन्द औपन्यासिक सवादो के विषय मे लिखते हैं – 'उपन्यास मे वार्तालाप जितना अधिक हो और लेखक की कलम से जितना ही कम लिखा जाय उतना ही अच्छा है'[४९] कथोपकथन का उद्देश्य है कथानक का विकास, पात्रो की व्याख्या तथा लेखक के आशय को स्पष्ट करना उपयुक्तता, स्वाभाविकता, सक्षिप्तता, उद्देश्यपूर्णता, पात्रानुकूलता, व्यग्यात्मकता, भावात्मकता आदि सवाद के आवश्यक गुण हैं पात्र कथा–प्रवाह मे धीरे–धीरे पृथक् हो जाते हैं, उनमे निकटता लाने के लिए भी कथोपकथन बडे उपयोगी होते हैं

विद्यावाचस्पति जी ने अपनी औपन्यासिक कृतियो मे सवादो का प्रचुर मात्रा मे प्रयोग किया है 'सरला की भाभी' उपन्यास का प्रारभ ही सवादो के साथ हुआ है और इस उपन्यास की अगली कडी 'सरला' उपन्यास तो सवाद प्रधान रचना है अन्य उपन्यासो मे भी सवादों का प्रभूत प्रयोग है. विद्यावाचस्पति जी के सवाद केवल सजावट के लिए नहीं है, उन्होने संवादो द्वाराकथा का विकास (जैसे 'अपराधी कौन' मे – हीरासिह, गुलाबसिंह और चन्दनसिह का वार्तालाप–पृ. २२५) करने के अतिरिक्त पात्रो के व्यक्तित्व का भी उद्‌घाटन किया है (जैसे 'आत्मबलिदान' उपन्यास मे देवकी–माधवकृष्ण–राधाकृष्ण के वार्तालाप से देवकी के कठोर व्यक्तित्व का चित्रण–पृ.६०, 'सरला' मे जर्नादन पण्डित और महात्मा के वार्तालाप से चपा का चरित्र चित्रण पृ १६६–२०४) सवादो से विद्यावाचस्पति जी के स्त्री–शिक्षाविषयक विचारधारा को भी अभिव्यक्ति मिली है. (जैसे 'सरला' उपन्यास में महात्मा द्वाराचम्पा को सार्थक गायत्री जप करने का उपदेश देकर केवल स्त्री शिक्षा का समर्थन ही नहीं किया है अपितु उसे वेदाधिकारी भी बनाया गया है–पृ. २००–२०१) विद्यावाचस्पति जी के सवाद संक्षिप्त ('सरला' उपन्यास मे रमा–सरला सवाद पृ.१८–१६, गोपालकृष्ण–सरला सवाद–पृ. २४), एवं दीर्घ (जैसे 'जमींदार' उपन्यास में बूढी ब्राह्मणी रानी दयावती संवाद–पृ ७१, राजा रामसिह–रूपचन्द सवाद–पृ ७३) दोनो प्रकार के हैं. पर दीर्घ ऊबाऊ सवादो की मात्रा नगण्य सी है. औपन्यासिक सवाद भावात्मक (जैसे 'जमींदार' में रूपचन्द–रिपुदमनसिह संवाद–पृ. १३५), रिपुदमनसिंह–रानी दयावती संवाद–पृ. १५१) नाटकीय (जैसे 'जमींदार' में दयावती–रूपचन्द संवाद–पृ ११४–११६, तथा दयावती–गजेन्द्रसिह संवाद ११८–१६), एवं व्यग्यात्मक (जैसे– 'जमींदार'

मे ही रूपचन्द–रिपुदमनसिह सवाद–पृ १३२–१३४) हैं इन सवादो मे यथोचित्त सक्षिप्तता, पैनापन और कार्यानुसार गतिशीलता भी है सक्षिप्तता और भावात्मकता की दृष्टि से क्रमश 'सरला' उपन्यास के माणिकलाल–प्राणजीवन सवाद (पृ ८०) और भारतीबाई–प्राणजीवन सवाद (पृ ११७–१८) अतिशय उत्कृष्ट हैं

सवादो की भाषा पात्रानुकूल एव वातावरणानुरूप है (जैसे–'अपराधी कौन' मे रहमतुल्ला–बेगम की बातचीत–पृ २३६) 'जमींदार' में रानी दयावती–तुलसी की बातचीत–पृ १४३), 'शाह आलम की ऑखे', 'अपराधी कौन' व 'जमींदार' उपन्यास मे पात्रानुकूल सस्कृत, उर्दू और देशज शब्दो का प्रयोग सवाद मे किया गया है व्यग्यात्मक सवाद की दृष्टि से 'आत्म–बलिदान' का रामनाथ–डॉ कैलाश सवाद (पृ १०७) भी उल्लेखनीय है

इस प्रकार विद्यावाचस्पति कृत उपन्यासान्तर्गत सवाद सक्षिप्त सजीव एव गतिशील है प्राय सवाद 'अभिधा' शैली मे ही लिखे गये हैं लक्षणा और व्यजना से उनका सबध नहीं है, पुनरपि सवाद–कला की दृष्टि से उनकी रचनाये उत्कृष्ट न सही, पर उत्तम कोटि की जरूर है आधुनिक युग मे मनोभावो को चित्रित करने के लिए उपन्यासो मे स्वगत–कथन अत्यावश्यक माने गये हैं, पर विद्यावाचस्पति के उपन्यासो मे एक दो अपवादो को छोडकर प्राय उनका अभाव ही है सक्षेप मे औपन्यासिक सवाद की जो सैद्धान्तिक विशेषताए है, वे प्राय विद्यावाचस्पति जी के उपन्यासो मे न्यूनाधिक रूप मे पायी जाती हैं

५.६ देश-काल:-

देश काल उपन्यास का चौथा मूल तत्व है इसके अन्तर्गत किसी भी देश अथवा समाज की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियॉं, आचार–विचार, रूढियॉं, प्रथाये, रीति–रिवाज तथा समाज की विशेषताए एव कुरीतियो आदि का चित्रण किया जाता है ऐतिहासिक उपन्यासो मे भी ऐतिहासिक घटनाओ की अपेक्षा तत्कालीन जीवन–चित्रण को अधिक महत्व दिया जाता है विद्यावाचस्पति जी के उपन्यासो मे देश और काल का सजीव चित्रण हुआ है

देश-चित्रण- विद्यावाचस्पति जी के उपन्यास विविध स्थानो और घटनाओ से सम्बद्ध हैं 'शाह आलम की ऑखे' का मुख्य घटना स्थल सुजानपुर (दिल्ली) व लालसोठ (जयपुर) नामक गाव है. 'अपराधी कौन' का मुख्य घटना स्थल दिल्ली और पजाब के ग्राम्य परिसर तथा उसके जेलो से सम्बद्ध हैं 'जमींदार' का घटना स्थल वीरगढ, भागपुर और लाटपुर नामक गाव है. 'सरला की भाभी' का घटना स्थल सरजानपुर, बैलूर तथा प्रयाग है, 'सरला' उपन्यास का घटना स्थल हरिद्वार व बबई है, और 'आत्मबलिदान' का घटना स्थल बम्बई व पटना से सम्बद्ध है विद्यावाचस्पति जी ने देश अथवा भूगोल वर्णन मे पर्याप्त सतर्कता से काम लिया है

काल-चित्रण- 'शाह आलम की ऑखे' उत्तर मुगलकालीन उपन्यास है इसका घटनाकाल १७८७ है इसमे दिल्ली के मुगल बादशाह 'शाह आलम' (द्वितीय) के विरूद्ध घटित राजनीतिक षडयत्रो एव शाह के अधे होने की कथा है मुख्य घटना केन्द्र दिल्ली से १८ किलोमीटर पर स्थित सुजानपुर व जयपुर से ४३ किलोमीटर पर स्थित लालसोठ गाव है. विद्यावाचस्पति जी ने सन् १९२७–२८ व १९३० मे जो जेल जीवन का अनुभव दिल्ली व पजाब की जेलो में प्राप्त किया उसी पर 'अपराधी कौन' उपन्यास की रचना हुई है. 'जमींदार' उपन्यास का काल १९३६ से पूर्व का है, जब देश में राष्ट्रीय सरकारे अभी स्थापित नहीं हो पायी थीं 'जमींदार' उपन्यास के चार घटना केन्द्र मुख्य हैं रेलवे स्टेशन से ८ मील दूरी पर स्थित वधू के पिता रूपचन्द जमींदार का गाव वीरगढ, वीरगढ से १५ मील दूरी पर स्थित वर पक्ष का गाव रामपुर खुर्द, रूपचद जमींदार के आतक से आतकित तुलसी किसान का गाव लाटपुर, जहॉं से सरकारी अस्पताल दस मील दूर और लाटपुर

से ११ मील दूर तुलसी को शरण देने वाली तथा जमींदार रूपचन्द के अहम् को चकनाचूर करने वाली विधवा रानी दयावती का गाव भागपुर 'सरला की भाभी', 'सरला' और 'आत्म बलिदान' उपन्यास की कथा स्वातन्त्र्य पूर्वकालीन १६ वीं सदी के पूर्वार्द्ध की है 'सरला की भाभी' मे भारतीय समाज की पारिवारिक रूढियो का वर्णन किया है 'सरला' मे धार्मिक दभ का भण्डाफोड किया गया है और 'आत्म–बलिदान' मे सन् १६३४ मे बिहार भूकम्प से लेकर सन् १६४२ के अगस्त क्राति तक की राजनीतिक कथा कही गयी है

५.१० परिवेश चित्रणः-

विद्यावाचस्पति जी के उपन्यासो मे खिलाफत, कम्युनिस्ट व कॉग्रेस आदोलन की झलक बतलाकर राजनीतिक परिवेश का चित्रण यथोचित रूप मे किया गया है बात उस समय की है जब यूरोप का पहला महायुद्ध छिड गया था टर्की जर्मनी का साथी बनकर इग्लैण्ड के विरूद्ध युद्ध मे उतर गया था टर्की के बादशाह की सारे मुस्लिम जगत् मे काफी प्रतिष्ठा थी, सभी लोग उसे खलीफा, धर्माध्यक्ष और प्रधान मानते थे पर युद्ध मे जर्मनी की हार होते ही विजयी इग्लैण्ड ने टर्की के खलीफापन को उडा दिया अग्रेजो की इस कार्यवाही के विरोध मे भारत मे जो आन्दोलन छिडा था वह खिलाफत आन्दोलन कहलाया इस कारण भी मुस्लिम नेताओ का झुकाव अग्रेज सरकार की ओर से हटकर धीरे–धीरे कॉग्रेस की ओर हो गया 'अपराधी कौन' उपन्यास का 'नवाब खॉ' इसी समय कॉग्रेस का स्वयसेवक बना था इस समय कॉग्रेस मे सम्मिलित होने वाले मुस्लिम वर्ग को विद्यावाचस्पति जी ने दो वर्गो मे विभाजित किया है – साप्रदायिक और राष्ट्रीय नवाब खॉ राष्ट्रीय प्रवृत्ति का था (पृ ७२), सन् १६२७–२८ के जेल जीवन मे ही 'लेखक' ने 'अपराधी कौन' उपन्यास लिखने की स्थूल रूपरेखा तैयार कर ली थी, लगभग इसी समय सन् १६२८ मे मेरठ मे भारतीय कम्युनिस्टो का अधिवेशन हुआ था सरकार का यह आरोप था कि ब्रिटिश सत्ता को नष्ट करने के लिए कम्युनिस्टो ने इस अधिवेशन मे एक षडयत्र की रूपरेखा तैयार की थी, सरकार ने अमृत प्रसाद डागे इत्यादि तैंतीस व्यक्तियो पर एक मुकदमा चलाया था इस समय अनेक लेखको की सहानुभूति मेरत षडयत्र के कम्युनिस्ट युवको को प्राप्त हुई विद्यावाचस्पति जी ने इस उपन्यास मे प्रत्यक्ष रूप से इस षडयत्र की चर्चा नहीं की है पर जैसे मेरठ षडयत्र मे अनेक मुबई राज्य के कार्यकर्ता गिरफ्तार किये गये थे वैसे ही इस उपन्यास मे जो मजदूर सभा को सबोधित करने वाले स्वामी भूतानद और श्री पाटनकर नामक अतिथि वक्ता आये हैं, वे भी मुबई से ही आये हैं (पृ ११३) 'आत्म बलिदान' उपन्यास तो तत्कालीन 'बिहार–भूकम्प' और 'भारत छोडो आन्दोलन' की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है, अत चारो ओर खद्दर का साम्राज्य दिखाई देता है – एक बुजुर्ग खद्दर पहने हुए हैं (पृ ७), एक खद्दर पहनी महिला के हाथ मे खद्दर का झोला लटका हुआ है (पृ ८) राजेन्द्रबाबू के सिर पर खद्दर की टोपी है और चारो ओर भी खद्दरपोशो की भीड है (पृ १८) लेखक ने कॉग्रेस से नेत्र उलझने केकारण कुटुम्बो को टूटते हुये बतलाया है (पृ १४६) उपन्यास मे स्वाधीनता आदोलन का जीता जागता चित्र उपस्थित किया है लोग जब आपस मे मिलते हैं तो उनकी मुलाकात राष्ट्रीय अभिवादन के साथ होती है, जैसे बहिनजी वदे। (पृ १८१), तिवारीजी वन्दे मातरम्। (पृ १८७), चपादेवीजी वदे। (पृ ७४).

विद्यावाचस्पति जी के उपन्यासो मे राजनीतिक स्थिति की तरह तत्युगीन सामाजिक स्थिति की भी झॉकी यत्र–तत्र दृष्टिगोचर होती है. महाराष्ट्र के दलित समाज ने बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध मे माननीय डॉ अबेडकर की प्रेरणा से प्रेरित होकर जिस प्रकार ब्राह्मणवाद पर अपना क्रोध व आक्रोश व्यक्त किया है, न्यूनाधिक रूप में उसी प्रकार का तीव्र क्रोध व आक्रोश दयानन्द व उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज से प्रेरणा प्राप्त कर बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में विद्यावाचस्पति जी ने अपने उपन्यासो

मे किया है, जिसे देखकर आश्चर्य होता है विद्यावाचस्पति जी ने अपने ब्रह्म के मुँह से उत्पन्न होने वाला बतलाने वाले तथाकथित ब्राह्मणो के धार्मिक पाखण्ड का पर्दाफाश करते हुए उन्हे व्यग्य मे 'गुरूघण्टाल' और 'वशिष्ठ मुनि का कलियुगी अवतार' कहा है (अपराधी कौन पृ ६१, १६०) 'अपराधी कौन' उपन्यास मे विद्यावाचस्पति जी ने खान–पान विषयक अस्पृश्यता की ओर भी सकेत किया है, चाहे फिर वह हिदुओ के बीच हो या हिदू–मुसलमानो के बीच (पृ ७२) इसी उपन्यास मे चदनसिह द्वारा कालेखों के बारे मे कहे इस कथन से 'अरे कुरान की कसम मे क्या रखा है, वह तो वह दिन भर खाया करता है मैंने तो उससे उनकी जवान बीबी की कसम ले ली है' (पृ. २४२) सप्रदायो मे दिन ब दिन हो रहे धार्मिक ह्रास का सकेत मिलता है मुस्लिम समाज की बहुविवाह प्रथा व हिंदू समाज की विधवा दुर्दशा का भी चित्रण विद्यावाचस्पति के उपन्यासो मे चित्रित है (तत्रैव ६६, २२६–३०) जन्मकुडली, भाग्यवाद, गगा–स्नान, अशिक्षा, अनमेल विवाह, कन्या बिक्री आदि रूढियो व पतिगृह और पितृगृह दोनो ही ओर से पीडित नारी का 'सरला की भाभी' मे यथार्थ चित्रण किया गया है (पृ ६, ५५, १०६, १०८, १८६, १७१) 'कुभ मेले' से लौटकर 'गगा स्नान का मगल–फल चखने वाले' यात्रियो का वर्णन करते हुए विद्यावाचस्पति जी कहते हैं – "कुभ के मेले पर पहुँचना इतना कठिन नहीं, जितना वहाँ से निकलना स्नान समाप्त होते ही ऐसी भगदड पडती है कि मानो स्नान के दो–एक दिन बाद मेले पर प्रलय टूटने वाली हो यात्री सिर पर पाव रखकर भागते हैं सब लोग पहली गाडी लेने की कोशिश करते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि मेला गगा तट की जगह स्टेशनो पर भर जाता है और पहली गाडी उतने ही यात्रियो को ले जाती है, जितनो की उस गाडी मे जगह हो शेष यात्री कटघरो मे भेड–बकरियो की तरह भरे जाकर गगा स्नान का मगल फल चखते दिखाई देते हैं' (स की भा –पृ १४४) 'जमींदार' उपन्यास मे तत्कालीन आर्यसमाज के आदोलन के कारण 'गतानुगतिकता' को छोडकर प्रगति पथ पर अग्रसर होने वाले समाज का भी प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप मे चित्रण किया गया है, इसलिए उसमे बाल–विवाह का विरोध, स्त्री–शिक्षा व स्वयवर–प्रथा का समर्थन है (पृ १३७) 'शाह आलम की आँखे' (१६३२), 'अपराधी कौन' (१६३२) के पात्र प्राय परस्पर राम–राम कहते थे, पर 'जमींदार' (१६३६) के पात्र 'राम–राम' के स्थान पर 'नमस्ते' कहने लगे हैं (५६, ८६, १२६) 'सरला' उपन्यास मे बदलते हुए सक्रमणशील समाज का चित्रण है जिसका एक पैर रूढिवाद मे और दूसरा प्रगतिशीलता की ओर है, अत अब वह केवल 'शिव–शिव' नहीं कहता, अपितु 'शिव–ओ३म्' कहने लगा है (१८३–१८८) ईश्वर के मुख्य नाम 'ओ३म' का पुनरूद्धार आर्यसमाज के पुनर्जागरण आन्दोलन का परिणाम है 'सरला' उपन्यास का महात्मा आर्यसमाजी है, क्योकि वह अर्थ सहित गायत्री मन्त्र का उपदेश चम्पा (स्त्री) को बतलाने का निर्देश ब्राह्मण को देता है (पृ १६२). 'आत्म बलिदान' उपन्यास मे लेखक ने सुधारको का मजाक करने वाले सनातन धर्मी को सुधारक दल की ओर झुकते हुए बतलाया है (४३)

विद्यावाचस्पति जी के उपन्यासों मे विस्तार से तो नहीं, पर साकेतिक ढग से आर्थिक परिस्थिति का भी वर्णन किया है सन् १७८७ मे एक रुपए के अवमूल्यन पर चिता व्यक्त करते हुए 'शाह आलम की आँखे' का मराठा सिपाही कहता है – "अनाज का यह हाल है कि आज रुपए का चार सेर अनाज बिक रहा है भला यह अनर्थ भी कहीं देखा जाता है, प्राण बचे तो कैसे'? (पृ १०२) 'जमींदार' उपन्यास मे लेखक ने किसान और मजदूरो के गाव को भस्मसात् कर देने वाली जमींदारी प्रथा की नृशसता का चित्र अकित किया है उनके उपन्यासो मे आर्थिक दृष्टि से विषमता की स्थिति मे पहुँचा शासक–शासित या शोषक–शोषित वर्गीय विषम समाज का भी चित्रण हुआ है 'अपराधी कौन' नामक उम्मेदसिह के पास तन ढकने के लिए कपडा नहीं है और 'सरला की भाभी' का नायक अपनी दूसरी स्त्री को सतुष्ट करने के लिए प्रति मास दो हजार रूपये उडा देता

है (१३) लेखक के शब्दो मे लूसी (प्रथम पत्नी चम्पा की तरह) हिन्दुस्तानी औरत तो थी ही नहीं, जो थोडे मे सन्तुष्ट हो जाती

विद्यावाचस्पति जी ने अपने उपन्यासो मे तत्कालीन परिस्थितियो के अतिरिक्त भौगोलिक दृष्टि से स्थान वर्णन मे भी अभिरुचि ली है 'अपराधी कौन' मे दिल्ली के विविध बाजारो का वर्णन किया है (पृ २, ५) राजधानी बन जाने और विश्वविद्यालय खुल जाने से दिल्ली का जो स्वरूप बदला है, उसका भी उपन्यास मे वर्णन है घर का खाकर बेकार वकील अदालतो की रौनक बढा रहे हैं और सरकारी मकानो मे क्लर्क लोग रईसो की शान से स्वजीवन यापन कर रहे हैं (पृ २८, ३२)

'सरला' उपन्यास मे हरिद्वार और उसके समीपवर्ती परिवेश का सुदर वर्णन किया गया है शिवालिक की हरी–भरी चोटियॉ दूध भरे स्तनो की तरह अपनी सतान को सतोष का सदेश दे रहीं है (पृ १७१) 'हिमालय की हरेक गुफा मे महात्मा और हरेक झाडी मे योगी है, पर हजारो नामधारी साधुओ मे कोई एक दो ही सच्चे साधु हैं (१८३, १८६) 'सरला' मे बम्बई उपनगरी की भी सजीव झाकी प्रस्तुत की गई है नगरी मे मराठो, गुजरातियो के अतिरिक्त पूर्वी व उत्तरी भारत से आया बहुत बडा समाज रहता है मराठा–मजदूर के असली नमूने बबई की घाटी नामक मजदूर श्रेणी मे पाये जाते हैं (पृ १०१) गुजराती समाज मे छोटी आयु मे ही 'वाग्दान' और 'लग्न' हो जाते हैं (६६) भारतीबाई रामलाल चौबे से कहती है, 'सरलाबाई यहाँ की बबई की नहीं, पूरब की है, उसे पूरब की चाल से चलना चाहिये.. क्या पूरब मे वह एक पराये मर्द के साथ एक–दूसरे का हाथ पकडकर घूमने जा सकती है (पृ ६८) कलकत्ता की सख्त पर्दा प्रथा मे रहने वाली अशिक्षित नारियो तथा फैशनपरस्त सुशिक्षित महिलाओ की तुलना मे बबई का वातावरण सरला को सौम्य, स्वाधीन व सादा प्रतीत होता है (पृ ३२). बबई की भीड भरी जिंदगी का वर्णन करते हुए उपन्यासकार कहता है – 'आस–पास की बस्तियो से बबई की ओर जाने वाले लोगों का जनप्रवाह नदी की धारा की तरह बह रहा है (पृ २०५) मुंबई के जीवन में लोकल ट्रेनो का विशेष महत्व है, उसका वर्णन करते हुए लेखक ने कहा है – 'रेलवे लाइन पर हर दूसरे मिनिट मनुष्यो के बोझ से लदी हुई लोकल गाडियॉं धडाधड भाग रही हैं मुबई का समुद्र तो निराशाग्रस्त व्यक्तियों का एक मात्र ठिकाना है (२१०).

'अपराधी कौन' मे पजाब के 'माझा' और 'मालवा' प्रदेश की हरित शस्य श्यामल भूमि के वर्णन के साथ लडाकू सिक्ख व बहादुर अराई जाति की विशेषताओं का वर्णन किया गया है. (२०२–२०३). 'सरला' मे पजाबी यात्रियों की तीन विशेषताये बतलायी है. – खाना, घूमना और कूडा बखेरना. जाट पुत्र की भी तीन विशेषताओं की चर्चा की है – वह धरती माता का अनथक सेवक, खुरदरी वाणी वाला व मालिक का अनन्य भक्त होता है. (पृ. १५४–१५५). ब्रिटिश कालीन अधेरे गांवो तथा उनकी अटूट एकता का चित्रण करते हुए लेखक कहता है – 'गांव वालों की 'लोटा–नमक' शपथ बडी पक्की चीज है, वह यूरोप के देशों का अन्तर्राष्ट्रीय समझोता नहीं कि तोडने के लिये किया जाय' (जमींदार – पृ ६६).

५.११ भाषा शैलीः-

उपन्यास कला का पाचवॉं तत्व भाषा शैली है हिन्दी उपन्यास के आरभिक युग मे जब भाषा शैली का स्वरूप पूर्णतया निर्धारित या स्थापित नहीं हो पाया था, तब विद्यावाचस्पति जी ने (सन् १६१८ मे) उपन्यास लेखन के क्षेत्र मे प्रवेश किया था उपन्यासों की भाषा प्रायः मिश्रित भाषा थी. भाषा के परिवार एव परिमार्जन के साथ ही भाषा के रूपों में स्थिरता के पश्चात् परवर्ती युग में भाषा

तत्व का महत्व अधिक बढ गया है पूर्वयुगीन अधिकाश उपन्यासो मे तृतीय पुरुष के रूप मे वर्णनात्मक शैली का ही प्राय प्रयोग किया जाता था विद्यावाचस्पति ने भी मुख्य रूप से इसी शैली का प्रयोग किया है, यद्यपि उसके अन्तर्गत उन्होने कहीं स्मृतिपरक शैली, दृश्य विधान आदि का भी प्रयोग किया है. उनकी वर्णनात्मक शैली प्रकृति वर्णन ('शाह आलम की ऑखे' मे जैसे ब्राह्मण ग्रथो से प्रभावित प्रकृति चित्रण–६३, वसन्तोत्सव का वर्णन-- पृ १४–२०, पात्रो की गतिविधियो के साथ चित्रित प्रकृति वर्णन– 'सरला'–१२७–२८, ५२, १५४–१५५, – 'आत्म बलिदान'–१८०, २२४, २३०), भाव वर्णन, वस्तु वर्णन आदि मे दर्शनीय है उनकी यह शैली सरलता, रोचकता और प्रवाहात्मकता की दृष्टि से प्रभावोत्पादक है सजीव सवाद, देश एव पात्रानुकूल भाषा, मार्मिक प्रसगो एव रोचक वर्णनो के कारण उनके उपन्यासो की शैली चित्ताकर्षक है वर्णनात्मक शैली के बीच अलंकारिक एव हास्य व्यग्यात्मक शैली के भी उदाहरण उनके उपन्यासो मे प्राप्त होते हैं घटना, पात्र, वातावरण आदि मे इतिवृत्तात्मक की प्रधानता है

विद्यावाचस्पति जी की भाषा मे एकरसता नहीं है कही–कहीं वह सस्कृतनिष्ठ रूप धारण कर लेती है तो कहीं अपने सहज व सरल रूप मे प्रस्तुत है उपन्यासो मे स्थानीय रग की सृष्टि के लिए जन–जीवन की भाषा के देशज शब्द ग्रहण किये हैं, जिससे स्थानीय वातावरण मुखर हो उठा है सक्षेप मे विद्यावाचस्पति जी की शैली वर्णनात्मक है, पर यथास्थान उन्होने विश्लेषणात्मक, पत्रात्मक ('शाह आलम की ऑखे' मे ४ पत्र, 'सरला की भाभी' मे ५ पत्राश और तीन पत्र, 'सरला' मे पाच पत्र और 'आत्म बलिदान' मे ६ पत्र हैं), भावात्मक, मनोविश्लेणात्मक, स्मृतिपरक–फ्लैश बैक ('शाह आलम की ऑखे' – पृ २२७, 'अपराधी कौन' – २२७, 'जमींदार' –६२, 'सरला'–१४६, 'आत्म बलिदान'– २३८–२३६), सवाद व डायरी ('सरला'–२१४) शैली का भी प्रयोग किया है. उनकी भाषा प्रधान रूप से सहज–सरल, मुहावरेदार है. प्राचीन–ऐतिहासिक वातावरण को स्पष्ट करने के लिए उन्होने सस्कृत और उर्दू के यथोचित शब्दो का प्रयोग किया है, जिसमें उन्हे पर्याप्त सफलता हासिल हुई है. यथार्थ मे विद्यावाचस्पति जी की भाषा 'शाह आलम की ऑखे' (१६१८) उपन्यास को अपवाद रूप मे छोडकर शेष सभी उपन्यासो मे पात्र–प्रसगानुकूल सहज एव स्वाभाविक है.

५.१२ उद्देश्यः-

उपन्यास कला का सातवा और अन्तिम तत्व उद्देश्य है. प्राय सभी उपन्यासकार मानव–जीवन की अभिव्यक्ति को उपन्यास का उद्देश्य मानते हैं मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार जी ने भी 'उपन्यास को मानव जीवन को गति देने वाला साहित्य माना है'.[६०] यथार्थ मे उपन्यास साहित्य बदलते हुए मानव–समाज का इतिहास है और यह उसका महत्व है.

विद्यावाचस्पति जी कला के उपयोगितावादी सिद्धान्त के अनुयायी हैं साहित्य मे वे 'सत्य' और 'शिव' तत्व को 'सुन्दरम्' की अपेक्षा अधिक महत्व देते हैं इस कारण उनके औपन्यासिक कथा रूपो मे कलात्मकता को क्षति पहुँची है, परन्तु जिस स्पष्ट और स्वस्थ रूप से उन्होंने अपनी विचारधारा को अभिव्यक्ति दी है, वह प्रशसनीय है. सामयिक जन–जीवन के प्रति केवल जागरूकता ही नहीं, प्रत्युत एक मीमासक का दृष्टिकोण उनमे दिखलायी देता है. उनकी ऐतिहासिक, सामाजिक एव राजनैतिक कृतियो में समाज–सुधार व राष्ट्र–प्रेम का मूल कारण उनका आर्य वैदिक दर्शन है.

बीसवीं शताब्दी के द्वितीय दशक मे 'शाह आलम की आँखे' लिखने का उद्देश्य ही यह था कि भारतवासियो के मन में चेतना का स्फुरण हो, तेजसिह कमला के अपहरण से क्षुब्ध होकर शाह आलम के विरूद्ध कह उठता है – 'वह विदेशी है, जब तक वह मेरे देश की स्वाधीनता पर

बन्धन डालेगा, वह मेरा शत्रु है' उपन्यास मे उन्होने ऐतिहासिक सघर्षो और सामन्तो की कुत्सित मनोवृत्ति, वासनामय जीवन और शासको की मनमानी का विस्तार से वर्णन करते हुए देश की रूढियों का भी वर्णन किया है, और रूढियो से मुक्ति पाने के लिए उद्‌बोधन के सदर्भ जोडे है 'अपराधी कौन' (१६३२) उपन्यास में जेलों की दुर्व्यवस्था का चित्रण करते हुए अपराध के लिए अपराधी की अपेक्षा न्याय व्यवस्था तथा सामाजिक व राजनैतिक सगठनो को अधिक जिम्मेदार माना है. 'जमींदार' (१६३६) मे जमींदारो के विलासितापूर्ण जीवन व ग्रामीण किसान–मजदूरों के शोषणयुक्त विषमतापूर्ण जीवन का चित्रण किया है 'अपराधी कौन' मे निर्धनता, शिक्षा का अभाव, विधवा जीवन, चारित्रिक दुर्बलता तथा तथाकथित ब्राह्मणो के आडम्बरपूर्ण जीवन का सजीव वर्णन किया है, तो 'जमींदार' मे रूढियो तथा थोथी मान्यताओ से ग्रस्त हिन्दू समाज के आन्तरिक घात–प्रतिघात का सफलता से चित्रण किया है विद्यावाचस्पति जी के उपन्यासो की लेखनगत दृष्टि समाज–सुधार की है 'सरला की भाभी' (१६४४) मे भारतीय समाज की पारिवारिक रूढियो का दिग्दर्शन कराया गया है 'सरला' (१६४५) मे धार्मिक दभ का भडाफोड हुआ है और 'आत्म बलिदान' (१६४८) मे १६३४ के बिहार भूकम्प के साथ–साथ १६४२ की क्रान्ति का यथार्थवादी शैली में चित्रण है

विद्यावाचस्पति जी के प्रारभिक उपन्यासो मे उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति अधिक है जो कि परवर्ती उपन्यासो मे उत्तरोत्तर क्षीण होती चली गयी है, विद्यावाचस्पति जी के उपन्यासो के प्रेरक तत्व तत्कालीन विविध सामाजिक व राष्ट्रीय आन्दोलन हैं वे अपने प्रारभिक उपन्यासों मे आदर्शवादी हैं तो परवर्ती उपन्यासो मे वे भी प्रेमचन्द की तरह आदर्शोन्मुख यथार्थवादी उपन्यासकार नजर आते हैं 'शाह आलम की ऑखे' (१६१८) उपन्यास मै राजपूत तेजसिह की प्रतिज्ञा के साथ ईश्वर का न्याय भी पूरा हो जाता है उक्त उपन्यास का समापन लेखक के इन शब्दो के साथ हुआ है -- 'परमात्मा ने भले को भला फल दिया और बुरे को बुरा फल दिया क्या फिर भी लोग कहेगे कि परमात्मा न्यायी नहीं है विद्यावाचस्पति जी के प्रारम्भिक उपन्यासो मे जैसे परमात्मा न्यायी सिद्ध हुआ है, वैसा परवर्ती उपन्यासो मे नहीं परवर्ती उपन्यासो के नारी पात्र निर्दोष होते हुए भी अन्याय व अत्याचार के शिकजे मे कसते–पिसते हुए दिखलायी देते हैं 'आत्म–बलिदान' (१६४८) की 'सरला' ने देश की बलिवेदी पर हुतात्मा होने का रास्ता सहर्ष नहीं चुना है, अपितु वह घर छोडकर बदनामी से बचने व आत्महत्या के पाप से मुक्त होने का अन्य कोई उपाय न पाकर स्वाधीनता के यज्ञ मे अपनी आत्माहुति लाचारीवश दे देती है

विद्यावाचस्पति जी के चरित्रो मे नर (रूपचन्द, रामनाथ) की अपेक्षा नारी (दयावती–सरला) चरित्र अधिक तेजस्वी व आदर्श हैं उनके प्रारभिक उपन्यासो की भाषा सस्कृतगर्भ तो परवर्ती उपन्यासों की भाषा सहज सामान्य है उनकी उपन्यास शैली पर न्यूनाधिक रूप मे क्यों न हो प्रेमचन्द और प्रसाद दोनो का भी प्रभाव रहा है उद्‌देश्य की दृष्टि से उनके उपन्यास–लेखन की दृष्टि समाज–सुधार व राष्ट्रोत्थान की रही है.

संदर्भ

१ साहित्यशास्त्र १३२
२ उपन्यास और लोक जीवन ५२
३ काव्य के रूप १५६
४ साहित्यशास्त्र १३४
५ साहित्य का उद्देश्य ५४
६ एन इण्ट्रोडक्शन टू दि स्टडी ऑफ लिटरेचर १६३
७ साहित्यालोचन १७५
८ साहित्यशास्त्र १४४
६ आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान. प्राक्कथन – ६
१०. प्रह्लाद . अप्रैल १६६०–६
११ हिन्दी के मनौवैज्ञानिक उपन्यास. २१४
१२ इन्द्र विद्यावाचस्पति : ५२
१३. शाह आलम की ऑखे प्रकाशक श्री द्वारका प्रसाद जी सेवक–सस्करण नवम्बर १६४७
१४ तत्रैव
१५. शाह आलम की ऑखें – ७३
१६. अपराधी कौन – २८६
१७. तत्रैव – २२७–२२८
१८. तत्रैव – आवरण पृष्ठ–१
१६. जमींदार – १३५
२०. सरला की भाभी . प्रस्तावना–१
२१. तत्रैव
२२. आर्य सन्देश. २३ सितम्बर १६६० : मेरे पूज्य पिताजी–६४
२३. सरला की भाभी. २३
२४. तत्रैव–३०
२५. तत्रैव – प्रस्तावना–१
२६ सरला की भाभी प्रस्तावना–१
२७. हिन्दी गद्य साहित्य . १६२
२८. हिन्दी साहित्य कोश – भाग–२
२६. नया जीवन – सहारनपुर
३० हिन्दी साहित्य कोश भाग–२
३१ काव्य के रूप – १७८
३२ प्रह्लाद अप्रैल १६६०–६
३३ दि हिस्टॉरिकल नॉवल्ज–पृ –३०१
३४ आलोचना दिसम्बर १६६६–१२६
३५ आत्म–बलिदान १८
३६ हमारे कर्मयोगी राष्ट्रपति २४
३७ आत्म–बलिदान–१७ / हमारे कर्मयोगी राष्ट्रपति–२४
३८ आत्म–बलिदान– १७–१८/ हमारे कर्मयोगी राष्ट्रपति–२६
३६ सरला की भाभी–६
४०. आर्यसमाज का इतिहास– द्वितीय भाग १४७
४१. आर्य मर्यादा – दि २३ ११ १६७५
४२ आर्यसमाज का इतिहास– प्रथम भाग ३२१
४३. जमींदार – १४४
४४ मेरे नौकरशाही जेल के अनुभव – २३–२४
४५. शाह आलम की ऑखे – २
४६. अपराधी कौन– ७५
४७. सरला – ३६
४८. तत्रैव – ४२
४६. सरला की भाभी – ५२
५०. शाह आलम की ऑखे – १२
५१. अपराधी कौन – ३०
५२. तत्रैव–३२
५३. कुछ विचार – भाग–१–४८
५४. आत्म–बलिदान– ७३–७४
५५. सरला–१६
५६. शाह आलम की ऑखें – १४८
५७. अपराधी कौन–२८८–८६
५८ भारतीय साहित्य के निर्माता इन्द्र विद्यावाचस्पति – ४६
५६. कुछ विचार – भाग–१–५५
६० साहित्य का श्रेय और प्रेय . १६३
६१ शाह आलम की ऑखे–१७०

६
विद्यावाचस्पति जी की पत्रकारिता

६.१ पत्रकारिता-स्वरूप विवेचनः-

जिस तरह साहित्य की विविध विधाओ के लिए कथाकार, निबधकार, नाटककार आदि शब्दो का प्रयोग होता है ठीक उसी तरह 'पत्र' लेखक के लिए पत्रकार का प्रयोग किया जाता है, साहित्य की अन्य विधाओ की तरह 'पत्रकारिता' भी आज साहित्य का एक अग बन गयी है, पत्रकार पत्र का सयोजक होता है, फिर चाहे वह पत्र नियतकालिक हो या अनियतकालिक, सामान्य अर्थ मे किसी भी ऐसे व्यक्ति को पत्रकार कहते हैं, जो पत्र बनाने मे सहयोगी हो, पर वस्तुत पत्रकार के रूप मे उन्हीं व्यक्तियो को सबोधित किया जाता है, जिनका समाचार–पत्र के लेखो, समाचारो आदि से सम्बन्ध रहता है, इस कार्य मे लेखक, समाचारो के सम्पादक, समाचार सकलन करने वाले सवाददाता आदि अनेक प्रकार के व्यक्ति सम्मिलित होते हैं

पत्रकार के व्यवहारिक रूप को स्पष्ट करते हुए हिन्दी कवियत्री महादेवी वर्मा ने कहा है, 'पत्रकारिता समाज मे परिवर्तन लाने वाली रचनाशील विधा है, पत्रकारो को अपना दायित्व और कर्तव्यो का निर्वाह निष्ठापूर्वक करना चाहिये, क्योकि उन्हीं के पैरो के छालो से इतिहास लिखा जायेगा,[1] साहित्यकार और पत्रकार का अन्तर स्पष्ट करते हुए श्री प्रकाश चन्द्र भुवालपुरी ने प्रतिपादित किया है, वह साहित्य की तरह मधुव्रती बनकर जीवन के बिखरे हुए सत्य का मात्र सचयन नही करता, वरन् उसे देवर्षि नारद–सा भ्रमणशील, सजय–सा निर्भीक, परशुराम सा साहसी, सुदामा सा सन्तोषी, दधीचि सा त्यागी, धर्मराज सा सत्यव्रती, भीष्म सा अडिग, गणेश सा प्रतिभा सम्पन्न, कृष्ण सा ज्ञानी एव कर्म–योगी, राम सा मर्यादावादी, कृष्ण–द्वैपायन सा प्रगतिशील और भगवान शिव सा लोकमगल के लिए विषपायी होना पडता है[2] पत्रकारिता व आदर्श पत्रकार का महत्व स्पष्ट करते हुए डॉ० वेदप्रताप वैदिक ने टिप्पणी की है, 'विधायिका, कार्यपालिका, तथा न्यायपालिका की भाति खबरपालिका भी लोकतन्त्र का महत्वपूर्ण स्तभ है, पत्रकार को किसी विशेषाधिकार की आकाक्षा न रखते हुए न्यायाधीश की सी निष्पक्षता और योद्धा की सी निर्भीकता के साथ सच्चाई उजागर करनी चाहिये।[3] उपरोक्त पत्रकार विषयक सभी मतो का आशय 'लन्दन टाइम्स' के भूतपूर्व सपादक विखेम स्टीड के इस कथन मे अनायास देखा जा सकता है 'पत्रकारिता कला भी है, वृत्ति भी, और जनसेवा भी'[4]

६.२ पत्रकार व संपादकः-

सप्रति पत्रकार और सपादक शब्द सामान्य रूप मे परस्पर पर्यायवाची के रूप मे प्रयुक्त हो रहे हैं, वस्तुत देखा जाय तो सपादक शब्द पत्रकार की तुलना मे अधिक गहन अर्थ रखता है, परन्तु वर्तमान मे सपादक की तुलना मे पत्रकार की अधिक प्रतिष्ठा है, पत्रकार पत्रकारिता के क्षेत्र मे लेखन कार्य करता है, और सपादक केवल पत्रकारिता के क्षेत्र मे कार्य करे यह जरूरी नहीं, उसे तो अपनी योग्यता के अनुसार साहित्य की अनेक विधाओ मे सपादन करने का हक है, इसके अतिरिक्त वह प्राच्य ग्रथो का भी सपादन कर सकता है, व पाठयपुस्तको का भी, जिस सपादक मे 'स्व' की अपेक्षा 'पर' को आत्ससात् करने की जितनी अधिक क्षमता होती है, वह उतना ही सफल

और लोकप्रिय होता है आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ के अनुसार 'सपादक शब्द ही समुदाय के सेवक का द्योतक है'[५] पत्रकारिता के क्षेत्र मे भी सप्रति सपादन कार्य की विविधता व पृथकता के कारण अनेक प्रकार के सपादक पाये जाते हैं यथा–प्रबध–सपादक, समाचार–सपादक, विज्ञापन–सपादक, सहायक–सपादक, उपसपादक, प्रधान–सपादक आदि, पत्रकार की तुलना मे सपादक शब्द अधिक व्यापक है अत सपादक पत्रकार तो हो सकता है पर यह जरूरी नहीं कि पत्रकार सपादक हो ही, किसी भी पत्र विशेष मे पत्रकारो की तुलना मे सपादको की सख्या बहुत कम होती है पत्रकार जगत् मे केन्द्रीय शक्ति की दृष्टि से सपादक शासक और पत्रकार शासित होते हैं विद्यावास्चपति जी के शब्दो मे 'समाचारो का चुनाव करते समय 'सम्पादक का मत ही कैंची का पथ–प्रदर्शक बन जाता है'

६.३ पत्रकार और पत्रकारिता:-

पत्रकार और पत्रकारिता का तात्कर्म्य सबध स्पष्ट करते हुए डॉ भवर सुराणा ने लिखा है– 'पत्रकारिता वह धर्म है, जिसका सबध पत्रकार के उस कर्म से है, जिससे वह तात्कालिक घटनाओ और समस्याओ का सबसे अधिक सही और निष्पक्ष विवरण पाठको के समक्ष प्रस्तुत करे, और जनमत जागृत करने का श्रम भी करे,"[६] यहा पत्रकार और पत्रकारिता के सबध को गहराई से जानने के लिए पत्रकारिता का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ भी जान लेना जरूरी है–पत्रकारिता अग्रेजी के 'जर्नलिज्म' शब्द का पर्यायवाची है, जर्नलिज्म शब्द 'जर्नल' से बना है–जिसका शाब्दिक अर्थ है–दैनिक, प्रतिदिन के कार्यो तथा शासकीय बैठको का विवरण जर्नल मे होता है, जर्नल से बना 'जर्नलिज्म' अपेक्षाकृत व्यापक शब्द है, 'अमेरिकन इनसाइक्लोपीडिया' मे पत्रकारिता का स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है–'मूलत जर्नलिज्म' फ्रैंच शब्द जर्नी से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है, एक–एक दिवस का कार्य या उसकी विवरणिका प्रस्तुत करना, पत्रकारिता जीवन की घटनाओ और उनके आधार पर प्रकाशित पत्रो की सवाहिका होती है इसमे घटनाओ तथ्यो, व्यवस्थापरकता के साथ राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और कलात्मक सदर्भो की प्रस्तुति होती है,"[७] "मैथ्यू आर्नल्ड की सक्षिप्त परिभाषा के अनुसार–'पत्रकारिता शीघ्रता मे लिखे जाने वाला साहित्य है'[८] डॉ० सुशीला जोशी ने पत्रकारिता को सूचना देने वाला 'मौसमी पक्षी' बताते हुए कहा है–'समाचार–पत्र युग की ऊष्मा नापने का 'थर्मामीटर' है जो वातावरण की सघनता–विरलता को अकित करने का 'बैरोमीटर' भी है

६.४ हिन्दी पत्रकारिता : काल विभाजनः-

हिन्दी का सबसे पहला साप्ताहिक पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' श्री युगलकिशोर के सपाकदत्व मे मई १८२६ मे प्रकाशित हुआ तब से अब तक हिन्दी पत्रकारिता को १६८ वर्ष हो गये हैं हिन्दी पत्रकारिता के इस प्रदीर्घ काल को इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है– १ उदय काल–ब्रिटिश प्रभावकाल १८२६–१८६७, २ नवजागरणकाल दयानन्द भारतेन्दुकाल–१८६७–१६००, ३ अभ्युत्थान काल तिलक–द्विवेदीकाल–१६००–१६२०, ४ विकास काल–गाधी–काल–१६२०–१६४७ ५ आधुनिक काल–स्वातत्र्योत्तर काल १०४७ से अब तक

६.५ विद्यावाचस्पति जी की पत्रकारिताः-

विद्यावाचस्पति जी की पत्रकारिता क्रमश अभ्युत्थान काल, विकास काल और आधुनिक काल मे पल्लवित, पुष्पित और विकसित हुई है उनकी पत्रकारिता पर धार्मिक दृष्टि से दयानदीय दृष्टिकोण का, राष्ट्रीय दृष्टि से लोकमान्य तिलक की भूमिका का, समन्वयात्मक दृष्टि से महात्मा गाधी की क्रिया–प्रतिक्रियाओ का प्रभाव रहा है, पत्रकारिता की दृष्टि से विद्यावाचस्पति जी की 'सदधर्म

प्रचारक' कालीन (सन् १९०७–१९१३) पत्रकारिता प्रमुखतया धार्मिक रही है 'विजय' 'अर्जुन' कालीन (१९१९–१९४७) पत्रकारिता राष्ट्रीय रही है और तत्पश्चात् की प्रकीर्ण व 'जनसत्ता' कालीन (१९४७–१९५३) पत्रकारिता समन्वयात्मक रही है

६.६ प्रेरक पत्र:-

महात्मा मुशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) – के 'सद्धर्म–प्रचारक' ने विद्यावाचस्पति जी के अत करण मे पत्रकारिता का बीजवपन किया, महावीरप्रसाद द्विवेदी जी की 'सरस्वती' ने उसे अकुरित किया, तथा लोकमान्य तिलक के 'हिन्दी केसरी' ने उसे पल्लवित–पुष्पित किया और महात्मा गाधी के काल मे लडे गये स्वाधीनता सग्राम ने उसे विकसित किया है, अत क्रमश यहा पर 'सद्धर्म प्रचारक', 'सरस्वती' और 'केसरी' का सक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है

'सद्धर्म प्रचारक' (साप्ताहिक):- अपनी प्रारम्भिक पत्रकारिता पर प्रकाश डालते हुए स्वय विद्यावास्चपति जी ने कहा है–'पत्रकारिता मेरे सस्कारो मे थी, यदि यह कहू कि मैं पत्रकारिता के सस्कारो के साथ ही पैदा हुआ था, तो अत्युक्ति नही होगी[१०] जिस वर्ष पिताजी ने जालन्धर मे 'सद्धर्म प्रचारक' निकाला, उसी वर्ष (सन् १८८६) मेरा जन्म हुआ.[११] प्रारभ से 'सद्धर्म प्रचारक' आर्यसमाज का प्रमुख पत्र समझा जाने लगा था. कई वर्षो तक वह उर्दू मे निकलता रहा गुरुकुल मे जाने के पश्चात् पिताजी ने उसे हिन्दी मे (१ मार्च १९०७) कर दिया[१२] इसमे हिदी भाषा व नागरी लिपि से सम्बद्ध 'मातृभाषा और देवनागरी लिपि' (१८ अक्टूबर १९०७) 'चिराग तले अन्धेरा' (२८ फरवरी १९०८) 'प्रतिनिधि सभा व देवनागरी' (२८ फरवरी १९०८) 'एक भाषा एक लिपि' (१५ दिसम्बर १९०६), 'मातृभाषा की आह' (२७ मार्च १९१५), 'मातृभाषा को धर्म समझो' (१५ श्रावण सवत् १९७३), 'हिन्दू यूनिवर्सिटी में आर्यभाषा' (२५ नवम्बर १९१६) आदि लेख प्रकाशित हुए इसी मे श्री इन्द्रचन्द्र (इन्द्र विद्यावाचस्पति) के अग्रज हरिश्चन्द्र विद्यालकार ने ऋषि दयानन्द और आर्यभाषा (१५ दिसबर १९०६) लेख लिखा था. स्वय विद्यावाचस्पति जी ने 'क्ष' कल्पित नाम से "आर्यसमाज और उसका साहित्य" (३ जून १९०८) नामक लेख लिखा था.[१३] उस समय वे एकाक्षरी "क्ष" कल्पित नाम से ही लेख लिखा करते थे[१४] उन्होने तेरहवीं कक्षा मे पढते समय 'क्ष' छद्म नाम से, अपने ही गुरुकुल के अध्यापक प शिवशकर शर्मा काव्यतीर्थ द्वारा लिखित, 'ब्राह्मण ग्रथ' भाष्य की आलोचना मे, उत्तर–प्रत्युत्तरात्मक तीव्र और व्यगपूर्ण भाषा मे तीन लेख लिखे थे.[१५] ये लेख विषय की गभीरता को ध्यान मे रख कर नहीं, अपितु 'बचपन के उत्साह' और केवल 'वाग्विलास' के लिए हिन्दी की नवीन समालोचना शैली को ध्यान मे रखकर लिखे गये थे, विद्यावाचस्पति जी का उद्देश्य गुरु जी को दु ख देना नहीं था, फिर भी शिष्य द्वारा छोडे गए इन बाणों का परिणाम कुछ ऐसा हुआ कि गुरु जी केवल तिलमिलाये ही नहीं, अपितु 'सुस्त और रोगी' भी हो गये. विद्यावाचस्पति जी ने टिप्पणी की है. 'ये तीन लेख पत्रकारिता के क्षेत्र में मेरे पहले पत्र थे. उस विवाद से मेरा पत्रकार का दृष्टिकोण बना[१६] डॉ० लक्ष्मीनारायण गुप्त ने प्रतिपादित किया है. 'महात्मा मुशीराम, लाल देवराज, वजीरचद विद्यार्थी 'सद्धर्म प्रचारक' के प्रारभिक सपादक थे तत्पश्चात् महात्माजी के दोनो पुत्रो–हरिश्चन्द्र व इन्द्रचंद्र ने कई वर्षो तक इस पत्र का सपादन कार्य किया.[१७] विद्यावाचस्पति जी ने स्वय कहा, '१९११ मे दरबार होने के समय १५ दिन वह पत्र दैनिक भी निकाला, वह मेरा दैनिक पत्र सपादन का प्रथम अनुभव था.[१८]

सरस्वती (मासिक):- विद्यावाचस्पति जी ने पत्रकारिता विषयक सस्मरणों में लिखा है–'हम दोनो भाइयो के सहयोग से तैयार होने वाले 'सत्य प्रकाश' या 'सत्य विचारक' नामक हस्तलिखित असामयिक पत्र पर 'सद्धर्म प्रचारक' और 'सरस्वती' दोनो की छाप रहती थी उस समय मेरी आयु ७ वर्ष की होगी और हरिश्चन्द्र की ६ वर्ष की. यह मेरी पत्रकारिता का पहला अनुभव था.[१९] यहा

पर विद्यावाचस्पति जी का आयु विषयक अनुमान गलत हो गया है क्योकि वे जब ७ वर्ष के थे तब पत्रिका का अविर्भाव ही नहीं हुआ था जब वे १० वर्ष के हुए तभी सन् १६०० में 'सरस्वती' का उदय हुआ था और तभी वे उसके सपर्क मे आये थे इस पत्रिका का उनके अतर्मन पर जो प्रभाव पडा उसकी चर्चा करते हुए स्वय उन्होने कहा है 'घर मे बडी बहनो के लिए सरस्वती आया करती थी उन दिनो की 'सरस्वती' नवागता वधू की तरह सबकी लाडली और आकर्षक होती थी हम दोनो भाई इकट्ठे बैठकर उसके सुदर चित्र देखा करते थे[३०] 'सरस्वती' विद्यावाचस्पति जी के लिये ही नहीं, अपितु समस्त पाठको के लिए उस समय 'नवागता वधूवत' ही थी इसकी छपाई–सफाई और गेट–अप ने एक नया प्रतिमान स्थापित किया था[३१] 'सरस्वती' की सोद्देश्यता पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए यह कहा गया था कि 'हिन्दी रसिको के मनोरजन के साथ ही भाषा के सरस्वती भण्डार की पुष्टि, वृद्धि और यथार्थपूर्ति हो, तथा भाषा सुलेखको की ललित लेखनी से उत्साहित और उद्वेलित होकर विविध भावतरित ग्रथराजि को प्रसव करे . इसमे गद्य, पद्य, काव्य, नाटक, उपन्यास, चम्पू, इतिहास, जीवन चरित, पत्र, हास्य, परिहास, कौतुक, पुरावृत्त, विज्ञान, शिल्प कला–कौशल और साहित्य के यावतीय विषयो का यथावकाश स्थान रहेगा और आगत ग्रन्थदिकों की यथोचित समालोचना की जायेगी भाषा मे यह पत्रिका अपने ढंग की होगी.[३२] इतिहास इस बात का साक्षी है कि 'सरस्वती' अपने उद्देश्य मे सफल हुई, उसने सुलेखको की लेखनी को इस योग्य बनाया कि वे ग्रंथराजि का निर्माण करने मे समर्थ हुए, ऐसे लेखकों में विद्यावाचस्पति जी भी एक थे, विज्ञान, शिल्प, कला–कौशल, को छोड दिया जाय तो 'सरस्वती' के उद्देश्य मे बतलायी गयी गयी कोई साहित्य विधा शेष न रही, जिस पर विद्यावाचस्पति जी ने चिरस्थायी लेखन न किया हो. श्री विद्यावाचस्पति की भाषा निर्माण में भी 'सरस्वती' के सपादक और लेखकों का अविस्मरणीय योगदान रहा है.स्वयं उन्होने अपने साक्षात्कार मे बतलाया है कि 'आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने हमारी सस्कृत काव्य रचना की परीक्षा ली थी, और श्रीधर पाठक मेरी हिन्दी कविताओ का संशोधन किया करते थे.[३३] सरस्वती के लेखको मे विद्यावाचस्पति जी के गुरुकुल गुजरांवाला व कागडी के गुरु प० पद्मसिह जी शर्मा का समावेश था उनकी बिहारी से सबधित तुलनात्मक आलोचनायें उसी समय 'सरस्वती' मे प्रकाशित हुई थी.[३४] सरस्वती के माध्यम से जिस भाषा स्वरुप को मान्यता दी गई वह मध्यमार्गीय थी 'उसमे न तो संस्कृत का पण्डिताऊपन ही था और न ही अंग्रेजी की जटिल शब्दावली और न ही अरबी–फारसी–उर्दू के शब्दो की लताफत ही थी.[३५] विद्यावाचस्पति जी ने अपनी रचनाओं मे इसी मध्यमार्ग का अनुसरण किया, 'सरस्वती' में देश–विदेश के विशिष्ट व्यक्तियो के जीवन चरित छपते थे, विद्यावाचस्पति जी ने भी विदेशी–स्वदेशी स्वाधीनता के पुजारियों की जीवनियाँ लिखीं सरस्वती में श्री काशीनाथ प्रसाद जायसवाल आदि के ऐतिहासिक विषयों पर लेख छपते थे. विद्यावाचस्पति जी ने भी इतिहास विषयक सरस व चिरस्थायी साहित्य लिखा, विद्यावाचस्पति जी की भाषा में 'सावधानी' के लिए "सावधानता" और 'असावधानी' के लिए "अनवधानता" जैसे शब्द प्रयोग मिलते हैं जो द्विवेदी युगीन अनगढ भाषा के ही अवशेष हैं, इस प्रकार स्पष्ट है कि विद्यावाचस्पति जी के साहित्यिक व्यक्तित्व के निर्माण में 'सरस्वती' की निश्चित रूप से उल्लेखनीय भूमिका रही है.

हिन्दी केसरी (दैनिक) :- हिन्दी 'सद्धर्म प्रचारक' के उदय के डेढ़ महीने बाद १३ अप्रैल १६०७ को श्री माधवराव सप्रे के सपादकत्व में 'हिन्दी केसरी' का प्रथमाक निकला.[३६] उस समय विद्यावाचस्पति जी गुरुकुल कांगडी में दसवीं कक्षा के छात्र थे. जनता की चहल–पहल से दूर हिमालय की उपत्यका मे स्थित गुरुकुल कागडी का बाह्य जगत् से जो परोक्ष सबंध हो पाता था वह पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से ही. गुरुकुल के उपाध्याय केवल इन पत्रों के माध्यम से ही राष्ट्रीय धडकनों से सुपरिचित होते थे. अत. गुरुकुल के आचार्य पं. गगादत्त जी व प. भीमसेन जी शर्मा पत्र–पत्रिकाओं के केवल ग्राहक ही नहीं थे, किन्तु समय पड़ने पर इन पत्रों को यथाशक्ति आर्थिक

सहायता से भी प्रोत्साहित करते थे [२८] विद्यावाचस्पति जी को हिन्दी केसरी' व 'तिलक' से सुपरिचित होने का सौभाग्य अपने दो गुरुओ से प्राप्त हुआ. एक थे चित्रकला के गुरु श्रीपाद दामोदर सातवेलकर और दूसरे व्याकरण के गुरु गगादत्त जी शास्त्री स्वयं विद्यावाचस्पति जी ने लिखा है– 'श्री सातवेलकर तिलक भक्त थे उनके प्रभाव से मेरी भी श्रद्धा तिलक महाराज और उनके पत्र केसरी के प्रति हुई [२८] हमारे आचार्य प गगादत्त जी शास्त्री की कृपा से हमे हर सप्ताह 'हिन्दी केसरी' के लेख पढने को मिल जाते थे [२६] राष्ट्रीयता से ओत–पोत मराठी 'केसरी' के मुखपृष्ठ पर महाकवि जगन्नाथ कृत सस्कृत श्लोक छपता था। उसी का महावीर प्रसाद द्विवेदी कृत हिन्दी काव्यानुवाद 'हिन्दी केसरी' के मुखपृष्ठ पर तथा एक और उसी का श्रीधर पाठक कृत काव्यानुवाद 'हिन्दी केसरी' के अग्रलेख (सपादकीय) के ऊपर प्रकाशित होता था [३०] प जगन्नाथ कवि कृत 'केसरी' का उद्देश्यबोधक' श्लोक व उसका हिन्दी गद्यानुवाद निम्न प्रकार है

'स्थिति नो रे दध्या क्षणमपि मदान्धेक्षण सखे, गज श्रेणिनाथ त्वमिह जटिलाया वनभुवि।

असौ कुभिभ्रान्त्या खरनिखर विद्रावित महागुरुग्रावग्राम स्वपिति गिरिगर्भे हरिपति ।।

अर्थात्–मदोन्मत्त गजराज इस सघन वन मे क्षणभर भी ठहरने का दुस्साहस न कर, याद रख हाथी के भ्रम मे अपने पैने नखो से कठिन शिलाखण्डो को तहस–नहस कर देने वाला वनराज केसरी वहा गिरि गुफाओ मे विश्राम कर रहा है, सावधान।

'हिन्दी केसरी' के प्रथमाक मे अपने सपादकीय मे माधवरावजी सप्रे ने लिखा था– हमने . एक राजनीतिक वीर और तत्ववेता के सार्वजनिक विचार जो अब तक केवल मराठी भाषा मे प्रकट होते थे अब उन्हे हिन्दी मे प्रकाशित करने का निश्चय किया है किन उपायो से प्रजा अपने राजनैतिक हक सरकार से पा सकेगी, किन उपायो से आर्यमाता राजनैतिक दासत्व से मुक्त होकर स्वराज्य का सुखकारी मुकुट अपने मस्तक पर धारण करेगी बस इन्हीं बातो की शिक्षा इस समय आवश्यक है, यदि 'हिन्दी केसरी यह काम पूरा कर सकेगा तो समझना चाहिये कि उसके जीवन की सफलता हुई [३१]

'हिन्दी केसरी' मे प्रकाशित सपादकीय व अनूदित लेख सम–सामयिक विषयो पर होते थे जिनमे उग्रता अपनी चरम सीमा पर रहती थी, जैसे 'सूरत काग्रेस' (४ जून, १९०८) 'आयर्लैण्ड और हिन्दुस्तान' (२७ अप्रैल १६०७) 'वन्दे मातरम की व्याख्या' (२७ अप्रैल १६०७) 'क्या हम स्वराज पाने के योग्य नहीं' (२७ अप्रैल १६०७) 'रोटी के टुकडो के लिए गुलामी' (३ अगस्त १६०७) 'शाबास! बगाली भाईयो! शाबास! (२१ सितबर १६०७) 'लार्ड कर्जन और अग्रेजी साम्राज्य (२१ दिसबर १६०७) 'देश का दुर्दैव' (२२ अगस्त १६०८) 'बम का रहस्य' (२२ अगस्त १६०८) अन्तिम लेख १६ वर्षीय खुदीराम बोस के बमकाण्ड से सबधित था.

इन शीर्षको से स्पष्ट है कि 'केसरी' एक राष्ट्रीय तेजस्वी पत्र था. जिसमे ४३ वर्षीय महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे प्रौढ व्यक्ति प्रभावित हो रहे थे, उससे भला अनुकूल भूमि वाले १८ वर्षीय श्री इन्द्र जी जैसे युवा कैसे अप्रभावित रहते, इन लेखो की युवा इन्द्र व उनके सहाध्यायी छात्रो पर जो प्रतिक्रिया हुई उसका वर्णन करते हुए स्वय इन्द्र जी ने लिखा है 'सूरत की घटना पर लोकमान्य ने जो अद्भुत प्रभावशाली लेख लिखे थे उन्होने हम छात्रो के हृदयो को मोह लिया था हम उन्हे पढ–सुनकर लोकमान्य के ऐसे कट्टर चेले होने का दावा करने लगे थे कि शायद पूना मे उनके सीधे प्रभाव मे रहने वाले हमारे दावे के सामने मात खा जाते हम ससार के होहल्ले और सघर्ष से बहुत दूर जगल मे पडे हुए भी मन ही मन में गरमदलिए बन गये थे, और लोकमान्य को अपना नैतिक गुरु मानने लगे थे सूरत की घटना मे हम नरमदल को सर्वथा दोषी और गरमदल को सर्वथा निर्दोष मानते थे विद्यार्थी जीवन मे हमारी यह दशा थी, तो अनुमान लगाया जा सकता है कि जब

स्नातक बन कर मैं पूना गया और पहली बार लोकमान्य के दर्शनों की इच्छा से केसरी कार्यालय पहुचा तो मेरे मन मे उत्सुकता की लहरे कैसे वेग से उठ रहीं होगी[३२]

गुरुकुल कागडी एक राष्ट्रीय शिक्षणालय था। जब 'हिन्दी केसरी' ने राष्ट्रीय शिक्षा, लाला लाजपतराय और शिवाजी जयन्ती के माध्यम से देशाभिमान को प्रज्वलित और प्रदीप्त किया, तो यह स्वाभाविक ही था कि गुरुकुल के छात्रो का मन 'केसरी' की ओर आकृष्ट होता, विद्यावाचस्पति जी ने 'भारत' मे पत्रकारिता क्या मिशन से व्यवसाय बनेगा नामक लेख मे 'केसरी' के केसरीपन की असाधारणता की मीमासा इस प्रकार की है "अर्वाचीन काल मे लक्ष्य सिद्धि के लिए निकाले गये समाचार–पत्रो का प्रारभ लोकमान्य तिलक के 'केसरी' से होता है। बम्बई, कलकत्ते और मद्रास से कई प्रभावशाली समाचार पत्र इससे भी पूर्व निकल आये थे, पर वह जान हथेली पर लेकर पर लेकर नहीं निकले थे उन्हे प्रचारक तो कहा जा सकता है, किन्तु सिपाही नहीं कहा जा सकता पूना के 'केसरी' ने समाचार पत्रो की उस श्रृखला का प्रारभ किया, जिन्हे स्वाधीनता के सिपाही कहा जा सकता है उनका एक विशेष लक्ष्य था जिसकी पूर्ति के लिए वे अपना सब कुछ बाजी पर रख देते थे[३३] इस 'केसरी' के केसरीत्व ने ही विद्यावाचस्पति जी की चाह को और अधिक प्रबल किया स्वय विद्यावाचस्पति जी ने स्वीकार किया है, 'गुरुकुल से मुझे बाहर निकाल कर पत्र निकालने की प्रेरणा लोकमान्य तिलक और उनके 'केसरी' से मिली[३४]

विद्यावाचस्पति जी की पत्रकारिता द्विवेदी और तिलक के बाद गाधी जी के नेतृत्व मे लडे गये स्वाधीनता सग्राम से प्रभावित हुई, तथा तत्कालीन उनकी तथाकथित अहिसावादी नीति और हिन्दू–मुस्लिम एकता विषयक कथित बयानों व लिखित लेखो से क्रमश व्यथित–सतप्त व उत्तेजित भी हुई[३५] गाधीजी जैसे अहिसावादी व्यक्ति से उन्होने अपने 'अर्जुन' पत्र के लिए छत्रपति शिवाजी पर लेख लिखने के लिए कहा था। पर महात्मा जी ने इस विषय पर अपना अज्ञान स्वीकार करते हुए माफी माग ली थी[३६] अपने पत्र 'यग इडिया' (२८ मई १६२४) मे आर्यसमाज, स्वामी श्रद्धानद व सत्यार्थप्रकाश आदि की जो आलोचना महात्मा जी ने की थी, उससे विद्यावाचस्पति जी असहमत थे, और उन्होने अपनी असहमति प्रत्यक्ष मुलाकातो और समाचार पत्रो मे लेख लिखकर भी अभिव्यक्त की थी[३७] गाधीजी की अहिसावादी दृष्टि थी, जो राजनैतिक जीवन मे पूरी तरह न कभी चरितार्थ हुई और न हो सकती थी अत ऐसी जटिल अहिसा की मोहमाया को भग करने के लिए उन्होने 'जीवन सग्राम' (१६४५) नामक पुस्तिका लिखी इसमे क्षण विशेष पर युद्ध की अनुलघनीयता व अनिवार्यता का प्रतिपादन करते हुए उन्होने युद्ध की तुलना तराजू से की है, जो दो राष्ट्रो के बीच निर्णायक–न्यायाधीश–सा बन कर उनके जय–पराजय का अतिम निर्णय देता है[३८] एक व्यक्ति के रूप मे विद्यावाचस्पति जी गाधीजी को बहुत बडा महात्मा मानते हैं, पर नेता के रूप मे उन्हे वे असफल नेता ही मानते हैं[३९] आजादी से पूर्व अव्यावहरिक मृग मरीचिकाओ मे खोये रहने वाले व आजादी के बाद साप्रदायिक दगो से घबराये हुए महात्मा गाधी तथा उनके अनुयायी नेताओ के लिए उन्होने विशेष रूप से स्पष्ट किया है– "ससार मे जितनी राज्य क्रातिया हुई हैं, उनमे जातियो को रक्त–स्नान करना पडा है, यदि हमने समझ लिया था कि केवल हम ही ऐसे भाग्यशाली हैं कि एक दिन सुबह उठेगे और अपने आपको स्वतन्त्र पायेगे, तो यह हमारी भूल थी[४०]

६.७ पत्रों का बहिरंग:-

आजीवन विद्यावाचस्पति जिन पत्र–पत्रिकाओं से संबद्ध रहे, उनका बाह्य रूप व स्थूल परिचय निम्न प्रकार है–

सत्यप्रकाशक या सत्यविचारक (हस्तलिखित):- विद्यावाचस्पति जी ने सन् १८६६ मे द्वाबा हाईस्कूल में पढते समय ७ वर्ष की अवस्था मे अपने अग्रज हरिश्चन्द्र के साथ मिलकर यह

हस्तलिखित, असाामयिक पत्र कुछ दिनो तक निकाला, दोनो ही उसके लेखक सम्पादक, प्रकाशक और पाठक थे तीसरा कोई व्यक्ति इस रहस्य को नहीं जानता था[41]

एक अज्ञात पत्र (हस्तलिखित):- विद्यवाचस्पति जी ने सन् १९०७ में १८ वर्ष की अवस्था मे गुरुकुल कागडी की नौवी कक्षा मे पढते समय यह हस्तलिखित मासिक पत्र निकाला था.[42] जिसका नाम अब तक ज्ञात न होने से अज्ञात लिखा गया है

सद्धर्म (साप्ताहिक):- यह पत्र प्रारभ से उर्दू मे निकलता था १ मार्च १९०७ से इसे हिन्दी में निकाला जाने लगा[43] मुद्रणालय का नाम भी 'सद्धर्म प्रचारक' ही था, पत्र के सपादक प ब्रह्मानद और व्यवस्थापक प अनन्तराम शर्मा थे, डॉ० प्रतापनारायण टण्डन के अनुसार श्री सुखसपत्तिराय भण्डारी भी 'सद्धर्म–प्रचारक' के सपादक रहे.[44] इस साप्ताहिक पत्र के तीन पृष्ठ १८ वर्षीय ब्र ह्मचारी इन्द्र की लेखनी से लिखे होते थे[45] पत्र का वार्षिक मूल्य ३ रु० था[46]

सद्धर्म प्रचारक (दैनिक):- १२ दिसबर १९११ को पचम जार्ज के दिल्ली मे 'सम्राट' पद ग्रहण करने के अवसर पर यह पत्र निकाला, और केवल १५ दिन अर्थात् दिसबर १९११ तक चला, २२ वर्षीय विद्यावाचस्पति जी स्वय इस पत्र के सपादक थे। दैनिक 'सद्धर्म प्रचारक' हरिद्वार में मुद्रित होकर दिल्ली से प्रकाशित होता था दरबार विषयक कतिपय समाचार, पत्र व तार द्वारा महात्मा गाधी जी भेजते थे पत्र में सवाददाता के स्थान पर 'वार्त्ताहर' शब्द का प्रयोग किया जाता था. सपादक इन्द्र के पिता व दिल्ली दरबार के अतिथि श्री मुशीराम इस पत्र के वार्त्ताहर थे.[47]

सद्धर्म-प्रचारक (साप्ताहिक):- सन् १९१३ के प्रारंभ से अंत तक यह पत्र २४ वर्षीय विद्यावाचस्पति जी के संपादन मे दिल्ली से निकाला, विद्यावाचस्पति द्वारा लिखे गए इसके अग्रलेख राजनीतिक एवं टिप्पणियां सामाजिक होती थीं, प्रारभ में इसकी ग्राहक संख्या १२०० थी और वर्ष के अत तक चार हजार हो गयी.[48] डॉ० लक्ष्मीनारायण गुप्त ने स्पष्ट किया है– सन् १९१२ में यह पत्र गुरुकुल कागडी से दिल्ली आया और ३० जनवरी सन् १९१५ से पुन. गुरुकुल से प्रकाशित होने लगा[49] इस पत्र का वार्षिक मूल्य ३ रुपये था.[50]

विजय (दैनिक) :- इस पत्र का प्रकाशन जनवरी १९१६ में हुआ, प्रातः कालीन 'पायोनियर' नामक अंग्रेजी अखबार से समाचार लेकर साध्य दैनिक 'विजय' का प्रकाशन होता था, प्रमुख सपादक ३० वर्षीय इन्द्र विद्यावाचस्पति जी थे, सहयोगी संपादक श्री देवराज जी व बदभद्र विद्यालंकार थे. कालान्तर में प. भीमसेन व पं. मंगलदेवजी भी संपादकीय विभाग में शामिल हो गये, प्रथमांक की ५०० प्रतियां छापी गई, पर ७० ही बिकी, राजनैतिक सरगर्मियां बढ़ने पर उत्तर प्रदेश (आगरा–बरेली) और राजस्थान (अजमेर, जयपुर, जोधपुर) तक इसके ग्राहकों का तीव्रता से विस्तार हो गया, हैण्डप्रेस पर सुबह से पत्र छपना शुरू होता था और शाम तक छपता रहता था, तो भी दिल्ली शहर की मांग पूरी न हो पाती थी, यह दैनिक 'विजय' कम्पनी लिमिटेड' से मुद्रित होता था, कंपनी के संचालक मिस्टर ए.के. देसाई, श्री टी.पी. सिन्हा और इन्द्र विद्यावाचस्पति थे, 'विजय' के 'उद्देश्य बोधक' वाक्य के रूप में 'सत्यमेव जयते नानृतम को स्थान दिया गया.[51] 'विजय' का वार्षिक मूल्य १२.०० रुपये और प्रत्येक अक का २ आने था.[52] पत्र का आकार २२x२३ था और प्राय. इसके आठ पृष्ठ होते थे.[53] १ अगस्त १९२० (लोकमान्य तिलक देहावसान) तक विद्यावाचस्पति जी ने 'विजय' का संपादन किया और इसी दिन इसके संपादकत्व का उत्तरदायित्व उन्होंने पं. सत्यदेव जी विद्यालंकार को सौंप दिया. स्वयं सत्यदेव जी ने लिखा है – विद्यावाचस्पति जी 'गुरुकुल चले गये और मैंने उनके पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए हिन्दी पत्रकारिता के सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया.'[54]

वैभव बनाम भविष्य (दैनिक):- विद्यावाचस्पति ने अपने संस्मरणों में लिखा है – "मैं

अहमदाबाद अधिवेशन (दिसबर १९२१) से राष्ट्रीय आन्दोलन की उमग से सराबोर होकर दिल्ली लौटा तो गुरुकुल न जाकर यहीं जम गया, और उसी पुरानी पत्रकारिता की धुन में बेचैन होकर अवसर की खोज करने लगा मैं इसी मानसिक अटाव्या की दशा मे था कि एक दिन भरतपुर के प जगन्नाथ अधिकारी ने मिलकर मेरे सम्मुख दैनिक 'भविष्य' पत्र का प्रस्ताव रखा मैंने 'भविष्य' का प्रधान सपादक बनना स्वीकार कर लिया[५५] इस समय विद्यावाचस्पति जी की आयु ३३ वर्ष की थी. उक्त विवरण को पढकर इसी काल की अन्यत्र लिखी घटनाओ को जब मैंने पढा, तो इस निश्चय पर पहुँचा कि – विद्यावाचस्पतिजी अपने संस्मरणो में गलती से 'वैभव' के स्थान पर 'भविष्य' का उल्लेख कर गये हैं, क्योकि समाचार पत्रों के इतिहास लेखक श्री अबिकाप्रसाद बाजपेयी के अनुसार – 'सन् १९२२ मे दिल्ली के 'वैभव' के सपादक इन्द्र विद्यावाचस्पति थे और प्रकाशक जगन्नाथ अधिकारी'[५६] श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालकार के अनुसार – 'श्री निरजन शर्मा' अजित भरतपुर से दिल्ली आये बम्बई जाने से पहले उन्होने प्रो इद्र के साथ मिलकर 'वैभव' दैनिक निकाला, पर पूजी अपनी नहीं थी, सेठ का दिवाला निकलने से 'वैभव' चला नहीं'[५७] निरजन शर्मा के जीवन परिचय से पता चलता है कि उनकी जन्मभूमि भरतपुर थी और दिल्ली से निकलने वाले 'वैभव' के वे सपादक थे तथा १९३६ मे मुबई से निकले 'नवराष्ट्र' दैनिक के भी वे प इन्द्रजी के साथ सपादकीय विभाग मे सपादक रहे[५८] इन घटनाओ के काल साम्य, भरतपुर सबध, नरेश सेठ की आर्थिक स्थिति का कमजोर होना इत्यादि से स्पष्ट है कि यह पत्र 'भविष्य' नहीं, अपितु 'वैभव' ही था इस पत्र का वार्षिक मूल्य १३–०० रुपए था श्री अशोकजी व प्रेमनाथ चतुर्वेदी के अनुसार भी – इन्द्र जी ने सन् १९१२ मे निरजन शर्मा 'अजित' के साथ 'वैभव' का ही सपादन किया है इस पत्र का 'वीणा की झकार' स्तभ बहुत लोकप्रिय रहा'[५९] इस स्तभ के लेखक श्री विद्यावाचस्पति थे

सत्यवादी (साप्ताहिक):- विद्यावाचस्पति जी ने ३४ वर्ष की अवस्था मे जनवरी १९२३ से इस पत्र का प्रकाशन प्रारभ किया चार मास की अवधि के बाद यह इसी वर्ष विद्यावाचस्पति द्वारा निकाले 'अर्जुन' दैनिक के साप्ताहिक के रूप मे निकलता रहा, और तत्पश्चात् उसी मे विलीन हो गया इस पत्र का वार्षिक मूल्य ३।।) रुपये था[६०] पत्र के प्रत्येक अक का मूल्य २ आने रखा गया था और आकार २२ x २३ था[६१]

अर्जुन (दैनिक):- विद्यावाचस्पति जी ने २४–४–१९२३ से इस पत्र का प्रकाशन शुरु किया 'अर्जुन के १।।–१।।। कॉलम मे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय विषयो पर वे अपने अग्रलेख लिखते थे '[६२] पत्र का आदर्श वाक्य था – 'न दैन्य न पलायनम्' इसमे 'वीणा की झकार' नामक स्तभ शुरु किया गया था, जिसमे 'नारद' नाम से पहले विद्यावाचस्पति जी और तत्पश्चात् पत्र के सपादक श्री सत्यकाम जी विद्यालकार अपनी व्यग्यात्मक टिप्पणियाँ लिखते थे. शहरी सवाददाता राष्ट्रीय समाचार भेजते थे विदेशी पत्रो से भी समाचार लिये जाते थे 'एसोशिएटेड प्रेस' नामक न्यूज एजेन्सी से भी समाचार प्राप्त किये जाते थे उस समय न्यूज सर्विस आज की तरह हर मिनिट नहीं, केवल सुबह–शाम ही प्राप्त होती थी. प्रारभ मे 'अर्जुन' दो पृष्ठो का निकला था इसका आकार २० x ३० था और प्रत्येक अक का मूल्य २ या ३ आने था[६३] वार्षिक मूल्य १२–०० रुपए था[६४] प्रारंभ मे पत्र लाहौरी दरवाजे से ढाई मील की दूरी पर चावडी बाजार में स्थित 'सदधर्म प्रचारक' प्रेस में मुद्रित होता था बाद मे निजी प्रेस खरीद लेने पर 'अर्जुन' अर्जुन प्रेस मे ही छपने लगा यह पत्र लाहौरी गेट के पास स्थित बर्न बैश्चन रोड से प्रकाशित होता था पत्र को अपनी निर्भीकता और तेजस्विता के कारण अनेक बार सरकारी खजाने मे जमानत देनी पडी उसकी सबसे पहली दी गई दो हजार की जमानत जब्त कर ली गयी, तथा तत्पश्चात् पाच हजार की जमानत और वसूल की गयी, फिर दस हजार की और जमानत मागी गयी थी. जब्ती, जमानत के सिलसिले और सरकारी प्रतिबंधों

के कारण १६३४ मे 'अर्जुन' को बद कर दिया गया

वीर अर्जुन (दैनिक):- विद्यावाचस्पति जब ४५ वर्ष के हुये थे तब सन् १६३४ में ब्रिटिश सरकार के पत्र पर उठे पजे को ढीले करने और उसकी ऑखो मे धूल झोकने के लिए 'अर्जुन' ने 'वीर अर्जुन' का अभिनव रूप धारण किया 'अर्जुन' वस्तुत बद नहीं हुआ था. 'वीर अर्जुन' १६३४ से १६४१ तक अबाध गति से अपने गाण्डीव के तीर छोडता रहा, पर १६४२ मे तीव्र सरकारी प्रतिबध प्रेस पर लग जाने के कारण १६४२ से १६४४ तक इसे अपने तीर तूणीर मे ही रखने के लिए बाध्य होना पडा तत्पश्चात् १६४५ से इसका प्रकाशन प्रारभ हुआ पत्र के सर्वप्रथम एक मात्र सचालक व स्वामी विद्यावाचस्पति जी थे, पर उन्होने कभी भी अपने आपको पत्र का स्वामी नहीं समझा 'पत्र उनके लिए सार्वजनिक सेवा का साधन और सार्वजनिक वस्तु थी पत्र जब स्वावलम्बी हो गया तो उन्होने 'श्री श्रद्धानन्द पब्लिकेशन्स लिमिटेड' कपनी की स्थापना कर पत्र, प्रेस तथा अपनी पुस्तको का स्टॉक सब कुछ उसे सौंप दिया [६५] उक्त कम्पनी की स्थापना ७ मई १६४० को करी गई कपनी के आठ सचालको मे स्वय विद्यावाचस्पति जी भी थे १६५० तक एक सचालक के रूप मे उनका अपने इस पत्र से नाता रहा इस काल मे सपादक के रूप मे प रामगोपाल विद्यालकार अनेक वर्षों तक उनके अविस्मरणीय सहयोगी बने रहे विद्यावाचस्पति भी समय–समय पर इसमे मार्मिक टिप्पणियॉं लिखते थे सपादकीय लेखो, 'गाण्डीव के तीर', 'भानुमती की पिटारी' इत्यादि स्तभो और राष्ट्रवादी नीति के कारण अर्जुन की धाक बहुत अधिक जमी थी.[६६] 'अर्जुन' दैनिक का जो आकार व मूल्य था, वही 'वीर अर्जुन' दैनिक का भी रखा गया अग्रेज शासन को चकमा देने के लिए केवल नाम मे वृद्धि की गई, आकार व मूल्य मे नहीं.

अर्जुन-वीर अर्जुन (साप्ताहिक):- 'अर्जुन' दैनिक के साथ 'अर्जुन साप्ताहिक' (सन् १६२३) भी प्रकाशित होता था 'इस रविवारीय विशेष सस्करण का टाइटल पेज पीले रग का और चिकना होता था. सरकारी प्रतिबध के कारण १६४२ मे साप्ताहिक 'वीर अर्जुन' और उसकी प्रेस से तीन हजार की जमानत मागी गई फलस्वरूप १६४२ से १६४४ तक यह पत्र बद रहा तत्पश्चात् १६४५ से इसका प्रकाशन शुरु हो गया पहले पत्र के एकमात्र सचालक विद्यावाचस्पतिजी थे फिर 'श्रद्धानद कपनी' इसकी सचालिका बनी सचित्र 'अर्जुन' साप्ताहिक के 'स्वराज्य अक', 'भारत–विभाजन योजना' 'रजत जयंती' आदि अनेक विलोभनीय विशेषाक निकले जिनमे एक 'महिला अंक' भी था. मुख्यपृष्ठ पर अश्वारूढ रानी लक्ष्मीबाई का चित्र था जिसके दायें हाथ में घोडे की लगाम, बाये हाथ मे सिर पर उठाया हुआ भाला, कटि प्रदेश की म्यान मे रानी की शोभा बढा रही एक बडी–सी तलवार और पीठ पर दत्तक पुत्र दामोदर चित्र के नीचे लिखा था– 'बुदेले हरबोलो के मुंह हमने सुनी कहानी थी. खूब लडी मर्दानी वह तो झासी वाली रानी थी.' आर्यसमाज की ओर झुकाव होते हुए भी यह स्वतन्त्र विचारधारा वाला पत्र था. उत्कृष्ट साप्ताहिको में इसकी गणना थी. 'आधी दुनिया', 'नारी समस्या', और 'गाण्डीव के तीर' ये व्यग्य विषयक लेखो के स्तभ थे धारावाहिक उपन्यास भी इसमे प्रकाशित हुये. पहेलिया भी प्रकाशित होती थीं. इसके प्रमुख सपादक कृष्ण चन्द्र विद्यालकार और सहयोगी सपादक क्षितीश वेदालकार थे विद्यालकारजी ने स्वय स्वीकार किया है कि –'निर्भीक एव सत्यनिष्ठ पत्रकारिता की प्रेरणा मुझे इन्द्र विद्यावाचस्पतिजी से मिली [६७] इस साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन 'श्रद्धानन्द बाजार– दिल्ली' से होता था. पत्र का वार्षिक मूल्य ८.०० रुपए तथा प्रत्येक अक का दो आने था.[६८] जैसे पुणे का मराठी 'ज्ञानप्रकाश' युद्धकाल मे ब्लैक मार्केट से कागज न खरीदने के कारण बद हो गया, वैसे ही २५ रुपये रिश्वत देकर बिजली लेना प्रो. इन्द्र को स्वीकार न हुआ अत. 'वीर अर्जुन' साप्ताहिक बद हो गया पत्र का प्रारंभिक वार्षिक मूल्य २।। रूपये व प्रत्येक अंक का एक आना था [६६]

नवराष्ट्र (दैनिक):- यह पत्र ५० वर्षीय अनुभवी पत्रकार विद्यावाचस्पति जी का आत्मबल व आधार पाकर उन्हीं की देखरेख मे १५ जनवरी १९३६ को मुबई से प्रकाशित हुआ एक ही वर्ष मे इसके पाच हजार ग्राहक बन गये पत्र को चिरस्थायी बनाने के लिए जो कुछ करना सभव था वह करके विद्यावाचस्पति जी वापिस दिल्ली आ गये इस कार्य के लिए एक वर्ष से कुछ अधिक समय तक वे मुबई मे रहे सत्यकाम विद्यालंकार के अनुसार विद्यावाचस्पति जी इन दिनो 'हिन्दू कॉलोनी–दादर' मे रहे गिरगाव नाके पर स्थित चर्च के राइट साइड मे वह प्रेस था जहा 'नवराष्ट्र छपता था पेपर दिल्ली के 'अर्जुन' के स्तर का तो नहीं बन पाया, पर इन्द्रजी के लेखो के कारण वह चल जरूर पडा 'नवराष्ट्र' दैनिक प्रारभ मे दो पृष्ठ का था और उसका मूल्य चार आने था[७०]

मनोरंजन (मासिक):- इस मासिक का प्रकाशन 'श्रद्धानन्द पब्लिकेशन्स' की ओर से अक्तूबर १९४७ मे किया गया इसके प्रबध सपादक ५८ वर्षीय विद्यावाचस्पति जी व सहयोगी सपादक श्री चिरजीत थे यह पत्र अपने नाम के अनुरूप मनोरजक था इसमे ज्ञानवर्धक, सुरुचिपूर्ण व कलात्मक कविताये, नाटक, लेख आदि प्रकाशित किये जाते थे दोरगी छपाई की जाती थी लगता है विद्यावाचस्पति जी 'नवराष्ट्र' (मुबई) पत्र सचालन के काल मे मराठी की ज्ञानवर्धक–सुदर–सचित्र–कल 'मनोरजन' पत्रिका से सुपरिचित हुये और तदनुरूप हिन्दी मे भी एक ऐसा आकर्षक मासिक निकालने का निश्चय उनके अतर्मन मे हुआ, जिसने 'मनोरजन' मासिक के रूप मे आकार ग्रहण किया मराठी 'मनोरजन' मासिक की तरह इस हिन्दी 'मनोरजन' मासिक के अन्तर्बाह्य स्वरूप को चित्रो से सुसज्जित करने का प्रयास किया जाता था. इसका वार्षिक मूल्य ५।।) रूपये था प्रत्येक मासिक में प्राय ६४ पृष्ठ होते थे प्रत्येक अक का मूल्य ।।, आठ आने था यह पत्र जनवरी सन् १९४९ तक ही प्रकाशित हो पाया.[७१]

जनसत्ता (दैनिक):- 'इडियन एक्सप्रेस' ने मोरी गेट दिल्ली से १९५१ मे यह पत्र निकाला. पत्र स्वामी के विशेष आग्रह पर ६२ वर्षीय विद्यावाचस्पति जी इसके सर्वप्रथम सपादक बने. लगभग १३ महीने की कालावधि तक वे इसके सक्रिय सपादक रहे. वर्षान्त तक पत्र की ग्राहक सख्या पन्द्रह हजार हो गयी. पत्र स्वामी ने जब सपादकीय नीति में हस्तक्षेप न करने के अपने अभिवचन की उपेक्षा की, तो तत्काल १ जुलाई १९५३ को विद्यावाचस्पति जी ने अपने संपादकीय पद से त्यागपत्र दे दिया. यह कहना ठीक नहीं कि 'सरकारी निर्णय के विरोध में लिखने के कारण प्रो. इन्द्र विद्यावाचस्पति को छुट्टी दे दी गयी.[७२] उसकी अपेक्षा यह कहना ज्यादा यथायोग्य होगा कि –'सरकारी निर्णय के विरोध में लिखने पर जब पत्र स्वामी ने हस्तक्षेप किया तो सपादकीय स्वतन्त्रता के पक्षधर प्रो इन्द्र ने स्वाभिमान के साथ तत्काल संपादक के पद से त्याग पत्र दे दिया'. सत्यकाम विद्यालकार के अनुसार –'जनसत्ता दैनिक के प्रत्येक अंक का मूल्य २ आने था और पत्र के श्रेष्ठी श्री गोएनका थे.[७३]

६.८ पत्रों का अंतरंग:-

विद्यावाचस्पति जी जन्मजात पत्रकार थे. पत्रकारिता के परिवेश में ही वे पले, बढे और स्नातक बने. उन्हीं के आग्रह पर पिताजी ने अपने साप्ताहिक पत्र 'सद्धर्म प्रचारक' को एक दैनिक का रूप दिया था. स्पष्ट और प्रत्यक्ष संपादन का अनुभव उन्होंने इसी अवसर पर प्राप्त किया. इस पत्र के संपादक के नाते श्री इन्द्र ने एक पत्र लिखकर सम्राट् से प्रार्थना की थी कि –'सम्राट् यहीं रहो!' इन्द्र जी को दिल्ली नगरी बहुत प्रिय थी और सम्राट् उसे राजधानी बनाने जा रहे थे, सभवतः इसलिये भी वे सम्राट पर खुश थे मॉडरेट राजनीति से घृणा करते हुए भी यत्किचित् रूप में वे इससे प्रभावित थे.[७४] इन्द्र जी की इस मनोवृत्ति मे उस युग के साहित्यकारों की राजभक्ति के कण भी दिखलायी

दे सकते हैं, किन्तु यह भावना उस समय की एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता भी थी एक नीति के रूप मे तत्युगीन कतिपय विचारक और साहित्यकार राजभक्त दिखलायी देते हैं, पर अत करण से तो वे सब राष्ट्रभक्त ही थे सुप्रसिद्ध समीक्षक रामविलास शर्मा ने ठीक ही कहा है– 'जहा–तहा अगेजो की प्रशसा से यह न समझना चाहिये कि यह चेतना अग्रेजी राज के कायम करने के पक्ष मे है'[७५] प इन्द्रजी का राष्ट्रीय पत्रकार गणेश शकर विद्यार्थी से आत्मीय सम्बन्ध था विद्यार्थी जी प इन्द्र जी की 'सद्धर्म–प्रचारक' मे लिखी टिप्पणियो से प्रभावित होकर उनसे मिलने गुरुकुल पधारे थे इन दोनो समवयस्क पत्रकारो का यह आत्मीय सबध आगे चलकर और भी अधिक प्रगाढ व विश्वसनीय बन गया था स्नातक बनने के बाद विद्यावाचस्पति जी 'सद्धर्म–प्रचारक' का सपादक बनकर दिल्ली आ गये एक ही वर्ष मे पत्र इतना लोकप्रिय हुआ कि उसकी ग्राहक सख्या तिगुनी हो गयी

'सद्धर्म–प्रचारक' के सपादक इन्द्रजी की प्रतिभा 'गहरे पानी पैठने' मे अतिशय प्रवीण थीं, प्रमाणस्वरूप इस सदर्भ मे कवीन्द्र रवीन्द्र व विद्यावाचस्पति का एक प्रसग श्री शकरदेव विद्यालकार के शब्दो मे प्रस्तुत है, "विद्यावाचस्पति जी ने दैनिक पत्र 'अर्जुन' की दशवार्षिक जयन्ती के अवसर पर विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर को अपने घर पर निमन्त्रित किया था वार्तालाप के सिलसिले मे कवीन्द्र रवीन्द्रनाथजी ने कहा, 'भारत ने मुझे तब पहचाना, जब यूरोप ने मेरा जयजयकार किया' इस पर विद्यावाचस्पतिजी ने 'सद्धर्म–प्रचारक' साप्ताहिक पत्र की पुरानी फाइल निकालकर कवीन्द्र को दिखाई "आपको नोबल पारितोषिक मिलने से पूर्व आपकी प्रतिभा और योग्यता का सम्मान हम लोगो ने किया था" उसको पढते हुए कविवर ने मुस्कराते हुए कहा – "आप ही लोग पहले ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्होने मुझे पुरस्कार मिलने से पूर्व एक महापुरुष माना और मेरा सम्मान किया" ऐसी थी विद्यावाचस्पतिजी की तत्वदर्शिनी प्रज्ञा "[७६]

दिल्ली मे विद्यावाचस्पतिजी की प्रतिभा को व्यापक क्षेत्र मिला सप्रति वे दिल्ली मे 'सद्धर्म प्रचारक' के सपादन मे तन्मय थे और उनके अग्रज हरिश्चन्द्र गुरुकुल कागडी मे अध्यापन का कार्य कर रहे थे अचानक स्थिति पलट गई गुरुकुल के उपाध्याय हरिश्चन्द्रजी ने आर्यसमाज के ५२ मन्तव्यो के पत्र पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया, इसलिए श्री हरिश्चन्द्र दिल्ली आकर इन्द्रजी के स्थान पर पत्रकार बन गये और इन्द्रजी गुरुकुल जाकर उपाध्याय का कार्य करने लग गये अध्यापन कार्य के साथ गुरुकुल से निकलने वाली सस्कृत पत्रिका 'उषा' के सपादन मे भी उन्होने सहयोग दिया इसी काल मे 'वैदिक देवता' और सस्कृत साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन' विषय पर अनुसन्धानात्मक निबन्ध लिखकर गुरुकुल की सर्वोच्च उपाधि 'विद्यावाचस्पति' प्राप्त की इस प्रकार १६१४ से १६१८ तक वे सस्कृत साहित्य, आर्य सिद्धान्त व इतिहास के विशेष अध्ययन व अध्यापन मे तल्लीन रहे और १६१८ के अन्तिम भाग मे गुरुकुल से एक वर्ष का अवकाश प्राप्त कर दिल्ली आ गये इस स्थान परिवर्तन का कारण स्पष्ट करते हुए विद्यावाचस्पति जी स्वय लिखते हैं, "इग्लैण्ड के तत्कालीन विदेशमन्त्री सर एडवर्ड ग्रे के बारे मे कहा जाता है कि वह जब अपने रसक्रिया भवन मे जाते थे, तब मिनिस्टिर की कुर्सी याद करते थे, और जब मिनिस्टर की कुर्सी पर बैठते तब रसक्रिया भवन को याद करते थे यही हालत उन दिनो मेरी थी शैक्षिक कार्य करते हुए अपने कार्यक्रम मे यह निरन्तर न्यूनता अनुभव होती थी कि मैं पढा तो रहा हूँ, परन्तु लिख नहीं रहा और जब लिखने का अवसर आया तो तब यह सोचने लगा कि आखिर कहाँ तक लिखे जाऊँगा, शिक्षा देने का कुछ कार्य भी तो करना चाहिये मन की यह द्विविध गति थी, जो मुझे १६१८ के अत मे गुरुकुल से खींचकर फिर दिल्ली ले आयी और जिसने मुझे शिक्षक के स्थान पर पत्रकार बना दिया"[७७] इसी समय जहाँ उन्होंने गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के आचार्य पद का उत्तरदायित्व सभाला

वहाँ यथोचित समय आने पर राजनीति के रणक्षेत्र मे भी कदम रख दिया दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह मे वे 'सद्धर्म प्रचारक' के प्रतिनिधि के तौर पर दिल्ली मे काग्रेस के विशेष अधिवेशन मे सम्मिलित हुये. अधिवेशन मे रॉलेट बिल विरोधी भाषणो को सुनकर विद्यावाचस्पतिजी की अर्धसुप्त राजनीतिक प्रवृत्ति और भी अधिक उत्तेजित हो गई, और तभी उन्होने अध्यापन कार्य छोडकर दिल्ली से दैनिक पत्र निकालने का निश्चय कर लिया पत्र का नाम 'विजय' रखा गया इस विजय मे विद्यावाचस्पतिजी के व्यक्तित्व को पूरी तरह से खिलने और खुलने का अवसर मिला इससे पूर्व उन्होने जिस 'सद्धर्म–प्रचारक' का सपादन किया था वह मुख्य रूप से धार्मिक पत्र था, और उनकी प्रवृत्ति छात्रावस्था से ही राजनीति की और थी कभी–कभी 'सद्धर्म–प्रचारक' मे उनके पिता मुशीरामजी सामयिक राजनीति के विषयो पर सम्मति दिया करते थे, परन्तु उसका उपसहार प्राय धार्मिक सदेश के रूप मे होता था उदाहरण के रूप मे सूरत मे सम्पन्न काग्रेस अधिवेशन की घटनाओ के सबध मे महात्मा मुशीराम लिखित व 'सद्धर्म–प्रचारक' मे प्रकाशित एक प्रतिक्रिया द्रष्टव्य है–

"आज तुम्हारी अपनी इन्द्रियॉं तुम्हारे अपने वश मे नहीं, जब अपने मन पर तुम्हारा कुछ अधिकार नहीं, तब तुम दूसरो से क्या अधिकार प्राप्त कर सकते हो? अधिकार! अधिकार!! अधिकार!!! हा तुमने किस गिरे हुए शिक्षणालय मे शिक्षा प्राप्त की थी? क्या तुमने कर्तव्य कभी नहीं सुना? क्या तुम धर्मशब्द से अनभिज्ञ हो? मातृभूमि मे अधिकार का क्या काम? यहॉं धर्म ही आश्रय दे सकता है अधिकार शब्द से सकामता की गन्ध आती है विषय–वासना का दृश्य दृष्टिगोचर होता है इस अधिकार की वासना को अपने हृदय से नोचकर फेक दो निष्काम भाव से धर्म का सेवन करो माता पर जब चारो ओर से प्रहार हो रहे हो, जब उसके केश पकडकर दुष्ट दु शासन उसको भूमि पर घसीट रहा हो, क्या वह समय अधिकार की पुकार मचाने का है ? शब्दो पर क्यो झगडा करते हो? क्यो न स्वराज्य प्राप्ति के साधनो को सिद्ध करने मे लगो? स्वराज्य के प्रकार का झगडा आने वाली सन्तानो के लिए छोडो उनकी स्वतत्रता पर इस समय इन झगडो से 'जजीरे' डालना अधर्म है इस समय दोनो छल–कपट से काम ले रहे हैं जिस काग्रेस का आधार अधर्म पर है, उसका प्राप्त कराया हुआ स्वराज्य कभी भी फलदायक न होगा, कभी भी सुख तथा शान्ति का राज्य फैलाने वाला न होगा एक ऐसे धार्मिक दल की आवश्यकता है, जो विरोधी को धोखा देना भी वैसा ही पाप समझता हो, जैसा कि अपने भाई को, जो सरकारी अत्याचारो को प्रगट करते हुए अपने भाइयो की दुष्टता तथा उनके अत्याचारो को भी न छिपाने वाला हो, जो मौत के भय से भी न्याय के पक्ष को छोडने का विचार तक मन मे न लाने वाला हो पोलिटिकल जगत् मे ऐसे ही अग्रणी की आवश्यकता है क्या कोई महात्मा आगे आने का साहस करेगा और क्या उसके पीछे चलने वाले ५ पुरुष भी निकलेगे? यदि इतना भी नहीं हो सकता, तो स्वराज्य प्राप्ति के प्रोग्राम को पचास वर्षों के लिए तह करके रख दो "[७८] इस प्रतीकात्मक उद्धरण से स्पष्ट है कि 'सद्धर्म–प्रचारक' मुख्य रूप से धार्मिक पत्र था, जिसमे कभी–कभी सम–सामायिक राजनीतिक विषयो पर भी टिप्पणियॉं प्रकाशित होती थीं विद्यावाचस्पतिजी को २४–२५ वर्ष के पुराने धर्म विषयक पत्र पर राजनीति का पैबन्द लगाना उचित प्रतीत नहीं हुआ, क्योंकि "पैबन्द लगाने से वृक्ष–वनस्पतियो की तो उन्नति हो सकती है, परन्तु समाचार पत्र जैसी सस्थाए पूरी तरह विकसित नहीं हो सकती ' फलत वे इस निश्चय पर पहुँचे कि –सद्धर्म–प्रचारक' को उसके पुराने धार्मिक रूप मे सुरक्षित करके एक नया राजनीतिक पत्र निकाला जाय जिसमे अपने हृदय की भावना और लेखनी की 'कडूति' को सफल करने का पूरा अवसर मिल सके '[७९] इसलिये विद्यावाचस्पति जब गुरुकुल से दिल्ली आये तो उन्होंने धार्मिक पत्र 'सद्धर्म–प्रचारक' की अपेक्षा लोकमान्य तिलक के 'केसरी' से प्रेरणा प्राप्त कर 'विजय' नामक एक दैनिक राष्ट्रीय पत्र निकाला

विद्यावाचस्पति जी के आशावाद व तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियो के सहयोग से 'विजय' की वैजयन्ती लहरा उठी 'सदधर्म–प्रचारक' के १५ दिवसीय लघु जीवन के बाद 'विजय' ने दिल्ली और पजाब का पहला 'दैनिक पत्र' होने का श्रेय प्राप्त किया मार्च १९१९ के अन्त मे महात्मा गाधी द्वारा रॉलेट बिल के विरोध मे जो सत्याग्रह शुरु हुआ वह 'विजय' के लिए सजीवनी बूटी सिद्ध हुआ पत्रकार विद्यावाचस्पति सत्याग्रह समिति के मत्री थे और सत्याग्रह आन्दोलन सबधी घोषणायें भी उन्होने तैयार की थी 'विजय' सत्याग्रह आन्दोलन का मुख्य प्रचारक बन गया 'लगडा खूनी मैदान मे' जैसे शीर्षको के कारण 'पत्र ऐसे फैल गया जैसे पानी मे तेल फैल जाता है' सरकार बौखला उठी और 'विजय' पर कडा सेसरशिप लग गया अततोगत्वा प्रतिकूल परिस्थिति व पर्याप्त साधनो के अभाव मे विजय को बद कर देना पडा तिलक से प्रेरणा प्राप्त कर निकला यह दैनिक राष्ट्रीय पत्र तिलक के देहावसान (१ अगस्त १९२०) के साथ बद हो गया भारत के होम मेम्बर ने स्वामी श्रद्धानन्द के राजनैतिक कार्य के विरूद्ध जो सरकारी शिकायत की थी उसमे यह स्पष्ट आरोप सम्मिलित था कि–'उनका लडका दिल्ली से एक क्रान्तिकारी अखबार निकाल रहा है'[८०] पत्रकारिता के इस महद् अनुभव को सचित कर इन्द्र का मन फिर अध्यापन की ओर आकृष्ट हो गया

१९१९ से १९२१ तक गुरुकुल कागडी मे अध्यापन का कार्य करते हुए विद्यावाचस्पतिजी के मन मे सार्वजनिक जीवन की भूख पुन जागृत हुई उन्हे यह प्रतीत हुआ कि केवल पढाने मे जीवन व्यतीत करने से सफलता के बैंक का बैलेस शून्य ही रहेगा[८१] यह भाव उन्हे राष्ट्रीय महासभा काग्रेस के अहमदाबाद अधिवेशन की ओर बहा ले गया वहा अधिवेशन का उन पर ऐसा प्रभाव पडा कि अहमदाबाद से ही वे अपनी प्रोफेसरी का त्यागपत्र देकर दिल्ली लौट आये और पत्रकारिता के उचित अवसरकी खोज करने लगे

अकस्मात् एक दिन भरतपुर के प जगन्नाथ अपने पत्र का 'प्रधान सपादक' का उत्तरदायित्व सौंपने के लिए विद्यावाचस्पतिजी के पास आये अग्रेज सरकार का प जगन्नाथ अधिकारी पर यह आरोप था कि वे भरतपुर के महाराज को सरकार विरोधी रास्ते पर ले जाते हैं उन्होने सपादन किस चिडिया का नाम है, इसका ज्ञान न होते हुए भी महाराज के पक्ष मे प्रकाशन कार्य करने के लिए 'वैभव' नामक दैनिक पत्र निकाला था, परिणाम यह हुआ कि पत्र सप्ताह मे मुश्किल से दो ही दिन निकल पाता था ऐसी स्थिति मे परेशान होकर वे विद्यावाचस्पतिजी के पास आये और उन्होने यह प्रस्ताव रखा कि –'वैभव' पत्र आप अपने हाथ मे लेकर सपादित कीजिये, पत्र नीति पर आपका ही सर्वाधिकार होगा' अधिकारी जी की सज्जनता के कारण विद्यावाचस्पति जी ने वैभव का प्रधान सपादक बनना स्वीकार कर लिया, पर जब वे कार्यालय पहुचे तो 'ढोल मे पोल' नजर आयी वहा ऐसी भी स्थिति न थी कि सपादक कहलाने की हवस भी पूरी होती, फिर भी उन्होने कुछ समय तक 'रेत मे से तेल निकालने का प्रयत्न किया', पर अंत मे भरतपुर नरेश की आर्थिक सहयोग देने की असमर्थता को देखकर विद्यावाचस्पति जी ने अपनी चटाई लपेट ली और इस निश्चय पर पहुचे कि–'साहसिक कार्य बडा हो या छोटा, उसे किसी दूसरे के भरोसे पर आरभ नहीं करना चाहिये.'[८२]

विद्यावाचस्पति जी ने पत्रकारिता की दृष्टि से फिर एक बार खालीपन महसूस किया ही था कि दैवयोग से प्रसिद्ध दानवीर सेठ रग्घूमल लोहिया ने साप्ताहिक पत्र 'सत्यवादी' निकालने के लिए दिल खोलकर सहयोग दिया दिल्ली से 'सत्यवादी' का प्रथमाक जनवरी १९२३ के प्रथम सप्ताह मे प्रकाशित हुआ 'सत्यवादी' शहीद सरदार भगतसिह के सपादकीय विभाग में पदार्पण के कारण रोमाच व सनसनीपूर्ण हो गया सपादकीय विभाग मे कार्य करने के बाद जब वे एक बार लंबी छुट्टी

पर चले गए तो ठीक उसके दो दिन बाद ही एक सब इस्पैक्टर आठ–दस सिपाहियो को साथ लेकर 'सत्यवादी–कार्यालय' पर पहुचा, पर यह जानकर कि चिडिया उड चुकी है, अपना छोटा–सा मुह लेकर वापिस चला गया कुछ महीनो के बाद 'सत्यवादी' विद्यावाचस्पतिजी द्वारा निकाले गये 'अर्जुन' पत्र मे विलीन हो गया

कानपुर के 'प्रताप' से भगतसिह का 'अर्जुन' पत्र मे शरण लेना इस तथ्य का प्रतीक था कि श्री गणेश शकर विद्यार्थी और इन्द्र विद्यावाचस्पति ये दोनो राष्ट्रीय पत्रकार बडी ही घनिष्ठता के साथ विश्वसनीय रूप मे एक–दूसरे से जुडे हुए थे शहीद भगतसिह का लालन–पालन और शिक्षा–दीक्षा तो आर्यसमाजी परिवेश मे हुई थी आर्य समाज का देशभक्तिमय वातावरण उनके लिए अपरिचित नहीं था एक बार आर्य समाज कलकत्ता मे भी उन्होने अपना अज्ञातवास का कुछ समय बिताया था फ्रास और इटली की राज्यक्राति से सराबोर विद्यावाचस्पतिजी की राष्ट्रीयता तो उनके लिए पूर्ण रूप से विश्वसनीय और सन्देहातीत थी इसलिए जब उनके सामने दिल्ली मे गुप्त रूप से रहने का प्रश्न उपस्थित हुआ तो वह समय उन्होने इन्द्रजी द्वारा सचालित अर्जुन के सपादकीय विभाग मे बिताना उचित समझा 'सत्यवादी' तथा 'अर्जुन' के सपादकीय विभाग मे कार्यरत भगतसिह की हिन्दी और विचारधारा के विषय मे विद्यावाचस्पतिजी ने इस प्रकार विवेचन किया है, 'उसकी हिन्दी तो बहुत अच्छी थी ही, उसके विचार और भी अधिक अच्छे और परिमार्जित थे जब कभी हिन्दू–मुस्लिम समस्या पर बात छिडती तो वह सदा साप्रदायिकता के विरूद्ध पक्ष लेता अन्य सब विषयो पर उसके विचार उदार और निर्भीक होते थे '[८३]

'सत्यवादी' साप्ताहिक के बाद 'अर्जुन' दैनिक के जन्म लेने का कारण इस प्रकार है– 'असहयोग आन्दोलन' के धीमा पड जाने पर 'खिलाफत आन्दोलन' ने तजीम की शक्ल पकडी इसकी प्रतिक्रिया 'शुद्धि' के रूप मे प्रकट हुई १३ फरवरी १६२३ को भारतीय हिंदू शुद्धि सभा की स्थापना हुई इसके प्रधान स्वामी श्रद्धानन्दजी थे आन्दोलन वडवानल के समान फैला शुद्धि आन्दोलन को एक दैनिक की आवश्यकता थी, इस नये आदोलन ने दैनिक 'अर्जुन' कोजन्म दिया जब 'अर्जुन' का पहला अक २४–४–१६२३ को प्रकाशित हुआ तो तब विद्यावाचस्पतिजी के पास न कोई मूलधन था, न सकट मे साथ देने वाला कोई साथी एक महीने बाद सेठ जुगलकिशोर बिडला की इस पत्र पर महती कृपा हुई उनके सहयोग से 'अर्जुन' का 'अर्जुन' प्रेस हो गया 'अर्जुन' की दशवार्षिक जयन्ती पर विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, 'सैनिक' दैनिक (आगरा) के सपादक कृष्णदत्त पालीवाल आदि अनेक महानुभाव सोत्साह सम्मिलित हुए थे 'अर्जुन' के पाठको मे जनसामान्य के अतिरिक्त उच्चकोटि के साहित्यकार भी थे, उपन्यास सम्राट् एव पत्रकार प्रेमचन्द ने 'अर्जुन' मे छपा 'अनुवादक मडल की आवश्यकता' नामक लेख १८ मई १६३३ को श्री रामचन्द्र वर्मा के पास भेजा था[८४]

'अर्जुन' प्रारभ से लेकर अत तक भारत की नौकरशाही सरकार से निरनतर सघर्ष करता रहा 'अर्जुन' का नाम सरकार की काली सूची में शामिल हो गया, जमानत और जब्ती के सिलसिले शुरु हो गये, उनसे बचने के लिए 'अर्जुन' के साथ – वीर' विशेषण जोड दिया गया दिल्ली के उच्च पुलिस अफसरो की नजर मे प्रो इन्द्र और उनका अखबार दोनो ही खतरनाक बने रहे, कालान्तर मे सी आई डी के दफ्तर मे 'अर्जुन' के विरूद्ध मामला गढने का कारखाना–सा खुल गया १३ दिसबर १६२७ को उन्हे केवल राष्ट्रीय पत्रकारिता के फलस्वरूप सरकारी जेल का मेहमान होना पडा [८५] १६२७ के बाद भी विद्यावाचस्पतिजी को १६३० व १६३५ मे भी अग्रेज सरकार ने विविध प्रकार की यातनाये दी प्रमाणस्वरूप विद्यावाचस्पतिजी की हस्तलिखित डायरी के कतिपय अश प्रस्तुत हैं–

सन् १६३० की 'आर्यकुमार डायरी' मे विद्यावाचस्पतिजी ने लिखा है – २२ अप्रैल – '१२४–ए मे गिरवी प्लॉट हुआ ' १६३० के आरभ मे विद्यावाचस्पतिजी पर १२४–ए का अभियोग चलाया गया

था, उसमे अर्जुन के कुछ लेख भी अभियोग के आधार बनाये गये थे. ५ मई – 'मि एफ बी पूल ने फैसला दिया – ६ महीने की सख्त सजा (मुकदमा दिल्ली मे चला था) ६ जून – 'इस समय यूरोपियन वार्ड मे निम्नलिखित कैदी हैं– मि साहनी–ए, इन्द्र–ए (इन्द्र विद्यावाचस्पति), लाला हनुमतसहाय–बी, सुखदेव–बी, सत्यवती–ए, (डॉ सुखदेव, इन्द्र विद्यावाचस्पति जी के बहनोई थे तो सत्यवती भानजी थी) ११ जुलाई – 'कुमार प्रिटिग प्रेस का २००० की जमानत देकर डिक्लरेशन दिया गया मजूर हुआ' २३ अगस्त – 'आज प रामगोपालजी को डी सी ने बुलाया' (प रामगोपाल विद्यालकार 'अर्जुन' के सपादक थे दगे से सबधित समाचार प्रकाशित करने के आरोप के सिलसिले मे ढाई सौ रूपये का जुर्माना देना पडा) इसी प्रकार सन् १९३५ की 'स्काऊट डायरी' मे अकित है – ६ जुलाई – अर्जुन की पाच हजार की जमानत मागी गई १५ जुलाई – पाच हजार की जमानत जमा कराई

इस प्रकार स्पष्ट है कि विद्यावाचस्पतिजी ने अपनी अपनी पत्रकारिता को सदैव राष्ट्रहित मे समर्पित किया अनेक कष्ट सहे, पर नौकरशाही के सामने सिर न झुकाया. साथ ही पूजीपतियो से सघर्ष करते हुए उन्होने 'अर्जुन' के अर्जुनत्व की रक्षा की हिन्दी के विशिष्ट शैलीकार और पत्रकार श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने प्रतिपादित किया है, 'अर्जुन' के अग्रलेख इतने स्पष्ट और समझाऊ होते थे कि पढकर अज्ञ भी विशेषज्ञ का अभिमान कर सके "[६६] श्री शिवपूजन सहाय ने सितबर १९३१ के 'हस' मासिक मे प्रकाशित 'हिन्दी के दैनिक पत्र' नामक लेख मे लिखा है– 'राजनीतिक आदोलन के युग मे देश–सेवा मे तत्पर दैनिको मे 'अर्जुन' एक विशेष उल्लेखनीय पत्र रहा है 'अर्जुन' के गाडीव के तीर बडे मजेदार और चोखे होते थे कभी–कभी तो वे जादूभरी चितवन की–सी चोट करते थे या तीखी कनखियो की तरह काम करके निकल जाते थे' तत्पश्चात् वे लिखते हैं – 'इन्द्रजी के सपादकत्व मे निकले 'अर्जुन' मे कुछ और ही चीज होती थी अग्रलेखों से तो उनके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप नजर आती थी उसके स्वर मे वीरत्व की ललकार बराबर बनी रही'

'अर्जुन' के कार्य से बबई जाने पर विद्यावाचस्पतिजी की एक व्यापारी सेठ श्रीरणछोडदास से भेट हुई वे एक गुजराती पत्र के स्वामी थे बातचीत मे हिन्दी पत्र निकालने की चर्चा हुई इससे विद्यावाचस्पतिजी के मन मे एक और नया साहसिक कार्य करने का उत्साह जागृत हुआ सेठ शूरजी वल्लभदास व राजा गोविदलाल पित्ती के प्रोत्साहन व सेठ गोविंदराम के आर्थिक सहयोग व बम्बई प्रान्त के गृहमत्री क मा मुशी के वरद्हस्त से १० जनवरी १९३६ के दिन 'नवराष्ट्र' दैनिक का उद्घाटन समारोह हुआ उद्घाटक श्री कन्हैयालाल मुशी थे उपस्थित सज्जनो मे श्री भूलाभाई देसाई आदि महानुभाव प्रमुख थे हिन्दी दैनिक का दक्षिण से शुभारभ करने के लिए १९३५ व १९३८ मे उन्होने बबई की यात्रा की थी और अन्ततोगत्वा इस पत्र को शुरू करने की जिद्द से १२ अगस्त १९३८ को मुबई मे सपरिवार डेरा डाल दिया था विद्यावाचस्पतिजी यूरोप का दूसरा महायुद्ध आरभ (१ सितबर १९३९) होने से पूर्व दिल्ली लौट आये एक अच्छा हिन्दी दैनिक निकालने और उसे सचालन की दृष्टि से स्थायित्व प्रदान करने के लिए उन्होंने अपना एक वर्ष बम्बई मे बिताया 'नवराष्ट्र' के पहले स्थायी ग्राहक एक महाराष्ट्रीय सज्जन थे पत्र कैसा चला इसका विवरण देते हुए विद्यावाचस्पति जी ने स्वीकार किया है, "पत्र खूब चला एक ही वर्ष मे ५ हजार से ऊपर ग्राहक हो गये थे, और निरन्तर बढ रहे थे विज्ञापन भी आने लगे थे. जिससे आशा बध गई कि अब 'नवराष्ट्र' पत्र चल निकलेगा "[६७] नवराष्ट्र पत्र की दृढ और चिरस्थायी आधारशिला रखकर वे दिल्ली वापस आ गये बबई से एक अच्छा हिन्दी दैनिक पत्र निकले–यही उनका उद्देश्य था.

१९४७ मे अर्जुन–वीर अर्जुन के पच्चीस वर्ष पूर्ण हुए. २७ जून १९४७ को इस उपलक्ष्य मे रजत जयन्ती समारोह आयोजित किया गया. इस अवसर पर राजर्षि पुरुषोत्तम दास टडन

ने बधाई देते हुये लिखा था– "पिछले पच्चीस वर्षों में दिल्ली के प्रभावशाली क्षेत्र मे उसने, मेरे प्यारे भाई इद्रजी की शक्ति पाकर निर्भीकता से देश की उपासना की है और हिन्दी का मान रखा है"[८८] इस कथन मे किचिन्मात्र भी अतिशयोक्ति नहीं है यह कथन विद्यावाचस्पतिजी की त्यागमयी पत्रकारिता का सच्चा सबूत है

विद्यावाचस्पतिजी की पत्रकारिता ओजस्वी होने के कारण क्रान्तिकारी नौजवानो को अपनी ओर आकृष्ट करने मे समर्थ रही शहीद भगतसिह के बाद सन् १६४२ की क्राति के शहीद श्री रमेशचन्द्र आर्य ने कई वर्ष तक विद्यावाचस्पतिजी की देखरेख मे 'वीर अर्जुन' मे कार्य किया था[८६] 'अर्जुन' के पाच सम्पादको ने समय–समय पर जेल की सजाये भोगीं[६०] विद्यावाचस्पति की राष्ट्रीय पत्रकारिता न जाने कितने युवको व पाठको के लिए प्रेरणास्रोत सिद्ध हुई श्री विष्णु प्रभाकर का यह मत सत्य है कि 'उनके सपादकीय लेखो से स्वतंत्रता सग्राम के सैनिक अनुप्राणित होते थे'[६१] विद्यावाचस्पतिजी ने अन्य सार्वजनिक कार्यों मे अपना अधिक समय लगाने की दृष्टि से ८ मई १६५० को 'अर्जुन' पत्र के संचालक पद से त्यागपत्र दे दिया तत्पश्चात् शीघ्र ही पत्र 'सघ' के हाथो मे जाकर अपनी स्वतन्त्रता खो बैठा और उनकी नीति मे परिवर्तन हो जाने के कारण विद्यावाचस्पतिजी ने उसमे नियमित रूप से लिखना छोड दिया. उन्हें सपने टूटते नजर आये और उन्होने अपने पुत्र सम प्रिय 'अर्जुन' से नाता तोड लिया

"जो मनुष्य बहुत दिनो तक पत्रकार रह चुका हो उसे साहस करने की आदत पड जाती है"[६२] तीस वर्षीय पत्रकार जीवन मे पूजीपतियो से टक्कर लेने के बाद, ६२ वर्ष की अवस्था मे, एक पूजीपति द्वारा ही सचालित एक नये दैनिक पत्र का सपादकत्व स्वीकार कर विद्यावाचस्पतिजी ने एक और साहसिक कदम उठाया, घटना इस प्रकार घटित हुई. विद्यावाचस्पतिजी के निकट सबधी उनके मकान पर एक पूजीपति पत्र–स्वामी को लेकर पधारे पत्र स्वामी ने विद्यावाचस्पति से कहा, 'दिल्ली से अपने अग्रेजी अखबार के साथ हिन्दी का एक दैनिक पत्र निकालना चाहता हूँ. मैं आपकी योग्यता और नीति से परिचित हूँ.. आप इस कार्य मे मेरी सहायता कीजिये मेरा यह प्रयत्न हिन्दी जगत् के लिए लाभदायक होगा[६३] सपादकीय स्वातन्त्र्य की शर्त पर विद्यावाचस्पति जी ने संपादक बनना स्वीकार कर लिया. कुछ ही समय मे 'जनसत्ता' जनप्रिय हो गया और पत्र स्वामी की आशाये भी पूर्ण हो गई. एक वर्ष से पूर्व हीपत्र पन्द्रह हजार से अधिक सख्या मे प्रकाशित होने लगा और उसकी लोकप्रियता उसी कार्यालय से निकलने वाले अग्रेजी दैनिक से भी अधिक हो गई. इस प्रकार पत्र जब प्रगति पथ पर आगे बढ रहा था तब एक बार विद्यावाचस्पतिजी ने बम्बई सरकार की 'टाइम्स' को विज्ञापन न देने की,[६४] एक आज्ञा की, अपने सपादकीय लेख मे कडी आलोचना की वह आज्ञा स्वामी महोदय के विशेष रूप से हित में थी. बबई से पत्र स्वामी का सदेश आया– 'संपादकीय लेख वापिस ले लिया जाये.' विद्यावाचस्पतिजी ने अपने स्पष्ट प्रत्युत्तर मे कहा– "मैंने जो लेख लिखा है, वह ठीक समझकर लिखा है, उसे वापिस लेने का प्रश्न ही नहीं उठता. मैं पत्र की सपादकीयता नीति मे स्वतत्र हूँ, उसमें किसी का हस्तक्षेप नहीं चाहता."[६५] अपने वचन के विरूद्ध पत्र–स्वामी द्वारा संपादकीय नीति मे दखल देने के कारण विद्यावाचस्पतिजी ने तत्काल त्याग पत्र दे दिया वे एक स्वाभिमानी पत्रकार थे. अपने एक वर्षीय सपादन काल में वे कभी भी पत्र–स्वामी से मिलने उनकी कोठी पर नहीं गये, बाद मे उजागर हुई घटनाओ से यह भी स्पष्ट हुआ कि–विद्यावाचस्पतिजी को हटाने के लिए उच्चस्तर पर कोशिश की गयी थी"[६६] 'जनसत्ता' के लेखो के आधार पर तत्कालीन सूचना–प्रसारण मत्री ने प्रधानमन्त्री से उनकीशिकायत की थी. विद्यावाचस्पतिजी उस समय जहाँ 'जनसत्ता' के सपादक थे, वहाँ काग्रेस व राज्यसभा के भी सदस्य थे 'जनसत्ता' की उक्त घटना ने विद्यावाचस्पतिजी के हृदय पर यह अंकित कर दिया कि–'जो

पत्रकार विचारो की स्वाधीनता से प्रेम रखता है, उसे पूजीपति के सग से बचना चाहिये पूजीपतियो का पत्र सचालन कोरा व्यवसाय है, उसमे आदर्शवाद की गुजाइश नहीं मुक्तिबोध ने भी कहा है– 'पूजीपति का हृदय कभी नहीं बदल सकता'

इस प्रकार स्पष्ट है कि 'सद्धर्म–प्रचारक' से लेकर 'जनसत्ता' तक के पत्रकार जीवन मे पत्रकारिता विद्यावाचस्पतिजी के लिये एक मिशन थी, पेशा नहीं उन्होने अपनी पत्रकारिता का जीवन १६४७ मे सपन्न मानते हुए लिखा है– 'मेरा यह राष्ट्रीय युग का पत्रकारिता का जीवन स्वर्ण जयन्ती के उत्सव के साथ समाप्त समझना चाहिये"[६७]

६.६ संपादक सम्मेलन व पत्रकार संघ सम्मेलन के अध्यक्षः-

विद्यावाचस्पतिजी ने पत्रकारिता के माध्यम से राष्ट्र व राष्ट्रभाषा की जो सेवा की, वह किसी के लिए अपरिचित नहीं रही उनकी गुण–कर्मात्मक सुरभि यत्र–तत्र सर्वत्र फैल गयी पत्रकारो व सपादको के विविध सगठन उन्हे अपने सम्मेलनो का अध्यक्ष पद प्रदान कर उनके द्वारा की गई पत्र–साधना को सम्मानित करने लगे 'आज' के सपादक श्री बाबूराव विष्णु पराडकर द्वारा सपादक सम्मेलन की अध्यक्षता करने (वृन्दावन १६२६) के बाद इन्द्र जी की अध्यक्षता मे एक सम्मेलन इन्दौर मे हुआ[६८] सभवत यह अधिवेशन २४ फरवरी १६३३ को इन्दौर मे हुआ होगा, क्योकि विद्यावाचस्पति जी की हस्तलिखित 'सुख सचालक डायरी १६३३' मे यह अकित किया गया है–'२४ फरवरी इन्दौर के लिए जाना' तत्पश्चात् जब युद्ध और महात्मा गाधीजी के सत्याग्रह सबधी समाचारो के प्रकाशन पर प्रतिबध लग गया, तब इस सकट के निवारणार्थ 'अखिल भारतीय समाचार पत्र सपादक सम्मेलन' की स्थापना दिल्ली मे की गयी थी इस सम्मेलन के आयोजकों मे तीन व्यक्ति मुख्य थे– प्रो इन्द्र विद्यावाचस्पति (हिंदी) श्री देशबधु गुप्त (उर्दू) और श्री देवदास गाधी (अग्रेजी) पर जब विद्यावाचस्पतिजी को यह महसूस हुआ कि 'सपादक सम्मेलन' पर अग्रेजी का वर्चस्व बढ रहा है, तब उन्होने 'अखिल भारतीय हिन्दी पत्रकार–सघ सम्मेलन' की स्थापना की इसका पहला अधिवेशन सन् १६४१ मे 'विश्वमित्र' के सपादक मूलचन्द्र अग्रवाल की अध्यक्षता मे दिल्ली ने सपन्न हुआ इस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष प इन्द्र विद्यावाचस्पतिजी थे पत्रकार सगठनो की स्थापना और उनके अधिवेशनो को सुचारू रूप से सपन्न करने के लिए विद्यावाचस्पति जी ने बडी दौड–धूप की पत्रकार सघ सम्मेलन का तीसरा व चौथा अधिवेशन क्रमश सन् १६४३ व १६४४ मे कलकत्ता व कानपुर मे सपन्न हुए इन दोनो अधिवेशनो की अध्यक्षता प्रो इन्द्र विद्यावाचस्पति ने ही की थी इस प्रकार स्पष्ट है कि विद्यावाचस्पतिजी तत्कालीन सुप्रसिद्ध पत्रकारो मे तथा सपादक–पत्रकारो की सुसगठित सस्थाओ मे अपना विशिष्ट स्थान रखते थे उनकी स्वतन्त्र, निर्भीक व राष्ट्रीय नीति की पत्रकारिता ने ही उन्हे उच्चकोटि का लोकप्रिय पत्रकार बनाया था वे सगठन कला मे भी प्रवीण थे, इसी कारण वे 'सपादक समेलन' व 'पत्रकार सघ' जैसे अनेक अखिल भारतीय सगठनो के विश्वकर्मा सिद्ध हुये.

'अर्जुन' 'मनोरजन' तथा 'जनसत्ता' नामक तीन पत्रो मे विद्यावाचस्पति जी की छत्रछाया मे सपादन कार्य का सौभाग्य प्राप्त करने वाले पद्मश्री चिरजीत ने बडे ही खेद के साथ कहा है कि– "हिन्दी पत्रकारिता के इतिहासकारो ने प इन्द्र को वह शीर्ष स्थान नहीं दिया, जिसके वे अधिकारी थे हिन्दी पत्रकारिता को हिन्दी साहित्य का एक अग मानकर कुछ इतिहासकार काशी के बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को आधुनिक हिन्दी कविता एव नाटक के साथ–साथ हिन्दी पत्रकारिता का भी जनक बताते हैं और उसके पालन–पोषण उन्नयन–सस्कार का सारा श्रेय प. महावीरप्रसाद द्विवेदी को देते हैं इतिहासकारो का एक दूसरा दल सर्वश्री बाबूराव विष्णु पराडकर, लक्ष्मण नारायण (गर्दे) और बालमुकुन्द गुप्त की बृहत्त्रयी को हिन्दी पत्रकारिता का जनक घोषित करके श्री गणेश शकर विद्यार्थी को हिन्दी का पहला राष्ट्रीय पत्रकार बताता है. ये दोनो दल काशी और इलाहाबाद

की उस इतिहास दृष्टि से जुडे हुये हैं' जो क्षेत्रीयता तथा जातीयता के मायोपिया के कारण कानपुर से आगे देख ही नहीं पाती. एक अप्रिय तथ्य यह है कि प इन्द्र को केवल आर्यसमाज के आर्थिक समुदाय की सीमित परिधि में रखकर उनके विशाल राष्ट्रीय व्यक्तित्व एव कृतित्व को जाने–अनजाने बौना बनाया गया है यदि उन्हे उस परिधि से निकालकर निष्पक्ष एव उदार दृष्टि से देखा जाय तो वे दिल्ली की हिन्दी पत्रकारिता के जनक ही नहीं, समस्त उत्तर भारत की राष्ट्रीय दैनिक एव साप्ताहिक हिन्दी पत्रकारिता के मुख्य पुरोधा प्रमाणित होंगे उल्लेखनीय है कि प इन्द्र दिल्ली से प्रकाशित हुए विभिन्न पत्रों के केवल सपादक ही नहीं, जन्मदाता एव सचालक भी थे"[९९] श्री चिरजीत के उपरोक्त कथन से चाहे कोई पूर्णाश में सहमत न हो, पर हरेक तटस्थ समीक्षक को इतना तो मानना ही होगा कि– पत्रकार के रूप मे विद्यावाचस्पति जी का जो गौरव होना चाहिये था, वह नहीं हो पाया वस्तुत वे दिल्ली और उसके आस–पास के जुडे (पजाब, उत्तर प्रदेश और राजस्थान) परिवेश की पत्रकारिता के जनक थे हिन्दी पत्रो के जनक, सपादक और यशस्वी सचालक होने के कारण उनकी पत्रकारिता विशेष रूप से गौरवास्पद है. दिल्ली से सुदूर दक्षिणाचल मे स्थित बबई से भी उन्होंने हिन्दी दैनिक पत्रकारिता का श्रीगणेश व सचालन किया था. डॉ भवानीलाल जी भारतीय ने ठीक ही कहा है– 'प इन्द्र विद्यावाचस्पति जैसे सुगृहीत नामधेय पत्रकारो ने हिन्दी पत्रकारिता को अपने तप और साधना से प्रोज्वल किया है'[१००]

सन्दर्भ

१ हिन्दी पत्रकारिता का आलोचनात्मक इतिहास–१२
२ हिन्दी पत्रकारिता–२६१
३ राजस्थान विश्वविद्यालय के पत्रकारिता विभाग द्वारा आयोजित सम्पर्क शिविर के समापन समारोह मे ३ सितबर १९८६ को दिया गया वक्तव्य
४ हिन्दी पत्रकारिता का आलोचनात्मक इतिहास–६
५ वैदिक साहित्य कुछ उपलब्धिया–३–४
६. पत्रकारिता के अनुभव–६१
७ आधुनिक पत्रकार कला–२
८. दि इनसाक्लोपीडिया अमेरिकना–२१८
९ हिन्दी पत्रकारिता का आलोचनात्मक इतिहास–३
१०. अजन्ता–सितबर १९५२–४२
११. पत्रकारिता के अनुभव–१
१२. तत्रैव–८
१३ हिन्दी भाषा और साहित्य को आर्यसमाज की देन–१८८
१४. अजता–सितबर १९५२–४२
१५. तत्रैव–४२
१६ पत्रकारिता के अनुभव–७
१७ हिन्दी भाषा और साहित्य को आर्यसमाज की देन–१५१
१८ अजन्ता–सितबर १९५२–४२
१९ पत्रकारिता के अनुभव–२
२० तत्रैव–१
२१ आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास में सरस्वती का योगदान–२८
२२. सरस्वती–१९००
२३ इन्द्र विद्यावाचस्पति–१२०
२४ आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास मे सरस्वती का योगदान–३२
२५. तत्रैव–४५
२६ माधवराव सप्रे–६३
२७ प बालकृष्ण भट्ट. व्यक्तित्व और कृतित्व–१४२
२८ अजन्ता सितम्बर १९५२–४२
२९ मैं इनका ऋणी हू–६
३० माधवराव सप्रे–६३
३१. हिन्दी पत्रकारिता और राष्ट्रीय आन्दोलन–४२
३२ मैं इनका ऋणी हू–६
३३. पत्रकारिता के अनुभव–१०३
३४. अजन्ता–सितम्बर १९५२–४२
३५. मेरे पिता–२६४
३६ महात्मा गाधी यांचे संकलित वाड्मय खंड– २४– ५२६
३७. सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का २७ वर्षीय इतिहास–२९९–७०
३८. युद्धेन योग्यो जयति, क्लीबो युद्धेन नश्यति। तस्मात् युद्धं तुलादण्डो, राष्ट्राणामुच्यते आवरण–२ बुधै.॥ जीवन–सग्राम
३९ वीर अर्जुन–दैनिक ५ दिसबर १९४७
४०. तत्रैव–१९ मई १९४७
४१. पत्रकारिता के अनुभव–१–२
४२. तत्रैव–३
४३ हिन्दी भाषा और साहित्य को आर्यसमाज की देन–१५१
४४. बृहद् हिन्दी पत्रकारिता कोश–४७०
४५. इन्द्र विद्यावाचस्पति–१५
४६ समाचार पत्रो का इतिहास–३६०

४७ स्वामी श्रद्धानन्द ग्रथावली–खण्ड नौ–१६४–१६५
४८ पत्रकारिता के अनुभव–१०
४६ हिन्दी भाषा व साहित्य को आर्यसमाज की देन–१५१
५० समाचार पत्रो का इतिहास–३६०
५१ हिन्दी पत्रकारिता विविध आयाम–चित्र एलबम–बीसवीं शती के आरभिक दैनिक पत्र–२८४
५२ समाचार पत्रो का इतिहास–२८८
५३. शोधकर्ता द्वारा १५–४–६० को श्री सत्यकाम विद्यालकार से ठाणे मे उनके निजी घर पर हुई भेटवार्ता–साक्षात्कार के आधार पर
५४. साप्ताहिक हिन्दुस्तान (२६ फरवरी १६६१) लेख–प्राचीनता और नव्यता के अपूर्व संगम–४६
५५. पत्रकारिता के अनुभव–३२
५६. समाचार पत्रो का इतिहास–३५३
५७ हिन्दी पत्रकारिता विविध आयाम. लेख–दिल्ली की हिन्दी पत्रकारिता. अतीत और वर्तमान–१८६
५८ हिन्दी पत्रकारिता विविध आयाम–७८६
५६. हिन्दी वाड्मय २० वीं शती–लेख–पत्रकारिता–३८८
६०. समाचार पत्रो का इतिहास–३५३
६१. शोधकर्ता की श्री सत्यकाम विद्यालकार से हुई भेटवार्ता के आधार पर
६२. साप्ताहिक हिन्दुस्तान (२६ फरवरी १६६१) लेख–वह अपनी पीढी के उत्तम प्रतिनिधि थे–६
६३ शोधकर्ता की सत्यकाम विद्यालकार से हुई भेटवार्ता के आधार पर
६४. समाचार पत्रो का इतिहास–३५३
६५ पत्रकारिता के अनुभव–६४
६६. हिन्दी वाड्मय २० वीं शती–३८८
६७. हिन्दी पत्रकारिता विविध आयाम–६१६
६८ हिन्दी की पत्रिकाये–१०३
६६ हिन्दी पत्रकारिता विविध आयाम–चित्र–एलबम–स्वाधीनता सग्राम के कुछ महत्वपूर्ण पत्र–२८४–२८६
७०. शोधकर्ता की सत्यकाम विद्यालकार से हुई भेटवार्ता के आधार पर
७१ प्रह्लाद (अप्रैल १६६०) लेख–सफल पत्रकार प्रो इन्द्र विद्यावाचस्पति–३४
७२ हिन्दी पत्रकारिता विविध आयाम–लेख–दिल्ली की हिन्दी पत्रकारिता अतीत और वर्तमान–१६८
७३ शोधकर्ता की सत्यकाम विद्यालकार से हुई भेटवार्ता के आधार पर
७४. इन्द्र विद्यावाचस्पति–२५
७५. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण–३५७
७६. साप्ताहिक हिन्दुस्तान (२६ फरवरी १६६१) लेख–शील और प्रज्ञा के धनी इन्द्रजी–१०
७७. पत्रकारिता के अनुभव–१५
७८. आर्यसमाज का इतिहास–द्वितीय भाग–१०६
७६. पत्रकारिता के अनुभव–१३
८०. बन्दीघर के विचित्र अनुभव–१४
८१. पत्रकारिता के अनुभव–२६
८२. तत्रैव–३२
८३. तत्रैव–३४
८४. प्रेमचन्द विश्वकोश' खण्ड–१–१५७
८५. मेरे नौकरशाही जेल के अनुभव–२/५२
८६ साप्ताहिक हिन्दुस्तान (२६ फरवरी १६६१)–६
८७ पत्रकारिता के अनुभव–६६
८८. तत्रैव–६३
८६. हिन्दी साहित्य को आर्यसमाज की देन–३७

९०. अजन्ता (सितम्बर १९५२)–४३

९१ साप्ताहिक हिन्दुस्तान (२८ फरवरी १९६६)–लेख–सचमुच एक मानव श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति–२३

९२ आधुनिक भारत मे वक्तृत्व कला की प्रगति–९५

९३ पत्रकारिता के अनुभव–७१–७२

९४ हिन्दी पत्रकारिता विविध आयाम–१९८

९५ पत्रकारिता के अनुभव–७४

९६ इन्द्र विद्यावाचस्पति–१३१

९७ पत्रकारिता के अनुभव–६३

९८ हिन्दी पत्रकारिता का आलोचनात्मक इतिहास–२०६

९९ आर्य सन्देश (२३ दिसबर १९९०) लेख–दिल्ली की हिन्दी पत्रकारिता के जनक–४६

१०० आर्यसमाज के पत्र और पत्रकार–१४

७

संस्कृत वाङ्मय के अनुवादक और भाष्यकार

७.१ अनुवादः स्वरूप विवेचनः-

अनुवाद शब्द अनु उपसर्ग और वाद सज्ञा के सयोग से बना है अनु उपसर्ग मे किसी के पीछे जाने या आने का भाव विद्यमान है जैसे–अनुगमन, अनुसरण, अनुकरण आदि अनुवादक को भी मूल रचनाकार के पीछे जाना होता है लेखक के आशय और लक्ष्य के प्रति गतिशील रहना उसके लिए बहुत जरूरी है डॉ भोलानाथ तिवारी के अनुसार 'एक भाषा मे व्यक्त विचारो को यथासभव समान और सहज अभिव्यक्ति द्वारा दूसरी भाषा मे व्यक्त करने का नाम अनुवाद है ' सक्षेप मे अनुवाद मे दो भाषाओ के शब्दानुशासनो को एक अर्थानुशासन से जोड दिया जाता है.[1] उक्त अनुवाद कार्य मे अनुवाद को दोहरी मानसिकता से गुजरना पडता है प्रथम तो यह स्रोत भाषा की वाक्य को पढकर उसमे प्रयुक्त शब्द क्रम का अनुसरण करते हुए उस वाक्य के अर्थ को ग्रहण करता है और फिर उसे लक्ष्य भाषा की वाक्य योजना के अनुरूप शब्द क्रम के माध्यम से व्यक्त करता है जिस भाषा की रचना का अनुवाद किया जाता है वह स्रोत भाषा कहलाती है और जिस भाषा मे अनुवाद किया जाता है, उसे लक्ष्य भाषा कहते हैं मूल विषय के गहन ज्ञान के अतिरिक्त अनुवाद को स्रोत व लक्ष्यो दोनो भाषाओ का ज्ञान होना भी अत्यावश्यक है सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के अनुसार– 'यदि लेखक का दोनो भाषाओ पर अधिकार है, तो उसके द्वारा प्रस्तुत अनुवाद ज्ञान–वृद्धि मे सहायक हो सकता है '[2] गद्य का गद्यानुवाद करना तो सहज है पर पद्य का पद्यानुवाद करना वस्तुत टेढी खीर है

प्राय कहा जाता है कि अनुवाद महाप्रवचक होता है 'उसका यदि अनुवाद सुन्दर होता है तो विश्वसनीय नही होता, और यदि विश्वसनीय होता है तो सुन्दर नहीं होता ' जैसे एक बोतल से इत्र दूसरी शीशी मे उडेलते हैं तो कुछ न कुछ अश मे उसकी गध इत्र उडेलते हुए ही उड जाती है, उसी प्रकार स्रोत भाषा को लक्ष्य भाषा मे रूपान्तरित करते समय उस स्रोत भाषा की कुछ ना कुछ भाव–सुरभि नामशेष हो जाती है अपवाद रूप मे कुछ प्रतिभाशाली अनुवादको के अनुवाद कार्य से अनुवाद मे नये भाव–सौन्दर्य का भी प्रवेश हो सकता है यह सब कहने का तात्पर्य इतना ही है कि अनुवाद एक दुस्तर कार्य है, इसलिए उक्त कार्य को पुन सृजन के नाम से भी सबोधित किया जाता है. अनुवादक जब अनुवाद करता है तो मूल के भाव–सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने के लिए कुछ छोडने और कुछ जोडने के लिए विवश हो जाता है इस सदर्भ में डॉ चन्द्रभानु सोनवणे का कहना है कि– 'अनुवाद को मूल रचना की जुडवा या सगी बहन के रूप मे प्रस्तुत करने के लिए कम से कम छोडने और कम से कम जोडने की नीति अपनाना बहुत जरूरी है '[3]

७.२ अनुवाद का महत्वः-

अनुवाद भावो के सशक्त आदान–प्रदान का माध्यम है, फलत प्राच्य सस्कृत वाङ्मय की परा–अपरा विद्या अनुवाद के गवाक्ष से ही हमारी मानस–भूमि का सस्पर्श कर पायी है, और पाश्चात्य विज्ञान का प्रकाश भी ट्रान्सलेशन की विण्डो से ही हम तक पहुँच पाया है आधुनिक काल के प्रारभ मे यदि गौर से देखा जाय तो यह तथ्य सामने आता है कि हरेक सफल लेखक अनुवादक भी है हिन्दी की शैशवावस्था मे महावीरप्रसाद द्विवेदीजी ने सस्कृत, अग्रेजी, बगाली और मराठी जैसी संपन्न

भाषाओ से हिन्दी को समृद्ध करने का आह्वान करते हुए कहा था– 'इग्लिश का ग्रन्थ समूह बहुत भारी है, अति विस्तृत जलधि समान देहधारी है/ संस्कृत भी सबके लिए सौख्यकारी है, उसका भी ज्ञानागार हृदयहारी है/ इन दोनो मे से अर्थरत्न लीजै, हिन्दी के अर्पण उन्हे प्रेम युत कीजै'' ।[४]

द्विवेदीजी से पूर्व भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी यह स्पष्ट रूप से कह दिया था कि – 'अपने साहित्य का भण्डार अन्य भाषाओ के श्रेष्ठ ग्रन्थो के अनुवाद द्वारा भरा जा सकता है.'[५] द्विवेदीजी हिन्दी की तुलना में सस्कृत अग्रेजी, बगाली के अतिरिक्त मराठी भाषा को भी एक सम्पन्न भाषा मानते थे इसलिए उन्होने मराठी कविताओ से भावार्थ ग्रहण कर समय–समय पर 'सरस्वती' मे कुछ कविताये प्रस्तुत की थीं[६] छायावादी कवि निराला ने भी कहा है – 'ससार के विविधमुखी ज्ञान का परिचय प्राप्त करने के लिए अनुवाद अत्यावश्यक है'[७] श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति भी अनुवाद की भाव–सप्रेषण शक्ति से सुपरिचित थे वे मराठी पत्र 'केसरी' के अनूदित 'हिन्द केसरी' के लेखो को पढकर लोकमान्य तिलक के अनुयायी बने थे.[८] उन्हे तिलक–भक्त बनाने का श्रेय एक प्रकार से अनुवाद–कला को भी है

तिलक जिस समय 'केसरी' निकाल रहे थे उसी समय विद्यावाचस्पति जी के पिता मुशीराम भी 'सद्धर्म–प्रचारक' निकाल रहे थे. दोनो ही पत्रो मे सूरत कांग्रेस के अधिवेशन मे हुए उपद्रवो पर टिप्पणियाँ प्रकाशित हुई थीं. तत्कालीन परिस्थिति को स्पष्ट करने के लिए भारवि विरचित काव्य का एक प्रसग प्रस्तुत किया जा रहा है. काव्य में देवराज इन्द्र मुनि के वेश में उपस्थित हो अर्जुन को उपदेश देते हैं. – 'यदि तुम्हारे मन मे शत्रुओं को जीतने की इच्छा है (तो पहले अपनी) इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करो .. शास्त्रास्त्रो को त्यागो, (और) मुनि वृत्ति धारण करो.'[९] इसी प्रकार का उपदेश सूरत की घटनाओ पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए महात्मा मुंशीराम जी ने 'सद्धर्म–प्रचारक' में देते हुए कहा था – ''आज तुम्हारी अपनी इन्द्रियाँ तुम्हारे अपने वश मे नहीं. जब अपने मन पर तुम्हारा कुछ अधिकार नहीं, तब तुम दूसरों से क्या अधिकार प्राप्त कर सकते हो?.... यदि इतना भी नहीं हो सकता तो स्वराज्य प्राप्ति के प्रोग्राम को पचास वर्षों के लिए तह करके रख दो.''[१०] लगभग इसी समय 'केसरी' मे 'क्या हम स्वराज्य पाने के योग्य नहीं'[११] नामक लेख छपा था. महात्मा मुंशीराम की लेखनी में ब्राह्मणत्व प्रबल था और लोकमान्य तिलक के लेखन में क्षत्रियत्व. 'किराताजुर्ननीय' के अर्जुन की तरह श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति का झुकाव क्षत्रियत्व की ओर हुआ, पर यह झुकाव सीधे मराठी 'केसरी' से नहीं, अपितु उसके श्री माधवराव सप्रे द्वारा अनूदित संस्करण 'हिन्द केसरी' से हुआ था. इसीलिए हमने उपरोक्त परिच्छेद में यह तथ्य अंकित किया है कि– विद्यावाचस्पति जी को तिलक–भक्त बनाने का श्रेय अनुवाद–कला को है.

विद्यवावाचस्पति जी द्वारा संचालित 'अर्जुन' पत्र में 'अनुवादक मण्डल की आवश्यकता' नामक लेख प्रकाशित हुआ था, जो प्रेमचन्द जी को इतना अधिक भाया कि उन्होंने उसे १८ मई १९३३ को श्री रामचन्द्र वर्मा जी के पास भेजा था.[१२] इस घटना से भी अनुवाद की आवश्यकता पर विशेष प्रकाश पड़ता है. अनुवाद के माध्यम से सभी भारतीय भाषाओं को एक मंच पर लाने के लिए प्रेमचन्द जी ने श्री चन्द्रगुप्त वेदालंकार से सहयोग चाहा था. अनुवाद की महत्ता को विद्यावाचस्पति जी भी बखूबी जानते थे. इसलिए उन्होंने पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश को दिये साक्षात्कार में कहा था– 'संस्कृत ग्रन्थो के अनुवाद मेरी दृष्टि से हिन्दी के लिए अत्यन्त आवश्यक है.' गत वर्ष (सन् १९५०) मैंने 'रघुवश' के आधार पर हिन्दी मे 'सम्राट् रघु' का जीवन चरित्र प्रकाशित किया था. अब मैं 'किरातार्जुनीय' के आधार पर 'अर्जुन की घोर तपस्या' लिख रहा हू'[१३]

७.३ अनुवाद की परम्परा:-

महापण्डित राहुल साकृत्यायन ने ठीक ही कहा है –'अनुवाद या स्वतन्त्रानुवाद से हमारे

गद्य साहित्य की सृष्टि हुई है'[14] हिन्दी गद्य के प्रयोग काल के चारो लेखक सैयद इशा अल्ला खां, मुशी सदासुखलाल, सदल मिश्र और लल्लूलाल की रचनाओ को (केवल रानी केतकी की कहानी को अपवाद रूप मे छोडकर) श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराणो की कथाओ का भावानुवाद ही माना जाता है इसी काल मे स्वामी दयानन्द ने ऋग्वेद और यजुर्वेद का हिन्दी मे भाष्य और अनुवाद किया था भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अन्य भाषाओ के साहित्य की तरह मराठी भाषा से भी एक उपन्यास का हिन्दी मे अनुवाद किया था भारतेन्दु–द्विवेदी काल तो वास्तव मे अनुवाद काल ही कहलाता है. द्विवेदी जी ने १८८६ से १६१७ तक १४ पुस्तको के हिन्दी पद्य व गद्य मे अनुवाद किये थे इनमे १३ सस्कृत की पुस्तको का और एक अग्रेजी पुस्तक का समावेश है यह अग्रेजी की पुस्तक भी 'महाभारत' है, जिसे सुरेन्द्रनाथ ठाकुर ने महाभारत के मूल आख्यान के आधार पर लिखा है द्विवेदी जी द्वारा अनूदित पुस्तको मे महाकवि कालिदास कृत 'रघुवश' व भारवि विरचित 'किरातार्जुनीय' का भी समावेश है[15] इन्हीं दो पुस्तको का विद्यावाचस्पति जी ने भी अनुवाद किया है छायावाद काल मे भी यह अनुवाद की परम्परा चलती रही है महाकवि निराला ने 'आनन्दमठ' के रचयिता श्री बकिमचन्द्र चटर्जी के ११ बगाली रचनाओ, रामकृष्ण परमहस के ३ बगाली उपदेश ग्रन्थो व स्वामी विवेकानन्द लिखित ३ अग्रेजी ग्रन्थो का हिन्दी मे अनुवाद किया उन्होने तुलसीकृत रामचरित–मानस का खडी बोली मे पद्यानुवाद भी किया था छायावाद के पश्चात् उत्तरोत्तर वर्तमानकालीन युग मे तो बहुमुखी ज्ञान से समृद्ध अनुवाद की आवश्यकता और भी अधिक बढती ही जा रही है

७.४ विद्यावाचस्पति जी का अनूदित साहित्यः-

श्री रामप्रीत ने द्विवेदीजी के काव्य–विकास के प्रारभिक काल (१८८५–१८८६) को 'अनुवाद–काल' सज्ञा दी है[16] इसी काल के अन्तिम वर्ष मे विद्यावाचस्पति जी का जन्म हुआ था इससे स्पष्ट है कि जन्म से ही 'अनूदित साहित्य' उनके परिवेश मे विद्यमान था फलत विद्यावाचस्पतिजी ने भी मौलिक साहित्य की रचना के अतिरिक्त सस्कृत की कुछ गद्य कृतियो के हिन्दी अनुवाद व भाष्य किये उनके गद्य साहित्य के अन्तर्गत उनकी अनूदित रचनाओ का भी उल्लेखनीय स्थान है इन रचनाओ से जहा विद्यावाचस्पतिजी के अगाध पाण्डित्य का परिचय मिलता है, वहा उनसे युगीन प्रवृत्ति का भी बोध होता है वस्तुत अनुवाद कार्य मे विद्यावाचस्पतिजी की रूचि युग–चेतना का सहज परिणाम थी

भारतेन्दु से ही हिन्दी साहित्य मे विविध समृद्ध भाषाओ के ग्रन्थो को हिन्दी मे अनूदित करने की परम्परा जन्म ले चुकी थी द्विवेदी युग में इस दिशा मे विशेष प्रगति हुई यहा यह स्मरण रखना चाहिये कि द्विवेदी युग तक अधिकतर पद्यानुवाद ही किये गये छायावाद युग मे विशेष रूप से श्री निराला ने गद्यानुवाद की दिशा मे विशेष ध्यान दिया इस सम–सामायिक अनुवाद की प्रवृत्ति का विद्यावाचस्पति जी पर भी प्रभाव पडा, पर उनकी गति–प्रवृत्ति विशिष्ट रूप से गद्य लेखन की ओर थी, अत उन्होंने छन्दशास्त्र का ज्ञान और काव्य में गति होने पर भी पद्यानुवाद के क्षेत्र मे कदम नहीं रखा

विद्यावाचस्पति जी का सस्कृत भाषा पर उतना ही अधिकार था जितना कि हिन्दी पर. गुरुकुल कागडी की सर्वोच्च उपाधि 'विद्यावाचस्पति' से विभूषित होने के कारण सस्कृत उनकी मातृभाषा के तुल्य थी छात्रावस्था मे उन्होने हिन्दी के अतिरिक्त सस्कृत मे भी कवितायें लिखीं थी विशेष रूप से यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि सस्कृत की तुलना मे हिन्दी के साहित्यिक व व्याकरणिक रूप से तो वे स्नातक होने बाद ही सुपरिचित हुये थे[17] विद्यावाचस्पति जी ने सस्कृत के जिन तीन काव्य ग्रन्थो का अनुवाद व भाष्य किया उनमे महाकवि कालिदास का 'रघुवश', भारवि का 'किरातार्जुनीय' तथा औपनिषदिक ग्रन्थो मे सर्वप्रथम उपनिषद् 'ईशोपनिषद्' का समावेश है. कालिदास और भारवि

सस्कृत के विश्वविश्रुत सर्वश्रेष्ठ कालजयी कवि हैं सुप्रसिद्ध उक्ति है– 'उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्' इसका आशय यह है कि – "कालिदास के काव्य का विशिष्ट गुण उपमा है और भारवि का अर्थ गौरव विद्यावाचस्पति जी ने तो यहाँ तक कहा है कि उपमा मे कालिदास का अर्थ गौरव मे भारवि की तुलना केवल सस्कृत मे ही क्या ससार की अन्य किसी भाषा मे भी मिलना कठिन है ये दोनो कवि अपने–अपने अधिकार क्षेत्र मे अजेय हैं "[१८]

७.५ अनुवाद की पृष्ठभूमि व प्रेरणाः-

'अनूदित हिन्दी साहित्य विशिष्ट ग्रथ सूची' के अनुसार विद्यावाचस्पति जी से पूर्व 'रघुवश' के ७ हिन्दी अनुवाद और 'किरातार्जुनीय' के ४ हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो चुके थे[१९] उक्त सूची अपूर्ण प्रतीत होती है इन ग्रन्थो के हिन्दी अनुवादो की सख्या इससे दोगुनी–चौगुनी भी हो सकती है इन अनुवादो के होते हुए भी एक ओर अनुवाद द्वारा विद्यावाचस्पतिजी ने इन सस्कृत ग्रन्थो का साहित्यिक, सास्कृतिक और प्रासगिक महत्व प्रतिपादित करना अत्यावश्यक समझा प्राय अनुवादक अनेक प्रेरणाओ से प्रेरित होकर अनुवाद की दुनिया मे प्रविष्ट होते हैं – 'कभी पुरानी जमीन को तोडकर नयी जमीन तैयार करने के लिए, कभी छपास के मोह के लिए, कभी राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय पहचान बनाने के लिए और कभी सहज मानवीय सबधों के विस्तार के लिए, तो कभी ज्ञानक्षेत्र की गहराई मे डुबकी लगाने के लिए'[२०] विद्यावाचस्पतिजी के अनूदित साहित्य लिखने का प्रमुख प्रयोजन 'शिवेतरक्षतये' है, यश या अर्थप्राप्ति नहीं चाहे फिर वह 'रघुवश' हो, 'किरातार्जुनीय' हो या 'ईशोपनिषद् भाष्य' उन्होंने जो अनुवाद किये उनका उद्देश्य राष्ट्रीय नवजागरण की दृष्टि से पुरानी जमीन को तोडकर नयी जमीन तैयार करना है, तथा आध्यात्मिक क्षेत्र की गहराई मे डुबकी लगाना व लगवाना है

विद्यावाचस्पति जी 'कालिदास' के अनन्य प्रेमी थे.[२१] सन् १९५६ मे उनकी प्रेरणा से कालिदास वाङ्मय मे वर्णित पक्षियो और वनस्पतियो के चित्रो की प्रदर्शनी गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय के पुरातत्व संग्रहालय मे आयोजित की गई थी. इस प्रदर्शनी मे पक्षियो मे राजहस, चक्रवाक, चातक, शुक, सारिका, सारस, श्येन, हारीत, (हरियल), कंक (लाल बगुला) कादम्ब (कलहस), कारण्डव (टिकारी), कुररी (मछमग–मछरग), कोकिल, क्रौंच आदि के यथार्थ ज्ञान कराने वाले रगीन चार्ट रखे गये थे. वनस्पतियो मे अशोक, कुरवक, जपा, चम्पा, यूथिका, प्रियाल, आम्र, मावी, कुटज, जाति, कम्पिल, कुन्द के पुष्प कालिदास के ग्रन्थों मे पाये जाने वाले सस्कृत श्लोको के साथ दिखाये गये थे. जिसे देखकर डॉ चिन्तामणि द्वारकानाथ देशमुख मन्त्रमुग्ध हो गये थे विद्यावाचस्पतिजी के इस प्रकार के कार्यो से प्रभावित होकर इतिहासकार श्री हरिदत्त वेदालकार ने उन्हे अपनी सचित्र शोधपूर्ण सुन्दर कलात्मक कृति 'कालिदास के पक्षी' सादर समर्पित की थी.

सन् १९५६ मे विद्यावाचस्पतिजी ने अपने कई मित्रो के साथ सपरिवार कण्वाश्रम–स्मारक की यात्रा बडी श्रद्धा से की थी महाकवि कालिदास द्वारा 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' मे वर्णित कण्वाश्रम के आधार पर यह स्मारक उत्तर प्रदेश सरकार की अनुमति से गढवाल परिसर के उत्साही निवासियो की ओर से बनाया गया था उस स्मारक पर जाने के बाद उन्हे अतिशय दु.ख हुआ. इस दु ख का कारण एक तो यह था कि स्मारक के लिए जो स्थान चुना गया, वह ऐतिहासिक दृष्टि से निराधार था और दूसरा कारण यह था कि वह स्मारक कुलपति कण्व और उनके आश्रम की भव्यता के अनुरूप नहीं था विद्यावाचस्पतिजी के शब्दो में – 'यदि कण्वाश्रम का स्मारक बनाना था तो आश्रम के योग्य कोई विशाल भू–भाग चुना जाता और वहा कोई आश्रम प्रधान शिक्षणालय खोला जाता, न कि एक छोटा–सा नाटकघर बनाकर पैसे इकट्ठे करने का उपाय'[२२] 'नाटकघर' से तात्पर्य यहा उस छोटे–से मन्दिर से है, जिसमे राजा दुष्यन्त, शकुन्तला और कण्व आदि की छोटी–छोटी

मूर्तिया रख दी गई है जहा एक पुजारी भक्तों द्वारा चढाये हुए पैसे बटोरता रहता था. विद्यावाचस्पतिजी को यह स्मारक 'कण्वाश्रम का स्मारक नहीं, अपितु उसका उपहास'[२३] प्रतीत हुआ.

विद्यावाचस्पतिजी को कालिदास काव्य उपवन का भ्रमर कहा जाय तो बिल्कुल भी अतिशयोक्ति नहीं होगी एतद्विषयक अपने रूप को स्पष्ट करते हुए स्वय विद्यावाचस्पतिजी ने कहा है– "छात्रावस्था मे ही मुझे कालिदास के काव्यो के पारायण का व्यसन रहा है. अब तक (१५ दिसबर १९५० तक) भी रिक्त समय को काटनेया मनोरंजन के लिए उपन्यास के स्थान पर मैं प्राय कालिदास का कोई काव्य पढा करता हू. जितना ही मैंने कवि सम्राट् के काव्यो का अनुशीलन किया, उतना ही अधिक उनका सौन्दर्य और गौरव मेरे मन पर अकित होता गया"[२४]

कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तल' जैसे सर्वोत्कृष्ट नाटक के होते हुए भी विद्यावाचस्पति जी ने 'रघुवश' के अनुवाद को आखिर क्यो प्राथमिकता दी इसका कारण बतलाते हुए कहा है– "'शाकुन्तल' मे ललित शब्दो और कोमल भावनाओ का ऐसा अच्छा मिश्रण है कि उसकी उपमा मिलनी कठिन है, इस दृष्टि से उसका स्थान केवल कालिदास के ग्रन्थो मे या सस्कृत के वाड्मय में अपितु विश्व के साहित्य मे ऊँचा माना जाय तो उचित ही है. परन्तु दो कारणों से 'रघुवश' को पहला स्थान दिया है. प्रथम कारण तो यह है कि महाकाव्य है, उसमें वर्णनीय विषयो और रसो की इतनी विविधता है कि कवि को अपनी प्रतिभा के प्रकाशन का पूरा अवसर मिला है, दूसरा कारण यह है कि रघुवश मे हम महाकवि कालिदास के काल की अवस्था तथा भावना का विशद तथा उज्जवल चित्र देखते हैं"[२५]

कालिदास के व्यापक और गहन देश–प्रेम और देश–परिचय से विद्यावाचस्पति जी मन्त्रमुग्ध थे. उन्हीं के शब्दो मे– "'कुमारसभव' के प्रारभ मे कालिदास ने हिमालय का मानो नख–शिख–वर्णन कर दिया है. उधर रघुवश मे रघु की दिग्विजय यात्रा का वर्णन पढिए तो आप अनुभव करेगे कि कवि को भारत के कोने–कोने की भौगोलिक और मानवीय विशेषताओ का पुष्कल परिचय है. 'मेघदूत' का अनुशीलन कीजिए तो आप भारत के उत्तर और दक्षिण के मुख्य दो पर्वतो को आपस मे मे मिलाने वाले मेरूदण्ड का मार्मिक वर्णन पायेगे." "यदि हम कालिदास के समय के भारतवर्ष को जानना चाहते हैं तो उसका सर्वोत्कृष्ट चित्र कवि के काव्यों में विद्यमान है"[२६] तत्कालीन परिस्थिति की झलक कालिदास के काव्य मे ज्ञानचक्षुओं से देखी जा सकती है. 'रघुवश' मे राजनीतिक भावनाओ, 'कुमारसम्भव' में धार्मिक विचारों, और 'मेघदूत' से सामाजिक तथा भौगोलिक परिस्थितियो का आप एक स्पष्ट चित्र खींच सकते हैं."[२७] विद्यावाचस्पति जी के अनुसार–'प्रत्येक महती रचना का कोई न कोई लक्ष्य बिंदु होता है.'[२८] 'रघुवंश' के पाठ से महान्! से महान शासक और यशस्वी प्रतापी को यह शिक्षा मिलती है कि –'राज्यो और राजवंशो के भवन तपस्या, सेवाभाव और वीरता की नींव पर खडे होते हैं और प्रमाद लम्पटता और कायरता के आघातों से जर्जरित होकर नष्ट हो जाते हैं'[२९]

श्री सत्यदेव विद्यालंकार का यह मत सत्य है कि, विद्यावाचस्पति जी 'किरातार्जुनीय' के रचयिता भारवि कवि की काल–नीति और राज्य–सचालन सबधी कूटनीति के बडे प्रशंसक व पोषक थे'[३०] भारवि के काव्य की महत्ता का विश्लेषण करते हुए स्वयं विद्यावाचस्पति जी ने कहा है –'यद्यपि भारवि का केवल एक ही काव्य 'किरातार्जुनीय' मिलता है, अन्य कोई काव्य या खण्डकाव्य भी उपलब्ध नहीं होता तो भी उसकायश इतना विस्तृत और स्थायी हो गया है इसके दो मुख्य कारण हैं एक तो यह कि उसकी कवित्व शक्ति अद्भुत थी...(और) .. दूसरी विशेषता यह है कि उसने विषय का चुनाव बहुत आकर्षक और उसका निर्वाह उससे भी सुन्दर किया है. सम्पूर्ण काव्य का एक दृष्टिकोण और एक उपदेश है यह विशेषता मध्यकाल की बहुत कम रचनाओ मे पायी जाती

है. 'किरातार्जुनीय' अपने ढग का अनूठा महाकाव्य है इसमे शब्द सौन्दर्य और भाव सौन्दर्य इन्द्रधनुष के वर्णों की भाति एक–दूसरे मे ओत–प्रोत होते हुए भी पृथक्–पृथक् रूप मे प्रकट हो रहें हैं "[३१]

विद्यावाचस्पति जी 'किरातार्जुनीय' का अनुवाद करने की ओर क्यो प्रवृत्त हुए? इसका उत्तर उनकी इन अग्रिम पक्तियो से प्राप्त होता है– 'यदि मुझमे कविता करने की शक्ति आ जाय और फिर कहा जाय कि समयानुकूल कविता करो, तो मैं किरातार्जुनीय के बहुत से सर्गो का हिन्दी मे अनुवाद करने का प्रयत्न करूगा यदि कोई जातीय (राष्ट्रीय) विश्वविद्यालय हो, और उसमे पढाने के लिए सस्कृत की पाठविधि बनाने को मुझसे कहा जाय तो भी मैं 'बाल्मीकि रामायण' से दूसरे दर्जे पर 'किरातार्जुनीय' का ही स्थान रखूगा, जो जातिया चिरकाल से स्वाधीन है, धन–धान्य से युक्त हैं, वैभव और ऐश्वर्य की सामग्री से अलकृत हैं, उनके लिए श्रृगार–प्रधान–काव्य ठीक हो सकता है, परन्तु जिस दशा में भारत है, उसके लिए किरातार्जुनीय और भगवद्गीता ही सबसे उत्तम है श्रृगार और ललितोद्गार मे, मधुरता और उपमा मे, प्रसाद और सरसता मे, लौकिक कवियो मे अनेक भारवि से ऊँचे हैं, पर भारत को इस समय उनमे से किसी के भी गुण की इच्छा नही है भारत को इस समय उन गुणों की लालसा है, जिसका अन्तर्भाव 'ओज' शब्द के अन्दर हो सकता है अधमरे शिथिल रोगी को ऐसी दवा देनी चाहिये, जो उसे उठाकर खडा कर सके जब वह खडा हो जायेगा तब बालों मे इत्र और मुँह मे पान भी शोभा देने लगेगा इसी सिद्धान्त के अनुसार इस समय भारत 'किरातार्जुनीय' जैसे काव्य चाहता है शृगार प्रधान काव्य नहीं "[३२]

विद्यावाचस्पति जी ने इस अनुवाद की प्रस्तावना कुछ ऐसी शैली मे लिखी है कि उसने प्रतीकात्मकता का रूप धारण कर लिया है युधिष्ठिर महात्मा गाधी प्रतीत होते हैं 'दुर्योधन' वह अग्रेज नजर आता है, जिसने 'इन्द्रप्रस्थ' (भारतवर्ष) का शासन हडप कर लिया है दौपदी, अर्जुन, भीम, दुर्गा भाभी, रामप्रसाद बिस्मिल, भगतसिह आदि उन क्रान्तिकारियो के प्रतीक नजर आते हैं, जो सशस्त्र क्रान्ति और 'शठे शाठ्य समाचरेत्' की नीति मे विश्वास रखते हैं यह प्रस्तावना सन् १९२५ में लिखी गयी थी, जब विद्यावाचस्पति जी ने 'किरातार्जुनीय' के अनुवाद का सकल्प किया था और तभी उन्होने इसके मुख्य–मुख्य भाग का अनुवाद भी कर लिया था उदाहरण के रूप मे प्रस्तावना के कतिपय अश प्रस्तुत हैं–

"वह (द्रोपदी) द्वापर की क्षत्राणी है आज की भारत की नारी नहीं "[३३] 'दुर्योधन' की शक्ति अनुपम है, उसकी नीति बडी गहरी है, उसका समय विभाग निश्चित है भारत मे अग्रेजी सरकार के समय पालन की भाति उसका भी समय विभाग का पालन प्रसिद्ध है,'[३४] द्रौपदी की (आखिरी) अपील ऐसी है कि सदियो की झूठी धार्मिक अहिसाओ का मारा हुआ जैनी भी हाथ मे तलवार लेकर खडा हो जायेगा '[३५] –'यदि आपने वीरता को बिल्कुल तिलाजलि देकर क्षमा का ही भरोसा लिया है, तो क्षत्रिय चिह्न धनुष को फेक दो, जटाये बढा लो और हवन किया करो '[३६] बादल को गरजता हुआ सुनकर शेर भी गरजता है, इसलिए नहीं कि उसका कोई कार्य सिद्ध होता है, अपितु इसलिए कि वह प्रतिस्पर्धा नहीं देख सकता '[३७] 'वह सती (द्रौपदी) आज के भारतवासियो जैसी नहीं कि अपमान को मीठे शरबत की भाति पी जाय, वह सच्ची भारतपुत्री है, वह क्षत्रिय कुल की उपज है वह भला अपमान को कैसे भूल सकती है या क्षमा कर सकती है '[३८] जिस ओजस्वी शैली मे यह प्रस्तावना लिखी गई है, उसी ओजस्वी शैली मे काव्यानुवाद भी किया गया है

विद्यावाचस्पति जी को 'भारवि अपने ज्ञानचक्षु से बीसवीं सदी तक देखता प्रतीत होता है. '[३९] इतनी स्पष्ट प्रस्तावना होने के बाद 'किरातार्जुनीय' के अनुवादक के अनुवाद के कारण पर प्रकाश

डालने की और कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती. यही वह काल था, जब विद्यावाचस्पति जी ने महात्मा गाधी से महाराष्ट्र केसरी छत्रपति शिवाजी पर एक लेख लिखने का अनुरोध किया था जिसके प्रत्युत्तर मे महात्माजी ने कहा था –'क्या तू मुझे मेरे (अहिसा के) कार्य से विमुख करना चाहता है?'[४०] राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने सन् १९२५ मे 'श्रीमद्भगवद्गीता' के द्वितीय अध्याय का 'गीतामृत' शीर्षक से पद्यानुवाद किया था इस अनुवाद का उद्देश्य था –'जाय सब किन्तु रहे निज धर्म '[४१] राष्ट्रीयता के प्रखर वैतालिक विद्यावाचस्पति जी ने भी सन् १९२५ मे ही 'किरातार्जुनीय' के हिन्दी गद्यानुवाद का सकल्प कर उसके मुख्य–मुख्य भाग का अनुवाद कर लिया था. उद्देश था –जाय सब किन्तु रहे निज राष्ट्र '

७.६ 'रघुवंश' का कथानकः-

'रघुवश' मे महाकवि कालिदास ने रघुवश रूपी सूर्य के उदय और अस्त की गाथा कही है महाराज दिलीप, प्रतापी रघु, परम प्रतापी अज, राजा दशरथ, मर्यादा पुरुषोत्तम राम, लव–कुश, पुष्कल, तक्ष, अगद, चन्द्रकेतु, अतिथि, नल, पारियात्र, ध्रुवसन्धि, सुदर्शन और अग्निवर्ण तक के रघुवशी राजाओ की इसमे कथा है अन्तिम दो सर्गो मे कुश के २४ उत्तराधिकारियो का वर्णन है, उनमे कुश के पुत्र अतिथि को छोडकर अन्य कोई ऐसा राजा नहीं है, जिसके विषय मे कवि ने दो–चार से अधिक श्लोक लिखे हो अपवाद केवल सुदर्शन का है, जिसने शासन के उत्तरदायित्व को अच्छी प्रकार से सभाल लिया था रघुवश मे उसके सम्बन्ध मे १६२ श्लोक हैं अन्तिम राजा अग्निवर्ण विषयलम्पटता के कारण राजयक्ष्मा की व्याधि से ग्रस्त हो गया और निस्सन्तान होने के कारण राघवो के राजसिहासन को उत्तराधिकारी से शून्य छोडकर परलोक चला गया इस तरह जो यशस्वी वश महाराजा दिलीप की तपस्या, प्रतापी रघु के पराक्रम और मर्यादा पुरुषोत्तम राम के असाधारण व्यक्तित्व से मध्याह्न के सूर्य की भाति चमक रहा था, वह ध्रुवसन्धि जैसे व्यसनी और अग्निवर्ण जैसे विषयी उत्तराधिकारियो के प्रभाव से अस्ताचल मे विलीन हो गया 'असाधारण तपस्या व अनथक प्रयासो से राज्य प्रतिष्ठित होते हैं, पर जैसे ही वे व्यसनाधीन हो जाते हैं तो पल भर मे नष्ट हो जाते हैं ' यही 'रघुवश' के कथानक का सन्देश है विद्यावाचस्पति जी के अनुसार 'क्षत्रिय (शासक) को जैसा होना चाहिये, उसका सर्वांगपूर्ण नमूना देखना हो, तो कालिदास द्वारा वर्णित सम्राट् रघु का अध्ययन और मनन करना चाहिये '[४२]

७.७ 'किरातार्जुनीय' का कथानकः-

विद्यावाचस्पति जी की द्वितीय अनूदित रचना 'किरातार्जुनीय' का सक्षिप्त कथानक इस प्रकार है – प्रारभ मे पाण्डवो का दूत युधिष्ठिर से राजा सुयोधन के समाचार सुनाता हुआ कहता है – वह सुयोधन यह चाहता है कि प्रजा तुम्हे भूल जाय और उसके राज्य को सुखी समझने लगे, जिससे तुम जब वनवास से वापिस लौटो और अपना राज्य मागो, तब तुम्हे तुम्हारी ही पुरानी प्रजा की सहायता से हटाया जा सके यह सब सुनकर द्वापर की क्षत्राणी द्रौपदी कहती है –'हे धर्मपुत्र! झूठी शान्ति को छोड दो और शत्रुओ के नाश के लिए कमर कसकर तैयार हो जाओ धूनी रमाकर सन्तोष कर बैठना मुनियो का काम है, राजाओ का नहीं' दूसरे सर्ग के प्रारभ मे भीमसेन कहता है –बस, अब तो यही अभिलाषा है कि –शत्रु के लिए तुम्हारे और हमारे हृदय मे जो आग है, वह भी शत्रु की विधवा नारियो के आसुओ से ही शान्त हो जब अग्रज युधिष्ठिर धैर्य की महिमा और प्रतिज्ञा–पालन का गौरव बतलाते हैं तो अकस्मात् महामुनि व्यास का पदार्पण होता है वे यह उपदेश और सलाह देते हैं कि – बिना तप और परिश्रम के शत्रु को नहीं जीता जा सकता अत तपस्या से इन्द्र और शिव को प्रसन्न कर अमोघ शस्त्रास्त्रो को प्राप्त करो अर्जुन हिमालय जाकर तपस्या करते हैं, और अपने आपको जितेन्द्रिय और असाधारण तपोमूर्ति सिद्ध कर, क्रमश इन्द्र और शिव को प्रसन्न कर

लेते हैं अर्जुन की अद्भुत तपस्या और शक्ति से प्रसन्न होकर किरात का रूप धारण किये शिव अपने असली रूप मे प्रकट होते हैं, और अर्जुन पर आशीवाद की वृष्टि करते हुए उसे विविध शस्त्रास्त्रो से भी सुसज्जित करते हैं

कथानक के प्रारभ मे युधिष्ठिर को हम द्रौपदी और भीमसेन के धिक्कार रूपी तीरो से क्षत–विक्षत होते हुए पाते हैं, तो अत मे उसी युधिष्ठिर को अस्त्रो से सुसज्जित अर्जुन की चरण वन्दना लेने का आनन्द प्राप्त करते हुए देखते हैं आरभ मे निराशा और अत मे आशा है इस प्रकार विद्यावाचस्पति ने तत्कालीन भारत की तथाकथित अहिंसावादी मोह माया को दूर करने के लिए भारवि विरचित 'किरातार्जुनीय' का यह ओजस्वी अनुवाद प्रस्तुत किया था, जो अतीत के समान वर्तमान मे भी उपयोगी है

७.८ 'ईशोपनिषद्' : एक आध्यात्मिक ग्रन्थ :-

विद्यावाचस्पति जी की तीसरी अनूदित रचना 'ईशोपनिषद् भाष्य' है यह केवल अनुवाद ही नहीं, अपितु उसमे अनुवाद के साथ उसका विस्तृत भाष्य भी है व्याख्या भी है अत उसका नाम मूल कृति के समान 'ईशोपनिषद् न रखकर 'ईशोपनिषद् भाष्य' रखा गया है 'यजुर्वेद' के ४० वे अध्याय मे यत्किचित् परिवर्तन करके 'ईशोपनिषद्' की रचना की गई है जर्मनी के सुप्रसिद्ध तत्वचितक शोपनहार ने कहा था कि –'उपनिषद् मेरे जीवन रूपी सरोवर मे अमृत सींचनेवाले रहें है, और वे मेरी मृत्यु में भी अमृत का ही काम देगे.' जर्मनी के ही एक अन्य विद्वान् पाल डायसन ने 'उपनिषदो के दार्शनिक सिद्धान्त' नामक पुस्तक की भूमिका मे लिखा है –'उपनिषद् के 'ये वैदिक सिद्धान्त बुद्धदेव से पूर्व के समय मे ही इस कोटि तक पहुच गये थे, और आज तक के किसी भी पीछे के विचारक ने, उनके दार्शनिक महत्व को मात नहीं किया है'[४३] यहा यह ध्यातव्य है कि जर्मनी ने यूरोप के दार्शनिक विचार जगत् का नेतृत्व किया है.

उपनिषदो मे ऐसे अनेक स्थल आते हैं जहा पर यह कहा गया है कि उपनिषद् वेदाश्रित हैं, 'यजुर्वेद' के अन्तिम अध्याय मे ज्ञान और कर्म दोनो के समन्वय पर बल दिया गया है तदनुसार 'ईशोपनिषद्' मे भी सत्यज्ञान और सत्कर्म के सबध को बतलाकर सक्षेप से मनुष्य जीवन का साद्यन्त कार्यक्रम प्रतिपादित किया गया है. यह ग्रन्थ मानव जाति की आध्यात्मिक चिन्तन सम्पदा का महान् ग्रंथ है.

ईश्वर का स्वरूप क्या है? वह स्थूल है या सूक्ष्म? वह एक है या अनेक? वह दूर है या पास? उसकी शक्ति सीमित है या असीमित और उसे पूर्ण रूप मे जाना जा सकता है या नहीं? इन सब प्रश्नो के उत्तर अतिशय स्पष्टता पूर्वक 'ईशोपनिषद्' मे दिये गये हैं. 'यजुर्वेद' के ४० वे अध्याय तथा उस पर आश्रित 'ईशोपनिषद्' दोनो मे भी १७–१७ श्लोक हैं. सभवत. इसी कारण विद्यावाचस्पति जी ने भी अपने 'ईशोपनिषद् भाष्य' को १७ अध्यायो मे विभाजित किया है

विद्यावाचस्पति जी का समस्त साहित्य इस बात का साक्षी है कि वे एक कट्टर आस्तिक थे, ईश पर उनका अटूट विश्वास था. सभवत· इसी कारण वे 'ईशोपनिषद्' के अनुवाद और भाष्य करने की ओर उन्मुख हुए थे उन्होने अपने देहान्त से तीन दिन पूर्व ईश्वर की स्तुति प्रार्थना करते हुए निम्नांकित श्लोक की रचना की थी

"स्वकर्मभि शोषित काययष्टि महालये मृत्युमुखे प्रविष्टम्।
तव प्रसादात् पुनराप्तशक्ति त्वमम्ब सत्कर्मणि मा नियुक्ष्व।।"[४४]

७.६ अनुवाद-प्रक्रियाः-

बहुमुखी मौलिक लेखन कार्य मे तल्लीन होने के बावजूद भी विद्यावाचस्पति जी की यह

हार्दिक अभिलाषा बनी हुई थी कि हिन्दी जगत् को सस्कृत–काव्य सुरभि से अवश्य ही सुपरिचित किया जाय उनकी यह मनोकामना 'रघुवश', 'किरातार्जुनीय' व 'ईशोपनिषद्' के अनुवाद से यत्किचित् रूप मे क्यो न हो, पूर्ण हुई उन्होने अपनी अतिशय व्यस्त जिदगी मे से समय निकालकर कालिदास, भारवि जैसे सस्कृत काव्य के शीर्षस्थ उन्नायको की कविता का हिन्दी मे रूपान्तर किया अपने अनुवाद कार्य मे उन्होने शब्दानुवाद की अपेक्षा भावानुवाद को अधिक महत्व देते हुए कहा है –"मैने रघुवश के श्लोको का शब्दानुवाद नहीं किया शब्दानुवाद से कवि के आन्तरिक भाव को पाठको तक नहीं पहुचा सकता था मैने प्रयत्न किया है कि मैं कवि के आन्तरिक भावो को सुबोध लोकभाषा मे प्रतिबिम्बित कर दू फलत यह रघुवश के उन्नीस सर्गो के प्रत्येक शब्द अथवा प्रत्येक श्लोक का भावानुवाद भी नहीं है यह कहना अधिक सगत होगा कि यथासभव तथा यथाशक्ति कवि के भाव और कवि की कथन शैली की रक्षा करने का प्रयत्न किया गया है"[४५] इसी सिद्धान्त और प्रक्रिया का परिपालन उन्होने अपने अधिकाश अनूदित काव्य मे किया है

प्राय अनुवाद के क्षेत्र मे शब्दानुवाद की अपेक्षा भावानुवाद की प्रक्रिया को समुचित और सर्वोत्तम माना गया है इस सदर्भ मे आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का मत द्रष्टव्य है वे लिखते हैं –"भाव ही प्रधान है शब्द स्थापना गौण शब्दो का प्रयोग तो केवल भाव प्रकट करने के लिए होता है. अत एव भावप्रदर्शक अनुवाद ही उत्तम अनुवाद है"[४६] विद्यावाचस्पति जी के अनुवाद कार्य के कतिपय उदाहरण मूल श्लोको तथा अन्य हिन्दी–मराठी अनुवादको के अनुवाद के साथ प्रस्तुत हैं जिससे विद्यावाचस्पति जी की अनुवाद–कला की सफलता का अनुमान अनायास आ जाता है उदाहरण के लिए उद्धृत 'रघुवश' का अश प्रतापी राजा रघु के यशोगान से सबधित है–

"प्रसाद सुमुखे तस्मिश्चन्द्रे च विशदप्रभे। तदा चक्षुष्मता प्रीतिरासीत्समरसा द्वयो ।।
हस श्रेणीषु तारासु कुमुद्वत्सु च वारिषु। विभूतयस्तदीयाना पर्यस्ता यशसामिव।।
इक्षुच्छाया निषादिन्यस्तस्य गोप्तुर्गुणोदयम्।आकुमारकथोद्घात शालिगोप्यो जगुर्यश.।।"[४७]

"शीत ऋतु की रात मे छिटकती हुई चादनी और रघु के सदा प्रसन्न चेहरे को देखकर प्रजाजनो के हृदय प्रसन्नता का अनुभव करते थे हसो की पक्तियो मे, टिमटिमाते हुए तारो मे, कुमुदिनी के फूलो में, और नदियो के स्वच्छ जल मे मानो उसके यश की श्वेत आभा छिटक रही थी. ईख की छाया मे आराम करने वाली खेतो की निश्चिन्त निर्भय रखवालिया, उस प्रजा रक्षक के, बच्चे–बच्चे तक फैले हुए यश का गान करती थी."[४८] –इन्द्र विद्यावाचस्पति

लोगो के अपार अनुग्रह करने से देखने मे सुन्दर मुख वाले उन रघु महाराज, तथा स्वच्छ कान्ति वाले चन्द्रमा, इन दोनो के विषय में उस समय जिनकी ऑखे थीं, ऐसे लोगो की प्रीति समान ही थी हसो की पक्तियो मे, नक्षत्रो में, कुमुद से युक्त जल मे रघु सम्बन्धी यश की सफेदी रूप विभूति मानो फैली हुई थी. ईख की छाया मे बैठी हुई साठी आदि धान की रखवाली करने वाली किसानो की स्त्रियो ने, रक्षा करने वाले उन रघु महाराज के शूरता, उदारता आदि गुणो से प्रकट हुये, बालको तक से तारीफ किये गये यश का गान किया"[४९] साहित्याचार्य श्री हरगोविन्द मिश्र

"रघूच्या प्रसन्नाननाला सुरेखा, शरत्कालिच्या चद्रबिबाहि देखा।
विलोकावया प्रीति दोघाहि साची, तई जाहली तुल्य हो डोळसाची।।"
हस श्रेणी आणि शुभ्रारविंदे, तोये तैशी तारकाची हि वृदे।
याना मोठी स्वच्छता प्राप्त झाली, वाटे त्याच्या ती यशानेच आली।।"
"उसाच्या छायेला बसूनि, अठवोनि निरलसा, कुमारावस्थे पासूनि कृति, रघूच्या बहुरसा,
तईं शालिक्षेत्रा वननिरत नारी निजमुखे, रघूची सत्कीर्ति, गुण, जनित गाती अतिसुखे।।"[५०]

क्रमश –'भुजगप्रयातम्', 'शार्दूल विक्रीडितम्' और 'शिखरिणी' छन्द पद्यमय भाषान्तरकार–गणेश शास्त्री लेले त्र्यबककर 'रघुवश' के उदाहरण के पश्चात् अब 'किरातार्जुनीय' से युधिष्ठिर से कही गयी द्रोपदी बाण वाक्यावली प्रस्तुत है–

"भवादृशेषु प्रमदाजनोदित, भवत्यधिक्षेप इवानुशासनम् ।
तथाऽपि वक्तु व्यवसाय यन्ति मा, निरस्त नारी समयादुराधय ।।
भवन्तमेतर्हि मनस्विगर्हिते, विवर्तमान नरदेव वर्त्मनि।
कथ न मन्युर्ज्वलयत्युदीरित शमीतरू शुष्कमिवाग्निरूच्छिख ।।
विधिसमयनियोगाद्दीप्ति सहार जिह्म शिथिल वसुमगाधे मग्नमापत्पयोधौ ।
रिपुतिमिरमुदस्योदीयमान दिनादौ, दिनकृतामिव लक्ष्मीस्त्वा समभ्येतु भूय ।।"[५१]

"आप जैसे विद्वान् को एक स्त्री उपदेश दे, यह घृष्टता की पराकाष्ठा होगी, तथापि हम पर जो आपत्तियाँ पडी है, उन्होने नारीत्व की सीमाओ को तोड दिया है, इस कारण मुझे कहने के लिए विवश होना पडा है आश्चर्य की बात यह है कि मनस्वियो द्वारा निश्चित इसी मार्ग पर चलते हुए तुम्हे सूखे शमी वृक्ष मे लगी अग्नि की भाति क्रोध जला क्यो नहीं डालता? महाराज मैं चाहती हूँ कि भाग्य और प्रतिज्ञा के प्रभाव से आपकी जो सूर्य सदृश लक्ष्मी, दीप्ति विहीन होकर अगाध समुद्र मे विलीन हो गई है, वह शत्रु रूपी अधकार के नष्ट हो जाने पर पुन उसी प्रकार प्राप्त हो जाय, जैसे सूर्य को प्रात लक्ष्मी प्राप्त हो जाती है"[५२] –इन्द्र विद्यावाचस्पति

"आप लोगो जैसे महानुभावो के प्रति स्त्री लोगो की कही हुई बाते अपमान के समान है तो भी (क्या करूँ) मेरे चित्त का दुख मेरे उचित शील को हटाकर मुझे बोलने के लिए प्रेरणा करता है इस समय वीरो के घृणित रास्ते मे ठहरे हुए आपको एकाएक निकला हुआ क्रोध क्यो नहीं उत्तेजित (उद्दीपित) करता , जैसे सूखे शमी वृक्ष की लकडी को प्रज्वलित आग जला डालती है जैसे विधि और समय के प्रभाव से कान्ति के नाश होने के कारण खिन्न और किरणहीन, शाम को विपत्ति रूप महासागर मे डूबकर, सुबह फिर अन्धकार रूपी दुश्मन को चौपटकर उदय होते हुए सूर्य को शोभा अपनाती है, वैसे ही पहले जुआ मे दैव और काल की प्रेरणा से अपने विचार और तेज के अभाव से दुर्दशा को प्राप्त आपद्रूप महार्णव मे डूबे हुए फिर भी अपने दुश्मनो को मारकर अभ्युदय की इच्छा रखने वाले आपको राजलक्ष्मी अपनावे"[५३]–गगाधर शर्मा मिश्र

"वस्त्रहरण आदिक अति दुस्सह दुख तथापि आज इस काल।
बार–बार प्रेरित करते हैं, मुझे बोलने को भूपाल।।
हे महीप मानी नर जिसका महानिध्य बतलाते हैं।
उसी पन्थ के आप पथिक हैं, नहीं परन्तु लजाते हैं।।
कोपानल क्यो नही आपको भस्मीभूत बनाता है,
सूखे–रूखे शमी वृक्ष को जैसे ज्वाल जलाता है।।
दैवयोग से दु.खोदधि मे तुझ डूबे को यह आसीस,
शत्रु नाश होने पर लक्ष्मी मिले पुन ऐसे अवनीश।।
जैसे प्रात काल सिन्धु मे मग्न हुए दिनकर को आय,
तिमिर नाश हटने पर दिन की शोभा मिलती है सुख पाय।।"[५४]

महावीरप्रसाद द्विवेदी

"आपल्यासारख्या विद्वान् पुरुषाना माझ्यासारख्या अज्ञ स्त्रियानी काही जरी हिताची गोष्ट सागितली, तरी ती निदास्पद वाटणार तेव्हा काही बोलू नये हे एकपक्षी खरे, पण शत्रूनी केलेल्या

वस्त्राहरणादि विडबनेचे मला स्मरण झाले म्हणजे अत करणाला ज्या काही दु सह व्यथा होतात त्याच मला बोलण्याविषयी प्रवृत्त करीत आहेत, म्हणून मी बोलत्ये? हे नरपते, शुरपुरुष ज्याच्या तिरस्कार करितात अशा ह्या मार्गात राहून शत्रूनी केलेली दुर्दशा अनुभविणारा जो तू त्या तुला शत्रूविषयी क्रोध येऊन तो, अरण्यातील शुष्क शमी वृक्षाला जसा दावाग्नि जाळतो तसा, तुला कसा जाळीत नाही? (आपण बोललेल्या भाषणाने राजाला क्रोध आला असेल तो काहीसा दूर व्हावा, आणि भाषण पर्यवसान क्रोध शोकादियुक्त शब्दानी न व्हावे म्हणून द्रौपदी आशीर्वादपूर्वक सविनय बोलते) प्रारब्ध आणि काल याच्या अनुल्लघनीयत्वामुळे दुस्तर विपत्तिरूप समुद्रात बुडालेल्या म्हणून प्रतापहीन झाल्यामुळे निस्तेज आणि निर्धन असा जो तू त्या तुला आपला शत्रू जो अधकार त्याचा नाश केल्याने दिवसाच्या आरभी सूर्याला जशी विशेष शोभा प्राप्त होते तशी शत्रूच्या नाशापासून पुन राज्यलक्ष्मी प्राप्त होवो।"[५५]—मराठी अनुवादक ने पुस्तक मे अपना नाम नहीं दिया है

विद्यावाचस्पति जी की तीसरी अनूदित कृति 'ईशोपनिषद् भाष्य' से भी एक उदाहरण प्रस्तुत है—

ओ३म् ईशावास्यमिद सर्वं, यत्किच जगत्या जगत्। तेन त्यक्तेन भुजीथा मा गृध कस्य स्विद्धनम्"।।

"व्यापक प्रकृति के गर्भ मे विद्यमान इस सारे जगत् के बाहर और अन्दर ईश्वर का निवास है इस कारण (हे मनुष्य! इस जगत् का) उपभोग त्याग पूर्वक कर, किसी अन्य के धन का लोभ मत कर"[५६]—इन्द्र विद्यावाचस्पति

"इस जगती मे जो जगत् है, वह ईश द्वारा बसा हुआ है इसलिए त्यागपूर्वक भोग करो, किसी दूसरे के धन की आकाक्षा मत करो"[५७]—सत्यव्रत सिद्धातालकार

"जगत् मे जो कुछ स्थावर जगम ससार है, वह सब ईश्वर के द्वारा आच्छादनीय है (अर्थात् उसे भगवत् स्वरूप अनुभव करना चाहिये) उसके त्याग भाव से तू अपना पालन कर किसी के धन की इच्छा न कर"[५८]

अनुवादक ने शील व संकोचवश अपना नाम प्रकाशित नहीं किया.—गीता प्रेस

"जगत् मे जो कुछ स्थावर जगम ससार है, वह सब ईश्वर के द्वारा आच्छादनीय है उसके त्याग भाव से तू अपना पालन कर किसी के धन की इच्छा न कर"[५९]—आचार्य रजनीश

विद्यावाचस्पति जी के उपरोक्त तीनो अनूदित ग्रथो के उद्धृत अनुवादो को पढते समय तथा उनके अन्य अनुवादो के अनुवाद से तुलना करते समय कहीं भी उसके अनूदित होने का आभास नहीं मिलता यदि पाठक को इनके अनूदित होने का पूर्व ज्ञान न हो, तो सामान्यत वह इन्हे अनूदित न कहेगा. उन्होने शब्दो का ऐसा तारतम्यिक प्रयोग किया है, जिससे उनकी भाषा मे आन्तरिक लय उत्पन्न हो गई है यह सुनिश्चित है कि उन्होने प्रतिपाद्य विषय को भली भाति हृदयगम करने के बाद ही अनुवाद किया है

सस्कृत कृतियो के अनुवाद मे विद्यावाचस्पति जी की विशेष अभिरुचि थी, जिस गुरुकुलीय जीवन के सास्कृतिक दाय का उनके जीवन पर गहरा असर था. उससे भी उऋण होने का उनका यह एक ढग था उनकी दृष्टि मे 'सस्कृत ग्रन्थो के अनुवाद हिन्दी के लिए अत्यन्त आवश्यक' थे

विद्यावाचस्पति जी के अनूदित ग्रन्थो की भाषा अत्यन्त सजीव है भावो का स्पष्टीकरण भी समुचित प्रकार से सरल और स्पष्ट भाषा मे किया गया है जिससे विषय को समझने मे कोई कठिनाई नहीं होती. मूल भाषा और लक्ष्य भाषा के ज्ञान के साथ ही तत्तत् मूल ग्रन्थो के प्रतिपाद्य विषय का

भी उन्हे अच्छा ज्ञान है मूलभाषा से अनुवाद करते समय लक्ष्य भाषा की प्रसगानुकूलता, स्वाभाविकता और व्यावहारिकता पर उन्होने विशेष ध्यान दिया है महाकवि कालिदास और भारवि जैसे काव्यो के ये अनुवाद हैं अत अनुवाद की भाषा भी सस्कृत प्रचुर है और इस प्रकार तत्कालीन परिवेश को भी विद्यावाचस्पति जी ने अपने अनुवाद मे अक्षुण्ण बनाये रखा है. कतिपय स्थानो पर देशज शब्दो का भी प्रयोग हुआ है

विद्यावाचस्पति जी के अनुवाद भाव और भाषा की दृष्टि से ही नहीं साहित्यिक दृष्टि से भी बहुत उच्चकोटि के हैं विषयानुकूल उनकी भाषा प्राजल, गंभीर व वर्णनात्मक है, पर कहीं–कहीं दुरूहता भी आ गयी है निष्कर्षत विद्यावाचस्पति जी के अनुवाद साहित्य का अध्ययन करने पर केवल यही कहा जा सकता है कि जहाँ मौलिक रचनाये उनकी प्रखर प्रतिभा का ज्वलत प्रमाण हैं, वहाँ उनकी अनूदित कृतियाँ उनके अगाध ज्ञान का परिचायक हैं प्रथम मे गरिमामय रसपरक साहित्य है, तो दूसरे वर्ग मे ज्ञान का विस्तार है उनके यश के प्रसार मे उनकी ये अनूदित कृतियाँ चाहे २–३ ही क्यो न हो, सदैव योग देती रहेगी, और मौलिक कृतियो की भाति इन्हे भी निश्चय ही उनके उल्लेखनीय साहित्य के अन्तर्गत परिगणित किया जायेगा हिन्दी गद्य शैली के विकास परिष्कार मे इन अनूदित कृतियो का भी अपना विशिष्ट योगदान है

इस प्रकार विद्यावाचस्पति जी ने अपनी अनूदित कृतियो द्वारा हिन्दी साहित्य के भण्डार को समृद्ध किया है फलत हिन्दी पाठको का तादात्म्य सस्कृत के महान् काव्यकारो के साथ स्थापित हो पाया है, इस प्रसग मे उन्होने अपने सम–सामयिक साहित्य की उस विशिष्ट प्रकृति का भी परिचय दिया है, जिसे विभिन्न विद्वानो ने 'अतीतोन्मुखता' कहकर पुकारा है भक्तिकाल और रीतिकाल की साहित्यिक उपलब्धियो को लॉघकर विद्यावाचस्पति जी ने सस्कृत काव्य के अमूल्य रत्न को हिन्दी जगत् मे बिखेरने का कार्य किया है उनके इन अनुवादो द्वारा सास्कृतिक, साहित्यिक व राष्ट्रीय चेतना को अपने ढग से वाणी मिली है अत एव विद्यावाचस्पति जी के अनूदित साहित्य का अपना विशिष्ट महत्व है

७.१० 'ईशोपनिषद्' के भाष्यः-

भक्त को भगवान् के सन्निकट ले जाने वाली आध्यात्मिक विद्या उपनिषद् विद्या है जीवात्मा को परमात्मा का अन्तेवासिनी बनाने वाली विद्या को ही उपनिषद् विद्या कहा जाता है निराकार ईश के सन्निकट बैठना ही ईशोपनिषद् है इसी विद्या को ब्रह्मविद्या, अध्यात्म विद्या और पराविद्या भी कहा गया है उपनिषद् मे ब्रह्म विद्या को सबसे ऊँची विद्या माना गया है, तथा अन्य सब विद्याओ को 'अपरा' कोटि मे रखा गया है 'उपनिषदो का मुख्य विषय ब्रह्म ज्ञान है, पर केवल यज्ञ रूपी नौकाओ की सहायता से मृत्यु के पार नहीं जाया जा सकता, उसके लिए ब्रह्म को जानना भी अनिवार्य है '[६०] ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरैय, छान्दोग्य, बृहदराण्यक और श्वेताश्वेतर ये ११ उपनिषदे हैं यह समग्र 'उपनिषद् साहित्य भारतीय अध्यात्म चितन के सुन्दर एव हृद्य ग्रन्थ हैं '[६१] 'इन सब मे 'ईशोपनिषद् ही सर्वप्रमुख है शेष उपनिषदो मे इसी ईशोपनिषद् के सिद्धान्तो की व्याख्या है

'ईशोपनिषद्भाष्य' मे विद्यावाचस्पति जी ने प्राच्य पाण्डित्य परपरा के अनुसार 'ईशोपनिषद्' का भाष्य किया है और इसी के साथ ही वे अनायास भाष्यकारो की प्राचीन परपरा मे सम्मिलित हो गये हैं भाषा मे लिखित किसी मूल ग्रथ की व्याख्या कर उसके गूढ आशय को स्पष्ट करने वाला विद्वान् भाष्यकार कहलाता है पाणिनि के सूत्रो की व्याख्या करने वाले 'महाभाष्य' कार पतजलि का भाष्य इतना अधिक सुप्रसिद्ध हुआ कि उनका एक अपर नाम ही 'भाष्यकार' हो गया.[६२] 'वेदान्तसूत्र'

के शकराचार्य–रामानुजाचार्य, 'योग सूत्र' के वेदव्यास, 'साख्य सूत्र' के विज्ञानभिक्षु, 'गौतम सूत्र' के वात्स्यायन, 'कणाद सूत्र' के प्रशस्तपाद और 'मीमासा सूत्र' के शाबर स्वामी भी भाष्यकार के रूप मे विश्रुत हो चुके हैं[६३] इसी प्रकार प्राच्य सस्कृत परम्परा की भाष्यशैली का अनुसरण करने के कारण विद्यावाचस्पति जी भी अपनी 'ईशोपनिषद्भाष्य' रचना के साथ 'प्राचीन शास्त्रो के पारगामी विद्वान' के रूप मे सुप्रतिष्ठित हुए हैं'[६४] 'ईशोपनिषद्' के भाष्य से यह स्पष्ट है कि आध्यात्मिक सास्कृतिक विचारधारा से युक्त ग्रन्थो के अध्ययन, अनुवाद व भाष्य आदि मे उनकी विशेष अभिरुचि थी

'ईशोपनिषद्भाष्य' विद्यावाचस्पति जी की उपनिषद् भाष्य परम्परा की पहली कृति नहीं है समय–समय पर उपनिषद् के भाष्य लिखे जाते रहे हैं पुराकाल मे शकराचार्य ने भी इसका भाष्य किया था सर्वप्रमुख उपनिषद् होने से उपनिषदो मे सबसे अधिक भाष्य 'ईशोपनिषद्' पर ही लिखे गये हैं आर्यसमाज के क्षेत्र मे प भीमसेन शर्मा, स्वामी दर्शनानन्द, स्वामी सत्यानन्द, प आर्यमुनि, स्वामी ब्रह्ममुनि, महात्मा नारायण स्वामी व प सत्यव्रत सिद्धातालकार ने सुन्दर भाष्य लिखे हैं'[६५] 'ईशोपनिषद्' के अन्य आर्यसमाजी हिन्दी भाष्यकर्ताओ मे सर्वश्री भूमित्र शर्मा, जयदेव वेदालकार, गगाप्रसाद उपाध्याय, हरिशरण सिद्धान्तालकार उल्लेखनीय है[६६]

'ईशोपनिषद्' को मन्त्रोपनिषद् भी कहा गया है, क्योकि मन्त्रसहिता मे पायी जाने वाली यही एक मात्र उपनिषद् है अन्य ग्रन्थो की तुलना मे मन्त्रसहिता का प्रामाण्य अधिक होने से यह उपनिषद् सर्वश्रेष्ठ मानी गयी है अन्य उपनिषदो की तुलना मे इसमे उपदेश भी अधिक है विद्यावाचस्पति जी ने 'ईशोपनिषद् भाष्य' मे काण्वशाखीय सहिता के अनुसार १८ मन्त्र दिये है जब कि 'यजुर्वेद' के अन्तिम अध्याय मे जिस पर प्रमुख रूप से यह उपनिषद् आश्रित है १७ ही मन्त्र है, और माध्यान्दिन शाखीय वाजसनेयी सहिता के अन्तिम अध्याय मे भी केवल १७ ही मत्र है 'मगलाचरण' मे इन मत्रो की यथातथ्य व्याख्या करके शेष सत्रह अध्यायो मे विद्यावाचस्पति जी ने मत्रो के विवेचनीय भाग पर बहुत ही सुन्दर हिन्दी भाष्य लिखा है ग्रन्थ मे तीन परिशिष्ट भी जोडे गये है १ उपनिषदो की ज्ञान परम्परा, २ उपनिषदो की भाषा परम्परा और ३ विदेशी विद्वानो की दृष्टि मे उपनिषद् श्री तारिणीश झा व्याकरण–वेदान्ताचार्य ने उक्त 'ईशोपनिषद्भाष्य' पर यह टिप्पणी की है, "विद्यावाचस्पति जी ने आधुनिक युग के अनुसार वैज्ञानिक दृष्टिकोण से 'ईशोपनिषद्' का भाष्य किया है, फिर भी उपनिषद् की मान्यताओ एव परम्पराओ मे किसी प्रकार का व्याघात नहीं उपस्थित हो सका है इस भाष्य का मनन करने से वैयक्तिक सामाजिक तथा जागतिक तीनो प्रकार की शान्तियॉ सुलभ हो सकती है हम निस्सन्देह कह सकते हैं कि इस भाष्य द्वारा हिन्दी जगत् की अच्छी सेवा हुई है"[६७]

सन्दर्भ

१ अनुवाद क्या है लेख– भाषा का आधुनिकीकरण,–८६
२ चाबुक–१०२
३ अनुवाद क्या है लेख–पर्यायवाची शब्द–५८
४ सरस्वती–फरवरी १६०५
५ हरिऔध जीवन और कृतित्व–४२७
६ सरस्वती अप्रैल १६०६–१३४
७ चाबुक–६४
८ मैं इनका ऋणी हू–६
६ किरातार्जुनीय–६४–६७
१० आर्यसमाज का इतिहास द्वितीय भाग –१०६
११ हिन्दी केसरी २७ अप्रैल १६०७
१२ प्रेमचन्द विश्वकोश खण्ड–१–१५६–१५७
१३ अजन्ता सितम्बर १६५२ –४६
१४ साहित्य निबन्धावली –१६६
१५ आचार्य महावीर प्रसाद व्यक्तित्व एव कृतित्व–६३
१६ तत्रैव–२१०
१७ पत्रकारिता के अनुभव –११
१८ किरातार्जुनीय. कवि का परिचय–६
१६ अनूदित हिन्दी साहित्य विशिष्ट ग्रथ सूची (१८७५–१६७५), –५–६
२० अनुवाद क्या है लेख–अनुवाद क्यो और किसका? –१०३–१०७
२१ कालिदास के पक्षी प्रस्तावना–ख
२२ नवनीत नवबर १६६० लेख – कण्वाश्रम का स्मारक–१००
२३ तत्रैव–१००
२४ रघुवश भूमिका–३
२५ तत्रैव–३
२६ तत्रैव–६
२७ तत्रैव–७–८
२८ तत्रैव–१०
२६ तत्रैव–१५
३० साप्ताहिक हिन्दुस्तान, २६ फरवरी १६६१, लेख– प्राचीनता और नव्यता के अपूर्व सगम –१४
३१ किरातार्जुनीय – प्रस्तावना–७
३२ तत्रैव–६
३३ तत्रैव–१३
३४ तत्रैव–१२
३५ तत्रैव–१४
३६ तत्रैव–१५
३७ तत्रैव–१६
३८ तत्रैव–१७
३६. तत्रैव–१२
४० महात्मा गाधी याचे सकलित वाड्मय खण्ड–२४–५२६
४१ गीतामृत–२
४२ सम्राट् रघु प्रस्तावना–११
४३ ईशोपनिषद् भाष्य पृ १४६–१४७
४४ इन्द्र विद्यावाचस्पति–१७८
४५. रघुवंश भूमिका–४
४६ कुमारसभव–१
४७. रघुवश महाकाव्यम्: चतुर्थ. सर्ग. श्लोक–१८–२०
४८ रघुवश–३५
४६ रघुवंश महाकाव्यम् –६४–६५
५०. रघुवंश. पद्यमय भाषान्तर –४२
५१ किरातार्जुनीयम्. प्रथम सर्ग–श्लोक २८, ३२, ४६
५२ किरातार्जुनीय ३१, ३२, ३४

५३. किरातार्जुनीय् ४१, ४५, ६३

५४. द्विवेदी काव्यमाला –२८२, २८३, २८४

५५ श्रीमत्कविवर भारविकृत किरातार्जुनीय काव्य (मराठी)–श्लोक–२८, ३२, ४६

५६ ईशोपनिषद् भाष्य–१

५७. एकादशोपनिषद्–१७

५८ ईशावास्योपनिषद् (गीताप्रेस)–१६

५९ ईशावास्योपनिषद्–३१

६० भारतीय सस्कृति का प्रवाह–३४–३५

६१ हिन्दी गद्य साहित्य–१३४

६२. हिन्दी शब्द सागर–३६५५

६३. हिन्दी विश्वकोश–१४१

६४ सम्मेलन पत्रिका पौष फाल्गुन–१८८० शक–१३३

६५ हिन्दी गद्य साहित्य–१३४

६६ आर्यसमाज का इतिहास खण्ड–५, १४०

६७ सम्मेलन पत्रिका· पौष फाल्गुन १८८० शक–१३२

८

विद्यावाचस्पतिजी का इतिहास एवं राजनीतिक विषयक चिंतन

८.१ इतिहासः स्वरूप विवेचनः-

बीती हुई घटनाओ और उनसे सम्बन्ध रखने वाले पुरुषो का कालक्रम से वर्णन इतिहास कहलाता है महापडित राहुल साकृत्यायन ने प्रतिपादित किया है, 'मनुष्य जिज्ञासा का पुतला है वह अपनी जिज्ञासा पूर्ति के लिए कैसे–कैसे प्रयत्न करता रहा है इसे जानने की कुछ ना कुछ जिज्ञासा हरेक प्रकृतस्थ पुरुष मे होती है इस पूर्ति के प्रयत्न मे जो कुछ लिखा या कहा गया है वह 'इति–ह–आस' (ऐसा ही था)'[१] हॉलैण्ड के इतिहास लेखक मि जिगा का मत है कि 'इतिहास इस शब्द का सबसे प्रचलित अर्थ 'जो कुछ हो चुका है, उसकी कहानी है'[२] वस्तुत 'इतिहास' शब्द 'इति', 'ह' 'आस' इन तीन शब्दो से मिलकर बना है, जिनका 'निश्चय से ऐसा था' यह शब्दार्थ है मराठी के सुप्रसिद्ध विचारक गोपाल हरि देशमुख 'लोकहितवादी' के अनुसार 'विगत घटनाओ का परिपक्व विश्लेषण और प्रमाण पुरस्पर जाच पडताल कर, अन्य देश के इतिहासो से उनकी तुलना करते हुए, जो यथार्थ तथ्य व निष्कर्ष सामने आये उन्हे प्रस्तुत करना इतिहास है'[३] इतिहास का स्वरूप स्पष्ट करते हुए डॉ धीरेन्द्र वर्मा ने कहा है– 'स्मरण रखना चाहिये कि इतिहास न तो साधारण परिभाषा के अनुसार विज्ञान है, और न केवल काल्पनिक दर्शन, अथवा साहित्यिक रचना है इन सबके यथोचित सम्मिश्रण से इतिहास का स्वरूप रचा जाता है'[४] इस प्रकार स्पष्ट है कि बीती हुई घटनाओ के सच्चे वृतान्त का नाम इतिहास है. 'हम कौन थे' की जिज्ञासा इतिहास से तृप्त होती है अतीत का यथार्थ चित्र जब सामने उपस्थित हो जाता है तब 'क्या हो गये हैं' की स्थिति का गहराई से अनुभव करने की क्षमता प्राप्त होती है और तभी 'और क्या होगे अभी' का अनुमान भी लगाया जा सकता है विद्यावाचस्पति जी का यह मत सत्य है कि 'इतिहास' के विद्यार्थी इतिहास के पाठ से मनुष्य जाति पर शासन करने वाले मूल सिद्धातो तक पहुँच सकते हैं'[५]

विद्यावाचस्पतिजी ने विदेशी राष्ट्रपुरुषों के जीवन चरित्र के माध्यम से एक सौ वर्ष का स्वाधीनता का इतिहास हिन्दी पाठको के सामने रखने की योजना बनायी थी उस योजना मे क्रमश अमेरिका का स्वाधीनता सग्राम (वाशिगटन की जीवनी १७३२–१७६६) फ्रास का स्वाधीनता सग्राम (नैपोलियन बोनापार्ट १७६६–१८२१) जर्मनी का स्वाधीनता सग्राम (प्रिस बिस्मार्क १८११–१८७१) तथा इटली का स्वाधीनता सग्राम (महावीर गेरीवाल्डी ,१८२०–१८७१) का समावेश किया गया था इनमे से केवल वे वाशिगटन की जीवनी नहीं लिख पाये इन जीवन चरित्रो के माध्यम से वे लगभग शतवर्षीय विदेशी राष्ट्रो के स्वाधीनता के इतिहास व उसकी लेखन–कला से सुपरिचित हो गए थे उन्होने इतिहास लेखन–कला व उसकी कार्यकारण श्रृखला की मीमासा करते हुए लिखा है, 'इतिहास एक गोरखधन्धा है उसके ऊबड–खाबड जगल मे रास्ता पाना कठिन प्रतीत होता है उसकी एक–एक घटना इतनी नोकीली प्रतीत होती है कि उसमे छिद्र करना और छिद्र मे से सूत्र को निकाल लेना बडा असभव जचता है, किन्तु जरा गहरी दृष्टि से देखने पर सारा दृश्य ही बदल जाता है एक लडी मे सब घटनाये बध जाती हैं, एक तागे मे सब मनके पिरोये जाते हैं

' इस प्रकार इतिहास की उलझन को विवेक दृष्टि से सुलझाकर, सुन्दर माला का मोहक रूप देने वाले विद्यावाचस्पति जी, इस तथ्य से सुपरिचित थे कि इतिहास मे अन्तिम और निश्चित रूप से किसी बात को प्रस्तुत करना बडा कठिन होता है, इसलिए उन्होने इतिहास को गोरखधन्धा ही नहीं, अपितु 'अगम, अगोचर और अनाद्यनत' भी कहा है'[५]

८.२ ऐतिहासिक साहित्य की पृष्ठभूमि:-

भारतीय भाषाओ मे चाहे फिर हिन्दी हो या मराठी, इतिहास लेखन का प्रारभ प्राय अनुवादो के माध्यम से हुआ है जो मौलिक ग्रन्थ है, उनके लेखक भी विदेशी इतिहासकारो या प्राच्य सस्कृत इतिहासकारो की लेखन परपरा से प्रभावित हुए बिना न रहे श्री चन्द्रमणि विद्यालकार ने महाकवि बाल्मीकि विरचित सस्कृत पद्य मे लिखे ऐतिहासिक महाकाव्य रामायण का 'श्रीमद्बाल्मीकिय रामायण' (सन् १६५१) नाम से तीन खण्डो मे हिन्दी अनुवाद किया सस्कृत का सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक काव्य 'राजतरगिर्णी' का भी किसी अज्ञात अनुवादक ने अनुवाद किया है 'राजतरगिणी' मे काश्मीर का ११५१ ई तक का राजनीतिक एव सास्कृतिक विवरण प्रस्तुत है इसमे कवि कल्हण ने राजकीय अधिकार पत्रो, शिलालेखो, दान पत्रो तथा हस्तलिखित ग्रन्थो एव स्थानीय दन्तकथाओ का उपयोग किया है कल्हण की ऐतिहासिक दृष्टि अर्वाचीन इतिहासवेत्ता की शोधक दृष्टि के समान है, जो अपने साधनो को पर्याप्त परीक्षण के पश्चात् ग्रहण करती है[७] कर्नल टॉड, ग्रैंट डफ, गिब्बन, एल्फिन्स्टन, मैकाले इत्यादि विदेशी लेखको ने इतिहासकार के रूप मे विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त की है

हिन्दी के इतिहास लेखको मे गौरीशकर हीराचन्द ओझा का बडा महत्वपूर्ण स्थान है इन्हे इतिहास की ओर उन्मुख करने का श्रेय स्वामी दयानन्द के शिष्य श्री मोहनलाल विष्णुलाल पण्डया को है इन्होने अपनी मौलिक रचनाओ के अतिरिक्त कर्नल टॉड के इतिहास का सपादन कियाहै इतिहास विषयक महत्वपूर्ण ग्रन्थो का अनुवाद करने वालो मे श्री सतराम बी ए का कार्य उल्लेखनीय है उन्होने महमूद गजनवी के समकालीन अरब विद्वान् अल्बेरुनी द्वारा लिखे अरबी ग्रन्थ के डॉ जखाऊ द्वारा लिखित अग्रेजी अनुवाद का हिन्दी रूपान्तर अलबेरूनी का भारत' के नाम से किया है सातवीं शताब्दी मे भारत की यात्रा करने वाले चीनी यात्री इत्सिग के यात्रा विवरण का भी उन्होने हिन्दी मे अनुवाद किया[८] श्री सतराम ने सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता व इतिहास के प्रौढ विद्वान् लाला लाजपतराय जी की उर्दू रचना 'भारतवर्ष का इतिहास' (भाग–१) का भी हिन्दी मे अनुवाद किया इतिहास के प्रारभिक अनुशीलन कर्ता प लेखराम की 'तारीखे दुनिया' (१८६८) नामक उर्दू रचना के हिन्दी मे अनुवाद करने वाले पाच अनुवादक सामने आये जिनमे से स्वामी अनुभवानद, प प्रेमशरण, प रामसुख व प अमरसिह ने अपने अनुवादो का नाम 'ऐतिहासिक निरीक्षण' रखा तो पाचवे अनुवादक प सूर्यप्रसाद ने अपनी अनुदित कृति का नाम 'भारत गौरवादर्श' (सन् १६००) रखना पसन्द किया

डॉ चन्द्रभानु सोनवणे ने स्वीकार किया है, हिन्दी मे ऐतिहासिक मौलिक ग्रन्थ लिखना गुरुकुल कागडी के अध्यापको और स्नातको ने शुरू किया था[६] अध्यापको मे इतिहास लेखन परम्परा का श्रीगणेश गुरुकुल के आचार्य श्री रामदेव (१८८१–१६३६) ने किया था उनकी ऐतिहासिक कृति का नाम है 'भारतवर्ष का बृहद् इतिहास' (प्रथम भाग १६११) आचार्य जी के इतिहास के अग्रिम भाग को उनके शिष्य डॉ सत्यकेतु विद्यालकार (१६०३–१६८६) ने सन् १६३४ मे पूर्ण किया था उनकी गणना प्राचीन इतिहासकारो मे की जाती है श्री सत्यकेतु जी की 'मौर्य साम्राज्य का इतिहास' (सन् १६२८) नामक रचना, 'मगलाप्रसाद' व 'जोधसिह' नामक पुरस्कार से पुरस्कृत व 'राधाकृष्ण पदक' से सम्मानित रचना है श्री जयचन्द्र विद्यालकार (१८६८–१६७७) स्वामी श्रद्धानद द्वारा स्थापित गुरुकुल कागडी, लाला लाजपतराय द्वारा स्थापित नेशनल कॉलेज लाहौर और डॉ राजेन्द्रप्रसाद द्वारा स्थापित बिहार विद्यापीठ मे इतिहास के प्राध्यापक रहे 'भारत का भौगोलिक आधार' (१६२५) आदि रचनाओ

के अतिरिक्त आपने 'भारतीय इतिहास की रूपरेखा (१९३३) नामक कृति लिखी, जिसके १९३४ मे अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन मे 'मगलाप्रसाद' पुरस्कार से पुरस्कृत किया था. श्री चन्द्रगुप्त वेदालकार (निधन १९४४) ने बृहत्तर भारत' (१९३६) नामक सास्कृतिक इतिहास भी लिखा पालिरत्न चन्द्रमणि विद्यालकार (१८९१–१९६५) ने 'महर्षि पतजलि और तत्कालीन भारतवर्ष' (१९१४) नामक ग्रन्थ भी लिखा श्री हरिदत्त वेदालकार (१९१७–१९८६) ने 'हिन्दू विवाह का इतिहास' व 'हिन्दू परिवार मीमासा' नामक ग्रन्थ लिखे दोनो ग्रन्थ बगाल हिन्दी मडल द्वारा पुरस्कृत हैं श्री भीमसेन विद्यालकार (१९००–१९६२) ने "वीर मराठे" "वीर शिवाजी" और 'वीर पंजाबी' नामक ऐतिहासिक रचनाये लिखीं उक्त सभी इतिहास लेखक गुरुकुल के स्नातक, विद्यावाचस्पति जी के गुरुभाई, सहाध्यायी, सन्निकटस्थ, व समकालीन या अन्तेवासी लेखको मे से थे इससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन गुरुकुल के स्नातको मे इतिहास जैसा शुष्क विषय अतिशय लोकप्रिय था

इन सभी गुरुकुलीय स्नातको के अग्रज विद्यावाचस्पतिजी की ऐतिहासिक अमर कृति 'मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण' है उन्होने इसे १९२५ मे ही लिखने का सकल्प कर लिया था यह ग्रथ चार भागो मे विभाजित है इसके प्रथम व द्वितीय भाग का ८५ प्रतिशत भाग क्रमश १९२७ व १९३० मे दिल्ली जेल मे लिखा गया था द्वितीय भाग को अन्तिम रूप १३ ८ १९३१ को दिया गया जब वे १२ जून १९३२ को लाहौर के कृष्णमन्दिर (जेल) से छूटे तो उन्हे इन दोनो भागो के प्रकाशित हो जाने का समाचार मिला था मुगल साम्राज्य का शेष ३ व ४ था भाग का लेखन विद्यावाचस्पतिजी की हस्तलिखित डायरी के अनुसार कृष्ण जन्माष्टमी (२८.२ १९३७) के दिन सपन्न हुआ था[१०] इस प्रकार इस लोकप्रिय ग्रन्थ को आकार ग्रहण करने मे लगभग दस वर्ष का समय लग गया.

इन गुरुकुलीय स्नातको के किंचित् पूर्व, समकालीन तथा किंचित् पश्चात् हिन्दी मे ऐतिहासिक उल्लेखनीय ग्रथ लिखने वाले अन्य भी कतिपय महत्वपूर्ण व्यक्ति हैं, यथासंभव उनका भी उल्लेख करना यहाँ अत्यावश्यक प्रतीत होता है. सुप्रसिद्ध इतिहासकार गौरीशकर हीराचन्द ओझा ने 'सोलकियो का इतिहास' (१९०८) 'प्राचीन भारतीय लिपिमाला' आदि ग्रन्थों की रचना की भाई परमानन्द (१८७६–१९४७) ने 'तारीखे–हिन्द' की उर्दू में रचना की, जिसका हिन्दी रूपान्तर 'भारतवर्ष का इतिहास' नाम से 'ज्ञानमण्डल काशी' से प्रकाशित हुआ था. प. भगवतदत्त बी ए. रिसर्च स्कॉलर (१८९३–१९६८) द्वारा लिखित ग्रथ है– 'भारत वर्ष का बृहद् इतिहास' खण्ड–।–२ (१९५२ १९६१). 'पडित जी ने गभीर शोध के परिणाम स्वरूप भारत का जो इतिहास प्रस्तुत किया है, वह पाश्चात्य इतिहासो की मान्यता के सर्वथा विपरीत है. (पुनरपि) इस ग्रन्थ में प्राचीन इतिहास का जो तिथिक्रम रखा गया है उसे कदापि निराधार नहीं कहा जा सकता. भारत की परम्परागत मान्यताओ के अनुकूल होने के कारण उसे कभी भी उपेक्षित नहीं किया जा सकता.[११] डॉ. भवानीलाल भारतीय के अनुसार– 'इस ऐतिहासिक ग्रथ मे पाश्चात्य लेखको की भारतीय इतिहास की मिथ्या धारणाओं को अपनी प्रबल युक्तियों एव तर्कबल से प भगवद्दत्तजी ने भूमिसात् कर दिया है.'[१२] महापण्डित राहुल साकृत्यायन (१८९३–१९६३) ने साहित्यिक ग्रन्थों के अतिरिक्त ऐतिहासिक ग्रंथ भी लिखे हैं, उन्होने 'मध्य एशिया का इतिहास' १–२ भाग (१९५२/१९५६) लिखा है, जो कि हिन्दी में इस भू–भाग का विस्तृत परिचय देने वाला पहला ग्रन्थ है, तथा 'ऋग्वेदिक आर्यसमाज' (१९६७) में उन्होंने तत्कालीन आर्यों के जीवन पर यथाशक्ति प्रकाश डालने का पूरा प्रयास किया है. इस प्रकार यह अनूदित व मौलिक इतिहास लेखन की परपरा व पृष्ठभूमि विद्यावाचस्पतिजी के इतिहास लेखन काल मे विद्यमान थी. जिसका न्यूनाधिक परिणाम विद्यावाचस्पतिजी की लेखन परपरा पर सुनिश्चित रूप से पडा है.

८.३ इतिहास की ओर देखने की दृष्टिः-

प्राच्य वाड्मय मे इतिहास को पचम वेद के नाम से सबोधित किया गया है वेदोद्धारक स्वामी दयानन्द ने भारतीय इतिहास को जिस दृष्टि से देखने की प्रेरणा दी है, वह राष्ट्रीय दृष्टि है इसलिए 'आर्यसमाजी विद्वान् राष्ट्रीय इतिहास के अनुशीलन मे विशेष रूपेण प्रयत्नशील रहे हैं'[१३] प्राचीन इतिहास के सबध मे आर्यसमाज आत्महीनता के लवलेश से विरहित, जो गौरवपूर्ण राष्ट्रीय दृष्टिकोण है, उससे विद्यावाचस्पति जी सुपरिचित है इस राष्ट्रीय दृष्टि के अनुसार प्राचीन भारत सारे ससार का जगद्गुरु रहा है

ऋषि दयानद ने 'सत्यार्थप्रकाश' मे स्पष्ट लिखा है कि 'जितनी विद्या भूगोल मे फैली है, वह सब आर्यावर्त्त देश से फैली है' उनकी यह धारणा थी कि पश्चिम जिन वैज्ञानिक आविष्कारो पर आज गर्व कर रहा है वे सब आविष्कार प्राचीन आर्य पहले ही बना चुके थे 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' मे 'नौविमानादि विद्या विषयक' एक स्वतत्र प्रकरण लिखकर स्वामीजी वेदो मे वैमानिक विद्या का मूल भी सिद्ध कर चुके थे पुणे मे दिये पाचवे प्रवचन मे स्वामीजी ने कहा था– 'पूर्व काल मे भिन्न–भिन्न विद्याये भरत–खण्ड मे वेदो के सबध से प्रसिद्ध थीं उन्हे विमान रचने का उत्कृष्ट ज्ञान था विमान रचना का एक पुस्तक मैंने भी देखा है अहो ! उस समय दरिद्रो के घर मे भी विमान थे उस व्यवस्था के सम्मुख आगगाडी की क्या प्रतिष्ठा है.''[१४] इसी प्रकार आर्यावर्त्त की प्राचीन शिक्षित स्त्रियो पर गर्व व्यक्त करते हुए स्वामी दयानद ने लिखा था– 'देखो, आर्यावर्त्त के राजपुरुषो की स्त्रियाँ धनुर्वेद अर्थात् युद्ध विद्या भी अच्छी प्रकार जानती थीं क्योकि जो न जानती होतीं तो कैकेयी आदि दशरथ आदि के साथ युद्ध मे क्योकर जा सकतीं और युद्ध कर सकती थीं'[१५] नवजागरण के पुरोधा स्वामी दयानन्द की इसी राष्ट्रीय दृष्टि से प्रेरित होकर आर्यसमाज प्राचीन भारतीय इतिहास, धर्म और सस्कृति पर विशेष बल देता रहा है अत आर्यसमाज ने आरभ से ही प्राचीन भारतीय इतिहास को महत्व दिया और उस पर अनेक ग्रथ लिखे उसकी यह मान्यता रही है कि महाभारत के युद्ध से भारतवर्ष का क्रमश पतन शुरु हुआ.

इस आर्यसमाजी धारणा से पाश्चात्य ऐतिहासिक विचारक सर्वथा प्रतिकूल रहे हैं उनके मतानुसार आग्लशासन से पूर्व भारतवर्ष अज्ञानाधकार मे डूबा हुआ था और ज्ञान–विज्ञान के हर क्षेत्र मे पिछडा हुआ था जब कि प्राच्य इतिहास पर गर्व करने वाले इतिहासवेत्ताओ के अनुसार इन पाश्चात्य आग्लविचारको ने अपने स्वार्थपूर्ण उद्देश्यो से प्राचीन काल के गौरव को घटाने वाले अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया और भारतीय इतिहास की घटनाओ को भी बडे विकृत रूप मे प्रस्तुत किया विद्यावाचस्पति जी के जीवन और साहित्य पर इस राष्ट्रीय आर्य विचार सरणी की गौरवमयी ऐतिहासिक दृष्टि का अतिशय प्रभाव रहा है स्वय विद्यावाचस्पति जी ने अपने निजी जीवन पर प्रकाश डालते हुए टिप्पणी की है, 'मुझमे व्यतीत काल की ओर देखने की स्वाभाविक प्रवृत्ति रही है अन्यथा परिवार के बच्चो के रोहिताश्व, जयन्त आदि तथा पत्रो के 'सत्यवादी', 'अर्जुन' आदि नाम न रखता'[१६] आर्यसमाज की प्राच्य सस्कृति पर बल देने की प्रवृत्ति के कारण भी वे पत्रकारिता का मूल खोजते हुए 'महाभारत के सजय के पास पहुँच जाते हैं. समाचार–सग्रह की प्राच्य प्रथा का वर्णन करते हुए उन्होने लिखा है, 'महाभारत के समय महायुद्ध के दैनिक समाचार सजय धृतराष्ट्र को सुनाया करता था सजय के पास पूरे समाचार प्राप्त करने का साधन अवश्य रहा होगा. इतने विशाल युद्ध की खबरे इकट्ठी करने के लिए काफी विस्तृत सगठन होना चाहिये'.[१७] पाश्चात्यो की भारतीय इतिहास को विकृत करने की मनोवृत्ति तथा उसके भयकर दुष्परिणामो का उन्होने इस प्रकार विवेचन किया है, 'ख्याति के अनुसार कालिदास सम्राट् विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नो मे अन्यतम थे. यह ख्याति सस्कृत साहित्य मे सत्य करके मानी जाती रही है. स्वाभाविक तो यह था कि जब तक

पुष्ट प्रमाणो से उस ख्याति का खण्डन न हो जाता, तब तक उसे ही स्वीकार किया जाता परन्तु पश्चिम के समालोचको ने सवत् के सस्थापक विक्रमादित्य की सत्ता पर ही आशका उठा दी बस, फिर क्या था 'मानसिक पराधीनता काल के भारतीय विद्वान् एकदम विक्रमादित्य को केवल भूत–प्रेतों जैसा कल्पित व्यक्ति मानकर मानपत्रो और शिलालेखो मे से किसी अन्य विक्रमादित्य को ढूँढ निकालने का ऐसा प्रयत्न करने लगे कई विक्रमादित्य खोदकर निकाले गये, परन्तु यह बतलाने वाला कोई शिलालेख अब तक भी नही मिला कि उनमे से किसके समय मे महाकवि ने कविता की ऐसी दशा मे यही उचित समझता हूँ कि महाकवि कालिदास को विक्रमी सवत् के सस्थापक सम्राट् विक्रमादित्य का समकालीन माना जाय इस मन्तव्य के पक्ष मे जनश्रुति के अतिरिक्त साहित्य के पोषक प्रमाण भी विद्यमान हैं केवल काल्पनिक युक्तियो के प्रहार से २००० वर्ष पुरानी ख्याति का दुर्ग नहीं तोडा जा सकता यदि हम एक बार इस मार्ग पर चल पडे, तो हमे अपने सम्पूर्ण प्राचीन इतिहास से हाथ धोना पडेगा हमारे मनु और मान्धाता, हमारे राम और कृष्ण और हमारे बाल्मीकि और व्यास पोषक शिलालेखो और ताम्रपत्रो के अभाव के कारण अविश्वास की आधी से उड जायेगे'[१८]

कई बार इतिहास मे मनगढन्त या किसी स्वार्थ विशेष से प्रेरित होकर कल्पित घटनाओ का भी समावेश कर दिया जाता है. बगाल के शासक सिराजुद्दौला के कलकत्ता विजय (सन् १७६५) के साथ 'ब्लैक हॉल' की तथाकथित दु खान्त घटना इसी प्रकार की एक घटना है. यह कहा गया कि नवाब सिराजुद्दौला के आदेश पर १८ वर्गफीट कमरे मे १४६ अग्रेज कैदियो को ठूसकर बन्द कर दिया गया, जब सुबह दरवाजा खुला तो उसमे से १२३ मृत और २३ अर्धमृत पाये गये. तत्पश्चात् इस घटना पर अग्रेज लेखको ने अनेक पुस्तके लिखीं, साहित्यिको ने अपने जौहर दिखलाये और लार्ड मैकाले ने तो इस घटना का उल्लेख करते समय अग्रेजी भाषा का निन्दात्मक शब्दो का कोष ही समाप्त कर दिया विद्यावाचस्पति जी के अनुसार यह घटना मनगढन्त है और युवा अग्रेजो को भारतीयो के विरूद्ध उकसाने के लिए बनायी गई है. उन्होने इस बात पर दु ख व्यक्त किया है कि 'अन्धेनैव नीयमाना यथान्धा' के अनुसार अग्रेज लेखकों का अनुकरण करने वाले कई भारतीय लेखकों ने भी उस मनगढन्त कहानी को सच्चा इतिहास माना है.[१९] इतिहास लेखक भाई परमानन्दजी ने भी इस घटना को 'सर्वथा निराधार और कपोलकल्पित घटना' माना है.[२०] विद्यावाचस्पतिजी ने अन्यत्र भी – –सिपाहियों के काम को बलवा या गदर, और अपने काम को अनुशासन बतलाने वाले और उनका अनुकरण करने वाले उनके शिष्य भारतवासियों के विषय में व्यंग्य करते हुए कहा है – 'ते के न जानीमहे' –हमे नहीं सूझता कि उन कृतघ्नों का क्या नाम रखे '[२१] विद्यावाचस्पतिजी का यह मत सत्य है कि– 'ब्रिटिशकाल में जहाँ भारतीय इतिहास को विकृत किया गया वहाँ भारत के वीरतापूर्ण इतिहास को –बलभद्रसिह जैसे वीरो की साहसी शौर्य गाथाओ को – पाठयक्रम में जानबूझकर स्थान नहीं दिया गया.'[२२]

८.४ इतिहास लेखन के प्रकारः-

इतिहास लेखन के चार प्रकार हैं १ संशोधनात्क २– संकलनात्मक ३– विवेचनात्मक और ४– मीमासात्मक[२३] संशोधक का सकलनकर्ता होना आवश्यक है, पर सकलनकर्ता के लिए यह जरूरी नहीं कि वह संशोधक हो ही इसके बाद की प्रक्रिया विवेचनकर्ता और मार्मिक समीक्षक की है. कुछ इतिहासकार सशोधकीय गुण के कारण महान् होते हैं तो कुछ योजनाबद्ध और क्रमबद्ध रूप में संकलनात्मक लेखन कर पाते हैं कुछ में विवेचन–शक्ति होती है तो कुछ अपनी कुशाग्र बुद्धि और समीक्षात्मक दृष्टि के कारण महत्ता प्राप्त करते हैं. हरेक इतिहासकार में न्यूनाधिक मात्रा मे ये चारो प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं जिसमें जो प्रवृत्ति बलवान होती है उसे उसी श्रेणी के इतिहासकार की कोटि में रखा जा सकता है इतिहासकार विद्यावाचस्पतिजी में भी ये चारो गुण विद्यमान हैं पुनरपि

उनके लेखन की प्रधान प्रवृत्ति के अनुसार उन्हे सकलनात्मक और विवेचनात्मक इतिहासकार की श्रेणी मे रखा जा सकता है

संकलनात्मक इतिहास लेखकः- इतिहास की दृष्टि से भारत की पुरातात्विक सामग्री का उल्लेख करते हुए श्री राहुल साकृत्यायन ने स्वीकार किया है, 'इतिहास की सबसे ठोस सामग्री ही पुरातत्व सामग्री है, और उस सामग्री से भारत की कोई जगह शून्य नहीं है गावो के पुराने डीहो पर फेके गए मिटटी के बर्तनो के चित्र-विचित्र टुकडे भी हमे इतिहास की कभी-कभी महत्वपूर्ण बाते बतलाते रहते हैं' पुरातत्वीय सामग्री पर और अधिक प्रकाश डालते हुए राहुलजी ने लिखा है- 'पुरातात्विक निधियॉ अत्यन्त ठोस और निर्भ्रान्त समकालीन अभिलेख हैं उनका महत्व उसी तरह सबसे अधिक है, जिस तरह यथार्थ ज्ञान के लिए प्रत्यक्ष का'[२४] विद्यावाचस्पतिजी भी इस पुरातत्व सग्रहालय के महत्व से सुपरिचित थे गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय के पुरातत्व सग्रहालय के अध्यक्ष श्री हरिदत्त वेदालकार के अनुसार 'गुरुकुल का भव्य सग्रहालय विद्यावाचस्पतिजी की प्रेरणा से आरभ हुआ था[२५] उस सग्रहालय की स्थापना मे ही नहीं विकास मे भी उनकी प्रेरणा का बडा सहयोग रहा'[२६] किस पुरातत्व सग्रहालय मे किन-किन वस्तुओ का संग्रह है इस बात की भी उन्हे अच्छी जानकारी थी. विद्यावाचस्पतिजी के अनुसार- 'जनरल इग्लिस और हैवलॉक मे जो पत्रव्यवहार हुआ, उसके कुछ अवशेष लखनऊ की रेजीडेन्सी मे अब भी विद्यमान हैं[२७] पुणे से पेशवा माधवराव नारायण द्वारा छत्रपति महाराज को भेजा पत्र नाना फडणवीस के हाथ का लिखा हुआ है, जो अब तक सुरक्षित है[२८] लार्ड हेस्टिग्ज की डायरी की प्रतिलिपि 'पाणिनि ऑफिस' मे विद्यमान है.[२९] अपने ऐतिहासिक ग्रन्थो मे विद्यावाचस्पतिजी ने अनेक स्थानो पर ऐसे उल्लेख किये हैं

ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास में विद्यावाचस्पतिजी ने स्पष्ट किया है- 'भारत मे ब्रिटिशकाल के इतिहास की सामग्री का सग्रह करने मे मैंने लगभग दस वर्षों तक प्रयत्न किया है, पुस्तकें, पुस्तिकाये, लेख तथा पत्रव्यवहार जो कुछ भी प्राप्त हो सका है, उसका मैंने उपयोग किया जहाँ तक संभव हुआ है अग्रेजो के दृष्टिकोण को अग्रेज लेखको के तत्कालीन ग्रन्थों से जानने का यत्न किया है. ' आगे इसी सन्दर्भ मे वे कहते हैं- 'यह प्रणाली प्रचलित है कि प्रत्येक पुस्तक के अन्त में उन ग्रन्थो या लेखों की सूची दी जाती है, जिनके आधार पर पुस्तक लिखी गई है.' इस सूची कार्य के कठिन पक्ष पर प्रकाश डालते हुए वे स्पष्ट करते हैं- 'कोई लेखक बड़ी आयु में इतने बड़े ग्रंथ मे जो कुछ लिखता है, वह प्राय उसके जीवन भर के अध्ययन और अनुभव का परिणाम होता है, उस सारे अध्ययन और अनुभव की सूची तैयार करना कठिन ही नहीं असभव है'[३०] फिर भी उन्होने अपने ऐतिहासिक ग्रथो के बीच-बीच मे जिस ग्रथ का प्रमाण देना आवश्यक समझा है, वहीं उसका नामोल्लेख कर दिया है या उद्धरण दे दिया है इतिहास लेखन प्रक्रिया से वे गहराई से सुपरिचित थे. इसके सकेत हमे उनके निम्नाकित कथनों से प्राप्त होते हैं. 'मराठाशाही का विस्तृत-इतिहास लिखने में उस समय के बक्खरो से अत्यधिक सहायता मिली है' उनकी दृष्टि मे 'बक्खर उस समय की राजनीतिक घटनाओ के अप्रकाशित समाचार-पत्र थे.'[३१] महाराष्ट्र के इतिहास लेखक मि ग्रॉन्ट डफ ने मराठो के अभ्युदय की सह्यद्रि की अग्निज्वाला के साथ उपमा दी है.[३२] इसी आधार पर विद्यावाचस्पति जी ने मुगल साम्राज्य के १६ वें परिच्छेद का शीर्षक 'सह्यद्रि की ज्वाला' दिया है 'मि. रानडे ने अपने स्मरणीय ग्रथ 'मराठों के उत्थान' में ३३ भक्त और सत कवियों के नाम दिये हैं[३३] जिन्हें उन्होने मुगल साम्राज्य के इतिहास मे अवतरित-उद्धृत किया है. 'गड आला पण सिह गेला'-'गढ आ गया, परन्तु सिंह चला गया' की मराठी उक्ति का भी उन्होने उल्लेख किया है.'[३४]

उपरोक्त सकेतो के अतिरिक्त अपने ग्रथ 'मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण' मे यथाप्रसग जिन लेखको के उल्लेख और उद्धरण दिये हैं, वे इस प्रकार हैं कर्नल टॉड (राजपूताना

का इतिहास–३३) प्रो सर जदुनाथ सरकार ('औरगजेब की जीवनी' व 'औरगजेब का इतिहास'–१०६, १३३, १५२) अबुल फजल ('अकबर नामा' व 'आईने अकबरी'–५१, ५२) दाराशिकोह ('मजमूआ–ए–वाहरियान' व 'सिर्र–उल–असरार'–१०३, १०४) प्रथम ग्रथ मे इस्लाम व हिन्दू धर्म दोनो के सच्चाई के अश दिये हैं और दूसरा ग्रथ दाराशिकोह द्वारा कराया गया पचास उपनिषदो का फारसी अनुवाद है 'मआसिर–उल–उमरा' नामक ग्रन्थ का भी उल्लेख है, पर लेखक का नाम नहीं है इस ग्रन्थ मे मुसलमान हाकिमो द्वारा किये गए स्त्री अपहरणो की चर्चा की गई है इसी प्रकार अकबर के इतिहास लेखक विन्सेट स्मिथ, पजाब के इतिहास लेखक सय्यद मुहम्मद लतीफ और ईश्वरदास का भी उल्लेख है, पर लेखक ने इन इतिहास लेखको के ग्रन्थो के नाम नहीं दिये हैं (३६, २२६, २४७) सातवीं शताब्दी के चीनी यात्री हुयेन साग की भी चर्चा की है, जिन्होने अपने यात्रा वृतान्तो मे जाटो को शूद्रो की श्रेणी मे रखा है (२२१). अनेक ऐसे स्थल है जहाँ इतिहासकारो के नामो का उल्लेख न करते हुए सामूहिक रूप मे उनकी चर्चा की है जैसे, 'कई इतिहास लेखको ने लिखा है' (३६, २७६, ११८, १४५), 'मुसलमान लेखको ने लिखा है' (२६–३०), 'विदेशी लेखको ने ताज की प्रशसा के बारे मे पन्ने के पन्ने खर्च कर डाले हैं' (६०), 'अग्रेज लेखक का मत' (५०) आदि प्रसगवशात् सत गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरित–मानस' का भी उल्लेख हुआ है भूषण (शिवा बावनी–१८८), गुरू नानक (ग्रथ साहिब–२३३) के अतिरिक्त सम्राट् जलालुद्दीन अकबर (५१), व 'राजा टोडरमल' (५१) के हिन्दी के पद भी दिये हैं फिरदौसी (६३), शाहजहाँ की लडकी शाहनारा (११६), बादशाह बहादुरशाह की दूसरी सन्तान रफी उश्शान (६०) के शेर भी उद्धृत किये गये है सात परिच्छेदो का नाम 'मुगलो का महाभारत' है, जिसमे एकाधिक बार 'सूच्यग्र नैव दास्यामि' उद्धरण उद्धृत किया गयाहै (१८७) ग्रन्थ के उपसहार मे एक विदेशी अग्रेजी कवि के काव्य का भी उद्धरण दियागया है उक्त ग्रन्थो के अतिरिक्त मुगल साम्राज्य के इतिहास मे अनेक पत्रो के सकेत और उनके उद्धरण भी दिये गये हैं जैसे–औरगजेब की सादुल्लाखॉ को लिखी चिट्ठी (१०६), शाहजहॉ का पानी तक बन्द कर देने वाले अपने पुत्र औरगजेब को लिखा पत्र (१५५), जहॉनारा द्वारा औरगजेब को लिखा पत्र (१५४), शिवाजी का औरगजेब को जजिया कर न लगाने के सबध मे पत्र (२०३), औरगजेब के अपने पुत्र द्वय आजम व कामबख्श को लिखे पत्र (३२), राजा शाहू द्वारा बालाजी बाजीराव को पेशवा पद पर नियुक्त करने का आज्ञा पत्र (१५०) बुन्देलखण्ड के राजा छत्रसाल द्वारा बाजीराव पेशवा को रक्षा करने की अपील करते हुए लिखा गया काव्यात्मक पत्र – "जो गत ग्राह गजेन्द्र की, सो गत भई है आज। बाजी जात बुदेला की राखो बाजी लाज।।" (चौथा भाग–१११)

चर्चित ऐतिहासिक ग्रन्थ मुगल साम्राज्य मे 'फरमानो' (१३३, १६३, २०१) के अतिरिक्त 'जनश्रुति' (२५१), शर्त (६६), मुद्रा (२६६, २८३) इत्यादि का उपयोग किया गया है सन् १६००, १८८६, १६३१ के गेहूँ, जौ, ज्वार, चना आदि धान्यो के भावो की 'तुलनात्मक पत्रिका' दी गई है (४८) आर्थिक लूट की भी चर्चा हुई है–नादिरशाह के मन्त्री के अनुसार दिल्ली की लूट मे १५ करोड नकद के अतिरिक्त जवाहर आदि बहुत बडी राशि लूटी गयी और फ्रेजर के हिसाब से ७० करोड, ३०० हाथी और दस हजार घोडे लूट मे ले जाये गये (१४५).

विद्यावाचस्पति जी ने मुगल साम्राज्य के इतिहास की तरह 'भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य का उदय' नामक ग्रन्थ मे भी सहयोगी ग्रन्थो की सूची परिशिष्ट के रूप मे नहीं जोडी है उन्होने जहॉ–जहॉ आवश्यक समझा पूर्ववत् यथाप्रसग यथास्थान लेखको तथा उनके ग्रथो का उल्लेख किया है जैसे स्वदेशी लेखको मे भारत के विख्यात विद्वान श्री रमेशचन्द्र दत्त (इण्डिया इन विक्टोरियन एज–२८६), मेजर बी डी बसु (राइज एण्ड फॉल ऑफ ब्रिटिश एम्पायर इन इंडिया–६३), देशभक्त सावरकर (१८५७

का स्वातन्त्र्य सग्राम–२६५, २६८) डी बी पारसनीस (लाइफ ऑव लक्ष्मीबाई) भारतीय इतिहास लेखकों मे सर शफात अहमदखॉ का भी इतिहासकार के रूप मे विद्यावाचस्पति जी ने विशेष रूप से उल्लेख किया है (पृ १६)

स्वदेशी लेखको की अपेक्षा विदेशी लेखक चौगुने हैं जिनका उपयोग विद्यावाचस्पति जी ने ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास मे किया है इससे अनायास यह स्पष्ट होता है कि इतिहास लेखन के क्षेत्र मे भारतीय बहुत ही उदासीन रहे हैं विदेशी लेखको मे कर्नल मैलीसन ('भारत के निर्णायक युद्ध–३५, ३२६ व 'भारतीय विद्रोह'–१–४ भाग–३१५, ३१६) पी ई राबर्ट्स (भारत के १८७० के दुर्भिक्ष के विषय मे ४१–४२), व्हीलर (अर्ली रिकार्ड्स ऑव ब्रिटिश इण्डिया–४१), ग्राण्ट डफ (मराठो का इतिहास–१३६), जेम्स मिल (भारत का इतिहास–१३६) आदि २२ से भी अधिक अग्रेज लेखको के ग्रथो का विद्यावाचस्पति जी ने इतिहास लेखन हेतु उपादान सामग्री के रूप मे उपयोग किया है और इनमे से अधिकाश ग्रन्थों के उद्धरण भी प्रस्तुत किये हैं

विद्यावाचस्पति जी ने जहॉ कतिपय अग्रेज लेखको की पक्षपातपूर्ण रवैये की तीव्र आलोचना की है, वहॉ तटस्थ आलोचको की अन्त करण पूर्वक प्रशसा भी की है लैफ्टिनेट जनरल मैकल्योड इन्स को उन्होने यथासभव पक्षपातहीन दृष्टि से लिखने वाला इतिहास लेखक कहा है.[३५] इसी प्रकार वे ब्रिटिश साम्राज्य की भूमिका मे लिखते हैं– 'अग्रेज शासन काल के प्रारभिक और सन् ५७ के क्रान्ति के समय की ऐतिहासिक घटनाओ का अध्ययन करते समय यह देखकर आश्चर्य होता है कि अग्रेज शासको अथवा योद्धाओ के निन्दा योग्य कार्यों का सच्चा वृतान्त यदि कहीं उपलब्ध हो सकता है तो वह अग्रेज वक्ताओ के भाषणो और अग्रेज लेखको के लेखो मे वारेन हेस्टिंग्ज के विरूद्ध एडमण्ड बर्क के भाषणो को पढकर एक भारतवासी का खून खौल उठता है प्रतीत होने लगता है कि हेस्टिंग्ज के अत्याचारो की कडवाहट को शायद किसी भारतवासी ने भी उतनी तीव्रता से अनुभव न किया हो, जितनी तीव्रता से उस तेजस्वी अग्रेज ने किया था' 'लक्ष्मीबाई की असाधारण वीरता, तात्या टोपे की अद्भुत चतुरता और कुँवरसिह की युद्ध कुशलता की खुलेदिल से प्रशसा पढनी हो तो वह अग्रेज लेखको की पुस्तको मे मिलेगी ' 'अग्रेज सिपाहियो तथा सेनापतियो ने क्रोध तथा बदले की भावना से प्रेरित होकर भारत की निर्दोष प्रजा पर जो पाशविक अत्याचार किये उनकी कहानी आपको अग्रेज लेखको के लेखो से प्राप्त होगी अग्रेजो मे अनेक दोष थे, और हैं, परन्तु पक्षपातहीन दृष्टि से देखे तो यह स्वीकार करना पडता है कि अनेक अग्रेजो मे विरोधी के पक्ष को सहानुभूति से देखनेऔर पक्षपात से अलग होकर विचार करने का प्रयत्न करने की जो स्वाभाविक प्रवृत्ति विद्यमान है, उसी ने बीसियो उतार–चढाव होने के बाद भी इग्लैण्ड के गौरव को सुरक्षित रखा है ब्रिटिश काल के भारतीय लेखक का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह उन अग्रेजो के प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करे, जिनके भाषणो और लेखो से उसे मूर्ति के दोनो पार्श्वो को देखने मे सहायता मिलती है '

ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास लेखन मे सदर्भ ग्रन्थो के अतिरिक्त पत्रो का भी उपयोग किया है मुगल साम्राज्य के इतिहास मे ६ से अधिक पत्रो का, तो ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास लेखन मे १८ से अधिक पत्रो या पत्राशो का पूरक–प्रामाणिक सामग्री के रूप में उपयोग किया गया है जिनमें अपनी स्त्री से प्रेरणा प्राप्त कर रघुनाथराव द्वारा भाई नारायणराव को बदी बनाने के सबध मे लिखा उस पत्र का भी समावेश है, जिस पत्र के धरावे के स्थान पर रघुनाथराव की पत्नी आनंदीराव ने मारावे कर दिया था,[३६] और इतिहास इस बात का साक्षी है कि एकाक्षर के परिवर्तन के कारण नारायणराव की मौत हो गई थी पत्रो के अतिरिक्त ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास मे विद्यावाचस्पति जी ने ऐक्टो, चार्टरो, सन्धियो, सन्देशो, गवाहियो, डायरियो, समाचार–पत्रो, रिपोर्टों,

घोषणाओ, सम्मतियो, बयानो व भाषणो के आवश्यक अशो का यथास्थान समावेश किया है, जिससे उनका सकलनात्मक इतिहासकार का स्वरूप स्पष्ट रूप से उभरता है

ब्रिटिश व मुगल साम्राज्य के इतिहास की तरह आर्यसमाज व भारतीय स्वाधीनता सग्राम के इतिहास मे भी विद्यावाचस्पति जी का सकलनात्मक इतिहासकार का रूप नजर आता है आर्यसमाज के इतिहास के सिलसिले मे वे सकलनात्मक इतिहासकार की तरह यह अपील करते हुये नजर आते हैं– 'सब आर्य नर–नारी अपना धर्म समझकर उपलभ्य सामग्री भेजकर मेरा हाथ बटाये' पूरक व दुर्लभ सामग्री भेजने वालो के प्रति इतिहासकार मे कृतज्ञता का भाव होना बहुत जरूरी है, अन्यथा वह अपने कार्य मे कदापि यशस्वी नहीं हो सकता श्री विद्यावाचस्पति मे यह कृतज्ञता का भाव कूट–कूटकर भरा है सहायक महानुभावो के प्रति धन्यवाद देते हुये वे कहते हैं– 'मैं विशेष धन्यवाद ऋषि दयानद के पत्रो के अन्वेषक श्री मामराजसिह का करना चाहता हूँ जिन्होने वर्षों के परिश्रम से सग्रह किया हुआ पुस्तको, समाचार पत्रो तथा चिट्ठियो का सग्रह मेरे सुपुर्द कर दिया आपकी तत्परता और मेहनत देखकर मुझे आश्चर्य भी हुआ और थोडी–सी ईर्ष्या भी किसी प्रकार की लोकैषणा न रखकर केवल कर्तव्य की प्रेरणा से वर्षों तक इतना परिश्रम करना और फिर उसे विश्वास के साथ दूसरे को सौंप देना साधारण कार्य नहीं है'[३७] विद्यावाचस्पति जी आगत सामग्री का यथोचित स्थान पर बडी उत्तमता से उपयोग करते थे 'भारतीय स्वाधीनता सग्राम का इतिहास' के समीक्षक ने लिखा है– 'उनकी इस कृति मे यथाशक्य इस विषय मे सुलभ उपादानो का जितनी उत्तमता एव वैज्ञानिक दृष्टि से उपयोग किया गया है, वह अन्य जन सुलभ नहीं था'[३८]

विवेचनात्मक इतिहास लेखकः- विद्यावाचस्पति जी ने श्री मदनमोहन मालवीय के सबध मे लिखा है– 'वह हृदय–प्रधान पुरुष थे. हृदय और बुद्धि के मध्य जब सघर्ष होता था तब उनका हृदय सदा जीतता था और जो हृदय कहता था, वही वह करते थे'[३९] किन्तु स्वय विद्यावाचस्पति जी बुद्धिप्रधान पुरुष थे भावना के आवेश मे कोई निर्णय नहीं करते थे मुगल साम्राज्य के इतिहास मे भी प्रसगवशात् वे शिवाजी का इतिहास लिखते–लिखते चरित्र–चित्रण की ओर झुक ही रहे थे कि बुद्धि की लगाम ने उनकी भावुक कलम को एकदम नियन्त्रित कर लिया[४०] पिता मुशीराम का भावुक हृदय विद्यावाचस्पति जी के अग्रज हरिश्चन्द्र के हिस्से मे चला गया था और उनकी बुद्धि की निर्णायक क्षमता विद्यावाचस्पति जी के हिस्से मे आ गयी थी. अत उनके इतिहास ही नहीं जीवनी, उपन्यास आदि से सबद्ध साहित्य मे भी उनकी विवेचनात्मक लेखन शैली के दर्शन होते हैं श्री शकरदेव विद्यालकार के अनुसार उनके मुगल व ब्रिटिश साम्राज्य विषयक विशाल ग्रन्थ ऐतिहासिक तत्वमीमासा परक ग्रथ है, 'जिनमे उनकी विद्वता, गवेषणा और विवेचन शक्ति का परिचय मिलता है एक समीक्षक ने तो मुगल साम्राज्य विषयक ग्रथ की समीक्षा मे यहाँ तक लिखा है' 'यह ग्रन्थ इतनी अच्छी तरह लिखा गया है कि इसने रचना के क्षेत्र मे ग्रथकार की उमर दो सौ वर्ष कर दी है'[४१]

विद्यावाचस्पति जी की विवेचनात्मक इतिहास लेखन शैली के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं उन्होने मुगल साम्राज्य के क्षय और ब्रिटिश साम्राज्य के उदय का विवेचन इस प्रकार किया है, 'दो राही पहाड की आधी ऊँचाई पर आपस मे मिलते है. देखने मे दोनो एक जगह खडे हैं, परन्तु उनकी मानसिक परिस्थितियो का भेद हमारी समझ मे तब आयेगा जब हमे यह मालूम होगा कि उनमे से एक पहाड की चोटी से नीचे उतर रहा है, और दूसरा चोटी की ओर जा रहा है. एक की चढती कला है और दूसरे की उतरती कला खडे दोनो एक ही स्थान पर है, परन्तु एक ऊपर को देख रहा है और दूसरा नीचे को'[४२] उनके ऐतिहासिक साहित्य मे ऐसे असख्य स्थल हैं, जिनसे उनकी विवेचनात्मक शैली का परिचय मिलता है जैसे 'इतिहास लेखक अबुल फजल का लिखा हुआ 'आईने अकबरी' अपने समय का बिल्कुल सच्चा तो नहीं, परन्तु उज्ज्वल चित्र अवश्य है'[४३] औरगजेब की

मराठो से हुई दक्षिण लडाई का वर्णन करते हुए बादशाह के मराठो के बहुत समीप होने पर भी बाल–बाल बचने पर उन्होने यह टिप्पणी की है, 'मुसलमान लेखको ने इसे औरगजेब के महत्त्व या दबदबे का परिणाम माना है और इसे भी एक खुदाई मोजजा कहा है, परन्तु हमे तो इसकी तह मे मराठा सरदारो की मुगल सेनाओ की परिस्थिति से अनभिज्ञता ही मालूम होती है'[४४] श्री काशीप्रसाद जायसवाल के अनुसार 'गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालयीन स्नातको के इतिहास लेखन पर किसी प्रकार का साप्रदायिक मुलम्मा नहीं है'[४५] श्री विद्यावाचस्पति ने अकबर को 'दूरदर्शी' तथा 'अपने समय का सबसे बडा राजनीतिज्ञ'[४६] कहा है अकबर व औरगजेब की दुर्बलताओ के साथ उन्होने उनकी विशेषताओ की भी चर्चा की है छत्रपति शिवाजी की विकासोन्मुख अवस्था का चित्रण करते हुए उन्होने उन्हे धीरे–धीरे 'हिन्दू धर्म रक्षक' से 'राष्ट्रीय–स्वधीनता–रक्षक' के रूप मे आगे बढते हुए बताया है शिवाजी के युद्ध के प्रेरक कारणो की विद्यावाचस्पति जी ने इस प्रकार मीमासा की है, "क्या शिवाजी केवल विजय की, लूट की या ख्याति की इच्छा से प्रेरित होकर ही यह युद्ध कर रहे थे? या केवल हिन्दू धर्म की रक्षा ही उनका लक्ष्य था, अथवा एक स्वाधीन राष्ट्र की स्थापना के लिए उनका उद्योग था? कभी कोई बडा भाव या लक्ष्य एकदम नहीं पला करता मनुष्य की मानसिक और उसके कारण उत्पन्न होने वाली सपूर्ण शक्तियो की उन्नति के साथ–साथ लक्ष्य के बाहरी रूप मे भी परिवर्तन आता है व्यापारी बनकर आये अग्रेजो का ज्यो–ज्यो भारत की कमजोरी से उत्साह बढता गया त्यो–त्यो उनका लक्ष्य भी फैलता गया बीज रूप मे जो विचार कार्य के प्रारभ का कारण बनता है, अनुकूल भूमि पाकर वही अन्त मे एक विशाल वृक्ष का रूप धारण कर लेता है शिवाजी का मूल विचार स्वाधीनता का था शिवाजी के हृदय मे स्वभावत जो स्वाधीनता की चाह थी, उसके साथ हिन्दू धर्म की इस्लाम के आक्रमणो की प्रतिक्रिया का मेल होकर जिस विद्रोह या क्रान्ति का आरभ हुआ था, सुलभ सफलता ने उसे विस्तृत कर दिया मुगलो के साथ टक्कर लेने के समय शिवाजी के हृदय मे महाराष्ट्र मे एक हिन्दू राज्य की स्थापना का भाव दृढ हो चुका था उस भाव मे भारत–भर के हिन्दू साम्राज्य की कल्पना थी या नहीं, इस पर विवाद करना व्यर्थ है क्योकि यह मनुष्य प्रकृति के विरूद्ध है कि वह लाभ की आशा होने पर अधिक से अधिक लाभ की ही अभिलाषा न रखे शिवाजी की मुद्राओ पर जो श्लोक लिखा रहता था, वह महाराष्ट्र की बढती हुई भावनाओ का अच्छा प्रतिबिम्ब था शिवाजी की हरेक कल्पना समय के साथ बढती गई शिवाजी का लक्ष्य वर्धिष्णु था वह जागीर से बढकर राज्य का और राज्य से बढकर साम्राज्य का रूप धारण कर रहा था शिवाजी की मुद्राओ पर निम्नाकित श्लोक अकित था

प्रतिपच्चन्द्र रेखेव वर्धिष्णुर्विश्ववन्दिता। शाहसूनो शिवस्यैषा मुद्रा भद्राय राजते।।

अर्थात् प्रतिपदा के चॉद की रेखा की भाति निरन्तर बढने वाली, ससार द्वारा सादर स्वीकार की गई, शाहजी के पुत्र शिवाजी की यह मुद्रा, कल्याण के लिए शोभायमान होती है"[४७]

उपरोक्त विवेचन से शिवाजी के उत्तोत्तर विकसित होते हुए व्यापक व्यक्तित्व के परिचय के साथ ही विद्यावाचस्पति जी की विवेचनात्क इतिहास लेखन शैली का रूप भी स्पष्ट होता है समस्त ऐतिहासिक साहित्य मे उन्होने इसी शैली का प्रयोग किया है श्री सत्यकाम विद्यालकार ने ठीक ही कहा है कि 'विद्यावाचस्पति जी का ऐतिहासिक विवेचन पूर्णत विश्लेषणात्मक है'[४८]

८.५ विद्यावाचस्पति जी का ऐतिहासिक वाङ्मयः-

विद्यावाचस्पति जी 'इतिहास के गभीर विद्यार्थी'[४९] ही नहीं 'प्रोफेसर भी थे'[५०] छात्रावस्था मे ही उन्होने इतिहास लिखने की तैयारी कर ली थी[५१] उनकी डायरी इस बात की साक्षी है कि स्नातक होने के बाद १६ जून १९१३ को उन्होने 'अपने पुराने इतिहास की खोज करने' का निश्चय कर

लिया था[५२] प. धर्मदेव विद्यावाचस्पति जी के अनुसार 'जब वे इतिहास पढाते थे तो उनके विचारो मे स्पष्टता होती थी और किसी प्रकार की गडबड न होती थी[५३] विद्यावाचस्पति के सर्वप्रथम कक्षा के शिष्य और उनसे चार-पाच साल तक शिक्षा प्राप्त करने वाले श्री दीनानाथ सिद्धान्तालकार के कथनानुसार वे हमे रात को भोजन के बाद रामायण-महाभारत तथा अन्य भारतीय इतिहास की कथाये सुनाया करते थे[५४] आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति के मतानुसार इतिहास का विषय विशुद्ध भारतीय दृष्टिकोण से पढाने मे उनकी विशेष रूचि थी इतिहास के अध्यापन को अधिक गहरा और महत्वपूर्ण बनाने के लिए उन्होने गुरुकुल मे एक ऐतिहासिक ग्रथालय की स्थापना की थी जिसमे प्राचीन इतिहास से सबधित बहुत अधिक उपयोगी सामग्री का सग्रह किया गया था[५५] प. इन्द्रजी के विद्याव्यसनी होने के कारण गुरुकुलीय पुस्तकालय की बहुत बडी उन्नति हुई विद्यावाचस्पति जी की सुपुत्री व सैक्रेटी डॉ. ऊषा पुरी विद्यावाचस्पति के शब्दो मे उनका घरेलू पुस्तकालय भी एक विराट् पुस्तकालय था जिसमे हिन्दी, सस्कृत, गुरुमुखी, बगाली, गुजराती, मराठी आदि देशी भाषाओ के व अग्रेजी, जर्मन, फ्रेच आदि विदेशी भाषाओ के दुर्लभ ऐतिहासिक ग्रन्थ थे[५६] १९१८ मे ही उनका ऐतिहासिक उपन्यास 'शाह आलम की ऑखे' धारावाहिक रूप मे 'सद्धर्म प्रचारक' मे छपता रहा था[५७] श्री शकरदेव विद्यालकार ने लिखा है अवकाश के क्षणो मे वे देशी-विदेशी साहित्यकारो के अतिरिक्त इतिहासकार गिब्बन लिखित ग्रथ भी पढते थे[५८] उनके इतिहास ज्ञान व इतिहास लेखन से प्रभावित होकर इतिहासानुरागी हरियाणा पुरातत्व सग्रहालय के सस्थापक आचार्य भगवान्देवजी ने उनसे 'जाटो का इतिहास' लिखने की प्रार्थना की थी, जिसे उन्होने मान्य भी कर लिया था[५९] मुगल साम्राज्य के उत्थान और पतन की भाति मराठा शक्ति का उत्थान और पतन भी बडा रोचक और शिक्षाप्रद विषय है, अवसर मिला तो उसकी विस्तृत कहानी लिखने का भी उन्होने सकल्प किया था[६०]

विद्यावाचस्पति जी की अतीत की ओर देखने की स्वाभाविक प्रवृत्ति थी गुरुकुल मे पुरातत्व सग्रहालय की स्थापना उनकी इसी प्रवृत्ति की द्योतक थी सामान्य जनजीवन मे भी अनायास वे आदर्श जीवन जीने के लिए ऐतिहासिक उदाहरण प्रस्तुत करते थे एक बार जब वे सपरिवार यमुना किनारे घूमने गये, तब एक कटीली झाडी मे उनके इकलौते पुत्र जयन्त की कमीज की बाह अटक गयी जिसे उसने झटका देकर छुडा लिया जिससे बाह मे एक लम्बा खोचा लग गया इस पर विद्यावाचस्पति जी ने कहा था- 'ऐसे ही एक बार सम्राट् नैपोलियन अपने बेटे के साथ अपने बगीचे मे घूम रहा था और राजकुमार का कपडा काटो मे उलझ गया था लडके ने झटका दिया था, जिससे उसका कपडा तो फटा ही, उसे खरोच लगी और लहू भी निकल आया था इस पर सम्राट् ने राजकुमार से कहा था- 'सम्राट् नैपोलियन के साम्राज्य को उसका वशज चला पायेगा या नहीं, इसमे शक है'[६१] इस सबसे स्पष्ट है कि छात्रावस्था से ही विद्यावाचस्पति जी इतिहासानुरागी थे 'चिर पक्क सुपक्क भवति' के सिद्धान्त के अनुसार उत्तरोत्तर जब वे इतिहास से और अधिक एकरूप हो गये तब उन्होने इतिहास का लेखन प्रारभ किया और हिन्दी जगत् को साहित्यिक शैली मे लिखे चार विशालकाय सरस ग्रन्थ प्रदान किये उनका सक्षिप्त परिचय क्रमश अग्रिम पक्तियो मे प्रस्तुत है

मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण (भाग १-२ (पूर्वार्ध) १९३२, भाग-३-४ (उत्तरार्ध) १९३८):- यह बहुचर्चित सुप्रसिद्ध ग्रन्थ अग्रेज इतिहासवेत्ता एडवर्ड गिब्बन (१७३७-१७९४) द्वारा लिखित 'डिक्लाइन ऑफ रोमन एम्पायर' (पाच भाग) को पढने के उपरान्त विद्यावाचस्पति जी ने लिखा है उन्हे ग्रन्थ लिखने की विशेष प्रेरणा श्री गिब्बन से प्राप्त हुई थी प्रथम भाग मे 'अकबर का राज्यारोहण' (१५५६) से लेकर 'रक्तरजित सिहासन पर (औरगजेब का) आरोहण' (१६५६) तक २४ परिच्छेद हैं द्वितीय भाग मे 'चमकदार प्रारभ (१६५६) से लेकर 'इतिहास मे शिवाजी

का स्थान' (१६८०) तक २८ परिच्छेद हैं तृतीय भाग मे 'साम्राज्य के कब्रिस्तान' (१६८०) से लेकर 'सय्यदो का अध पात' (१७२०) तक १६ परिच्छेद हैं और चौथे भाग मे 'तीन बडे शत्रु' (१ केन्द्रीय शक्ति दिल्ली का क्षीण होना, २ स्वार्थी मुसलमान सरदार, ३ बाह्य आक्रमण) (१७२०) से लेकर 'पानीपत–उपसहार' (सन् १७६०) तक २२ परिच्छेद हैं पुस्तक की कुल पृष्ठ सख्या ५०६ है विद्यावाचस्पति जी ने तृतीय भाग को 'औरगजेब के उत्तराधिकारियो के रक्षा के लिए व्यर्थ प्रयत्न' और चौथे भाग को 'अन्तिम झलक' के नाम से भी स्पष्ट किया है लेखक ने इतिहास के इन चार भागो को 'यौवन काल', 'प्रौढावस्था काल', 'क्षीणता काल' और 'समाप्ति काल' के नाम से भी सबोधित किया है

मुगल साम्राज्य के इतिहास लेखन का उद्देश्य मुगल साम्राज्य का क्षय बतलाना है अत लेखक ने इस ग्रथ की शुरुआत मुगल साम्राज्य के जन्मकाल (बाबर) से नहीं, अपितु यौवनकाल (अकबर) से शुरु की है उदयास्त का प्राकृतिक नियम साम्राज्यो पर भी लागू है साम्राज्य भी नैसर्गिक रूप से अविर्भाव और क्षय के दौर से गुजरते हैं 'नीचैर्गच्छत्युपरिच दशा चक्रनेमिक्रमेण' की तरह हर साम्राज्य मे 'चार दिन की चादनी और फिर अधेरी रात' आती है कभी वे पराजित होते हैं तो कभी विजयी ' जहॉ इस चलाचली की ओर सकेत करना ग्रथ लेखक का प्रयोजन है वहॉ साम्राज्य और राष्ट्र रूपी शरीर के क्षीणता के उन कारणो की ओर भी सकेत करना है जिनके कारण राज्य और राष्ट्र मौत के घाट पहुँचते हैं लेखक के शब्दो मे– 'जिन कारणो से हमे दो बार विदेशी साम्राज्यो का भोजन बनना पडा उन्हे सर्वथा निर्मूल कर देना हमारा सबसे प्रथम और ऊँचा कर्तव्य है यदि मेरे इस ग्रन्थ से राष्ट्र का ध्यान इस कर्तव्य की ओर आकृष्ट हो सके तो मैं अपने यत्न को सफल समझूँगा'[१२]

'आर्यसमाज का इतिहास' (प्रथम भाग-१६२५, द्वितीय भाग-१६५७):- अपने पूज्य 'पिता स्वामी श्रद्धानन्द की प्रेरणा से विद्यावाचस्पति जी ने इस ग्रन्थ की रचना की प्रथम भाग मे कुल सात खण्ड हैं इसमे प्रमुख रूप से १८२४ से लेकर १८६० तक की घटनाओ का वर्णन है 'अवतरणिका' खण्ड में सृष्टि के आदि से लेकर स्वामी दयानन्द के प्रादुर्भाव (१८२४) से पूर्व तक का सक्षिप्त इतिहास है अवशिष्ट छ खण्डो के शीर्षक हैं– 'महर्षि का आगमन', 'आर्यसमाज की स्थापना , 'शिक्षण सस्थाओ की स्थापना', 'सघर्ष युग', 'विस्तार' और 'परिशिष्ट', परिशिष्ट मे कुल दस परिच्छेद हैं– 'महर्षि की जन्मतिथि, 'पिता का नाम', 'आर्यसमाज की स्थापना दिवस', 'ऋषि की मृत्यु कैसे हुई'?, इन प्रारभिक चार परिशिष्टो मे तत्सम्बन्धी विषय का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है. अगले ६ परिशिष्ट मुबई व लाहौर मे बनाये गये 'आर्यसमाज के नियम', 'स्वामी दयानन्द का वसीयतनामा', 'महर्षि ग्रथ सूची', 'महर्षि पत्र–व्यवहार' और 'महर्षि के वास्तविक चित्रों के वर्णन' से सबद्ध हैं

आर्यसमाज के इतिहास का द्वितीय भाग भी सात खण्डों मे विभाजित है प्रथम खण्ड– 'गुरुकुल युग', 'पटियाले के आर्यों की अग्नि परीक्षा', 'सार्वदेशिक सभा की स्थापना तथा देशी–विदेशी आर्यसमाज के प्रचार और प्रचारको से सबधित है द्वितीय खण्ड– 'शुद्धि अभियान', 'दलितोद्धार', 'विविध प्रान्तों मे आर्यसमाज की प्रगति' व 'दक्षिण अफ्रीका मे आर्यसमाज का प्रचार' से सबद्ध है. तृतीय खण्ड– 'स्वाधीनता सग्राम', 'आर्यसमाज–कॉग्रेस मे मतभेद', 'शुद्धि और आर्यसमाज', 'साप्रदायिक उपद्रव और आर्यसमाज', 'दक्षिण में प्रचार', 'श्रीमद्दयानन्द जन्मशताब्दी' व 'स्वामी श्रद्धानन्द के बलिदान' से सबधित है चतुर्थ खण्ड का शीर्षक है– 'धर्मयुद्ध की अवतरणिका ' यह खण्ड– 'स्वामी श्रद्धानन्द के बलिदान की प्रतिक्रिया', महाशय राजपाल का बलिदान', 'सार्वदेशिक सभा के दिल्ली और बरेली मे सपन्न आर्य महासम्मेलन', 'अजमेर मे सपन्न दयानन्द निर्वाण अर्धशताब्दी' और 'लाहौर मे सपन्न आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब की अर्धशताब्दी', 'सार्वदेशिक सभा का कार्य विस्तार',

'महात्मा नारायण स्वामीजी', 'सयुक्त प्रान्त मे नवजागरण', 'आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा', 'राजपूताना बम्बई, हैदराबाद, बिहार, मध्यप्रदेश व विदर्भ, सिन्ध, बगाल, आसाम आदि प्रदेशो तथा मौरीशस, पूर्वी अफ्रीका, दक्षिण अफ्रीका, ब्रह्मदेश, बगदाद आदि विदेशो के आर्यसमाजो तथा आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्यकलापो से सबद्ध है इसी चतुर्थ खण्ड के अन्त मे गुरुकुल कागडी, गुरुकुल वृन्दावन, गुरुकुल ज्वालापुर, 'डी ए वी शिक्षण सस्था' व 'आर्यकुमार परिषद्' की गतिविधियो का सिहावलोकन किया गया है पचम खण्ड– निजाम (हैदराबाद) रियासत मे आर्यसमाज द्वारा अपने मूलभूत अधिकारो के लिए निजाम के विरूद्ध किए गऐ सघर्षों से सबधित है पष्ठ खण्ड का अधिकाश भाग सिध सरकार द्वारा सत्यार्थप्रकाश पर किये गए विफल आक्रमण से सबद्ध है कोल्हापुर, हैदराबाद व मद्रास मे सचालित आर्यसमाज की विविध प्रवृत्तिया, सार्वदेशिक सभा द्वारा दैनिक आर्य समाचार पत्र निकालने का प्रयास, आर्य वीर दल सेवा सबधी कार्य, प्रो महेश प्रसाद आलिम फाजिल की सुपुत्री कल्याणी देवी को बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय मे वैदिक शिक्षा की कक्षा मे प्रवेश दिलाने हेतु किये गये अभियान से सबद्ध है, इस खण्ड के अत मे, स्वाधीनता प्राप्ति मे आर्य समाज के योगदान पर प्रकाश डाला गया है सप्तम खण्ड–परिशिष्ट मे पहले 'दक्षिण भारत आर्य कान्फ्रेस–मद्रास (१६४१) के सभाध्यक्ष के रूप मे दिया गया श्री सत्यमूर्ति जी का अभिभाषण छपा है श्री सत्यमूर्ति जी का विचार था कि 'दक्षिण मे ब्रा ह्मण, नौन–ब्राह्मण तथा आर्य–द्रविड के भेद को यदि कोई मिटा सकता है तो आर्य समाज ही [६३] श्री सत्यमूर्ति के अभिभाषण के पश्चात् महर्षि दयानन्द के उपदेशो से जिनके व्यक्तित्व मे चेतना प्रकट हुई, उन आद्य क्रान्तिकारी श्री प श्यामजी कृष्ण वर्मा का सक्षिप्त परिचय है

विद्यावाचस्पति जी के पूज्य 'पिता' स्वामी श्रद्धानन्द जी ने बलिदान से एक दिन पूर्व प्रात छ बजे अपनी वसीयत लिखने का आग्रह करते हुए कहा था– 'मैं आर्य समाज का इतिहास' लिखना चाहता था, लिख नहीं सका, इन्द्र उसे लिखकर पूरा कर दे '[६४] इस वसीयत के लगभग १८ वर्ष बाद सन् १६४४ की डायरी मे पिताजी की वसीयत को पूरा करने का लिखित रूप मे विद्यावाचस्पति जी ने पुन सकल्प किया और तत्पश्चात् अपने सार्वजनिक जीवन के बहुविध कार्यो को निभाते हुए वे इस सकल्पित कार्य को १३ वर्ष बाद १६५७ मे ग्रथ रूप मे साकार कर सके विद्यावाचस्पति जी का १६४४ की हस्तलिखित डायरी मे लिपिबद्ध आर्यसमाज का इतिहास पूर्ण करने के हेतु किया गया सकल्प अवलोकनीय है

"आज प्रात काल अपने पुस्तकालय मे आने पर पूज्य पिताजी के चित्र पर दृष्टि पडी उसके सामने कुछ देर तक बैठकर विचार किया तो प्रतीत हुआ कि वह मुझे मेरी प्रतिज्ञा याद दिला रहे है जिसमे मैंने कहा था– 'मैं आर्य समाज का इतिहास लिखकर पूरा करूगा मैंने अब तक उस कार्य को पूरा नहीं किया इसे करने का अन्तिम आदेश था मैंने उसी समय पूज्य पिताजी के चित्र को साक्षी रखकर यह प्रण किया था कि अब उस आदेश के पालन का समय आ गया है, अब विलम्ब न करूगा उसी समय तैयारी प्रारभ कर दी अनुभव हुआ कि मेरे सकल्प ने पिताजी को सतोष दिया है"[६५]

'भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का उदय' (१८५६):- यह ग्रन्थ भी दो भागो मे विभाजित है– उदय और अस्त, पर लगता है दूसरे भाग का नाम 'भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य का अस्त' न रखकर 'भारतीय स्वाधीनता सग्राम का इतिहास' रखा गया है ऐसा लेखक–प्रकाशक की इच्छा से ही हुआ होगा ऐसी स्थिति मे 'भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य का उदय और अस्त' को केवल उदय ही कहना ठीक है, क्योकि लेखक के अस्त होने के बाद 'और अस्त' के रूप मे द्वितीय भाग के प्रकाशित होने की अब कोई सभावना नहीं है, वर्तमान स्थिति मे उक्त पुस्तक के पीछे लगा 'और अस्त' का पुछल्ला

विसगत और अटपटा प्रतीत होता है

लेखक को ब्रिटिश साम्राज्य विषयक ग्रथ लिखने की विशेष प्रेरणा लेफ्टिनेंट मेजर बी डी वसु द्वारा लिखित –'राइज एण्ड फॉल ऑफ ब्रिटिश एम्पायर' नामक ग्रथ से प्राप्त हुई इस ग्रथ मे 'अग्रेज व्यापारी कैसे आये?' (१५७८) से लेकर 'कम्पनी का अन्त और विक्टोरिया का घोषणा पत्र' (१८५६) तक ७६ परिच्छेद हैं प्रारभ मे 'भूमिका' और अन्त मे 'नामानुक्रमणिका' है 'भूमिका' से पूर्व यह ग्रथ अग्रिम शब्दो के साथ राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद को समर्पित है– 'भारत के सपूतो के बलिदानो से / पूर्ण स्वाधीनता सग्राम/ की /यह सच्ची कहानी / स्वतन्त्र भारत के / प्रथम राष्ट्रपति / कर्मयोगी डॉ राजेन्द्रप्रसाद / की सेवा मे / समर्पित / – ग्रथ की महत्वपूर्ण 'भूमिका' मे इतिहास की परिभाषा, इतिहासकार का कर्तव्य, इतिहासकार की लेखनशैली, लेखक की इतिहास लेखन–शैली, ब्रिटिश–अग्रेज इतिहासकारो के प्रति लेखक का कृतज्ञता भाव आदि का विवेचन हुआ है इसी भूमिका मे अतिम परिच्छेद मे इतिहासकार विद्यावाचस्पति जी ने तटस्थ लेखन शैली अपनाने के बावजूद भी अपने भारतीयपन को न भुला पाने की बात स्वीकार की है इस ग्रथ की कुल पृष्ठ सख्या ११ + ३७५ = ३८८ है ग्रथ मे 'मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण' नामक ग्रथ की इतिहास लेखन शैली का ही अनुसरण किया गया है

'भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास' (१९६०):- विद्यावाचस्पति जी का यह अन्तिम ऐतिहासिक ग्रथ है लेखक स्वय स्वाधीनता सग्राम के एक सेनानी थे अत प्रसगवशात् कहीं–कहीं इस इतिहास मे ३–४ स्थान पर उनकी भी झलक आ गयी है 'सन् सत्तावन की क्रान्ति का सिहावलोकन' (१८५७) से लेकर 'समुद्र–मन्थन के फल विष, अमृत, सुरा' (१९४७) तक ग्रथ मे कुल ७४ परिच्छेद है कुल पृष्ठ सख्या ४२४ है प्रारभ मे 'प्रकाशकीय वक्तव्य' और अन्त मे 'अनुक्रमणिका' है प्रकाशकीय वक्तव्य से स्पष्ट है कि मृत्यु से तीन दिन पूर्व लेखक ने भूमिका लिखने की अभिलाषा व्यक्त करते हुए कहा था – 'यदि पुस्तक के छपे फर्मे उन्हे भिजवा दे तो वह इसकी भूमिका लिख दे'[६६] पर न वे फर्मे देख पाये और न भूमिका लिख पाये और एकाएक चले गये इसी ग्रथ मे इस ग्रन्थ की विषयवस्तु पर प्रकाश डालते हुए उन्होने लिखा है –'सन् १८५८ के पश्चात् भारत मे सास्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक जागृति के कारण राष्ट्रीयता का विकास किस प्रकार हुआ और धीरे–धीरे उसने प्रचण्ड रूप कैसे धारण किया इन प्रश्नो का उत्तर इस ग्रथ मे विस्तार से दिया जा चुका है'[६७] चर्चित ग्रथ मे विद्यावाचस्पति जी ने भारतीय साहित्य के माध्यम से हुई जन जागृति का भी विश्लेषण किया है, जिसमे हिन्दी के अतिरिक्त बगाली, उर्दू, मराठी, गुजराती, तमिल और तेलगु मे लिखे गये राष्ट्रीय साहित्य की भी चर्चा की गई है (१७३–१७८) स्टुअर्ट मिल की जगप्रसिद्ध पुस्तक 'लिबर्टी' का अनुवाद महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा किये जाने का उल्लेख किया गया है भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, स्वामी दयानन्द, महावीर प्रसाद द्विवेदी और प्रेमचन्द द्वारा किये गये साहित्यिक जागरण की विशेष रूप से चर्चा की गई है (१७३–१७४) स्वाधीनता काल में समस्त राष्ट्र जिन देशभक्ति के गीतो से उत्प्रेरित होता रहा उन सबका यथास्थान–यथा प्रसग ग्रथ मे उल्लेख किया गया है. 'विजयी विश्व तिरगा प्यारा' (२८१), 'आबरू पर हिंद की हम सब फिदा हो जायेगे' (२८१), पजाब का वन्दे मातरम्–'पगडी सभाल ओ जट्टा' (२१३) आजाद हिंद का राष्ट्रगीत– 'शुभ सुख चैन की वर्षा बरसे' (३७७) इकबाल का तराना– 'सारे जहा से अच्छा हिन्दोस्ता हमारा' (३४८) क्रान्तिकारी–कवि रामप्रसाद बिस्मिल और शायर अश्फाक उल्ला खा द्वारा क्रमश फासी के तख्ते की ओर जाते समय गाये गए निम्नलिखित काव्याशो का भी इतिहास मे अतर्भाव किया गया है–

"अब न पिछले वलवले हैं, और न अरमानों की भीड। एक मिट जाने की हसरत, अब दिले 'बिस्मिल' मे हैं"।।

"तग आकर जालिमो के जुल्म और बेदाद से। चल दिए सूए अदम जिदाने फैजाबाद से"!! (२५५–२५६)

विद्यावाचस्पति जी ने अपने इस इतिहास मे उन सभी प्रवृत्तियो एव राजनीतिक दलो का स्थान दिया है, जिन्होने भारतीय स्वाधीनता सग्राम मे योगदान दिया 'राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास' के लेखक श्री मन्मथनाथ गुप्त ने स्वाधीनता विषयक साहित्य के अभाव पर खेद व्यक्त करते हुए कहा है– 'जब यह पुस्तक पहले पहले (सन् १६४७) मे प्रकाशित हुई थी, उसके बाद लगभग एक पीढी निकल गई है दु ख है कि इस बीच कम से कम हिन्दी मे इस सबध मे कम ही साहित्य प्रकाशित हुआ है, और जो प्रकाशित हुआ है, उसमे कोई मौलिकता नहीं है हा इन्द्र विद्यावाचस्पति जी की एक पुस्तक प्रकाशित हुई है, मुझे खुशी है कि उसमे इन्द्र जी ने मेरे मुख्य प्रतिपाद्य को मान लिया है यानी यह कि राष्ट्रीय आन्दोलन को साफल्य मण्डित करने मे समस्त राजनीतिक दलो एव प्रवृत्तियो का योगदान रहा है'[६८]

'भारतीय स्वाधीनता सग्राम का इतिहास' लिखने हेतु लेखक ने ६ से अधिक विदेशी लेखको और २२ से अधिक भारतीय लेखको द्वारा लिखित सदर्भ ग्रन्थो का उपयोग किया है स्वदेशी लेखको मे डॉ. पट्टाभि सीतारमय्या (काग्रेस का इतिहास) और श्री रमेशचन्द्र दत्त (इडियन इन द विक्टोरिया एज) के ग्रन्थो का और विदेशी लेखको मे सर वैलेण्टाइल शिरोल (इडियन अनरेस्ट) व मि जे आर सीले की इतिहास विषयक सूझ–बूझ को विद्यावाचस्पति जी ने अद्भुत बतलाते हुए कहा है– 'प्रो सीले ने भारत के ५० वर्ष बाद के पर्दे पर आने वाले चित्र की लगभग ठीक कल्पना कर ली थी, परन्तु लॉर्ड मैकाले या प्रो सीले जैसे प्रतिभाशाली अग्रेज अपवाद थे, नियम नहीं सामान्य रूप से बीसवीं सदी के आरभ तक भी अग्रेजो को यह विश्वास था कि वे भारत की रक्षा के लिए ईश्वर की ओर से नियुक्त हुए हैं. (जिस) निकट आ रही भारत की स्वाधीनता का लॉर्ड मैकाले ने स्वागत किया था, (उस) स्वाधीनता की प्रो सीले ने ५० वर्ष पूर्व ही कल्पना की थी.' विद्यावाचस्पति जी ने इस पर आश्चर्य व्यक्त किया है कि '२०वीं सदी के ब्रिटिश राजनीतिज्ञो ने प्रो. सीले जैसे अग्रेज विचारको की चेतावनी पर ध्यान देना क्यो छोड दिया था.[६९]

भारतीय स्वाधीनता सग्राम के इतिहास लेखन में– विद्यावाचस्पति जी ने ग्रंथो के अतिरिक्त आज्ञापत्र, घोषणा–पत्र, मैमोरेण्डम, रिपोर्ट, ऐक्ट, खरीता, बयान, तार, प्रस्ताव, विवरण, भाषण, पत्र, समाचार–पत्र आदि का यथास्थान यथावसर उपयोग किया है सन् १६१६ मे दिल्ली के सत्याग्रह युद्ध में जो अद्भुत हिन्दू–मुस्लिम एकता का रूप दिखलाई दिया उसका वर्णन करते हुए विद्यावाचस्पति जी ने लिखा है 'हिन्दू और मुसलमान मिलकर घी–शक्कर हो गए थे.'[७०] गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालयीन प्राच्य भारतीय इतिहास विभाग व पुरातत्व संग्रहालय के निदेशक डॉ जबरसिह सेंगर ने यह टिप्पणी की है "भारतीय स्वाधीनता सग्राम का इतिहास' लिखते समय पं इन्द्र विद्यावाचस्पति जी ने आर्यजनों को काफी हाईलाइट करने का प्रयास किया है.'[७१] हमारी दृष्टि मे विद्यावाचस्पति जी जैसे तटस्थ इतिहासकार को आर्यजनो पर 'हाई–लाइट' डालने के लिए इसलिए विवश होना पडा, क्योकि अन्य इतिहासकार और महत्वपूर्ण पदों पर बैठे हुए व्यक्ति आर्यजनो के स्वर्णिम ऐतिहासिक पृष्ठो को नजर अदाज और ओझल करने का प्रयत्न कर रहे थे प्रो राजेन्द्र जिज्ञासु के अनुसार– 'विद्यावाचस्पति जी इतिहासकार के रूप मे बडे निष्पक्ष थे उन्हो ने विरोधियो की चर्चा करते समय पक्षपात से काम नहीं लिया. कहीं–कहीं तो वे प्रशसा करते हुए आवश्यकता से भी अधिक उदार दिखाई देते हैं'[७२]

८.६ भाषा-शैली:-

इतिहास लेखन की भाषा शैली के सबध मे विभिन्न मत हैं– कुछ इतिहास लेखको का मत है कि 'इतिहास एक विज्ञान है, इस कारण उसकी भाषा सर्वथा शुष्क व अभिधा प्रधान होनी चाहिये ' इसी से यत्किंचित् मिलता–जुलता दूसरा मत यह है कि 'इतिहास लेखन मे उसे रोचक बनाने का प्रयत्न करने से इतिहास का मूल्य घट जाता है' कुछ विद्वान् यह मानते हैं कि 'इतिहास की वैज्ञानिक छानबीन करने के बाद इतिहास लेखन मे सरस साहित्यिक भाषा अपनाने मे कोई दोष नहीं है' विद्यावाचस्पति जी तृतीय मत के अनुसरणकर्ता हैं वे इतिहास लेखन की प्रक्रिया को दो भागो मे विभाजित करते हैं पहला भाग अन्वेषण अर्थात् इतिहास की विश्वसनीय सामग्री एकत्र करने का काम है, यह भाग विज्ञान की सीमा मे आता है दूसरा भाग लेखन कला का है जो कला की सीमा मे आता है इतिहास लेखक को कला की सहायता उस समय लेनी पडती है, जब वह अपने खोज के परिणामो को दूसरे के सामने रखने लगता हे उस समय वह अन्वेषक या वैज्ञानिक नहीं होता, अपितु कलाकार बन जाता है उनकी धारणा के अनुसार– 'इतिहास और इतिहास की भाषा को असत्य और अत्युक्ति दोष से सर्वथा शून्य रखते हुए साहित्यिक रूप देना ज्यादा श्रेयस्कर है '[७३]

सन् १६३२ मे जब लेखक की मुगल साम्राज्य विषयक पुस्तक प्रकाशित हुई थी तब कई आलोचको ने यह आपत्ति उठाई थी कि पुस्तक की भाषा वैज्ञानिक न होकर साहित्यिक है उस समय बडी विनम्रता के साथ स्पष्टीकरण देते हुए विद्यावाचस्पति ने कहा था "मैं जानता हूँ कि मेरी भाषा न तो बहुत साहित्यिक है और न परिष्कृत तथापि मेरा प्रयत्न यही रहा है कि मैं अपने भावो को यथासभव स्पष्ट और परिष्कृत ढग से पाठको के सामने रख सकूँ यदि इतिहास की घटनाओ के सग्रह और छानबीन मे वैज्ञानिक प्रक्रिया से कार्य लिया गया हो तो उसके लेखबद्ध करने के समय साहित्यिक या परिष्कृत भाषा के प्रयोग को गुण ही मानना चाहिये, दोष नहीं "[७४]

विद्यावाचस्पति जी अपने ऐतिहासिक वाड्मय मे कहीं विदेशी लेखको से सहमत हैं तो कहीं असहमत, कहीं तीव्र आलोचक हैं तो कहीं प्रशसक, कहीं विदेशियो का अन्धानुकरण करने वाले भारतीय इतिहास लेखको को कोसते हैं, तो कहीं विदेशियों और भारतीय लेखको–दोनो से ही असहमति व्यक्त करते हुए अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से मध्यमार्ग का अनुसरण करते हैं या एक अभिनव मत प्रस्तुत करते हुए नजर आते है विदेशी पक्षपाती लेखको की जहाँ उन्होने तीव्र आलोचना की है, वहाँ निष्पक्ष विदेशी इतिहासवेत्ताओ की भरपेट प्रशसा भी की है विद्यावाचस्पति जी के जीवन और साहित्य के इस लचकीलेपन को देखकर श्री विष्णु प्रभाकर ने उन्हे 'समन्वयशील और सतुलित वृत्ति वाला' मानते हुए कहा है 'कथा साहित्य मे यह वृत्ति उतनी प्रभावशालिनी नहीं होती जितनी इतिहास लेखने में', पश्चात् उन्होने उनकी भाषा शैली का इस प्रकार विवेचन किया है. 'विद्यावाचस्पतिजी की सहज–सरल भाषा, सहज सुगम शैली, स्पष्ट सुलझे हुए विचार सब मिलाकर एक ऐसा चित्र पाठक के मन पर अकित करते हैं कि वह उसे कभी भूल नहीं पाता और उसका अर्थ समझने के लिए उसे द्राविड प्राणायाम भी नही करना पडता.'[७५] हमारी दृष्टि से भी विद्यावाचस्पति की ऐतिहासिक वाड्मय की भाषा सुबोध और सर्वसाधारण के योग्य है, तथा मुहावरो, लोकोक्तियो, यथावश्यक सदर्भों, सूक्ति वाक्यो व सहज अलकारो से सुसज्जित है

निबन्धमालाकार विष्णुशास्त्री चिपलूणकर के अनुसार इतिहास लेखन के अनेक उद्देश्यो मे से एक उद्देश्य मनोरजन भी है विद्यावाचस्पतिजी भी इतिहास को उपन्यासो से भी अधिक मनोरजक शैली मे लिखने के पक्षपाती रहे हैं ' 'शाह आलम की ऑखे' उपन्यास मे विद्यावाचस्पतिजी मे छिपा इतिहासकार जाग उठता है और वकालत करता हुआ उपन्यास के बीच मे ही पाठको से सवाद

स्थापित करते हुए कहता है 'शायद आप पूछ बैठे कि यदि ऐसा ही है तो लोग उपन्यास क्यो पढते हैं?' इतिहास मे पाठको की अरूचि होने का दोष वे इतिहास लेखको पर डालते हुए इतिहास लेखन के तीन प्रकारो पर प्रकाश डालते हैं– १ इतिहास को तिथियो या घटनाओ का सूची पत्र बना देना २ इतिहास के बहाने राजनीति के शास्त्रीय रहस्य बखान करने का प्रयास करना और ३ इतिहास को मनोरजक शैली मे लिखना मनोरजक शैली मे इतिहास लिखने वाले लॉर्ड मैकाले का उदाहरण देते हुए उन्होने लिखा है 'लार्ड मैकाले ने इग्लैण्ड का इतिहास लिखकर कुछ समय के लिए ड्राइग रूमो से उपन्यास उठा दिये थे, उस इतिहास मे लिखी हुई घटनाये उपन्यास से भी अधिक मनोरजक प्रतीत होती हैं' अपनी बात समाप्त करते हुए उन्होने अपने ऐतिहासिक उपन्यास 'शाह आलम की ऑखे' मे किसी ऐतिहासिक ग्रथ के उपन्यास सदृश प्रतीत होने वाले (७७ पक्तियो, आठ परिच्छेदो या तीन पन्नो के) प्रदीर्घ घटना चक्र को प्रस्तुत करते हुए कहा है– 'यह इतिहास ग्रथ का उल्लेख है या उपन्यास का यह समझना आपके लिए दुष्कर होगा' घटना चक्र समाप्त होने पर पुनश्च वे कहते हैं, 'पाठक सीधे इतिहास का परिच्छेद यहाँ समाप्त होता है, अब आगे जो कुछ हुआ वह उपन्यास के मुँह से सुनिये'[७६] इस प्रकार अपने ऐतिहासिक उपन्यास मे उन्होने इतिहास को उपन्यासवत् मनोरजन शैली मे लिखने का जोरदार समर्थन किया है विद्यावाचस्पतिजी ने प्राय अपने समस्त ऐतिहासिक वाड्मय मे बीस–पच्चीस से भी अधिक बार इतिहास सुनाने के स्थान पर कहानी सुनाने का उल्लेख किया है इससे यही स्पष्ट होता है कि वे इतिहास को मनोरजनात्मक शैली मे लिखने के प्रबल पक्षधर थे उनका यह मत सन् १६१८ मे ही बन चुका था ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास की भूमिका मे उन्होने मनोरजन के आशय को 'कहानी' मे समेटते हुए कहा है– 'जहा इतिहास का आधार सर्वथा सत्य होना चाहिये, वहा उसकी लेख–शैली ऐसी होनी चाहिये कि वह कथा बन जाय, कथा तो हो, परन्तु हो सत्य'

मि गिब्बन के 'डिक्लाइन ऑफ रोमन एम्पायर' नामक ऐतिहासिक ग्रथ को, भाषा–शैली, वर्णन के अनूठे ढग, लालित्य, सौन्दर्य एव व्यक्ति चित्रण के कारण अग्रेजी साहित्य मे जैसी विलक्षणता प्राप्त हुई है, न्यूनाधिक रूप मे वैसी ही विलक्षणता विद्यावाचस्पति जी के 'मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण' ग्रथ को हासिल हुई है उनके द्वारा की गई राणा प्रताप और अकबर की तुलना अद्भुत रम्य है उन्होने अकबर की तुलना तूफान से और राणा प्रताप की चट्टान से की है तूफान चचल और अस्थायी है, परन्तु चट्टान स्थिर और स्थायी[७७] औरगजेब और शिवाजी की तुलना करते हुए वे लिखते हैं 'एक ही समय मे भारत भूमि ने दो असाधारण पुरुष पैदा किये– एक दिल्ली के राजसी प्रासाद मे, दूसरा पूना की झोपडी मे एक धन–जन–सुरक्षित साम्राज्य का स्वामी था दूसरा केवल अपनी तलवार का दोनो के कारनामो की ऐसी टक्कर हुई कि भारत का नक्शा पलट गया 'शिवाजी की धार्मिक दृष्टि उसकी स्वभावसिद्ध उदारता की सहचरी थी, और औरगजेब की धार्मिक दृष्टि अनुदारता की सखी बनकर धर्मान्धता के रूप मे परिणत हो गई थी इस भेद से दोनो के चरित्र मे दिन और रात का भेद हो गया था'[७८] इसी प्रकार विद्यावाचस्पति जी ने 'शाहजहाँ' (पृ ८६) जहाँनारा (पृ ११६) राजा राममोहन राय (२०२) झासी की रानी लक्ष्मीबाई (२०२) लाला हरदयाल (१३४–१३५) आदि का यथा प्रसग सुदर चित्रण किया है विश्वप्रसिद्ध ताजमहल का अनूठा वर्णन करते हुए वे लिखते हैं– 'ताज' क्या है, यह लिखने का नहीं, देखने का विषय है ताज ससार का आश्चर्य है, भारत का गहना है, मुगल साम्राज्य की विभूति का नमूना है और शाहजहाँ की विशाल कल्पना का एक टुकडा है' (६०–६१)

शैलीकार श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' विद्यावाचस्पति जी की लेखन शैली पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं– 'इन्द्र विद्यावाचस्पति जी की इतिहास लिखने की अपनी ही शैली है यह शैली इतिहास

की प्रामाणिकता के साथ उसे उपन्यास की रोचकता भी प्रदान करती है और अपने छोटे–छोटे रिमार्को से पाठक को इतिहास समझने की दृष्टि भी देती है "[७९] उदाहरण के रूप मे धर्म और 'विश्वासघात' विषयक दो रिमार्क क्रमश प्रस्तुत हैं, 'न कोरी तपस्या मे धर्म है और न सिर्फ पूजा–पाठ या कुरान बॉचने मे धर्म तो जीवन की पवित्रता मे है, और परमात्मा की सच्ची भक्ति मे है ' 'विश्वासघात जैसा महापाप किसी अश मे यदि क्षन्तव्य हो सकता है, तो केवल उसी दशा मे, यदि उसका परिणाम पराधीनता का नाश और स्वाधीनता की प्राप्ति हो '[८०] इतिहास और कलात्मक भाषा शैली की अद्भुत समन्वय साधना के कारण विद्यावाचस्पति जी के ऐतिहासिक ग्रन्थो की गणना 'इस विषय पर लिखे गये प्रथम श्रेणी के ग्रन्थो मे की जाती है '[८१]

८.७ राजनीतिः स्वरूप विवेचनः-

राष्ट्र की रक्षा और शासन को सदृढ करने का उपाय बतलाने वाली नीति राजनीति कहलाती है इसी नीति से राष्ट्र और उसके प्रशासन का सचालन किया जाता है विभिन्न गुटो की पारस्पारिक स्वार्थ वाली तथा स्वार्थ पूर्ण नीति को भी राजनीति के नाम से ही सबोधित किया जाता है वेद, मनुस्मृति (के सप्तम, अष्टम, नवम अध्याय) शुक्रनीति, विदुर नीति, महाभारत (शान्ति पर्व के राजधर्म और आपद्धर्मादि से सबद्ध परिच्छेद) पचतन्त्र (हितोपदेश) बार्हस्पत्य राजधर्म सूत्र, कौटिल्य अर्थशास्त्र, चाणक्यसूत्र, चाणक्य नीति आदि सस्कृत ग्रथ राजनीति आदि और तद्विषयक शास्त्र से सबधित ग्रन्थ हैं, प्राच्य आर्ष वाड्मय की परपरा का अनुसरण करते हुए स्वामी दयानद ने भी 'सत्यार्थ प्रकाश' मे राजनीति को 'राजधर्म' के नाम से सबोधित किया है महात्मा गाधी भी राजनीति पर धर्म का नियत्रण और अनुशासन आवश्यक मानते थे डॉ भवानी लाल भारतीय के अनुसार 'सिद्धान्तत धर्म और राजनीति को पृथक् नही किया जा सकता'[८२]

८.८ राजनीति विषयक साहित्यः-

विद्यावाचस्पति जी राजनीति विषयक साहित्य राजनीति शास्त्र का गभीर विश्लेषण करने वाला साहित्य नहीं है अपितु वह साहित्य उनकी सम–सामायिक राजनीति पर उस–उस समय पर प्रकट की गई वैचारिक प्रतिक्रियाओ का प्रतिबिम्ब है उनकी राजनीति विषयक साहित्य सपदा निम्न प्रकार है १– 'राष्ट्रो की उन्नति' (१९१४), २– 'राष्ट्रीयता का मूलमन्त्र' (१९१४), ३– 'जीवन सग्राम' (१९४५), ४– 'स्वतत्र भारत की रूपरेखा' (१९४७), ५– 'दैनिक वीर अर्जुन मे प्रकाशित राजनीति विषयक सपादकीय लेख' (१९४६–१९५६), ६– 'राजधर्म– एक निवेदन' (१९५०), ७– 'स्वराज्य और चरित्र निर्माण' (१९५४), ८– 'यदि आचार्य चाणक्य प्रधान मन्त्री होते' (१९६१)

'राष्ट्रों की उन्नति' व 'राष्ट्रीयता का मूलमन्त्र' (१९१४):- उक्त दोनो पुस्तके अनुलब्ध एव दुर्लभ है इन दोनो पुस्तको के प्रकाशित किये जाने की सूचना 'प्रिस बिस्मार्क' (१९१४) नामक जीवन चरित्र मे 'विषय सूची' से पूर्व 'सद्धर्म प्रचारक' पत्र के प्रबन्धकर्ता की ओर से 'ग्रथकर्ता की अन्य पुस्तके' शीर्षक से दी गई है साथ ही कलकत्ते के सुप्रसिद्ध मासिक 'मॉडर्न रिव्यू' की उक्त दोनो पुस्तको के सबध मे दी गई अग्रिम सम्मति उद्धृत की गई है 'दोनो निबन्धो का विषय प्रतिपादन अत्युत्तम है निबन्धो के अन्दर आये हुए नए भावो और लेख शैली की सुन्दरता और स्पष्टता के कारण हम इन्हे पढने की पाठको को सलाह देते हैं'.

'जीवन-संग्राम' (१९४५):- इस अहिसा–हिसा का विश्लेषण करने वाली पुस्तक की जन्म कथा को जानने के लिए तत्कालीन पृष्ठभूमि जान लेना जरूरी है सन् १९४१ मे भारतीय राजनीति मे हिसा अहिसा का वाद–विवाद बहुत तीव्र हुआ था स्वय विद्यावाचस्पतिजी भी २५ वर्ष से कॉग्रेस के सदस्य होते हुए भी महात्मा गाधीजी द्वारा प्रस्तुत अहिसा को अधूरा और अव्यवहारिक मानते थे

और अपनी इस दृष्टि को उन्होने गुप्त नहीं रखा था इसी मतभेद के कारण उन्होने सन् १६४१ मे कॉग्रेस से त्यागपत्र दे दिया था जब त्यागपत्र की बात गाधीजी के पास पहुँची, तब उन्होने यह व्यवस्था दी थी कि 'ऐसी दशा मे भी उन्हे कॉग्रेस का सदस्य रहने दिया जा सकता है' गाधीजी के समूचे व्यक्तित्व को देखते हुए स्वय विद्यावाचस्पति जी ने कहा है "महात्माजी स्वय विशेष अवस्थाओ मे आततायी का हाथ रोकने के लिए बल प्रयोग के विरोधी नहीं थे एक बार स्वय महात्मा जी ने गुण्डो से स्त्रियो की सतीत्व रक्षा के प्रश्न पर सम्मति देते हुए लिखा था" जिस स्त्री पर इस तरह का हमला हो वह उस समय हिसा–अहिसा का विचार न करे ईश्वर ने उसे नाखून दिये हैं, दात दिये है और ताकत दी है, वह उनका उपयोग करे, और करते–करते मर जाय ' महात्मा जी ने एक बार आश्रम मे दु ख से तडपते हुए बछडे को भी यातना से बचाने के लिए मार डालने की अनुमति दी थी[३] यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि कॉग्रेस से त्यागपत्र देने के बाद और तत्पश्चात् महात्मा जी से अभिनव व्यवस्था मिलने पर जब विद्यावाचस्पति जी ने दुबारा कॉग्रेस की सदस्यता का फार्म भरा तब उस पर यह अकित कर दिया था कि 'मैं मानता हूँ कि आत्मरक्षा मे बल प्रयोग करना वर्जित नही है ' इसके बाद वे पुनश्च कॉग्रेस के सदस्य बन गये और उन्हे यह आशका रही कि कहीं मेरे मन्तव्य के सबध मे भ्रमात्मक विचार न फैल जाय इसी आशका के निवारण के लिए उन्होने 'जीवन सग्राम' नामक पुस्तक लिखी थी[४]

'स्वतन्त्र भारत की रूपरेखा' (१६४८):- यह कृति पुस्तक रूप मे निकलने से पूर्व लेखमाला के रूप मे स्वय लेखक द्वारा सचालित साप्ताहिक 'वीर अर्जुन' मे क्रमश प्रकाशित हुई थी इसका प्रकाशन १६४७ के जुलाई मास मे आरभ हुआ था और देश विभाजन से पूर्व ये पूरे लेख प्रकाशित हो चुके थे विभाजन होने के कारण देश की परिस्थिति मे परिवर्तन आ गया है तो भी सिद्धान्त रूप मे जो भी बात लिखी गई है, उसमे परिवर्तन नहीं हुआ है पुस्तिका मे अनुस्यूत राजनैतिक मन्तव्य लेखक के जीवन भर के अध्ययन, अनुभव और चितन के परिणाम है[५] उनका मुख्य आग्रह था कि 'स्वतत्र भारत के सविधान रूपी भवन का निर्माण भारतीय सस्कृति के आधार पर होना चाहिये ' पुस्तिका मे ग्रथित विचारो के बारे मे उनका आत्मविश्वास है कि 'ये विचार देश के लिए कल्याणकारी है साथ ही उसने यह चेतावनी भी दी है कि 'यदि उन पर ध्यान न दिया गया तो देश के लिए अनिष्ट होने की आशका है जिस विधान मे भारतीयता की उपेक्षा करके विदेश से लाये हुए किन्हीं सिद्धातो का आश्रय लिया जायेगा, वह चिरकाल तक नहीं चल सकेगा और जब तक चलेगा देश मे बेचैनी और असन्तोष का राज्य होगा राष्ट्र की आत्मा अराष्ट्रीय विधान से तब तक लडती रहेगी, जब तक उसे भारतीय न बना लेगी ' लेखक ने इस रचना का निर्माण उन दिनो किया था जब भारतीय विधान परिषद् देश के भावी विधान का निर्माण कर रही थी लेखक के अनुसार 'इस परिषद् मे देशभर की योग्यता और विचार शक्ति का निचोड विद्यमान था ' उक्त परिषद् का ध्यानाकृष्ट करने के लिये ही यह पुस्तक लिखी गई थी

भारत के सवैधानिक इतिहास मे ६ दिसबर १६४६ से २६ नवबर १६४६ तक का समय भारतीय सविधान बनाने का काल था इस कालवधि मे विभिन्न राजनैतिक दल व अन्य सगठन देश के भावी संविधान को अपने–अपने ढग से प्रभावित करने का प्रयास कर रहे थे विद्यावाचस्पति जी इस समय आर्यसमाज के अतर्राष्ट्रीय सगठन–सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान थे उन्होने एक समाज–सेवी, पत्रकार और सतर्क राजनीतिज्ञ के नाते तत्कालीन सविधान को इस रचना द्वारा प्रभावित और प्रेरित करने का यथाशक्ति प्रयास किया है भारत का सविधान बनाने के लिए जो एक सर्वसमावेशक सविधान सभा गठित की गई थी उसकी कुल सख्या २६८ थी, जिनमे ३२ मुसलमान, ४ सिख और २६२ गैर मुस्लिम थे ये २६२ गैर मुस्लिम सदस्य प्राय हिन्दू धर्म के अनुयायी थे, उनमे ४८

आर्यसमाजियो का समावेश था '[६६] अन्य हिन्दू सदस्यो मे स्वामी दयानन्द की शिक्षाओ से प्रभावित और आर्यसमाज की उपयोगिता को मानने वाले बहुत सदस्य थे पुनरपि निश्चित रूप से यह कहना कठिन है कि आर्य नेता व पत्रकार विद्यावाचस्पति जी के विचारो ने तत्कालीन सविधान सभा को कितना और किस रूप मे प्रभावित किया इतना ही कहा जा सकता है कि विद्यावाचस्पति जी का 'वीर अर्जुन' राजधानी दिल्ली काप्रमुख पत्र था जो कि उनके लेखो के कारण विशेष लोकप्रिय था उन दिनो गभींरता से सविधान सभा के स्वरूप पर विचार करने वाले व्यक्तियो के मस्तिष्क को विद्यावाचस्पति जी के विचारो ने न्यूनाधिक रूप मे निश्चित रूप से आन्दोलित व प्रभावित किया होगा देश के एक सजग बुद्धिजीवी के नाते अपने भारत हितैषी विचारो को व्यक्त कर उन्होने एक सच्चे नागरिक और चिंतक के रूप मे अपना उत्तरदायित्व पूरा किया

विद्यावाचस्पति जी सविधान मे स्वदेश का नाम केवल भारतवर्ष के रूप मे देखना चाहते थे, 'इण्डिया' नाम भी साथ मे रख देने से वे बहुत ही असतुष्ट रहे वे यह भी चाहते थे कि भारतीय सविधान भारतीय सस्कृति पर आधारित हो पर उनकी यह इच्छा भी पूरी न हो पायी अत उन्होने खेद व्यक्त करते हुए कहा कि– 'हमने अग्रेजो से स्वाधीन होकर भी अपने कानून, विधान, भाषा, रहन–सहन और कारोबार मे इग्लैण्ड की अधीनता मानो स्थिर रूप से स्वीकार कर ली है कानून के सदर्भ मे उन्होने कहा था कि 'इग्लैण्ड से ली हुई न्याय प्रणाली से बडे–बडे वकीलो और कानूनी नुक्तो के द्वारा अपराधी को न्यायालय से मिलने वाले दण्ड की आशका बहुत कम हो गई है फलत देश मे दिन–दहाडे खुले अपराध करने की प्रवृत्ति हो रही है'[६७]

'वीर अर्जुन' में प्रकाशित राजनीति विषयक संपादकीय लेख (१६४६-१६५६):- श्री बनारसीदास चतुर्वेदी जी ने विद्यावाचस्पति जी के उत्कृष्ट लेखो का सग्रह प्रकाशित करने की कामना व्यक्त करते हुए टिप्पणी की थी कि 'अर्जुन' मे प्रकाशित उनके महत्वपूर्ण अग्रलेखो का सग्रह हो जाना चाहिये '[६८] प्रो विजयेन्द्र स्नातक ने भी स्वीकार किया है कि 'पत्रकारिता के क्षेत्र मे आने के बाद विद्यावाचस्पति जी ने राजनीति विषयक सैकडो लेख लिखे थे, किन्तु उन लेखो को एकत्र कर सकलित नहीं किया गया इस कारण उनकी राजनीति विषयक विचारधारा को सही रूप मे नहीं देखा जा सका यदि दैनिक अर्जुन मे प्रकाशित उन लेखो को सकलित किया जाता तो तत्कालीन भारत की राजनीतिक तथा विदेशो की राजनीति मे होने वाले परिवर्तनो को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता था'[६६] वस्तुत यह खेद की बात है कि दिल्ली के सक्रिय राजनेता एव दिल्ली की बजर भूमि मे हिदी का सर्वप्रथम दैनिक निकालने वाले राजनीतिज्ञ पत्रकार विद्यावाचस्पति जी के सपादकीय लेखो का यथावत् रूप मे सकलन नहीं हो सका, फिर भी इस बात का सतोष है कि श्री सत्यकाम विद्यालकार और अवनीन्द्र विद्यालकार ने अपनी 'इन्द्र विद्यावाचस्पति' जीवनी मे उनके अविकल लेखो का तो नहीं, पर उनके 'वीर अर्जुन' मे प्रकाशित महत्वपूर्ण ३५ सपादकीय लेखाशो का सग्रह किया है, जिनसे उनका राजनीति विषयक चितन स्पष्ट होता है

'क्या पाकिस्तान भारत पर आक्रमण कर सकता है?', 'राजदण्ड हाथ मे लो', 'दब्बू नीति से काम नहीं चलेगा', 'भारत का इग्लैण्ड से क्या सबध हो' इत्यादि विद्यावाचस्पतिजी के सपादकीय लेखो के लेखाश उनकी राजनीतिक सूझ–बूझ व दूरदर्शिता के परिचायक हैं 'काश्मीर की समस्या', 'विदेशी कूटनीति', 'राजनीति मे दण्ड का महत्व' इत्यादि प्रासगिक विषयो पर उनके द्वारा प्रकट किये गये विचार अतीत की तरह वर्तमान सदर्भ मे भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं, उनसे पदे–पदे विद्यावाचस्पति जी के कूटनीय व ज्ञान राजनीतिक चितन की विशिष्ट झलक प्राप्त होती है उदाहरण के रूप में उनके राजनीतिक चितन के एक–दो बिदु प्रस्तुत हैं –

"इग्लैण्ड भौगोलिक दृष्टि से तो भारत से अपना बोरिया–बिसतर बाधकर उठा ले गया है,

परन्तु लक्षणो से प्रतीत होता है कि उसकी अन्तरात्मा अभी बहुत समय तक भारत के अन्तरिक्ष पर मडराती रहेगी, इधर अमेरिका भी दूसरे विश्वव्यापी युद्ध के पश्चात् शतरज के खेल मे पूरी तरह शामिल हो गया है, उसे भी एशिया प्रदेश मे चलने के लिए कोई न कोई मोहरा चाहिये लक्षणो से प्रतीत होता है कि भारतीय सघ अभी किसी अन्य देश का मोहरा बनने को तैयार नहीं है ऐसी दशा मे यूरोप के पश्चिमीय सघ की दया–दृष्टि पाकिस्तान पर पडे तो कोई आश्चर्य नही लक्षणो से प्रतीत होता है कि पाकिस्तान उन देशो का मोहरा बनने को तैयार है" "काश्मीर पर पाकिस्तानी सेनाओ का आक्रमण भारत पर पाकिस्तानी सेना के आक्रमण की भूमिका है वे लोग काश्मीर को टटोलकर देखना चाहते है कि भारत सरकार मे कितनी जान है' (वीर अर्जुन २६ अक्टूबर १६४७)

'राजधर्म-एक निवेदन' (१६५०):- इस पुस्तक का विस्तृत नाम है 'महर्षि दयानन्द प्रणीत राजधर्म' पुस्तक की जन्मकथा बतलाते हुए पुस्तक के सपादक प लक्ष्मीदत्त दीक्षित (स्वामी विद्यानन्दजी सरस्वती) ने लिखा है, 'सन् १६५० मे डॉ राजेन्द्रप्रसाद भारत के राष्ट्रपति निर्वाचित हुये २६ जनवरी को उनका स्वतत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति का स्वतत्र भारत की राजधानी मे जुलूस निकलना था १५ जनवरी को सार्वजनिक सभा मे निश्चय हुआ कि सत्यार्थप्रकाश के छठे समुल्लास के आधार पर वैदिक राजनीति का एक ग्रन्थ हिन्दी और अग्रेजी दोनो भाषाओ मे तैयार किया जाय और जिस समय राष्ट्रपति का जुलूस चादनी चौक मे से गुजरे तब आर्यसमाज दीवानहॉल के निकटस्थ मोती सिनेमा के पास सार्वजनिक सभा के प्रधान प इन्द्र विद्यावाचस्पति वह पुस्तक राष्ट्रपति को भेट करे तदनन्तर इसकी एक–एक प्रति लोकसभा तथा राज्यसभा के सदस्यो को भेट की जाय अन्तरग सभा की स्वीकृति लेकर प इन्द्र विद्यावाचस्पति ने यह कार्य मुझे सौंप दिया मैने केवल ६ नि के भीतर सब काम पूरा करके २४ जनवरी को दोनो भाषाओ मे पुस्तक की एक–एक प्रति प इन्द्र जी के हाथो मे थमा दी'[१०]

उक्त पुस्तक प्रथम राष्ट्रपति डॉ राजेन्द्रप्रसादजी को आर्य जगत् की ओर से तत्कालीन सार्वदेशिक सभा के प्रधान विद्यावाचस्पति जी ने समर्पित की है, स्वामी विद्यानन्दजी के अनुसार 'यह पुस्तक राष्ट्रपति जी को निश्चित रूप से भेट तो की गई, पर निश्चयानुसार २६ जनवरी के जुलूस के अवसर पर भेट न की जा सकी'[११] इस पुस्तक के चार पृष्ठीय प्रारभिक निवेदन मे विद्यावाचस्पति जी ने प्रतिपादित किया है "महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रन्थो मे केवल राजनीति के मौलिक सिद्धातो की व्याख्या करके ही सतोष नहीं किया भारत के प्राचीन ग्रन्थो के आधार पर उन्होने व्यावहारिक राजनीति का भी विस्तार से प्रतिपादन किया है वह प्रतिपादन इतना व्यापक और उपयोगी है कि प्रत्येक शासक को उसका अध्ययन करना चाहिये और आवश्यकतानुसार उससे लाभ उठाना चाहिये महर्षि दयानद अग्रेजी नही जानते थे जो कुछ कहा या लिखा वह उनकी अन्तर्दृष्टि का परिणाम था, और यह बात असदिग्ध है कि अन्तर्दृष्टि से उद्भूत विचार मनुष्य के सबसे उत्तम मार्गदर्शक होते हैं"

'स्वराज और चरित्र निर्माण' (१६५४):- इस पुस्तिका का उद्देश्य बतलाते हुए, 'निवेदन' मे विद्यावाचस्पति जी ने स्पष्ट किया है– 'स्वतत्र राष्ट्र की रक्षा के लिए चरित्र निर्माण से बढ़कर आवश्यक कोई कार्य नहीं है यह विचारकर मैंने इस विषय पर कुछ लेख लिखे थे वह लेख दिल्ली के 'हिन्दुस्तान' तथा सहारनपुर के 'ज्ञानोदय' मे समय–समय पर प्रकाशित हुए, अपने विचार को देश के नेताओ तथा जनता के सम्मुख व्यापक रूप से रखने के लिए मैंने उन्हे पुस्तिका के रूप मे प्रकाशित कर दिया है' पुस्तक मे प्रसगवशात् विद्यावाचस्पति जी ने 'समाचार पत्रो का दायित्व' 'सिनेमा का प्रभाव', 'रेडियो कार्यक्रम' आदि पर भी अपने महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किये है

'यदि आचार्य चाणक्य प्रधानमंत्री होते' (१६६१):- यह विद्यावाचस्पति जी द्वारा लिखित

उनके 'जीवन का अन्तिम लेख है' जो उनके देहान्त से ६ दिन पूर्व 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' मे १४ अगस्त १६६० को प्रकाशित हुआ था इस रचना को एक दस पृष्ठीय पुस्तिका का रूप देते हुए 'आर्य केन्द्रीय सभा–दिल्ली' के प्रधान श्री रामगोपाल शालवाले ने अपने प्रकाशकीय निवेदन मे कहा था 'इस लेख मे भारतीय आत्मा का साक्षात् दर्शन और राष्ट्र का कल्याण निहित है स्वर्गीय आत्मा को इस महान् पथ–प्रदर्शन के लिए आदराजलि प्रस्तुत करता हुआ चाहता हूँ कि इस ट्रेक्ट का करोडो की सख्या मे प्रचार हो, जिससे भारत के कोटि–कोटि नर–नारी अपने राष्ट्र को ठीक दशा मे ले जा सके इसे उन्होने 'गभीर चिन्तन और मनन पूर्वक लिखा एक महत्वपूर्ण लेख' माना है

प्रस्तुत पुस्तिका मे विद्यावाचस्पति जी नेआर्य चाणक्य के तपस्वी, तेजस्वी व आदर्श व्यक्तित्व की चर्चा करते हुए उनके द्वारा लिखित 'चाणक्य सूत्र' के माध्यम से शासन से सबद्ध तथा राष्ट्रहित की दृष्टि से अपेक्षित मन्त्रियो के अत्यावश्यक गुण, विदेश नीति, गृहनीति, दण्डनीति आदि पर गहन मार्मिक विचार अभिव्यक्त किये हैं लेख के अन्त मे राष्ट्र के कर्णधारो से अपील करते हुए उन्होने टिप्पणी की है– "यदि भारत के वर्तमान भाग्यविधाता चाणक्य के सूत्रो का और अर्थशास्त्र का ध्यान से अनुशीलन करे तो अवस्थाओ मे भारी भेद होते हुए भी आज के शासन को चलाने के लिए बहुत उत्तम निर्देश प्राप्त कर सकते हैं प्रजातन्त्र के नवीन सिद्धातो के अपनाने के साथ–साथ यदि हम भारत की प्राचीन शासन प्रणाली की सादगी तथा पेचीदगियो से रहित कार्यक्षमता को अपनाने का यत्न करे, और शासनकर्ता जनता के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध रखने की प्रवृत्ति को बढा सके तो हमारे स्वराज्य को सुराज्य बनने मे बहुत सहायता मिलेगी"

विद्यावाचस्पति जी ने सक्षेप मे चाणक्य की विशेषताओ पर प्रकाश डालते हुए कहा है– 'चाणक्य की यही महिमा थी कि वह सेनानी थे, विद्वान भी थे और शासक भी थे वह सब प्रवृत्तियो की सीमा को जानते थे उनमे आदर्श और व्यावहारिकता का समन्वय था' वर्तमान सदर्भ मे भी वे चाणक्य जैसे दूरदर्शी, कठोर राजनीतिज्ञ की आवश्यकता महसूस करते हुए प्रतिपादित करते है– 'आज शासन को चाणक्याचार्य की आवश्यकता है सन्तो की नही सन्त यदि जनता के आचरण सबधी स्तर को ऊँचा करने मे लगे रहे तो बडी कृपा होगी' इसी समय वे आर्य–चाणक्य के पथानुगामी सरदार पटेल का स्मरण करते हुए स्वीकार करते है– 'सादगी और समन्वय बुद्धि मे यदि किसी वर्तमान काल के नीतिज्ञ को आचार्य के मार्ग का राही माना जा सकता था तो वह सरदार वल्लभभाई पटेल थे'

लेखक ने यदि आज आर्य चाणक्य जीवित होते तो कैसे रहते? किन उपायो से देश की प्रजा को सुखी बनाते? और किस प्रकार आक्रान्ताओ को परास्त करते? इन सबका एक मधुर मनोरम चित्र प्रस्तुत किया है जो काल्पनिक होते हुए भी देश के उज्ज्वल भविष्य की दृष्टि से अनुसरणीय है सबसे पहले वे उनके निवास स्थान की कल्पना करते हुए कहते हैं–

'यदि आज आचार्य चाणक्य प्रधानमन्त्री होते तो वे सभवत (पहले की तरह) फूस की कुटिया मे तो न रह सकते थे क्योकि नई दिल्ली की गन्दी बस्तियो के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं छप्पर बनाने की आज्ञा शायद ही मिले, परन्तु यह हो सकता है कि ऐसे छोटे से मकान मे रहते, जैसे मकान मे महात्मा गाधी रहा करते थे निश्चय ही वह कोई ऐसा महल या शानदार भवन होता जिसकी रक्षा के लिए हजारो की राशि व्यय करनी पडती'

आचार्य चाणक्य के निवास स्थान पर प्रकाश डालने के बाद वे उनका जीवन किस प्रकार की सादगी से परिपूर्ण होता इसका विवेचन करते हुए कहते हैं 'वे स्वय अत्यत सादा जीवन व्यतीत करके, अन्य केन्द्रीय और प्रादेशिक मन्त्रियो को भी सादा जीवन व्यतीत करने के लिए मजबूर करते

उससे दो लाभ होते एक तो अधिकारियो तथा सामान्य प्रजा के मध्य जो गहरी खाई बनती जा रही है, वह न बनती और राष्ट्र के कोष पर इतना भारी बोझ भी न पडता आचार्य चाणक्य का निजी व्यय ५०० रुपये मासिक से शायद कुछ कम ही होता'

काल्पनिक मनोराज्य मे वर्तमान प्रधानमत्री चाणक्य के रहन–सहन का चित्रण करने के बाद वे उनकी मन्त्रिमण्डल की चयन पद्धति पर मीमासा करते हुए कहते हैं– 'वे केवल उन्ही मन्त्रियो को नियुक्त करते जो जिस विषय के मन्त्री बन रहे हैं, उसके विशेषज्ञ हो, और लोभ से ऊँचे उठे हुए हो उनकी महत्वाकाक्षा यह होती कि वह विशुद्ध जीवन व्यतीत करते हुए जब कार्य से अलग हो, तो उनके बैंक मे या जमीन मे, या कारखानो मे बहुत सा धन हो या नहीं, प्रजा के हृदय मे उनके प्रति कृतज्ञता का भाव अवश्य हो'

पडौसी देशो के प्रति वर्तमान चाणक्य की सतर्कता का उल्लेख करते हुए वे कहते है– 'यदि आचार्य चाणक्य पर भारत के शासन का भार होता तो वह चीन, पाकिस्तान और बर्मा तीनो की सीमा प्रान्तो पर सुरक्षा का समान रूप से प्रबन्ध करते, यह समझकर कि सास्कृतिक और धार्मिक क्षेत्र मे चीन भारत का इतना ऋणी है कि वह कृतज्ञतावश सदा भारत का मित्र बना रहेगा, ऐसी निराधार कल्पना आचार्य के दिमाग मे नहीं आ सकती थी'[५२]

अन्त मे लेखक ने वर्तमान चाणक्य की न्यायालयो की दशा व न्याय प्रणाली पर प्रकाश डालते हुए कहा है– 'निश्चय है कि वे न्यायालयो की दशा ऐसी निर्बल और ढीली न रहने देते चाणक्याचार्य के शासन मे ऐसी पेचीदा, महगी न्याय प्रणाली न रहती उसमे खूनी और लुटेरे निर्दयतापूर्वक न विचरते और शान्तिप्रिय भले नागरिको को दुबकने की जरूरत न पडती'

विद्यावाचस्पति जी के इस लेख मे कुछ राजनीति से परिपूर्ण सूक्तियॉं भी विद्यमान है जैसे– १– 'किसी देश के शासक को यह न समझना चाहिये कि अमुक पडोसी से हमारा कभी झगडा नहीं हुआ, इस कारण आगे भी कभी न होगा'[५३] २– 'केवल शाति की रट लगाने से या शाति की सन्धि करने से भी स्थिर शाति नहीं रह सकती शाति सभव है, शक्तिशाली बनने से देश को तपा हुआ लोहे का गोला बनना चाहिये ताकि अन्य तपे हुए गोले उससे सहित हो सके[५४] ३– 'मित्रता किसी अतिप्रबल शत्रु के कारण उत्पन्न होती है और भय के जाते ही काफूर हो जाती है'[५५]

इस प्रकार विद्यावाचस्पति जी के इस राजनीति विषयक साहित्य व चितन से स्पष्ट है कि वे केवल साहित्यिक, पत्रकार ही नहीं, अपितु उच्चकोटि के राजनीतिशास्त्रवेत्ता व राजनीतिज्ञ भी थे उनके राजनीति विषयक साहित्य मे प्राच्य ऐतिहासिक घटनाओ के विश्लेषण के साथ राष्ट्र नायको को समय–समय पर विनम्रतापूर्वक यथोचित चेतावनी भी दी गई है वे स्वाधीनता सेनानी, दिल्ली प्रान्तीय कॉंग्रेस कमेटी के प्रधान व राज्यसभा सदस्य होने के कारण इनमे से अनेक राष्ट्रीय नेताओ के सहचर–सखा भी रह चुके थे पर जब–जब राष्ट्रहित का सवाल आया तो उन्होने 'त्यजेदेक कुलस्यार्थे' की नीति अपनाते हुए खरी–खरी सुनाने मे कोई कसर न रखी उनके राजनीतिक लेखो मे पदे–पदे प नेहरू व महात्मा गाधीजी आदि राष्ट्रीय नेताओ के विषय मे तीव्र और मार्मिक आलोचना के दर्शन होते हैं उन्होने जिस 'सूझ–बूझ के साथ अपने लेखो द्वारा राजनीतिक भविष्यवाणियॉं व्यक्त की थीं, वे भी सच निकली हैं अत निस्सदेह हम उन्हे राजनीतिक दृष्टि से राष्ट्रीयता का प्रखर वैतालिक कह सकते हे 'वे आर्यसमाज के उस वर्ग का नेतृत्व करते थे जो यह मानता था कि आर्यसमाज को सस्था के रूप मे सक्रिय राजनीति मे भाग नहीं लेना चाहिये'[५६] सभवत कॉंग्रेस से जुडे होने के कारण भी उनका यह दृष्टिकोण परिपक्व हुआ होगा

सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ

१ अतीत से वर्तमान–१८६
२ भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य का उदय–भूमिका–क
३ भरतखण्ड पर्व (हिन्दुस्थानचा सक्षिप्त इतिहास)–६
४ हिन्दी विश्वकोश–खड–१–४७६
५ मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण–१६७
६ प्रिस बिसमार्क–२
७ भारतीय साहित्य कोश–१०७३–७४
८ आर्यसमाज का इतिहास भाग–५–६०७–८
९ हिन्दी गद्य साहित्य–१४२
१० इन्द्र विद्यावाचस्पति–७६, ८२
११ आर्यसमाज का इतिहास–भाग–५–५६८
१२ तत्रैव–४०६
१३ हिन्दी गद्य साहित्य–१४२
१४ पुणे मे स्वामी दयानद के आगमन से लगभग ११ वर्ष पूर्व २३ मार्च, १८६४ से 'मुबई–पुणे–मुबई' रेलगाडी शुरु हुई थी
१५ सत्यार्थप्रकाश–११२
१६ पत्रकारिता के अनुभव–३३
१७ तत्रैव–७८
१८ रघुवश अनु इद्र विद्यावाचस्पति भूमिका–६
१९ भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य का उदय–२०
२० आर्यसमाज का इतिहास–भाग–५–५६७
२१ भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य का उदय–१६८
२२ तत्रैव–१५७
२३ केळकर लेख – 'न चि केळकर आणि इतिहास लेखन–१५०
२४ पुरातत्व निबन्धावली–१
२५. कालिदास के पक्षी–ख
२६ गुरुकुल कागडी के ६० वर्ष–१०६
२७ भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य का उदय–३२३
२८ तत्रैव–१०६–११०
२९ तत्रैव–१६३
३० तत्रैव–भूमिका–ड्
३१ पत्रकारिता के अनुभव–७६–८०
३२ मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण–२६१
३३ तत्रैव–२६४
३४ तत्रैव–३०३
३५ भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य का उदय–२८६
३६ तत्रैव–६२
३७ आर्यसमाज का इतिहास प्रथम भाग भाग सपादकीय वक्तव्य–घ
३८ सम्मेलन पत्रिका चैत्र ज्येष्ठ १८८३ शक–१४४
३९ मैं इनका ऋणी हूँ–४८
४० मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण–३२३
४१ साप्ताहिक हिन्दुस्तान २६ फरवरी १९६१ लेख–शील और प्रज्ञा के धनी इन्द्रजी–१०
४२ भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य का उदय–१०
४३ मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण–५२
४४ तत्रैव–३०
४५ हिन्दी गद्य साहित्य–१४२
४६ मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण–८६
४७ तत्रैव–२८१–८३
४८ इन्द्र विद्यावाचस्पति–८२
४९ हिन्दी साहित्य कोश, भाग–२–३६
५० गुरुकुल के स्नातक–सपादक हरिदत्त–रामेश बेदी–शकर देव–२
५१ इन्द्र विद्यावाचस्पति–८२

५२ तत्रैव–२७

५३ वानप्रस्थाश्रम आनद कुटीर ज्वालापुर मे शोधकर्ता को दिये गये साक्षातकार के आधार पर

५४ साप्ताहिक हिन्दुस्तान २६ फरवरी १९६१'लेख–दो–पीढी की निकटता–१४

५५ तत्रैव–लेख–इन्द्रजी और गुरुकुल–११

५६ आर्य सन्देश २३ दिसबर १९६० लेख–मेरे पूज्य पिताजी–६४

५७ इन्द्र विद्यावाचस्पति–२६

५८ साप्ताहिक हिन्दुस्तान २६ फरवरी १९६१–१०

५९ मुबई मे शोधकर्ता को दिये गये साक्षात्कार के आधार पर दि २६/१/१९९४

६० मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण–भाग चौथा–१५०

६१ आर्य सन्देश २३ दिसबर १९६०–६१

६२ मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण द्वितीय सस्करण की प्रस्तावना –५

६३ आर्यसमाज का इतिहास–द्वितीय भाग–३५४

६४ मेरे पिता–२६५

६५ इन्द्र विद्यावाचस्पति–१०८

६६ भारतीय स्वाधीनता सग्राम का इतिहास प्रकाशकीय मार्तण्ड उपाध्याय–३

६७ तत्रैव–३८४

६८ राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास भूमिका–१

६९ भारतीय स्वाधीनता सग्राम का इतिहास–३८८

७० तत्रैव–२०५

७१ प्रह्लाद अप्रैल १९६० लेख– प इन्द्र विद्यावाचस्पति की इतिहास चेतना –८१

७२ आर्य सन्देश २३ दिसबर १९६०–लेख–शब्दचयन के धनी प इन्द्र विद्यावाचस्पति–२५

७३ भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य का उदय–भूमिका–ग

७४ तत्रैव–भूमिका–घ

७५ साप्ताहिक हिदुस्तान २८ अगस्त १९६९–२३

७६ शाह आलम की ऑखे–१२९–१३२

७७ मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण–३६

७८ तत्रैव–३२७–२८

७९ नया जीवन (मेरे पिता पुस्तक सूची–पृ–२)–सहारनपुर

८० मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण–२३३, १७०

८१ हिन्दी साहित्य कोश भाग–२ सपा धीरेन्द्र वर्मा–३६

८२ आर्य समाज का इतिहास भाग–५–४०६

८३ भारतीय स्वाधीनता सग्राम का इतिहास–३४७

८४ वीर अर्जुन ३० दिसबर १९४६–तलवार का जवाब तलवार से दिया जायेगा–संपादकीय

८५ स्वतन्त्र भारत की रूपरेखा प्रारभिक वक्तव्य–२

८६ आर्य समाज का इतिहास–भाग–६–१३०

८७ यदि आचार्य चाणक्य प्रधानमन्त्री होते–८–९

८८ नवनीत हिन्दी डाइजेस्ट मई १९६७–६६

८९ इन्द्र विद्यावाचस्पति विजयेन्द्र स्नातक–६६

९०. खट्टी–मीठी यादे–७३–७४

९१ २४/१/१९९४ को मुबई मे शोधकर्ता द्वारा की गई ध्वन्यकित वार्ता के आधार पर

९२ यदि आचार्य चाणक्य प्रधानमत्री होते–६

९३ तत्रैव–६

९४ तत्रैव–७

९५. तत्रैव–७

६६ आर्य समाज का इतिहास भाग–६–१२८/ 'आर्य सन्देश'–२३ दिसबर १९९०–१६/ 'आर्य समाज व राजनीति का इतरेतराश्रय सबध स्पष्ट करते हुए सन् १९०५ के लगभग महात्मा मुशीराम (स्वामी श्रद्धानद) ने कहा था, 'आर्य समाज का राजनीति से वह सबध है जो एक सन्यासी का ससार से होता है सन्यासी सत्य कहने से नहीं घबराता, निर्भय होकर कहता है, परन्तु उसमे लिप्त नहीं रहता' (आर्य समाज बच्छोवाली–लाहौर के उत्सव मे दिये गए भाषण का एक अश)– आर्यसमाज का इतिहास द्वितीय भाग–३२

६

भारतीय संस्कृति के व्याख्याकार : साहित्यवाचस्पति पं. इन्द्र

६.१ भारतीय संस्कृति का स्वरूपः-

'भारतीय सस्कृति की परिभाषा देना अथवा थोडे शब्दो मे उसका वर्णन कर देना नितान्त कठिन है कारण यह है कि भारत के लम्बे इतिहास मे उसकी सस्कृति पर अनेक प्रभाव पडते रहे है, जिसके फलस्वरूप उसका रूप न्यूनाधिक परिवर्तित होता रहा है'[१] यह कथन है काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के भारतीय दर्शन विभाग के अध्यक्ष डॉ देवराज का श्रीमती महादेवी वर्मा[२] व श्री विद्यावाचस्पति[३] जी ने भी इसी प्रकार के विचार प्रकट किये हैं अब हम यहॉ भारतीय सस्कृति पर विचार करने से पूर्व 'सस्कृति' के स्वरूप पर पहले विचार करेगे

'सस्कृति' शब्द 'सम्' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से बना है, जिसका मूल अर्थ है – परिष्कृत करना 'सस्कृति' उन गुणो का समुच्चय कहलाती है, जो व्यक्तित्व को परिष्कृत एव समृद्ध करते है विभिन्न तत्वज्ञान आदि मे होने वाले चिन्तन, साहित्य, चित्राकन आदि कलाओ, परहित साधन आदि नैतिक आदर्शो तथा व्यापारो को सस्कृति के नाम से सबोधित किया जाता है सस्कृति का उद्देश्य इन्सान को 'मनुर्भव' की सीख देना है अत. सस्कृति विषयक अधिकाश परिभाषाओ मे 'मानव' को ही केन्द्र बिन्दु मे रखा गया है –

डॉ. मगलदेव शास्त्री के अनुसार – 'मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले आदर्शो की समष्टि को ही सस्कृति समझना चाहिये'[४] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदीजी के शब्दो मे 'जो चीज मनुष्यता का उद्घाटन करती है उसी को हम सस्कृति कहते हैं'[५] श्री सुमित्रानन्दन पत की धारणा है कि – 'अपने हृदय की शिराओ मे बहनेवाला मनुष्यत्व का रुधिर सस्कृति है'[६] सस्कृति के परिचायक चिह्नो की ओर सकेत करते हुए महादेवी वर्मा ने कहा है – 'किसी मनुष्य के साहित्य, कला, दर्शन आदि का सचित ज्ञान और भाव का ऐश्वर्य ही उसकी सस्कृति का परिचायक नहीं, उस समूह के प्रत्येक व्यक्ति का साधारण शिष्टाचार भी उसका परिचय देने मे समर्थ है'[७] व्यक्ति किस प्रकार समूह के शिष्टाचार व सस्कृति का प्रतीक बन जाता है इसकी पुष्टि के लिए उदाहरण के रूप मे विद्यावाचस्पति द्वारा लिखित सस्मरण 'मिस्टर आसिफ अली' का अश प्रस्तुत है –'वे लोग दो पीढी पहले नगीने से आकर दिल्ली मे बसे इस प्रकार उनमे मानो उत्तरप्रदेश की सस्कृति पर दिल्ली के तमद्दुन की कलम लगी हुई थी शिष्टाचार और नफासत मे मि आसिफ अली को परास्त करना कठिन था उनकी प्रवृत्तिया कला प्रधान थीं उनमे दिल्ली की पुरानी सस्कृति और बिल्कुल नई सस्कृति का ऐसा सुन्दर मेल था कि यदि हम उन्हे दिल्ली के व्यतीतकाल को वर्तमान से जोडनेवाली सुनहली शृखला कहे, तो अनुचित न होगा उनके लिए गालिब और तुलसी मे कोई भेद न था समय आने पर वह गालिब और तुलसी दोनो के उद्धरण दे देते थे'[८] इसी प्रकार 'परिमार्जित शिष्टाचार को सस्कृति का आवश्यक अग' मानते हुए विद्यावाचस्पति जी ने कहा है– 'जिन व्यक्तियो मे शिष्टाचार के सस्कार इतने गहरे हैं कि अधिकार की कुरसी उन्हे धो नहीं सकी, उनका स्वागत

नम्रता और शिष्टाचार से पूर्ण होता है' विद्यावाचस्पति जी की दृष्टि मे ऐसे दो महत्वपूर्ण व्यक्ति थे राष्ट्रपति डॉ राजेन्द्र प्रसाद तथा मौलाना अबुल कलाम आजाद जब व्यक्ति राष्ट्रपति से मिलने जाते थे, और जब वे विशेष कार्य मे व्यस्त न होते थे, तब वे खडे होकर हाथ जोडकर नमस्ते करते हुए दिखलायी देते थे यह नम्रता उनके स्वभाव का अग थी, जिसे राष्ट्र का सबसे ऊँचा पद भी नहीं मिटा सका था[९] इसी तरह मौलाना आजाद भी मिलने आ रहे परिचित व्यक्ति से 'आइये साहब! बहुत दिनो मे आये' यह कहकर हाथ बढा थे और बडे स्नेह से हाथ मिलाकर पास की कुरसी पर बिठा लेते थे विदा देते हुए भी शिष्टाचार पूर्वक हाथ मिलाना नहीं भूलते थे' वे देशवासियो के लिए और विदेशियो के लिए भी खरी देशभक्ति और दृढ हिन्दू–मुस्लिम एकता के प्रतीक थे[१०] विद्यावाचस्पति जी के अनुसार 'किसी देश की आध्यात्मिक सामाजिक और मानसिक विभूतियो या पवृत्तियो का नाम सस्कृति है'[११] सक्षेप मे 'सस्कृति' वह मूल्य है जो मानव को उत्तरोत्तर उत्कर्ष के पथ की ओर उन्मुख और अग्रसर करे

संस्कृति और सभ्यताः- सामान्य रूप से व्यावहारिक भाषा मे सस्कृति और सभ्यता का प्रयोग साथ–साथ होता है अत प्राय ये दोनो शब्द एक–दूसरे के सहचर प्रवासी–से प्रतीत होते हैं इसलिए सहजरूपेण प्रश्न उठता है कि इन शब्दो का क्या अर्थ है और इनमे परस्पर एक–दूसरे से कितना अन्तर है? इस अन्तर को स्पष्ट करते हुए श्री देवराज ने कहा है– 'सस्कृति का अर्थ चिन्तन तथा कलात्मक सर्जन की उन क्रियाओ से है, जो मानव के व्यक्तित्व और जीवन के लिए साक्षात् उपयोगी न होते हुए भी उसे समृद्ध बनाती है, जबकि इसके विपरीत सभ्यता से तात्पर्य उन आविष्कारो, उत्पादन के साधनो एव सामाजिक–राजनीतिक सस्थाओ से समझना चाहिये, जनके द्वारा मनुष्य की जीवन यात्रा का सरल एव स्वतत्र मार्ग प्रशस्त होता है'[१२] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार– 'सस्कृत आन्तरिक वृत्ति है और सभ्यता बाह्य सभ्यता शब्द का आजकल जो हमने अर्थ लिया है, वह यह है कि सभ्यता उन सामाजिक चीजो, विषयो, कायदे–कानूनो और रूढियो का नाम है, जो हमारी बाह्य सामाजिक व्यवस्था को सुदृढ बनाये और सस्कृति मनुष्य के चित्त के सस्कार का परिणाम है यदि हमारा चित्त सास्कृतिक है तो वह एक ऐसा समाज हो सकता है जो आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक सुरक्षा की दृष्टि से बहुत अच्छा सुसगठित व सभ्य हो'[१३] विद्यावाचस्पति जी ने भारतीय सस्कृति व सभ्यता के प्राचीन स्वरूप और उसके परिवर्तित रूप को इस प्रकार स्पष्ट किया है, 'प्राचीन साहित्य मे सस्कृति (कल्चर) के लिए 'धर्म' शब्द का प्रयोग किया जाता था, और जिसे वर्तमान भाषा मे सभ्यता (सिविलाइजेशन) कहा जाता है उसका अन्तर्भाव 'अर्थ' शब्द मे था पर समय के साथ इन दोनो शब्दो का अर्थ सकुचित हो गया धर्म केवल विश्वास और कर्म का पर्यायवाची रह गया और अर्थ का दायरा धन–सपत्ति तक सीमित हो गया'[१४] इस प्रकार विद्वानो के सस्कृति–सभ्यता विषयक विश्लेषण से स्पष्ट है कि सस्कृति सूक्ष्म है और सभ्यता स्थूल सस्कृति आन्तरिक है तो सभ्यता बाह्य सस्कृति अर्न्तमुखी है तो सभ्यता बहिर्मुखी.

भारतीय संस्कृतिः- 'मैं जब भारतीय विशेषण जोडकर सस्कृति शब्द का प्रयोग करता हू तो मैं भारतवर्ष द्वारा अधिगत और साक्षात्कृत अविरोध धर्म की ही बात करता हूँ मनुष्य के सर्वोत्तम को प्रकाशित करने के लिए इस देश के लोगो ने जो कुछ प्रयत्न किये हैं, वे जितने अशो मे ससार के अन्य मनुष्यों के प्रयत्नो के अविरोधी हैं, उतने अश मे वह भारतीय सस्कृति के अश है'[१५] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा अभिव्यक्त इस मत से स्पष्ट है कि भारतीय सस्कृति विभिन्न धर्मो मे विरोध की नीति अपनाने वाली सस्कृति नहीं, अपितु समन्वय की नीति अपनाने वाली सस्कृति है और वह मानव मात्र के लिए जो सर्वोत्तम तत्व हैं या हो सकते हैं, उनकी भी सरक्षिका है भारतीय सस्कृति एक ऐसी सस्कृति है जो अपना 'सर्वोत्तम तत्व' देती भी है और भूगोलस्थ अन्य देश विशेष की सर्वोत्तम सस्कृति का तत्व ग्रहण भी करती है श्रीमती महादेवी वर्मा का भारतीय सस्कृति विषयक

निम्नाकित मन्तव्य उस सस्कृति के स्वरूप को और अधिक उजागर करता है. वे कहती हैं–

'भारतीय सस्कृति निश्चित पथ से काट–छाटकर निकाली हुई नहर नहीं, वह तो अनेक स्रोतो को साथ ले अपनातट बनाती और पथ निश्चित करती हुई बहने वाली स्रोतस्विनी है उसे अधकार भरे गर्तो मे उतरना पडा है, ढालो पर बिछलना पडा है पर्वत जैसी बाधाओ की परिक्रमा कर मार्ग बनाना पडा है पर लम्बे क्रम मे उसने अपनी समन्वयात्मक शक्ति के कारण अपनी मूलधारा नहीं सूखने दी उसका पथ विषम और टेढा–मेढा रहा है, परन्तु हमारे अनदेखा कर देने से वह अविच्छिन्न प्रवाह खण्ड–खण्ड मे नहीं बट जाता'[१५] उक्त कथन का तात्पर्य यह है कि भारतीय सस्कृति किसी सप्रदाय विशेष की सस्कृति नहीं, अपितु वह विभिन्न सप्रदायो के उदात्त तत्वो की मिली–जुली गगा–जमुनी सस्कृति है. सभव है किसी आर्य को यह महसूस हो कि वैदिक सस्कृति ही भारतीय सस्कृति है, किसी हिन्दू को यह महसूस हो कि पौराणिक सस्कृति ही भारतीय सस्कृति है, तथा किसी बौद्ध को यह प्रतीत हो कि बौद्ध सस्कृति ही भारतीय सस्कृति है, पर स्थिति ऐसी नहीं है वह एकागी सस्कृति नहीं, अनेक सस्कृतियो की उस पर छाप है विद्यावाचस्पति जी इस तथ्य से सुपरिचित थे अत उन्होने स्वय वैदिक सस्कृति के अनुगामी होने के बावजूद भी भारतीय सस्कृति का जो स्वरूप पूरी तटस्थता के साथ अकित है वह निष्पक्ष व यथार्थ है वे भारतीय सस्कृति का चित्र स्पष्ट करते हुए लिखते हैं– 'समय के स्वाभाविक प्रभाव, बौद्ध–जैन–धर्मो के प्रभाव और विदेश से आने वाली यवन–शक आदि जातियो के प्रभाव सक्षेप मे समय के अतिरिक्त स्वदेशी व विदेशी धर्मो के प्रभाव –आर्य सस्कृति पर पडने से उसका जो परिवर्तित रूप हुआ, उसका नाम भारतीय–सस्कृति है'[१६] इस प्रकार स्पष्ट है कि जिस सस्कृति को हम भारतीय सस्कृति के नाम से सबोधित करते है। वह अपने वर्तमान रूप मे विभिन्न मिली–जुली सस्कृतियो का समन्वित रूप है यहाँ यह बात विशेष रूप से ध्यान मे रखनी चाहिये कि – भारतीय सस्कृत केवल भारत की ही हितकारणी सस्कृति नहीं है, व्यापक अर्थ मे वह एशियाई सस्कृति की भी पर्यावाची है महीयसी महादेवी वर्मा ने तो पूर्ण स्पष्टता के साथ कहा– 'भारत की सास्कृतिक उपलब्धिया उसका दाय भाग नही वे मानव जाति का भी उत्तराधिकार है'

६.२ भारतीय संस्कृति की विशेषताः-

भारतीय सस्कृति का प्रवाह नामक ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय में विद्यावाचस्पति जी ने जो विचार व्यक्त किये हैं, उनका अध्ययन करने के बाद सस्कृति की जो पाच विशेषताये उभरकर आती हैं, वे इस प्रकार है– १– प्राचीनता, २– उदारता, ३– लचकीलापन, ४– ग्रहणशीलता और ५– आध्यात्मिकता

प्राचीनताः पूर्व और पश्चिम के विद्वान इस तथ्य पर एक मत हैं कि ससार की सबसे प्राचीनतम पुस्तक ऋग्वेद है भारतीय सस्कृति की प्राचीनता पर ही गर्व करते हुए महाकवि इकबाल ने यह तराना गाया था "यूनानो मिस्रो रोमा सब मिट गये जहाँ से/ कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।/ सदियो रहा है दुश्मन दौरे जमाँ हमारा"

इस प्राचीन भारतीय सस्कृति का अन्य संस्कृतियो की तुलना मे अक्षुण्ण बने रहने का जो रहस्य रहा है उस पर प्रकाश डालना ग्रथ लेखक का प्रमुख प्रयोजन रहा है.[१७] भारत के देवी–देवता पूर्व युगो के समान वर्तमान मे भी पूज्य माने जाते हैं जैसे शिवदत्त, शिवस्वामी, सदाशिव राजूरकर, हरिहरनाथ बैनर्जी आदि[१८] इसीप्रकार राम वाचक नाम भी सर्वत्र पाये जाते हैं. यथा– सी. रामचन्द्रन, एन टी रामाराव, रामकृष्ण हेगडे, काशीराम, रामविलास पासवान आदि रामेश्वरम् के मन्दिर में उत्तर भारतीय यात्री और अमरनाथ के मन्दिर मे दक्षिण के यात्री सिर नवाते हुए नजर आते हैं भारतीय नदियो और पर्वतो के प्रति तो समस्त भारतवासियों के मन मे प्रेमभाव विद्यमान है अनेक विदेशी

संस्कृतियो के आघातो के बावजूद भी यह भारतीय संस्कृति प्राचीन काल से चिरस्थायी रूप से टिकी हुई है

उदारताः- भारतीय संस्कृति की दूसरी विशेषता उसकी उदारता है इसका एक प्रमाण यह भी है कि एकेश्वर को अनेक नामो से सबोधित करने की स्वतन्त्रता दी गई है फलत 'एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' की उक्ति अब भी सजीव है 'नृणामेकोगम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव' अर्थात् जिस प्रकार समस्त नदी–नदो का जल समुद्र की ओर जाता है उसी प्रकार विभिन्न मार्गो से चलते हुए सभी मनुष्य एक ही गन्तव्य की ओर अग्रसर होते हैं– किसी भक्त द्वारा कहा गया यह कथन भारतीय उदार दृष्टिकोण का ही परिचायक है

लचकीलापनः- भारतीय संस्कृति की तीसरी विशेषता उसका रबर की तरह लचकीलापन है यही लचकीलापन उसे बाहर से आने वाली आपत्तियो से बचाता रहा है, इस संस्कृति की यह विशेषता है कि वह बाह्य आघातो के कारण दब तो जाती है, परन्तु टूटती नहीं और आघात का कारण हट जाने पर फिर पुरानी अवस्था मे आ जाती है इग्लैण्ड के महाकवि मैथ्यू आर्नल्ड ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त करते हुए कहाथा– 'भारत वर्ष विदेश (पश्चिम) से आये हुए तूफान के सामने सिर झुका देता है इस सिर झुकाने मे गहरी उपेक्षा का भाव मिला होता है तूफानी लश्कर सिर पर से गुजर जाता है और भारतवर्ष फिर अपने ध्यान मे मग्न हो जाता है[२०] 'इसी कारण पूर्ण आशावादिता के साथ विद्यावाचस्पति जी ने कहा है– 'यदि व्यतीत का अनुभव भविष्य का सूचक हो सकता है, तो हमे आशा रखनी चाहिये कि भविष्य मे पश्चिम और पूर्व से जिन अन्धडो के आने की आशका है वे भी हमारी संस्कृति की हस्ती को मिटा न सकेगे'[२१]

ग्रहणशीलताः- भारतीय संस्कृति की चौथी विशेषता उसकी अद्भुत ग्रहणशीलता या अपना बना लेने की शक्ति है पुरातन काल से ही हमारी संस्कृति ने सपर्क मे आई हुई यूनानी, सीथियन, इस्लामी और क्रिश्चियन संस्कृतियो को अपना बना लिया है विदेशी नस्ले भारतीय नस्लो मे घुल–मिलकर एक हो गई हैं– सिथियन जाति का मिश्रण गुजराती जातियो के साथ हुआ है मगोलियन जाति का मिश्रण आसाम, बगाल के निवासियो के साथ हुआ है तुर्की व ईरानी जाति का मिश्रण पश्चिमोत्तर प्रदेश के साथ हुआ है[२२] जातियो के मिश्रण की तरह भाषाओ का भी मिश्रण पाया जाता है मुगल–हिन्दू तथा कुछ अन्य संस्कृतियां भाव और भाषा दोनों ही दृष्टियो से इतनी अधिक घुल–मिल गई हैं कि उन्हे पृथक् करना अब सभव नहीं प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति 'ले–दे' की भावना मे विश्वास करती आई है उत्तर–दक्षिण की भाषाओ का मिलान करने पर हम उन्हे एक और गहरे सूत्र मे बधा हुआ पाते हैं और वह सूत्र संस्कृत भाषा का है संस्कृत भाषा ने काश्मीर से कन्याकुमारी तक भारत की सब श्रेणियो को एक प्रबल सास्कृतिक माला मे पिरो रखा है[२३] भारतीय संस्कृति की यह विशेषता उसकी ग्रहणशीलता का ही परिणाम है

अध्यात्मिकताः- भारतीय संस्कृति की सबसे बडी विशेषता उसकी आध्यात्मिकता मे है जो उसे पाश्चात्य (प्राचीन यूनान, आधुनिक यूरोप तथा अमेरिका की) संस्कृति से पृथक् करती है हमारी संस्कृति आत्मा और मोक्ष को महत्व देती है तो पाश्चात्य संस्कृति भौतिक जगत और विज्ञान को भारत की आध्यात्मिक प्रवृत्ति मे अधिक रूचि है तो पश्चिम की राजनीतिक प्रवृति मे भारतीय संस्कृति मे तप को शस्त्र बल से, सत्य को चालाकी से और धर्म को अर्थ से सदा ऊँचा स्थान दिया जाता रहा है इस अहिसावादी देश मे आत्म रक्षा या राष्ट्र रक्षा के लिए शस्त्र हाथ मे लेने की अनुमति है, पर स्वार्थ साधन हेतु निरर्थक हिसा करना भारतीय संस्कृति मे सदा महापाप माना गया है आध्यात्मवादी दृष्टिकोण के कारण ही पश्चिमी भोगवादी संस्कृति की अपेक्षा भारतीय संस्कृति मे सदाचार और त्याग पर अधिक जोर दिया गया है

विद्यावाचस्पति जी के अनुसार – भारतीय संस्कृति की उपरोक्त विशेषताओ को ध्यान मे रखते हुए 'यदि इतिहास और वर्तमान काल का अध्ययन किया जाय तो इतिहास सुसबद्ध व अखण्डित नजर आता है, अन्यथा सास्कृतिक इतिहास का क्रम टूटता–सा प्रतीत होता है और अनेक समस्याये उत्पन्न होती हैं '[२५]

६.३ विद्यावाचस्पति जी का भारतीय संस्कृति विषयक साहित्यः-

विद्यावाचस्पति जी उन राष्ट्रीय साहित्यकारो मे से एक हैं, जिन्होने भारतीय जीवन को समग्र दृष्टि से देखने का प्रयास किया है यदि हम उन्हें भारतीय समाज के अन्तर्द्रष्टा और सस्कृति के व्याख्याकार कहे तो बिल्कुल भी अतिशयोक्ति नहीं होगी उनके सन्निकट रहने का सौभाग्य प्राप्त करने वाले श्री शकरदेव विद्यालकार के अनुसार तो 'उनकी जीवन–फुलवारी शील और प्रज्ञा के आर्य गुणो से सदैव महकती रहती थी '[२६] उनका जीवन आर्य–हिन्दु का जीवन था, पुनरपि उनके द्वारा गृहीत भारतीय सस्कृति से तात्पर्य केवल आर्य सस्कृति से नहीं, अपितु उस सस्कृति से है, जो मूल रूप मे वैदिक होते हुए भी देशी–विदेशी विभिन्न संस्कृति के प्रभावो से प्रभावित एव परिवर्धित है 'खादी जैसे उज्जवल विचारो के धनी,[२६] 'भारतीय सस्कृति मे गहरी पैठ रखने वाले 'सास्कृतिक राष्ट्रपुरुष'[२७] 'अखिल भारतीय सस्कृति सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष'[२८] साहित्य वाचस्पति प इन्द्र विद्यावाचस्पति द्वारा लिखित भारतीय सस्कृति विषयक ग्रथो की कुल सख्या ७ है १ 'उपनिषदों की भूमिका (सन् १६१३), २ 'सस्कृत साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन (१६१५), ३ 'वैदिक वर्ण व्यवस्था' (१७ मार्च १६१६), ४ 'मृतक श्राद्ध पर विचार' (१२ जून १६१६), ५ 'ईशोपनिषद् भाष्य' (१६५५), ६ 'अध्यात्म रोगो की चिकित्सा' (१६५६) और ७ 'भारतीय सस्कृति का प्रवाह' (१६५६) अग्रिम पक्तियो मे इन ग्रन्थो का यथासभव सक्षिप्त परिचय और विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है

'उपनिषदों की भूमिका' (१६१३):- भारतीय आर्ष वाड् मय मे उपनिषदो का प्रमुख स्थान है, नामधारी उपनिषदो की सख्या सौ से अधिक है, पर प्रमाण कोटि मे आने वाले ईशोपनिषद् से लेकर 'श्वेताश्वेतर उपनिषद्' तक कुल ११ ही उपनिषद् हैं आध्यात्मिक विद्याओ का विश्लेषण होने के कारण इन ग्रन्थो का भारतीय मनीषा मे महत्वपूर्ण स्थान है

जब सन् १६१६ मे विद्यावाचस्पति जी ने उपरोक्त ग्रन्थ लिखा तब वे 'विद्यावाचस्पति' की उपाधि से विभूषित नही हुए थे उस समय तक उन्हे गुरुकुल कागडी का स्नातक (वेदालकार) बनकर केवल एक ही वर्ष व्यतीत हुआ था सप्रति हमारी दृष्टि से यह ग्रथ दुर्लभ एव अनुपलब्ध है पुनरपि अन्य स्रोतो से यह पता चलता है कि इसमे 'उपनिषद्' साहित्य की महत्ता तथा उनमे निहित आध्यात्मिक विषयो का विवेचन है ' उपनिषद् वाड्मय का सामान्य परिचय देने के साथ ही उनके विवेचनीय विषयो को भी सक्षिप्त रूप मे प्रस्तुत किया गया है इसके अतिरिक्त स्वदेशी एव विदेशी विद्वानो द्वारा उपनिषदो का महत्व प्रतिपादित करने वाली सम्मतियो का भी उसमे सग्रह है[२६] डॉ ज्ञानवती दरबार के शब्दो मे 'उपनिषदो की भूमिका' प्राजल भाषा मे लिखा गया एक विचारपूर्ण ग्रथ है[३०] डॉ चन्द्रभानु सोनवणे ने टिप्पणी की है, 'यह एक विवेचनात्मक ग्रथ है '[३१] 'सद्धर्म प्रचारक' पत्र के प्रबधकर्ता के अनुसार 'इस पुस्तक का मूल्य छ आने था इसमे 'भूमिका' और उपनिषदो के सार के साथ उनके गहन भावो का सरल ढंग पर प्रस्तुत किया गया था '[३२] प्रो विजयेन्द्र स्नातक की सम्मति मे 'यह कृति उपनिषद् साहित्य को प्रकाश में लाने के लिए और जन सामान्य को पठनीय बनाने की दृष्टि से लिखी गई थी इससे आम जनता को उपनिषद् जैसे गभीर ग्रथ को समझने तथा उसके सार तत्व को ग्रहण करने मे बहुत सहायता मिलती है'.[३३] श्री केशवदेव शास्त्री द्वारा सपादित 'नवजीवन' मासिक (सितम्बर १६१३) के 'सामयिक साहित्य चर्चा' स्तभ मे की गई समीक्षा मे समीक्षक ने प्रतिपादित किया है, 'इस पुस्तक मे लेखक महाशय ने बतलाया है

कि उपनिषदो के विचार वेद से ही लिये गए हैं यह भी प्रमाणित करने का प्रयत्न किया गया है कि सारी उपनिषदे जो प्राचीन हैं, वे प्राय 'ईशावास्योपनिषद्' (यजुर्वेद के ४० वे अध्याय) पर अवलबित हैं पुस्तक प्रणेता महोदय ने उपनिषद् भाष्यो पर समालोचनात्मक दृष्टि डाली है'

'संस्कृत साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन (१६१६):– विद्यावाचस्पति जी का मूल नाम 'इन्द्रचन्द्र था यह ग्रन्थ इन्द्रचन्द्र वेदालकार द्वारा लिखा शोध ग्रथ है इसी अनुशीलनात्मक ग्रथ पर उन्हे गुरुकुल कागडी से 'विद्यावाचस्पति' की उपाधि प्राप्त हुई थी इस ग्रन्थ मे उन्होने इस बात पर विचार प्रकट किया है कि सस्कृत के सुप्रसिद्ध कवियो के काव्य निर्माण की आधार–भूमि क्या रही है वे कौनसी परिस्थितियाँ थीं, जिन्होने उन्हे उस–उस दिशा की ओर उन्मुख होने के लिए विवश किया विद्यावाचस्पतिजी ने इसमे सस्कृत कवियो के उसी ऐतिहासिक आधार को भी खोजकर पाठको के समक्ष प्रस्तुत किया है, जिन्होने उन कवियो को विशिष्ट रस, भाव और विषय वस्तु का विशेष कवि बनाया था

प्राय सस्कृत साहित्य तीन रूपो मे उपलब्ध होता है १ पद्य २ गद्य और ३ सूत्र विद्यावाचस्पतिजी की दृष्टि मे इन तीनो ही रचनाओ का मूलाधार वेद है ऋग्वेद व सामवेद प्रधान रूप से पद्यमयी रचना है तो यजुर्वेद व अथर्ववेद मे गद्यमयी रचना के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं वेदो मे वर्णित उषा, सूर्य, चन्द्र, नदी आदि प्रकृति के मनोहारी दृश्यो से सस्कृत साहित्य ने प्रकृति प्रेम की विशेष प्रेरणा ग्रहण की है'[३४] सस्कृत साहित्य मे जो अनुष्टुप् छद मिलता है वह भी वेद के ही अनुष्टुप् छद का यत्किचित् परिवर्तित रूप है त्रिष्टुप् छद का थोडा सा रूपान्तरित उपजाति है जगती और वशस्थ आदि सस्कृत साहित्य के छद भी वैदिक छदो विधान से बहुत समानता रखते हैं

चारो वेदो के शताब्दियों के बाद ऐतिहासिक काल–क्रमानुसार ब्राह्मण ग्रथो का काल आता है डॉ विजयपाल शास्त्री ने प्रतिपादित किया है, 'वेदो की ज्ञान–कर्ममय उपासना का स्थान ब्राह्मण ग्रथो के कर्मप्रधान धर्म ने ग्रहण कर लिया था'[३५] कालान्तर मे इन्हीं ब्राह्मण ग्रथो के अनुकरण पर लौकिक गद्य साहित्य का निर्माण हुआ यह तथ्य विद्यावाचस्पति जी के विवेचन के अनुसार तीन हेतुओं से स्पष्ट होता है प्रथम,हेतु तो यह है कि ब्राह्मण ग्रथो की भाषा मे कर्ता, कर्म और करण के पौर्वापर्य का नियम नहीं है यही स्थिति लौकिक गद्यमयी रचनाओ की है दूसरा हेतु यह है कि लौकिक गद्य और पद्य मे भी प्राय. क्रिया को अन्यथा गतार्थ कर दिया जाता है यथा–'अयमेव चानस्वादित विषय रसस्य ते काल उपदेशस्य' (कादम्बरी)–यहाँ 'अस्ति' क्रिया लुप्त है यही प्रवृत्ति हमे ब्राह्मण ग्रंथो मे भी दृष्टिगोचर होती है–जैसे 'बर्हि वै पशु ' यहाँ 'उच्यते' क्रिया अन्य गतार्थ है ब्राह्मण ग्रन्थो के अनुकरण पर लौकिक गद्य साहित्य रचे जाने का तीसरा हेतु यह है कि दोनो गद्यो मे उपसर्गों का प्रचुर प्रयोग किया गया है.

सस्कृत साहित्य का तीसरा रूप सूत्र शैली मे प्राप्त होता है जैसे महर्षि पतंजलि का 'योगदर्शन' और पाणिनि मुनि की 'अष्टाध्यायी'. इस सूत्र शैली का भी मूल रूप ब्राह्मण ग्रन्थो के विधि–निषेधात्मक सूत्रो मे पाया जाता है, उसी के विकसित रूप मे दर्शन लौकिक सस्कृत साहित्य के सूत्रो मे होते हैं.

विद्यावाचस्पति जी ने सस्कृत साहित्य के इतिहास को प्रमुख रूप से चार कालो मे विभाजित किया है १– उपनिषद् काल २– साम्राज्य काल ३– मध्य काल और ४– पराधीन काल. वैदिक ब्राह्मणकाल के बाद और अर्वाचीन साहित्य युग से पूर्व का जो काल है वह उपनिषद् काल है. ब्राह्मणो का यज्ञीय कर्मकाण्ड जब कुछ शिथिल हुआ तो उसका स्थान उपनिषदो के ज्ञानकाण्ड ने ग्रहण किया. उपनिषदो की भाषा प्राय पद्यात्मक है. उपनिषदों के उपरान्त अर्वाचीन साहित्य का नया युग

आरभ होता है इस युग का सर्व प्रथम महाकाव्य रामायण है पश्चात सस्कृत साहित्य आशावादी है और अर्वाचीन सस्कृत साहित्य निराशावादी. पर विद्यावाचस्पति जी इस मत से सहमत नहीं हैं उनके अनुसार आशा–निराशा का साहित्य प्राचीन–अर्वाचीन दोनों भी युगों के साहित्य मे प्राप्त होता है 'उपनिषद् ग्रन्थो मे भी कहीं–कहीं जीवन का बडा निराशामय चित्र खींचा है दूसरी ओर बाल्मीकि, कालिदास तथा भरावि आदि कवियो के वाक्यो मे जो आशा की झलक है वह किसी से छिपी नहीं है '[३६]

तथाकथित आदिकाव्य रामायण के विषय में नयी दृष्टिः- दन्तकथाओ द्वारा प्राय यह लोक प्रसिद्ध हो चुका कि समागम क्रिया मे तन्मय क्रौंच युगल मे से एक को जब शिकारी के बाण से छटपटाते हुए डाकू बाल्मीकि ने देखा तो उसका कायापलट हो गया और उसने शिकारी को शाप देते हुए जो कुछ कहा वह रामायण के रचयिता बाल्मीकि का ही नहीं सस्कृत साहित्य का भी आदि काव्य सिद्ध हुआ हृदयहीन शिकारी को 'कभी भी यश प्राप्त न हो' का शाप देने वाला वह सुप्रसिद्ध श्लोक इस प्रकार है–

"मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा । यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधी काम मोहितम् ।"

'काव्य शैली की दृष्टि से बाल्मीकि से पूर्व इस कोटि का अन्य कोई श्लोक नही था' इस मत से असहमति व्यक्त करते हुए विद्यावाचस्पति जी ने कहा है– 'ऐतरेय ब्राह्मण मे शुन शेप उपाख्यान की कविता मे ऐसे अनुष्टुप् पद्य के प्रयोग किये गये है जो सर्वथा अर्वाचीन प्रतीत होते हैं यथा–

"नन्विम पुत्रमिच्छन्ति ये विजानन्ति ये च न। कि स्वित् पुत्रेण विन्दन्ते तन्म आचक्ष्व नारद।।'

विद्यावाचस्पति जी ने टिप्पणी की है, 'सस्कृत कवियो की निस्सन्देह रूप से लौकिक विषयो की ओर चिरकाल तक प्रवृत्ति रही होगी, तभी अन्त मे महाकाव्य तक आने की स्थिति हुई होगी '[३७] डॉ विजयपाल शास्त्री ने विद्यावाचस्पति जी के मत से सहमत होते हुए कहा है– 'उनका तर्क समझ मे आता है, भला यह कहॉ का तुक है कि पहली बार लौकिक वृतान्त के वर्णन के लिये कविता बने और वह महाकाव्य का रूप ले ले '[३८]

प्राय यह माना जाता है कि वैदिक साहित्य की विषयवस्तु धार्मिक और यज्ञ प्रधान थी, जो कि अर्वाचीन साहित्य तक आते–आते लौकिक विषयो की ओर उन्मुख हो गयी इस परिवर्तन का कारण ऐतिहासिक घटनाओ को मानते हुए विद्यावाचस्पति जी ने लिखा है कि– 'क्षत्रियो का वर्चस्व बढ रहा था बाल्मीकि रामायण के नायक राम क्षत्रिय थे बलवान राजाओ का शासन था अत प्रजा सुखी थी सुख के क्षणो मे श्रृगार आदि रसो से सिक्त स्वच्छन्द कविता का सृजन होता है इसी कारण साहित्य पारलौकिक नियमो को छोडकर लौकिक विषयो की ओर झुक गया सरस्वती देवी प्राय विजय की देवी का अनुसरण करती है विजय की अवस्था मे लौकिक विषयो पर ही कविता रची जाती है रामायण और महाभारत ये दोनो महाकाव्य इस तथ्य के प्रमाण है '[३९]

रामायण और महाभारत जैसे सस्कृत के महाकाव्यो के बाद बौद्ध धर्म का उदय होता है महात्मा बुद्ध का प्राकृत को अपनी अभिव्यक्ति या धर्म की भाषा बनाने के कारण यह बौद्ध काल सस्कृत साहित्य के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण नही है सम्राट् अशोक जैसे राजाओ द्वारा बौद्ध धर्म ग्रहण करने से धर्म का तो विस्तार हो गया पर राज्य कार्य मे बहुत शिथिलता आ गई विद्यावाचस्पति जी के मतानुसार 'शस्त्रधारी ब्राह्मण तपोवन को दूषित कर देता है और मुनिवृत्ति क्षत्रिय राज्य को शिथिल कर देता है अशोक ने राज–काज मे श्रमणता लाकर चन्द्रगुप्त द्वारा स्थापित किया हुआ राज्य चौपट कर डाला '[४०] इस दौरान बौद्ध ग्रन्थो के अतिरिक्त कोई सस्कृत काव्य नहीं रचा गया सम्राट् अशोक के बाद ५०० वर्ष का काल सस्कृत साहित्य की दृष्टि से शिथिल काल रहा है

अशोक के बाद व ईसा से २७२ वर्ष पूर्व शुग राज्य वश की नींव डालने वाले राजा पुष्यमित्र के काल मे महर्षि पतजलि ने 'महाभाष्य' की रचना की. इसी काल मे अश्वघोष ने 'बुद्ध चरित्र' लिखा श्री विद्यावाचस्पति जी ने प्रतिपादित किया है, यह बुद्ध चरित व्याकरण व छन्द की दृष्टि से अभिनव शैली मे लिखा गया है पर शैली सरल होते हुए भी महाकवि कालिदास के काव्य सी परिमार्जित नहीं है'

साम्राज्य कालः- उपनिषद् काल के बाद ईसा की चौथी शताब्दी से सातवीं शताब्दी तक का काल साम्राज्य काल है राजनीतिक दृष्टि से यह उन्नत युग था विद्यावाचस्पति जी के शब्दो मे 'इस युग मे धनुष की टकार के साथ सरस्वती की वीणा की झकार भी सुनाई देती है'[१] कालिदास, विशाखदत्त, दण्डी, शूद्रक और भारवि जैसे कवि तथा बाण, सुबन्धु, भर्तृहरि, श्रीहर्ष और भवभूति जैसे महान् गद्य लेखक इसी युग मे हुए श्री विष्णु शर्मा का 'पचतन्त्र' और महाकवि भास के 'प्रतिमा' आदि नाटक इसी युग मे लिखे गए विष्णुशर्मा और भास के साहित्य की कथावस्तु यह बताती है कि वह समय राजनीतिक दॉवपेचो का युग था दूसरी ओर महाकवि कालिदास आदि कवियो के काव्य से ज्ञात होता है कि वह समय वैभव, हास–परिहास और श्रृगारप्रियता का युग था विद्यावाचस्पति जी की सम्मति मे साम्राज्य काल की समाप्ति पर जब भारत का गौरव छिन्न–भिन्न होने लगा तो भवभूति ने उस अध पतन के प्रति चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा–

पुरा यत्र स्रोत पुलिनमधुना तत्र सरिताम्। विपर्यास यातो घन विरलभाव क्षितिरुहाम्।।

मध्य कालः- साम्राज्य काल के बाद सातवीं से दसवीं सदी तक का काल मध्यकाल है इस काल के प्रमुख कवि है– माघ, भट्टनारायण, राजशेखर, पद्मगुप्त, क्षेमेश्वर, बिल्हण, दामोदर मिश्र, कृष्णमिश्र, श्रीहर्ष, सोमदेव, जयदेव और क्षेमेन्द्र मध्यकालीन सस्कृत साहित्य की समालोचना करते हुए विद्यावाचस्पति जी ने चार दोष बतलाये हैं १– अत्युक्ति अस्वाभाविक दशा तक पहुँच गयी थी २– बाण और सुबन्धु की तरह अन्य कवियो के भी लबे–लबे समस्त पद काव्य की शोभा को बिगाड रहे थे ३– श्रृगार रस लम्पटता की दशा तक पहुँच गया था ४– अलकार शास्त्र की बेडियाँ सहज, स्वच्छन्द काव्य को वैसे ही बाध रही थी जैसे भाषा को व्याकरण बाध रहा था

पराधीन काल या अन्धकार कालः- ११ वी सदी प्रारभ होने वाले अर्वाचीन साहित्य के काल को विद्यावाचस्पति जी ने पराधीन काल या अन्धकार काल के नाम से सबोधित किया है यह वह काल था जब आपसी फूट के कारण भारत पर विदेशी आक्रमण होने लगे और देश मे राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न हो गई, जो सस्कृत साहित्य के उन्नति के सामने भी एक चट्टान–सी प्रतीत हुई लेखक के अनुसार 'राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक अत्याचार कविता के परम शत्रु हैं' मुगलो के समय मे इन तीनो प्रकार के अत्याचारो का दौर–दौरा था तब भला कविता का विकास कैसे सभव था इस काल के पण्डितराज जगन्नाथ ही एक ऐसे कवि हैं जो सर्वाधिक आदरणीय हैं इन्हीं के 'स्थिति नो रे दध्या' श्लोक को लोकमान्य तिलक ने नियमित रूप से ध्येय वाक्य की तरह अपने 'केसरी' पत्र मे स्थान दिया था इस पराधीनता काल मे अलकार, व्याकरण, नव्य न्याय आदि शास्त्रो के भी ग्रन्थ लिखे गये, परन्तु विद्यावाचस्पति जी के अनुसार यह साहित्य साम्राज्य कालीन साहित्य की तुलना मे निस्तेज था

इस प्रकार 'सस्कृत साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन' का अध्ययन करने के उपरान्त विद्यावाचस्पति जी की दो बाते प्रमुख रूप से असाधारण प्रतीत होती हैं १– उन्होने साहित्य शब्द का प्रयोग प्रमुख रूप से ललित साहित्य के अर्थ मे ही कियाहै, और २– लौकिक सस्कृत साहित्य को उपनिषद् काल, साम्राज्य काल, मध्यकाल और पराधीन काल नामक चार कालो मे विभाजित कर उसे तत्कालीन परिस्थितियो के परिवेश मे देखने का सफल प्रयास किया है साथ ही इस तथ्य

का भी उल्लेख कर दिया है कि आदि श्लोक या आदि काव्य की शुरुआत बाल्मीकि से नहीं, अपितु उसका मूल उससे भी प्राचीन ऐतरेय ब्राह्मण के आस–पास है चूँकि सस्कृत साहित्य के आधार पर ही प्रमुख रूप से भारतीय सस्कृति आश्रित है अत उससे सम्बद्ध इस ऐतिहासिक अनुशीलन को हमने भारतीय सस्कृति के परिच्छेद मे समाविष्ट करना यथोचित समझा है

'वैदिकवर्ण व्यवस्था' व 'मृतक श्राद्ध पर विचार' (१६१६):- उपरोक्त दोनो ग्रन्थ सनातन धर्म के प्रतिनिधि प गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी (१८८१–१६६७) और आर्यसमाज के प्रतिनिधि प्रो इन्द्रचन्द्र वेदालकार (विद्यावाचस्पति) (१८८६–१६६०) के बीच १७ मार्च १६१६ व १२ जून १६१६ को क्रमश गुरुकुल कागडी (बिजनौर) व गुरुमण्डलाश्रम हरिद्वार मे 'वैदिक वर्ण व्यवस्था' व 'मृतक श्राद्ध' पर हुए मौखिक शास्त्रार्थ के लिखित रूप हैं ये शास्त्रार्थ मुक्त भाषणो के रूप मे हुए थे दोनो पक्षो की ओर से पूरे भाषणो का प्रत्यक्षर लिखने के लिए विद्वान सन्नद्ध थे 'वर्ण व्यवस्था' शास्त्रार्थ मे प्रत्येक पक्ष के ६–६ भाषण मिलाकर कुल १२ भाषण हैं और 'मृतक श्राद्ध' शास्त्रार्थ मे ५–५ मिलाकर कुल १० भाषण हैं इस प्रकार इन दोनो ग्रन्थो मे २२ भाषणो का समावेश है प्रथम शास्त्रार्थ 'वर्ण व्यवस्था' के प्रारभ व अन्तिम क्रम मे, दोनो पक्षो को दस–दस मिनिट का समय दिया गया था और बीच के तीन–तीन क्रमो के लिए सात–सात मिनिट का समय निर्धारित किया गया था[४२] इसी प्रकार मृतक श्राद्ध' विषयक शास्त्रार्थ मे प्रारभ मे उभयपक्षो के लिए पन्द्रह–पन्द्रह मिनिट का समय और तत्पश्चात् अन्त तक के सभी क्रमो के लिए दस–दस मिनिट का समय निर्धारित किया गया था [४३]

आज से ७८ वर्ष पूर्व शास्त्रार्थ काल मे प गिरिधर शर्मा ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम हरिद्वार के आचार्य थे और विद्यावाचस्पति जी उस समय इन्द्रचन्द्र वेदालकार के नाम से जाने जाते थे और गुरुकुल कागडी मे प्रोफेसर थे सपन्न शास्त्रार्थ सनातनधर्मियो की ओर से ऋषिकुल के मुखपत्र 'ब्रह्मचारी' तथा प भीमसेन शर्मा इटावा वाले के 'ब्राह्मण सर्वस्व' (भाग–१३, अक–५ मई १६१६ पृ २१७–२२१) मे प्रकाशित हुआ था. आर्यसमाज की ओर से यह शास्त्रार्थ, शास्त्रार्थ के पीछे ही गुरुकुल कागडी के मुखपत्र 'सद्धर्म प्रचारक' और तुलसीराम स्वामी मेरठ वाले के पत्र 'वेदप्रकाश' मे प्रकाशित हुआ था

पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी के सुपुत्र श्री शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी द्वारा वर्तमान मे 'वर्ण व्यवस्था–शास्त्रार्थ' की कुल पृष्ठ सख्या ३३ है और 'श्राद्ध शास्त्रार्थ' की कुल पृष्ठ सख्या ३६ है इन दोनो शास्त्रार्थों के सयुक्त जिल्द के प्रारभ मे 'वादे–वादे जायते तत्वबोध ' शीर्षक से सपादक श्री शिवदत्त का नौ पृष्ठीय प्राक्कथन प्रकाशित हुआ है. दोनो शास्त्रार्थों का सयुक्त नाम सपादक ने 'वैदिक वर्ण व्यवस्था और श्राद्ध' रखा है प्रकाशन काल सन् १६७६ है और मूल्य बीस रूपये है

आर्यसमाज पक्ष की ओर से प्रकाशित– 'वर्ण व्यवस्था' विषयक शास्त्रार्थ सप्रति अप्राप्य व दुर्लभ होने से तथा शास्त्रार्थों के प्रकाशक–शास्त्रार्थ केसरी ठाकुर अमरसिह जी (स्व० अमर स्वामीजी सरस्वती) को प्रयत्न करने पर भी नहीं मिल पाया दूसरा उपलब्ध शास्त्रार्थ (महात्मा) मुशीराम जी जिज्ञासु ने 'उसी समय सन् १६१६ मे 'मृतक श्राद्ध पर विचार' शीर्षक से 'सद्धर्म प्रचारक' पत्र मे तथा तत्पश्चात् पुस्तक रूप मे प्रकाशित किया था प्रारभ के २२ पृष्ठ उभय पक्ष मे हुए पत्र व्यवहार व शास्त्रार्थ व्यवस्था के नियमो से सबधित हैं मूल शास्त्रार्थ ३१ पृष्ठो मे (२२ से ५३ तक) प्रकाशित हुआ है मूल्य ग्यारह आने है 'वर्ण व्यवस्था' व 'श्राद्ध' विषयक आर्यसमाज का पक्ष यह था कि १– वेद प्रतिपादित वर्ण व्यवस्था गुण कर्म स्वभाव पर आधारित है और एक ही जन्म मे कर्म के अनुसार वर्ण परिवर्तन हो सकता है २– श्राद्ध नामक वैदिक क्रिया कलाप जीवित पितरों से ही सबधित है, मृत पितरो से उनका किसी प्रकार का कोई सबध नहीं है इसके विपरीत सनातन धर्म का यह पक्ष

था कि– ब्राह्मणादि वर्णों की व्यवस्था जन्म से ही होती है, जो जिस वर्ण के माता–पिता के यहाँ उत्पन्न हो गया है वह उस जन्म मे उसी वर्ण का माना जायेगा एक ही जन्म मे वर्ण परिवर्तन नहीं हो सकता ३– श्राद्ध कर्म का सबध जीवित पितरो के साथ नहीं, अपितु मृत पितरो के साथ है, जो कि मरणोपरान्त दूसरी दिव्य योनियो मे विद्यमान हैं

इन शास्त्रार्थों को सुनने के लिए और इनका अभूतपूर्व दृश्य देखने के लिए कितने ही लोग कई दिन की ट्रेन यात्रा करके हरिद्वार पहुँचे थे महात्मा गाधी भी कुछ देर के लिए गुरुकुल कागडी मे शास्त्रार्थ के समय उपस्थित थे[४४] सनातन धर्म और आर्यसमाज के प्रमुख विद्वानो का तो वहाँ पूरा जमघट था श्री शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी ने लिखा है– 'ऋषिकुल और गुरुकुल के पास–पास सस्थित होने के कारण खुले वैचारिक सघर्ष की तैयारी कई वर्षों से भीतर ही भीतर चल रही थी, परन्तु अभी तक इस प्रकार के सार्वजनिक विचार–सघर्ष का अवसर नहीं आया था पारस्परिक सौहार्द मे दोनो ओर से कोई भी कमी न थी, परन्तु इस शास्त्रार्थ के रूप मे वह अवसर प्रथम बार उपस्थित हुआ यह दोनो महती सस्थाएँ पूरे देश मे सनातन धर्म और आर्यसमाज का आशा केन्द्र बन चुकी थीं अत ऐसे आयोजन का प्रभाव भी पूरे देश के सनातनी तथा आर्य जगत् पर पडना स्वाभाविक था[४५] शास्त्रार्थ का आह्वान सर्वप्रथम आर्यसमाज की ओर से किया गया था गुरुकुल कागडी के वार्षिकोत्सव के मुद्रित निमन्त्रण पत्र मे गुण–कर्म–स्वभावाधारित वर्ण व्यवस्था पर शास्त्रार्थ के लिए मतभेद रखने वालो को खुला निमन्त्रण दिया गया था[४६] जिसे ऋषिकुल की विद्वान् मण्डली ने स्वीकार कर लिया, दोनो मे तेरह पत्रो का आदान–प्रदान हुआ जिनमे शास्त्रार्थ के आधार या प्रमाणभूत ग्रन्थ आदि पर अनेक बाते तय हुई थीं

शास्त्रार्थ के दिन प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए एक बैलगाडी भर पुस्तके लेकर ऋषिकुल की मण्डली गुरुकुल पहुँची थी[४७] गुरुकुल कागडी मे सम्पन्न प्रथम शास्त्रार्थ के अवसर पर प गिरिधर शर्मा ने यह स्वीकारकिया था कि– 'यह शास्त्रार्थ तो मण्डन मिश्र और शकराचार्य के शास्त्रार्थ के समान हो गया है '[४८] प इन्द्र विद्यावाचस्पति जी के अतिरिक्त आर्यसमाज के अन्य विद्वानो के साथ श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी के ६ शास्त्रार्थ हुये थे, पर उनमे आक्षेप–प्रत्याक्षेपो की भरमार थी जैसा कि शास्त्रार्थ मे प्राय होता था, पर विद्यावाचस्पति जी के साथ हुआ शास्त्र–विचार–विवरण उन सबसे अलग था महामहोपध्याय श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी इस सुचारू रीति से सम्पन्न शास्त्रार्थ का श्रेय श्री मुशीराम जी को देते थे[४९] इन दोनो शास्त्रार्थों मे जीत किसकी हुई और हार किसकी हुई यह सामान्य जन के लिए कहना बडा कठिन था, क्योकि कहा भी गया है– 'विद्वानेव जानाति विद्वज्जन परिश्रमम्' उसी समय उभयपक्षो ने अपने–अपने जीत के विवरण छाप दिये थे स्वामी दयानन्द और विशुद्धानन्द मे हुए काशी शास्त्रार्थ के सदर्भ मे तब से लेकर अब तक जैसे उभयपक्षो ने अपने–अपने जीत के दावे प्रस्तुत किये हैं, तद्वत् विद्यावाचस्पति और चतुर्वेदी के शास्त्रार्थों के सबध मे तब से लेकर अब तक जितने भी विवरण छपे हैं उन सब मे प्रत्येक पक्ष ने अपनी–अपनी जीत का ही उल्लेख किया है 'आर्यसमाज के शास्त्रार्थ महारथी' मे डॉ भवानीलाल जी भारतीय ने विद्यावाचस्पति जी की जीत का उल्लेख किया है,[५०] तो आचार्य बलदेव उपाध्याय ने 'काशी की पाण्डित्य परम्परा' मे चतुर्वेदी जी के विजयी होने का उल्लेख किया है[५१] सनातनी पक्ष अब भी जन्मना वर्ण व्यवस्था की सकीर्णता को छोडने के लिए तैयार नहीं है जब कि वर्ण व्यवस्था को ही न मानने वाले माननीय डॉ भीमराव जी अम्बेडकर ने 'स्वामी दयानद व आर्यसमाज की वर्ण व्यवस्था को बुद्धिगम्य और निरुपद्रवी माना है '[५२]

यहाँ इस तथ्य का उल्लेख कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि प. इन्द्र विद्यावाचस्पति और प. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी अपने–अपने मन्तव्यो पर दृढ रहते हुए भी समन्वयशील प्रवृत्ति के

विद्वान थे विद्यावाचस्पति जी ने जहा राष्ट्रभाषा व्यवस्था परिषद् आदि आयोजना मे श्री चतुर्वेदी जी को आमन्त्रित कर उनके व्याख्यान करवाये, वहॉ वे श्री चतुर्वेदी जी का आमन्त्रण पाकर सस्कृत साहित्य सम्मेलन द्वारा परिचालित सस्कृत प्रचार कार्य मे बडे उत्साह और स्नेह से सम्मिलित हुए, इतना ही नहीं उन्होने श्री चतुर्वेदी जी के अनुरोध पर कई अधिवेशनो की अध्यक्षता भी की थी[५३] सन्तुलित, समन्वयशील और जन्मत क्षत्रिय तथा स्वभावत. ब्राम्हण वृत्ति वाले विद्यावाचस्पति जी ने शास्त्रार्थ के बाद अपनी निजी डायरी मे लिखा था 'सच्चाई पर पर्दा करने वाला आदमी लोगो पर बहुत भारी प्रभाव नहीं डाल सकता मुझे इस कार्य मे पूरी सफलता पाने की आशा रखते हुए भी नहीं पडना चाहिये'[५४] इसके बाद विद्यावाचस्पति जी ने किसी भी शास्त्रार्थ मे भाग नहीं लिया गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ विष्णुदत्त राकेश के अनुसार– 'जिन लोगो ने विद्यावाचस्पति जी और चतुर्वेदी जी का शास्त्रार्थ सुना है, वे जानते हैं कि पाण्डित्य और युक्तिपूर्वक मान्यताओ के प्रतिपादन मे विद्यावाचस्पति जी कितने दक्ष थे . बहुधधी होने के कारण बाद मे पण्डित जी इस ओर से विरत हो गये'[५५]

'वैदिक वर्ण व्यवस्था' व 'मृतक श्राद्ध' विषयक शास्त्रार्थ मे हुए प्रश्नोत्तरो की बौछारो पर किसी भीपक्ष मे हमने अपनी ओर से कोई सैद्धान्तिक टिप्पणी नहीं की है. इसका एक कारण तो यह भी है कि एक पक्ष की ओर से प्रकाशित 'वर्ण व्यवस्था' विषयक शास्त्रार्थ हमे प्रयत्न करने पर भी नहीं मिल पाया है और मूलत यह विषय भी वैदिक सस्कृत साहित्य से प्रतिबद्ध होने के कारण दुरूह व विवादास्पद है, उसकी गहराई मे न जाते हुए उसका स्थूल परिचय देना ही हमे यहॉ अभीष्ट रहा है अब इस प्रसग के अन्त मे हम विद्यावाचस्पति जी और चतुर्वेदी जी मे हुए 'मृतक श्राद्ध' विषयक शास्त्रार्थ का एक ही सदर्भ क्रमश आर्यसमाज व सनातन पक्ष की ओर से प्रकाशित शास्त्रार्थ से समुद्धृत कर रहे हैं इससे यह समझने मे आसानी हो जायेगी कि भिन्न–भिन्न दृष्टि भेद के कारण शास्त्रार्थ के प्रस्तुतीकरण मे किस प्रकार पाठभेद हो जाता है पहले आर्यसमाज द्वारा प्रकाशित शास्त्रार्थ से एक प्रसग प्रस्तुत है, "अच्छा अन्त मे, मैं पण्डित (चतुर्वेदी) जी के सामने एक अन्य मन्त्र भी रख जाता हूँ पण्डित जी बतावे इस मन्त्र का अर्थ मृत पितरो पर किस प्रकार लगा सकते हैं –

सविशन्विह पितर स्वान. स्योन कृण्वन्त प्रतिरन्त आयु ।
तेभ्य शकमे हविषा नक्षमाणा ज्योग् जीवत. शरद पुरूची ।।

अथर्ववेद–१८ काण्ड, २ अनुवाक, २६ मत्र

इस मन्त्र मे स्पष्ट–स्पष्ट कहा है कि 'हे पितरो ! आप आवे और विराजें ' मैं पण्डित जी से फिर पूछता हूँ कि क्या जीवित पितर–विद्वज्जन बैठ सकते हैं अथवा मृत पितर?"[५६]

अब इसी प्रकार उपरोक्त प्रसग को ही सनातन पक्ष द्वारा प्रकाशित शास्त्रार्थ की पुस्तक से प्रस्तुत कर रहे हैं "अच्छा अब मैं एक मन्त्र और कहता हूँ– 'सविशन्विह ..पुरूची ' इस मन्त्र मे 'सविशन्तु' का अर्थ विराजना है साफ–साफ पितरों से प्रार्थना है कि आप आवें और विराजे यह प्रार्थना मृतो से कैसे हो सकती है अत पितर जीवित होते हैं "[५७]

तथ्य को प्रस्तुत करते समय जो शक्ति विद्यावाचस्पतिजी या आर्यसमाज के कथन मे है वही कथन या तथ्य जब सनातन पक्ष या चतुर्वेदीजी ने प्रस्तुत किया है, तो उसके अन्दर की प्राण शक्ति पचर टायर की तरह रफूचक्कर–सी हो गयी प्रतीत होती है इन विद्यावाचस्पति–चतुर्वेदी कृत शास्त्रार्थों से या आर्यसमाज और सनातन धर्म के बीच हुए शास्त्रार्थों से कितना तत्वबोध हुआ और कितनी निरी बहस हुई? यह एक स्वतंत्र अध्याय का विषय है, पर इतना निश्चित कहा जा

सकता है कि इन शास्त्रार्थों ने तत्कालीन हिन्दी भाषा की तार्किकता को समृद्ध किया आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दो मे 'हिन्दी के लिए आर्यसमाज ने जो कार्य किया है, उसकी तुलना नहीं हो सकती उन्नीसवीं शताब्दी मे आर्यसमाज ने पुस्तकों, व्याख्यानो और शास्त्रार्थों की धूम मचा दी थी उसने अनेक पत्र–पत्रिकाओ का प्रकाशन किया व्यग्यो, कटाक्षो, उत्तर–प्रत्युत्तरो से निकलने वाली सूक्तियो और व्यग्योक्तियो से भाषा को समृद्ध बनाने मे आर्यसमाज की देन अमूल्य है. स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा स्थापित गुरुकुल विश्वविद्यालय से निकले हुए स्नातको ने हिन्दी भाषा साहित्य को बहुमूल्य ग्रथ दिये हैं इनमे अधिकाश पजाबी हैं विपरीत परिस्थितियो मे भी इन्होने हिन्दी को समृद्ध और सम्पन्न बनाने का कार्य किया है'[५८]

विद्यावाचस्पति जी केवल आर्यसमाजी ही नहीं, आर्य नेता भी थे गुरुकुल के केवल स्नातक ही नहीं, अपितु सर्वप्रथम स्नातक होने का श्रेय उन्हे प्राप्त था वे जन्मजात पजाबी तो थे ही आचार्य द्विवेदीजी ने उपरोक्त परिच्छेद मे आर्यसमाज, गुरुकुल और पजाब की जिस हिंदी हितकारिणी त्रिवेणी का उल्लेख किया है उसका सगम विद्यावाचस्पति जी के व्यक्तित्व मे भी विद्यमान है उनके अनमोल और विपुल साहित्य से हिन्दी वाड्मय निश्चित रूप से समृद्ध हुआ है

ईशोपनिषद् भाष्य (१६५५):- इस ग्रन्थ की चर्चा प्रसगवशात् विद्यावाचस्पतिजी के अनूदित साहित्य के प्रसग मे पीछे की जा चुकी है उपनिषदो का भारतीय आर्ष साहित्य मे प्रमुख स्थान है. अत ईशोपनिषद् भाष्य का यथास्थान यत्किचित् परिचय इस भारतीय सस्कृति के परिच्छेदो मे करना अत्यावश्यक है, क्योकि भारतीय सस्कृति की चितन सपदा के उपनिषद् उत्तम रत्न माने जाते हैं, और हजारो वर्षों से वे आध्यात्मिक शाति पथ के पथिको के लिए उत्तम पाथेय सिद्ध हो चुके हैं विद्यावाचस्पति जी के पिता महात्मा मुशीराम भी उपनिषदो के तलस्पर्शी अध्येता थे अमेरिका के प्रख्यात लेखक श्री ऐन्ड्रू जॅक्सन डेविस ने उपनिषदो पर जो पुस्तके लिखीं थीं वे सब श्री मुशीराम जी ने अपने लिए खरीदी थीं जिन्हे पढने के उपरान्त उन्होने सन् १६०६ से पूर्व ही गुरुकुल कागडी के पुस्तकालय को अर्पित कर दिया था इनमे वे चिह्न भी थे, जो महात्मा मुशीराम जी ने पढते समय लगाये थे[५९] उपनिषद कालीन ब्राह्मण की तरह ब्राह्ममुहूर्त मे उठने वाले[६०] विद्यावाचस्पति जी ने इन सभी ग्रन्थो का निश्चित रूप से सदुपयोग किया होगा ईशोपनिषद् भाष्य से अभिभूत होकर जर्मनी के विश्वविश्रुत चितक शॉपनहार ने कहा था 'उपनिषद् मेरे जीवन रूपी सरोवर मे अमृत सींचने वाले रहे हैं और वे मेरी मृत्यु मे भी अमृत का ही काम देगे ' इसी प्रकार जर्मनी के ही दार्शनिक उच्चकोटि के विद्वान पाल डायसन ने 'उपनिषदो के दार्शनिक सिद्धान्त' नामक ग्रन्थ की भूमिका मे लिखा था 'ये वैदिक सिद्धान्त बुद्धदेव से पूर्व के समय मे ही उन्नत कोटि तक पहुँच गये थे और आज तक के किसी भी पीछे के विचार ने उनके दार्शनिक महत्व को मात नहीं किया'[६१] यह सुप्रसिद्ध है कि मुगल काल के दाराशिकोह ने भी उपनिषदो से प्रभावित होकर उसके अनुवाद करवाये थे[६२] उपनिषदो की इस अदभुत महत्ता को अनुभव करते हुए विद्यावाचस्पति जी ने भी उपनिषदो मे सर्वप्रमुख उपनिषद् 'ईशोपनिषद्' का भाष्य करना आवश्यक समझा उनका यह ग्रथ सत्रह अध्यायो मे विभाजित है

विद्यावाचस्पति जी ने 'ईशोपनिषद् भाष्य' मे उपनिषदो के तत्वो का स्पष्टीकरण उपनिषद् की अन्त साक्षी से ही किया है 'यह ईशोपनिषद् का एक सुन्दर विवेचनात्मक भाष्य है इस भाष्य से पाठक एक नया ज्ञानप्रकाश पायेगे.[६३] वह प्रकाश जहाँ ज्ञानवर्धक होगा, वहाँ उन्हे वह मानसिक और आत्मिक शान्ति देने वाला भी होगा.[६४] 'कर्म बड़ा है या ज्ञान' अथवा 'कर्म व ज्ञान का जीवन मे क्या स्थान है ' इस समस्या को बडी सहज रीति से सुलझाते हुए विद्यावाचस्पति जी ने लिखा है.' 'वह ज्ञान सफल है जो अच्छे कर्मों का कारण बने और वही कर्म कल्याणकारी है जो बुद्धिपूर्वक

किया जाय' प्रो राजेन्द्र जिज्ञासु के अनुसार गूढ से गूढ दार्शनिक सिद्धात को बडे सरल शब्दो मे समझाने की उनकी क्षमता को देखकर उनसे किस साहित्यकार को ईर्ष्या न होगी,[६५] पुस्तक का अन्तरग बडा आकर्षक है विषय प्रतिपादन और भाषा आदि की दृष्टि से यह अत्युत्तम ग्रथ है[६६] इसमे उपनिषदो की अतिगूढ परिभाषाओ को मानव जीवन के सदर्भ मे बहुत ही सुदर तथा तुलनात्मक ढग से समझाने का प्रयास किया गया है

'अध्यात्म रोगों की चिकित्सा' (१६५६):- विद्यावाचस्पति जी ने चरित्र सबधी रोगो की चिकित्सा को अध्यात्म रोगो की चिकित्सा कहा है उनके अनुसार पुस्तकस्थ विद्या किसी भी आयु मे प्राप्त की जा सकती है परन्तु छोटी आयु मे बना हुआ चरित्र अच्छा हो या बुरा बडी आयु मे नहीं बदल सकता अत शिक्षा का सबसे मुख्य कार्य चरित्र निर्माण है चरित्र सबधी समस्या का समाधान वे अनेक स्मृतिशास्त्रो और नीतिशास्त्रो के आधार पर ढूँढने का प्रयास करना पसन्द करते हैं इस ग्रन्थ के सबध मे स्वय उन्होने कहा है मैंने जो कुछ लिखा है देश–विदेश के प्राचीन मुनियो और विचारको के मन्तव्य के आधार पर लिखा है[६७] इसमे भारतीय दर्शन शास्त्रो के आध्यात्मिक और वर्तमान मनोविज्ञान के भौतिक विश्लेषण का समन्वय करते हुए उन्होने उन विचारो को अपने अनुभवो से अनुप्राणित कर चिकित्सा शास्त्र के क्रम मे बाधने का प्रयत्न किया है उन्हीं के शब्दो मे 'यदि आध्यात्मिक रोगो के सबध मे पूरा चिकित्सा शास्त्र बनाया जाय तो निस्सदेह वह बहुत विशाल होगा यदि अवसर मिला तो मेरा विचार इस रूपरेखा के आधार पर विस्तृत ग्रन्थ लिखने का है[६८] पर इस सकल्प की पूर्ति ईश्वराधीन है जैसे 'ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो', कहने वाले स्वामी दयानद की वेदभाष्य पूर्ण करने की इच्छा अपूर्ण ही रही वैसे ही 'अध्यात्म रोगो की चिकित्सा' को कालान्तर मे और अधिक विस्तृत रूप देने की अभिलाषा रखने वाले परम आस्तिक विद्यावाचस्पति जी की इच्छा भी अधूरी ही रह गयी प्रस्तुत ग्रन्थ मे विद्यावाचस्पति जी ने चारित्रिक या आध्यात्मिक रोगो की चिकित्सा के सदर्भ मे जो विचार व अनुभव व्यक्त किये हैं, उनके आधार भारतीय मनीषियो के अतिरिक्त विदेशी विचारको के मतव्य भी हैं,[६६] पर इस सबके बावजूद ग्रथ का मूल आधार व चितन भारतवर्षीय प्राचीन ऋषि–मुनियो के चितन के अनुरूप ही है प्रो राजेन्द्र जिज्ञासु के शब्दो मे काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि पर विद्वानो ने प्रत्येक देश मे और प्रत्येक भाषा मे बहुत कुछ लिखा है परन्तु 'आध्यात्मिक रोगो की चिकित्सा' मे श्री विद्यावाचस्पति जी ने इनके बारे मे जो कुछ लिखा है उसका एक अलग ही स्थान है उनकी लेखनी का यह भी एक कमाल है जिन बातो की हम प्राय चर्चा करते व सुनते हैं इस पुस्तक मे उनको बार–बार पढकर भी जी नहीं भरता[७०]

'भारतीय संस्कृति का प्रवाह' (१६५६):- उत्तर प्रदेश शासन द्वारा 'मैं इनका ऋणी हूँ' व 'पत्रकारिता के अनुभव' के बाद विद्यावाचस्पति जी की जो तीसरी रचना पुरस्कृत हुई, वह 'भारतीय सस्कृति का प्रवाह' है विद्यावाचस्पति जी ने भारतीय सस्कृति का व्यापक और तलस्पर्शी चितन और अध्ययन किया था उनके लिए ऐतिहासिक, राजनीतिक विषयो पर लिखना जितना सहज था उतना ही धार्मिक, दार्शनिक, शास्त्रीय और सास्कृतिक विषयो पर भी प्रस्तावना एव विषय सूची के साथ इस ग्रन्थ की कुल पृष्ठ सख्या ४+२६६=२७० है

६.४ भारतीय संस्कृति-विक्रम कालः-

विद्यावाचस्पतिजी ने उक्त ग्रन्थ मे भारतीय सस्कृति को तीन कालो में विभाजित किया है विक्रम, मध्य और वर्तमान काल उन्होने भारतीय इतिहास का प्रारभ ईसा से ३०० वर्ष पीछे न करके लगभग २०० वर्ष पहले शुरु करने का आग्रह करते हुए कहा है-- 'मौर्य वश का अन्तिम राजा बृहद्रथ था उसके बाद ईसा से लगभग पौने दो सौ वर्ष पूर्व पुष्यमित्र शुग पाटलिपुत्र के सिहासन पर आरूढ हुआ, उसके साथ ही भारतीय सस्कृति के रूप मे परिवर्तन भी आ गया पुष्यमित्र ने स्मार्त धर्म का

पुनरूज्जीवन किया कुछ इतिहास लेखक गुप्त काल को ही स्वर्णयुग मानते हैं ' परन्तु विद्यावाचस्पति जी के अनुसार सस्कृति के पुनरूत्थान का क्रम पुष्यमित्र के राज्यारोहण के समय से ही प्रारभ होने के कारण, भारतीय स्वर्णयुग का आरभ उसी समय से मानना चाहिये [७१] उन्होने गुप्त काल के स्वर्णिम काल को विक्रम काल मे समाविष्ट करते हुए कहा है ईसा से लगभग दौ सौ वर्ष पूर्व से छटी शताब्दी के अन्त और सातवीं शताब्दी के आरभ (हर्षवर्धन) तक का काल विक्रम काल है राज हर्षवर्धन के सबध में उन्होने कहा है 'यद्यपि साहित्य में अथवा शिलालेखो मे उसके साथ विक्रमादित्य का पद उपलब्ध नहीं होता तो भी मैं समझता हू कि वह अपने कृत्यो के कारण विक्रमादित्य पद के योग्य राजा था उसके साथ भारतीय इतिहास का विक्रम काल समाप्त होता है "[७२]

विद्यावाचस्पति जी की दृष्टि मे विक्रम काल की दो मुख्य विशेषताये हैं १– जो थोडे–थोडे समय के अन्तराल से बाह्य आक्रमण होते रहे उन्हे भारतीय वीर परास्त करते रहे विदेशी आक्रमणो का यह दौर ईसा की छटी शताब्दी के अन्त तक जारी रहा २– विक्रम काल की दूसरी विशेषता यह थी कि उसमे साहित्य–कला–शिल्प और वैभव की अपूर्व वृद्धि हुई इस काल को विक्रम काल के नाम से विशेषित करने का कारण देते हुए विद्यावाचस्पतिजी ने कहा है कि– इस काल के विक्रमादित्य उपाधि से विभूषित राजाओ ने विदेशी आक्रान्ताओ को पराभूत किया था कुछ विद्वानो ने १२ विक्रमादित्य राजाओ की गणना की है, पर पाच विक्रमादित्यो के ही ऐतिहासिक प्रमाण विद्यमान हैं शक आक्रान्ताओ को परास्त करने वाले राजा सर्वप्रथम विक्रमादित्य थे तत्पश्चात् शक, यवन आदि आक्रमणकर्ताओ को परास्त करने वाले दक्षिणस्थ राजा प्रथम शातकर्णी द्वितीय विक्रमादित्य थे विक्रमादित्य की उपाधि धारण करने वाले और विदेशियो को परास्त करने वाले अन्य राजा थे – समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त, यशोधर्मन् और हर्षवर्धन हर्षवर्धन के साथ विक्रम काल की समाप्ति होती है

विक्रम काल मे बौद्ध धर्म का क्षय होने का कारण बतलाते हुए लेखक ने लिखा है –'आक्रान्ताओ को मुकाबला करने के लिए जो बल और उग्र भाव चाहिये, प्रारभिक बौद्ध धर्म उसका विरोधी था इस कारण भारत वर्ष को बौद्ध धर्म का सहारा छोड देना पडा पडा "[७३] विक्रम काल मे वैदिक धर्म पौराणिक धर्म के रूप मे परिवर्तित हो गया २४ हजार श्लोको का महाभारत उसी काल मे एक लाख श्लोको से भी अधिक बडा हो गया उसी काल मे वह सस्कृत साहित्य उत्पन्न हुआ, जिसके कारण भारत का सिर ससार मे ऊँचा है उसी काल मे पाणिनि–पतजलि हुए, जिनके सस्कार के कारण आर्षवाणी सस्कृत के रूप मे बदल गई उसी काल मे कालिदास, भारवि, भवभूति आदि महाकवि हुए शिक्षा, कल्प, व्याकरण आदि कानिर्माण और भाषा का विकास भी उसी काल मे हुआ श्री रामधारीसिह दिनकर ने उस काल की महत्ता का प्रतिपादन इस प्रकार किया है, 'चौथी सदी तक आते–आते हिदुत्व का पूरा विकास हो गया और उसके वे सारे अग पुष्ट हो गए जिन्हे हम आज देखते है हिन्दुत्व के जो भी मुख्य अग है, उसके जो भी प्रधान लक्षण और विशेषताये हैं वे गुप्तकाल तक बढकर तैयार हो गये इसके बाद हिन्दुत्व के निर्माण मे कोई नई ईंट नहीं लगी कहीं से भी उसने कोई बडा उपकरण नहीं लिया "[७४] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी गुप्तकाल की महत्ता गाते हुए कहा है –'जो पुराण और स्मृतियॉ आजकल नि सदिग्ध रूप मे प्रामाणिक मानी जाती हैं, उनका सपादन अतिम रूप मे उसी गुप्तकाल मे हुआ था, जो काव्य, नाटक, कथा–आख्यायिकाये, गुप्तकाल मे रची गयी, वे आज भारतवर्ष का चित्त मुग्ध कर रहीं है, जो शास्त्र उन दिनो प्रतिष्ठित हुए वे सैकडो वर्षो बाद आज भी भारतीय मनीषा को प्रेरणा दे रहे हैं."[७५]

६.५ भारतीय संस्कृतिः मध्यकालः-

सम्राट् हर्षवर्धन की मृत्यु (६४७ ईस्वी) और महमूद गजनवी के आक्रमण (दसवीं शताब्दी) के बीच का लगभग ३५० वर्षो का काल मध्यकाल कहलाता है विद्यावाचस्पति जी के अनुसारइस काल की सर्वप्रमुख तीन घटनाये हैं १– भारत के क्षत्रिय, राजपूत नाम से सबोधित किये जाने लगे २– मुगल लोग सिन्ध की सीमा मे घुस आये ३– विदेशी आक्रान्ताओ ने भारत के आन्तरिक भू–भाग पर बडा आक्रमण करने का यत्न नहीं किया, और न ही देश में रघु, समुद्रगुप्त और हर्षवर्धन जैसे प्रभावशाली शासक पैदा हुए

सास्कृतिक दृष्टि से मध्यकाल के दो सुप्रसिद्ध आचार्य हैं – कुमारिल भट्ट और शकराचार्य दक्षिण के राजाओ ने भारतीय सस्कृति को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया सस्कृत भाषा ने दक्षिणी भाषाओ का विशेष विकास किया रामानुज, मध्वाचार्य आदि मूर्धन्य सिद्धान्त प्रवर्तक आचार्य दक्षिण मे ही हुये विजयनगरम् के आश्रित विद्वान सायण और माधव ने वेदो के भाष्य किये, दक्षिण मे प्राचीन काल से सस्कृत नाट्य प्रदर्शन की भी परपरा रही भास के जितने भी नाटक मिले हैं, वे दक्षिण मे ही मिले हैं, दक्षिण के मन्दिर भी अपनी विशालता और कला के लिए प्रसिद्ध हैं तजोर का उत्कृष्ट शिल्प कला युक्त रामेश्वर मन्दिर १६० फुट ऊचा है. विद्यावाचस्पति जी की दृष्टि मे – 'दक्षिण बहुत काल तक बाह्य आक्रमणो से सुरक्षित रहा, इस कारण उसमे सस्कृति का प्रवाह उत्तर की अपेक्षा अधिक स्वच्छन्दता से और अधिक देर तक चलता रहा.'[७६]

मध्यकाल से आधुनिक काल के प्रारंभिक चरण (१२ वीं शताब्दी) तक काव्य, नाटक, कथा, इतिहास, चरित्र और वास्तुकला के क्षेत्र में भारतीय सस्कृति का जो प्रवाह प्रवाहित हुआ उसका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है – माघ ('शिशुपाल वध'), भर्तृहरि ('भट्टिकाव्य'), श्रीहर्ष ('नैषध चरित'), जयदेव ('गीत गोविद') आदि कवियो के काव्य उसी मध्य युग मे लिखे गए. करूण रस के सिद्धहस्त कलाकार भवभूति ('उत्तर रामचरित', 'मालती माधव', 'महावीर चरित') राजशेखर ('कर्पूर मजरी') तथा कृष्णमिश्र ('प्रबोध चन्द्रोदय') उसी मध्य युग के नाटककार हैं 'पचतन्त्र', 'हितोपदेश', कथा सरित् सागर' जैसा व्यावहारिक, शिक्षाप्रद, कालजयी साहित्य उसी समय लिखा गया कल्हण (राज तरगिणी) बिल्हण (विक्रमाक चरित्र) बल्लाल (भोज प्रबन्ध) सनाढय करनन्दी (राम चरित्र) आदि इतिहासकार और चरित्र लेखक उसी मध्य युग के है प्रसिद्ध ज्योतिषी भास्कराचार्य, चिकित्साशास्त्रज्ञ वाग्भट्ट और धर्मशास्त्रवेत्ता विज्ञानेश्वर भी उसी मध्य युग के हैं, वास्तुकला का भी अच्छा विकास हुआ, उडीसा का भुवनेश्वर मन्दिर, बुन्देलखण्ड का खजुराहो का मन्दिर, आबू का जैन मन्दिर और एलोरा का कैलास मन्दिर उसी मध्यकाल की ही रचनाये हैं.

६.६ भारतीय संस्कृतिः वर्तमानकालः-

विद्यावाचस्पति जी ने भारतीय सस्कृति के तृतीय काल को वर्तमान काल कहा है. इस वर्तमान काल को सुविधा की दृष्टि से दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है १– स्वातन्त्रय पूर्व काल और २– स्वातत्र्योत्तर काल ११ वीं सदीं से बीसवीं सदी तक का प्रदीर्घ काल स्वातन्त्र्य पूर्व काल है यह काल मुगल साम्राज्य और ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास की सस्कृति से जुड़ा हुआ काल है एक प्रकार से यह काल अनेक कारणो से सुपरिचित काल होने के कारण इसका विस्तार से परिचय देने की आवश्यकता नहीं इस्लाम के भारत में आगमन से हिन्दू–मुस्लिम सस्कृति का मिश्रण प्रारभ हुआ अकबर ने 'दीने इलाही' के माध्यम से वही काम करने का प्रयास किया जिसका उद्योग साहित्य के माध्यम से कबीर और नानक ने किया था उसकी इस उदारता का ही फल था कि उसके जाने के बाद ६० वर्ष तक मुगल साम्राज्य अबाध गति से आगे बढता रहा और इसी के साथ चुपचाप

भारतवर्ष में विद्यमान हिन्दू–मुस्लिम सस्कृति का मिश्रण जारी रहा इस दोगली–मिश्रित सस्कृति के कारण भारतीय सस्कृति इतनी दुर्बल हो गयी कि भारत में पश्चिम का प्रवेश हो गया[७७]

६.७ भारत में पश्चिम का प्रवेश और उसकी प्रतिक्रिया:-

दुर्बल भारत की आर्थिक खेती पर पश्चिम के अग्रेज टिड्डी दल की तरह टूट पडे 'फसि भारत जर्जर भयो, काबुल युद्ध अकाल', 'बढै ब्रिटिश वाणिज्य पै हमको केवल सोक' इत्यादि अनेक रूपो मे 'धन विदेस चलि जात' की व्यथा भरी प्रक्रिया शुरू हो गई[७८] 'राज्यस्य मूल अर्थ' यूरोपियन लोगो के प्रवेश के साथ ही देश की कारीगरी मरती गई भारतीय जीवन का हरेक अग बुरी तरह से प्रभावित हो उठा जहा–जहा यूरोपियन लोगो के चरण पडते गये वहा–वहा शेष सामाजिक सगठन के साथ ही साथ शिक्षा की प्राचीन योजना भी टूटती गयी जैसे मुगल राज्य के अन्तिम चरण मे भारत मे दोगला वर्ग उत्पन्न हुआ वैसे ही उन्नीसवीं शताब्दी के तीसरे चरण मे लॉर्ड मैकाले की शिक्षा प्रणाली के कारण भारत मे एक नया दोगला–मिश्रित वर्ग उत्पन्न हो गया, जो रग–रूप से भारतीय होते हुए भी रहन–सहन से पूरा साहब बनने का प्रयत्न कर रहा था १८५८ से लेकर लगभग २५ वर्षों तक भारत पर पश्चिम का राजनीतिक और सास्कृतिक प्रभाव बिना किसी रुकावट के बढता चला गया तत्पश्चात् सुधारको के प्रादुर्भाव व सुधारको से कुछ भिन्न पर अन्तिम लक्ष्य मे समानता की दृष्टि रखने वाले लोकमान्य तिलक जैसे स्वाधीनता के पुजारियों के प्रयास से भारतीय सस्कृति, भारतीयता और भारतीय स्वाधीनता की दृष्टि से सर्वतोमुखी जागृति हुई, शान्ति निकेतन, गुरुकुल कागडी, पुणे व काशी के कतिपय राष्ट्रीय शिक्षणालयो ने तथा तत्कालीन भारतीय साहित्य ने यूरोप के सपर्क से उत्पन्न दोगले वर्ग की मानसिक दासता को तोडने मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा की डॉ जगदीशचन्द्र वसु, डॉ चन्द्रशेखर वेकटरमन, सर शान्तिस्वरूप भटनागर की वैज्ञानिकता व रवीन्द्रनाथ ठाकुर व महात्मा गाधी की व्यापक दृष्टि ने 'दीन–छीन' भारत को एक नया तेज, नयी दृष्टि और अभिनव आत्मबल प्रदान किया

भारतीय संस्कृतिः स्वातंत्र्योत्तर कालः- मुगल और ब्रिटिश–साम्राज्य काल के बाद तथा स्वातत्र्य–युद्ध के पश्चात् १५ अगस्त १९४७ से भारतीय सस्कृति के वर्तमानकालीन उत्तरार्द्ध अर्थात् स्वातत्र्योत्तर काल की शुरुआत हो जाती है विद्यावाचस्पतिजी के अनुसार इस काल मे प्रथम–द्वितीय पचवर्षीय योजना के बाद तृतीय पचवर्षीय योजना की तैयारी से आर्थिक परिवर्तन होने की आशा है हिन्दी भाषा की सब दिशाओ मे उन्नति शुरु हो गई है, पर महावीर प्रसाद द्विवेदी, महादेवी वर्मा, प्रेमचन्द जैसे समकक्ष साहित्यकार नये सिरे से अभी मैदान मे नहीं आये हैं वैज्ञानिक–ऐतिहासिक अनुसधान के कार्य मे भी सविशेष उन्नति हो रही है राजगोपालाचार्य और श्री क मा मुशी जी जैसे राजनीतिज्ञो के साहित्य क्षेत्र में अवतीर्ण होने से आम लेखको को प्रोत्साहन मिला है ये सब वर्तमानकालीन प्रवृत्तिया भारतीय सस्कृति की समर्थक प्रवृत्तिया हैं इस प्रकार इन वर्तमानकालीन भारतीय सस्कृति के अनुकूल प्रवृत्तियो का विवेचन करने के बाद विद्यावाचस्पतिजी ने उन प्रवृत्तियो की ओर सकेत किया है, जो भारत के लिए नवीन और महात्मा गाधी या भारतीय सस्कृति की विचारधारा के प्रतिकूल हैं जैसे– १– राजकीय स्तर पर ईश्वर और धर्म का प्रयोग बद–सा हो गया है २– उच्च अधिकारियों द्वारा अग्रेजी की शिक्षा को स्थिर अग बनाने का प्रयास किया जा रहा है ३– तलाक की प्रथा राजनियम द्वारा मान ली गई है ४– चर्खे का स्थान मशीन लेती जा रही है, ५– शिक्षा की पूर्ति के लिए विदेश जाकर पढना अधिक आवश्यक हो रहा है ६– वास्तुकला मे भारतीय निर्माण कला का स्थान पश्चिम की शैली ने ले लिया है, प्राय नयी सरकारी इमारते 'डिब्बा' प्रणाली पर बनायी जा रही हैं,

विद्यावाचस्पति जी ने अत मे भारतीय सस्कृति के भविष्य के प्रति चिता महसूस करते हुए

चेतावनी की शैली मे पूर्ण सतर्कता के साथ कहा है — 'राष्ट्रीय नेतृत्व के नीचे पश्चिम और भारतीय सभ्यताओ के मिश्रण का एक नया परीक्षण किया जा रहा है. भारत और पश्चिम के वर्तमान सपर्क के अन्त मे कौन जीतेगा अभी यह कहना कठिना है देश की वर्तमान प्रगति के नेता प जवाहर लाल नेहरू हैं जो स्वय पश्चिम और पूर्व के समन्वय के परिणाम हैं कहा जा सकता है कि उनके दिमाग पर पश्चिम का और दिल पर भारत का प्रभुत्व है अन्त मे उन्होने कहा है कि —'यह वर्तमान काल भारतीय सस्कृति को किधर ले जायेगा यह शायद आज से २० साल पीछे भली प्रकार बताया जा सकेगा'[७९] विद्यावाचस्पति जी के उक्त कथन के उपरान्त अब ३४ साल बीत चुके हैं अभी तक तो भारत पर पश्मित्य सस्कृति हावी है, क्योकि जिन पश्चिमाभिमुख ६ प्रवृत्तियो की ओर उन्होने सकेत किया था वे क्षीण होने की अपेक्षा उत्तरोत्तर उग्र और प्रबल होती जा रहीं हैं

६.८ भारतीय संस्कृति का विदेशों में विस्तारः-

विद्यावाचस्पति जी ने 'भारतीय सस्कृति का प्रवाह' का ३० वा अध्याय उक्त शीर्षक से ही लिखा है, जिसमे आधुनिक तो नहीं, अपितु प्राचीन भारतीय सस्कृति विदेशो मे किस तरह से फैली इसकी चर्चा की है सबसे प्रथम उन्होने यह स्पष्ट किया है कि भारतवासी सकीर्ण, कूपमण्डूक नहीं, अपितु भ्रमणशील थे, वे समुद्रपार भी जाते थे विद्यावाचस्पति जी के शब्दो मे --'जल और स्थल के भागो मे प्राचीन भारत के साहसी निवासी पृथ्वी के दूर से दूर देशो मे जाते थे, उनसे व्यापार करते थे और ज्ञान का आदान—प्रदान करते थे उस युग मे भारतवासियो मे वास्को डि गामा और कोलम्बस जैसे उत्साही और उद्योगी पुरुषो की कमी नहीं थी वह दूसरे देशो मे व्यापार करके लौट आते थे, परन्तु कभी—कभी समूह के समूह वहीं बस जाते थे'[८०]

प्राचीन भारतवासियो की भ्रमणशीलता का वर्णन करते हुए उन्होने कहा है कि वे पहले पर्वतो से मैदान मे आये औरे फिर समय--समय पर ईरान, लका, अफ्रीका, मिस्र, स्कैण्डीनेविया, चीन, हिन्दचीन, मलाया, हिन्देशिया, स्वर्णद्वीप समूह के देशो (जावा अर्थात् यवद्वीप, सुमात्रा, बाली), इडोनेशिया, सीरिया, मैसिडोनिया, एदीरस, कम्बोडिया, वर्मा, तिब्बत, स्याम, नेपाल आदि ही नहीं, अमेरिका भी गये विद्यावाचस्पति जी के अनुसार —'पहले समझा जाता था कि अमेरिका को सबसे पहले तलाश करने वाला कोलम्बस था, परन्तु ऐतिहासिक अनुसधान ने यह सिद्ध कर दिया है कि अमेरिका मे प्रथम प्रवेश का श्रेय भारतवासियो का था'[८१]

ईरान मे भारतीयो के पहुचने का आधार उनका धर्मग्रथ जिन्दावस्था है उस ग्रथ का, भाषा और भाव की दृष्टि से वेदो से बहुत निकट का सबध है[८२] अफ्रीका मे भारतीयो के पहुचने का आधार यह है कि फोनेशियन शब्द की उत्पत्ति 'पणि' से हुई है अत्यन्त प्राचीन काल मे आर्य जाति का एक वर्ग 'पणि' कहलाता था पणि लोग व्यापारी थे वणिक् शब्द पणि से ही निकला है पणि लोग नौकाओ से समुद्रो को पार करके सुदूर देशो मे व्यापार के लिए जाते थे मिस्र वासियो के पूर्वज सास्कृतिक दृष्टि से ही नहीं शारीरिक दृष्टि से भी भारतवासियो के समान थे स्केण्डिनेविया मे भारतीय सस्कृति के अवशेष पाये जाते हैं स्केण्डिनेवियन शब्द की उत्पत्ति 'क्षत्रिय' शब्द से हुई है

बौद्ध धर्म के प्रचारक सीरिया, मैसिडोनिया, एदीरस, चीन, सिहल आदि देशो मे प्रचारार्थ गये स्वर्णद्वीप समूह के देशो मे महात्मा बुद्ध से पहले भी भारतीय सस्कृति का दौर--दौरा था महाभारत—रामायण और भारत की अन्य ऐतिहासिक और धार्मिक परम्पराएँ उन द्वीपो मे आज भी उसी स्पष्टता से विद्यमान है, जैसी भारतीय ग्रामो मे डॉ रघुवीर ने उन द्वीपो की यात्रा करके जो जानकारी प्राप्त की है उससे तो यही प्रतीत होता है कि भारत और स्वर्णद्वीप मानो एक ही देश के दो प्रदेश हैं विद्यावाचस्पति जी की सम्मति मे— 'महात्मा बुद्ध के पश्चात् तो भारत मानो गगोत्री

का जलस्रोत बन गया वहाँ से चली हुई धर्म की धाराये गगा के जल की तरह दक्षिण–पूर्वी एशिया को सींचती हुई बहने लगीं '[८३]

कबोडिया आजकल हिन्दचीन का एक भाग माना जाता है, उसे उत्तरीय भारत के कम्बोज नामक प्रान्त के निवासियो ने बसाया था [८४] राम ने विवश होकर लका को जीता था, पुनरपि उन्होने वहाँ का राज्य, राजा के अनुज को देकर अन्तर्राष्ट्रीय इतिहास के सामने एक आदर्श उदाहरण रख दिया था भारतीयो मे युद्ध द्वारा विदेशो पर विजय प्राप्त करने की इच्छा नहीं थी फलत वे जिस देश मे गये वहीं के बन गये, और वहाँ के निवासियो से उनके बहुत गहरे सबध हो गये, परिणामस्वरूप उन्हे कहीं से भागना न पडा ईसा से ६८० वर्ष पूर्व भारत के व्यापारियो ने समुद्र के रास्ते से चीन पहुँचकर 'लंगगा' नामक शहर बसाया था स्वर्णद्वीप समूहवाले देशो की इमारतो के अवशेषो, रीति–रिवाजो और साहित्य को देखकर निस्सन्देह यह कहा जा सकता है कि – उन प्रदेशो को मुख्य रूप से भारतवासियो ने ही बसाया था [८५]

स्याम, नेपाल आदि देश राजनैतिक दृष्टि से चाहे भिन्न हो, पर धार्मिक और ऐतिहासिक परम्पराओ की दृष्टि से ये देश और भारत एक ही नैतिक शरीर के अग प्रतीत होते हैं विद्यावाचस्पति जी के शब्दो मेगगा की घाटी से लेकर यदि-मलाया की दक्षिणी नोक तक एक रेखा खींचे तो वह जिन स्थानो मे से होकर गुजरेगी, वहाँ यात्रा करता हुआ कोई भी भारतवासी यह अनुभव नहीं कर सकता कि वह किसी परदेश मे जा रहा है, उसे सब जगह अपनेपन के से चिह्न मिलेगे [८६] महाराजा अशोक ने जिन देशो मे धर्म–प्रचार के लिए प्रचारक भेजे उनकी सूची मे एशिया के अतिरिक्त अफ्रीका और यूरोप नामक महाप्रदेशो का भी नाम है [८७]

प्राचीन भारतवासियो के भ्रमणशील होने की पुष्टि विदेशी विद्वान हैविट के इस कथन से होती है कि– 'जो हिन्दू व्यापारी भारत से मेक्सिको आये थे, वे अपने साथ पाण्डवो का अठारह महीनो का वर्ष, व्यापार व्यवस्था और भारतीय बाजार की शैली लेकर आये थे '[८८] अत मे विद्यावाचस्पति जी ने निष्कर्ष रूप मे कहा है – अमेरिका के पुराने निवासी केवल नाम से ही इण्डियन नहीं थे, वस्तुत वे भारत के यात्रियो की ही सन्तान थे [८९]

विद्यावाचस्पति जी 'भगवद्गीता' को भारतीय सस्कृति (अर्थात्–वेद, उपनिषद् और दर्शनो) के सिद्धान्त वाक्यो का समन्वयात्मक ग्रन्थ मानते थे [९०] वे प्रतिदिन प्रात सध्या के बाद गीता का पाठ करते थे [९१] श्री शकरदेव विद्यालकार के अनुसार– 'मैथ्यू आर्नल्ड ने सस्कृति की परिभाषा करते हुए माधुर्य और प्रकाश नामक जिन दो आवश्यक उपादानो की चर्चा की है, उन्हे हम विद्यावाचस्पति जी के जीवन मे प्रतिफलित हुआ पाते हैं.'[९२] प्रो विजयेन्द्र स्नातक ने उन्हे 'भारतीय मनीषा का प्रतीक' कहा है [९३] 'सस्कृत साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन' देखने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होने वैदिक काल से लेकर स्वतत्र भारत तक के इतिहास पर अपनी कलम चलाई है 'उपनिषदो की भूमिका', 'वैदिक वर्णव्यवस्था', 'मृतक श्राद्ध पर विचार', 'ईशोपनिषद्भाष्य', 'अध्यात्म रोगो की चिकित्सा' और 'भारतीय सस्कृति का प्रवाह' से स्पष्ट है कि विद्यावाचस्पति जी प्राच्य भारतीय सस्कृति के प्रकाण्ड पण्डित और व्याख्याकार थे, और उनमे 'प्राचीन भारतीय शास्त्रो का परम वैदुष्य'[९४] सन्निहित था

हम इस भारतीय सस्कृति विषयक अध्याय का समापन विद्यावाचस्पति जी द्वारा 'भारतीय सस्कृति की रक्षा' हेतु ही राष्ट्रीय नेताओ से किये गये हार्दिक निवेदन के साथ करना चाहते हैं प्रस्तुत निवेदन हरेक के लिए पठनीय, मननीय व आचरणीय है निवेदन विद्यावाचस्पति जी के शब्दो मे इस प्रकार है 'हरेक देश और जाति की अपनी अलग सस्कृति होती है उसकी रक्षा वह जाति ही करती है, जिसके हाथ मे राज्यसत्ता हो कई सस्कृतियो को यह सौभाग्य प्राप्त है कि उनकी

रक्षा अनेक राष्ट्र करते हैं हिन्दू सस्कृति इस दृष्टि से कुछ निर्बल है, क्योकि उसका प्रभाव केवल एक देश तक ही सीमित है, परन्तु सन्तोष की बात यह है कि वह एक राष्ट्र, आकार और सख्या मे कई राष्ट्रो के बराबर है यदि वह एक ही राष्ट्र अपनी सस्कृति से प्यार करे और उसकी रक्षा का प्रयत्न करे तो ससार की कोई शक्ति नहीं, जो उसका बाल बाका कर सके मेरा राष्ट्र और राष्ट्र के नेताओ से निवेदन है कि वे समय रहते सचेत होकर भारत की उज्ज्वल सस्कृति को अपनाये उसके सरक्षण के उपायो पर विचार करे और भारत के भावी राजमहल की दीवारें उसी नीव पर स्थापित करे ध्यान रखे कि इसका विकल्प बडा ही भयानक है भारतीय सस्कृति के अभाव मे शीघ्र ही वह समय आयेगा कि देश की राजनीति बोल्शेविज्म से ओत-प्रोत हो जायेगी क्योकि प्रत्येक देश को कोई न कोई नीव अवश्य चाहिये "[१५]

सन्दर्भ

१ हिन्दी साहित्य कोश भाग–१–८६६

२ महादेवी साहित्य भाग–१–३२

३ भारतीय सस्कृति का प्रवाह–२

४ मैथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य–४७६

५ साप्ताहिक हिन्दुस्तान १७ जून १६७६ पृ ३५ लेख–आचार्य द्विवेदी जी से एक साक्षात्कार सस्कृति सभ्यता और कुछ प्रश्न प्रस्तुतकर्ता– मित्रत्रयी १–सुरेश ऋतुपर्ण २–हरीश नवल ३–राकेश जैन

६ मैथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य–४७७

७ महादेवी साहित्य १–लेख सस्कृति का प्रश्न–३२

८ मैं इनका ऋणी हूँ–१०७

६ तत्रैव–६०

१० तत्रैव–६१

११ भारतीय सस्कृति का प्रवाह १, १५६

१२ हिन्दी साहित्य कोश १–८६८

१३ साप्ताहिक हिन्दुस्तान १७ जून १६७६–३५

१४ भारतीय सस्कृति का प्रवाह–१

१५ मैथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य–४७८

१६ महादेवी साहित्य १–३४

१७ स्वतत्र भारत की रूपरेखा–३४

१८ भारतीय सस्कृति का प्रवाह प्रस्तावना–क

१६ तत्रैव–७

२० मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण–भाग–४,–१८७

२१ भारतीय सस्कृति का प्रवाह प्रस्तावना–ख

२२ तत्रैव–१०

२३ तत्रैव–११

२४ तत्रैव–१२

२५ साप्ताहिक हिन्दुस्तान २६ फरवरी १६६१, पृ ६, लेख–शील और प्रज्ञा के धनी इन्द्रजी

२६ प्रहलाद त्रैमासिक शोध पत्रिका अप्रैल १६६०–सपादकीय–६

२७ प्रहलाद अप्रैल १६६० लेख–भारतीय मनीषा के प्रतीक प इद्र विद्यावाचस्पति–३०

२८ तत्रैव–२७

२६ आर्यसमाज का इतिहास भाग–५–१४२–१४३

३० हिन्दी साहित्य कोश भाग–२–३६–३७

३१ हिन्दी गद्य साहित्य –१३४

३२ इद्र वेदालकार लिखित 'प्रिस बिस्मार्क' जीवनी मे विषय–सूची से पूर्व दिये गए 'ग्रन्थकर्ता की अन्य पुस्तके' से

३३ इन्द्र विद्यावाचस्पति–६७

३४ सस्कृत साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन–४

३५ प्रहलाद, अप्रैल १६६०–पृ ८६ लेख–इन्द्रजी की सस्कृत साहित्यानुशीलन की ऐतिहासिक दृष्टि

३६ तत्रैव–८८

३७ सस्कृत साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन–१७

३८ प्रहलाद, अप्रैल १६६०–८८

३६ तत्रैव–८६

४० तत्रैव–८६

४१ तत्रैव–६०

४२ वैदिक वर्ण व्यवस्था और श्राद्ध–७

४३ मृतक श्राद्ध पर विचार–११

४४ वैदिक वर्ण व्यवस्था और श्राद्ध वादे वादे जायते तत्वबोध (प्राक्कथन)–१

४५ तत्रैव–४

४६ तत्रैव–३

४७ तत्रैव–४

४८ इन्द्र विद्यावाचस्पति–२२

४६ वैदिक वर्ण व्यवस्था और श्राद्ध–६

५० आर्यसमाज के शास्त्रार्थ महारथी–७३
५१ काशी की पाण्डित्य परपरा–५६१
५२ जातिभेद निर्मूलन–१०६
५३ वैदिक वर्ण व्यवस्था और श्राद्ध–६
५४ इन्द्र विद्यावाचस्पति–४१
५५ प्रह्लाद अप्रैल १६६०–८
५६ मृतक श्राद्ध पर विचार मुशीराम जिज्ञासु–३५
५७ वैदिक वर्ण व्यवस्था और श्राद्ध–४७
५८ कुटज– १२८–लेख–हिन्दी को पजाब की देन
५६ मेरे सस्मरण मूलराज एम ए–७७
६० साप्ताहिक हिन्दुस्तान २६ फरवरी १६६१–६
६१ ईशोपनिषद् भाष्य –१४६–१४७
६२ दाराशिकोह ने उपनिषदो के भाषान्तर मे लिखा था– 'मैंने अरबी आदि बहुत सी भाषा पढी, परन्तु मेरे मन का सन्देह छूटकर आनन्द न हुआ जब सस्कृत देखा और सुना, तब निस्सन्देह मुझको बडा आनन्द हुआ' प भगवद्दत्त के अनुसार–दाराशिकोह के उपनिषदो के भाषान्तर का फारसी नाम है 'सिरे अकबर' अर्थात्–बडा रहस्य– 'सत्यार्थ प्रकाश' (सपा युधिष्ठिर मीमासक)–पृ ४३३
६३ वेदवाणी सपा पदवाक्यप्रमाणज्ञ प ब्रह्मदत्त जिज्ञासु 'मेरे पिता'–परिशिष्ट
६४ ईशोपनिषद् भाष्य निवेदन–१
६५ आर्य सन्देश २३ दिसबर १६६०–२४
६६ मेरे पिता–परिशिष्ट–डॉ वासुदेवशरण अग्रवाल
६७ अध्यात्म रोगो की चिकित्सा प्रस्तावना –पाच
६८ तत्रैव–५
६६ तत्रैव–१३०
७० आर्य सन्देश २३ दिसबर १६६०–२४
७१ भारतीय सस्कृति का प्रवाह–८५
७२ तत्रैव–८७
७३ तत्रैव–८८
७४ सस्कृति के चार अध्याय–१०७
७५ मध्यकालीन धर्मसाधना–३२
७६ भारतीय सस्कृति का प्रवाह–१०६
७७ तत्रैव–१६२
७८ भारतेन्दु के विचार एक पुनर्विचार –२३–२४
७६ भारतीय सस्कृति का प्रवाह–२२३
८० तत्रैव–२२४
८१ तत्रैव–२२६
८२ तत्रैव–२२४
८३ तत्रैव–२२७
८४. तत्रैव–२२८
८५ तत्रैव–२२६
८६. तत्रैव–२२८
८७ तत्रैव–२२७
८८ तत्रैव–२२६
८६ तत्रैव–२३१
६० भारतीय सस्कृति का प्रवाह–६३
६१ प्रह्लाद अप्रैल १६६०–६३–लेख–मेरे पूज्य पिताजी–लेखिका–डॉ उषा पुरी विद्यावाचस्पति
६२ साप्ताहिक हिन्दुस्तान २६ फरवरी १६६१–६
६३ इन्द्र विद्यावाचस्पति विजयेन्द्र स्नातक –२५
६४ प्रह्लाद अप्रैल १६६०–पृ ४६ लेख–प इन्द्र विद्यावाचस्पति से मेरा सपर्क
६५ वीर अर्जुन १८ अप्रैल १६४८ सपादकीय

१०

विद्यावाचस्पति जीः निबन्धकार, कवि और नाटककार के रूप में

१०.१ विद्यावाचस्पति जीः निबन्धकार के रूप में:-

निबध का प्रारभिक रूप पत्रकारिता की भूमि पर फला-फूला है डॉ चन्द्रभानु सोनवणे का यह मत सत्य है कि, १६ वीं सदी के सभी हिन्दी निबन्धकार पत्रकार थे उक्त सदी की मराठी पत्र-पत्रिकाओ के 'निबन्धमाला', 'निबन्ध चन्द्रिका', 'निबन्ध सार' आदि पत्र भी निबध विधा के विकास मे पत्रकारिता के महत्व के द्योतक हैं [१] १० वीं सदी की तरह २० वीं सदी के श्री गणेश शकर विद्यार्थी व इन्द्र विद्यावाचस्पति के निबन्धो का रूप भी पत्रकारिता की भूमि पर पल्लवित-पुष्पित हुआ जैसे उक्त सदी के पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित सपादकीय लेखो को निबन्ध कहा गया, वैसे ही विद्यार्थी व विद्यावाचस्पति जी के लेखो को भी निबन्ध ही कहा गया है विद्यावाचस्पति जी द्वारा सम्पादित 'सद्धर्म प्रचारक' मे स्वाधीनता के लिए मर मिटने वाले राष्ट्रभक्त स्वतत्रता सेनानियो पर लिखे जोशीले लेखो को पढकर श्री गणेश शकर विद्यार्थी इतने प्रभावित हुए थे कि वे उनसे मिलने कानपुर से हरिद्वार पधारे थे [२]

'मॉडर्न रिव्यू' ने सन् १६१४ मे विद्यावाचस्पति जी द्वारा लिखी 'राष्ट्रो की उन्नति' व 'राष्ट्रीयता का मूलमन्त्र' पुस्तको को विषय प्रतिपादन और शैली की दृष्टि से 'अत्युत्तम निबन्ध कहा है और नए भावो, शैली की सुन्दरता और स्पष्टता के कारण पाठको को इन्हे पढने की सलाह दी है [३] 'सद्धर्म प्रचारक' के सपादक की जगह जब विद्यावाचस्पति जी का पहले-पहल नाम छपा था तब स्व लक्ष्मीधर बाजपेयी ने 'हिन्दी चित्रमय जगत्' मे लिखा था- 'हिन्दी जगत् मे एक मौलिक और तेजस्वी लेखनी ने प्रवेश किया है'[४] 'विशाल भारत' ने 'स्वराज्य और चरित्र निर्माण' मे सकलित 'हिन्दुस्तान' और 'ज्ञानोदय' मे प्रकाशित पाच लेखो को निबन्ध के रूप मे ही सबोधित किया है उसकी दृष्टि मे निबन्धकार के विचार एकदम सुलझे हुए, उपयोगी और हरेक तरुण के लिए पढने लायक हैं'[५] 'आजकल' की दृष्टि मे श्री विद्यावाचस्पति 'प्रौढ गद्य शैली सपन्न पत्रकार और लेखक थे'[६]

प्रो विजयेन्द्र स्नातक ने स्वीकार किया है, 'विद्यावाचस्पति जी का लेखन कर्म उपन्यास, जीवनी, सस्मरण, निबन्ध आदि विविध विधाओ मे फैला हुआ है'[७] श्री शकरदेव विद्यालकार की सम्मति मे उनके निबन्ध 'मिताक्षरी शैली मे लिखे गये विचारपूर्ण निबन्ध हैं' जिस बात को समझाने में कई लेखक पाच पन्ने भर डालते हैं उसे पडित विद्यावाचस्पति जी ने दो पन्नो मे सयत परन्तु रोचक रूप मे लिख देते थे[८] श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर के अनुसार- 'विद्यावाचस्पति जी के अग्रलेखो का प्रभाव प्रारभ से ही मेरे मन पर था 'अर्जुन' के डेढ, पौने दो कॉलम मे राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय विषयो पर लिखे गये इनके लेख इतने स्पष्ट और समझाऊ होते थे कि पढकर अज्ञ भी विशेषज्ञ का अभिमान कर सके[६] अवनीन्द्रकुमार विद्यालकार ने भी विविध दिशाओ में लेखन कार्य करने वाले विद्यावाचस्पति जी का सर्वप्रथम निबध लेखक और तत्पश्चात् कवि आदि के रूप मे उल्लेख किया है.[१०] उपन्यास सम्राट् प्रेमचद ने जिन लेखकों व दैनिकों को पढा उनमे विद्यावाचस्पति और उनके 'अर्जुन' पत्र का भी समावेश है[११] स्व डॉ प्रशान्तकुमार वेदालंकार ने लिखा है कि-प विद्यावाचस्पति

जी के लेख अत्यन्त स्वाभाविक और सहज हैं वे किसी भी हिन्दी व सस्कृत लेखक के लिए आदर्श हो सकते हैं हम उनके अप्रतिम लेखन के प्रति श्रद्धावनत हैं।[१२] प बनारसीदास चतुर्वेदी ने कहा था कि–क्या यह सभव नहीं कि उनके 'गाव मे बितायी रात', 'शहरों की कृत्रिम आवभगत' तथा 'अर्जुन' मे प्रकाशित महत्वपूर्ण लेखो का सग्रह छाप दिया जाय, यह कार्य हो जाना चाहिए'[१३] काश विद्यावाचस्पतिजी के श्रेष्ठ निबन्धो का सग्रह यथासमय प्रकाशित हो जाता तो अब तक उनका निबन्धकार का रूप जो ओझल–सा रहा है वह कदापि न रहता, और हिन्दी निबन्ध साहित्य को विद्यावाचस्पति की देन का मूल्याकन करने मे किसी भी समीक्षक को असुविधा न होती

निबन्ध साहित्यः- स्वय विद्यावाचस्पति जी ने अपने 'अध्यात्म रोगो की चिकित्सा' नामक ग्रन्थ मे लिखे दस अध्यायो को भी 'निबन्ध' विधा के अन्तर्गत ही समाविष्ट किया है 'आत्मा', 'श्रद्धा', 'काम', 'क्रोध', 'लोभ', 'मोह', 'अहकार' इत्यादि दस अध्यायो मे ग्रन्थ को विभक्त कर वे लिखते हैं–इस ग्रन्थ मे "मैंने यथाशक्ति यत्न किया है कि निबन्ध की शास्त्रीय तथा व्यावहारिक, दोनो पहलुओ की भाषा सर्वसाधारण के समझने योग्य हो'[१४]

विवेच्य विषय की दृष्टि से वर्गीकरणः- विद्यावाचस्पति जी ने सामान्य और गभीर दोनो प्रकार के विषयो पर लेखनी चलायी है उन्होने विविध विषयो पर निबन्ध लिखे हैं, जो उनके व्यापक अध्ययन के परिचायक हैं, जैसे १– सस्मरणात्मक जीवनी परक निबध २– आत्मकथात्मक निबन्ध ३– सम–सामयिक समस्या प्रधान निबन्ध ४– सामाजिक निबन्ध ५– सस्कृति विषयक निबन्ध ६– पत्रकारिता विषयक निबंध ७– साहित्यिक निबन्ध शैली या रूप की दृष्टि से विद्यावाचस्पति जी के निबधो को निम्नाकित वर्गों मे बाटा जा सकता है १– वर्णनात्मक और विवरणात्मक निबन्ध २– विचारात्मक ,निबन्ध ३– भावात्मक निबन्ध ४– समीक्षात्मक निबन्ध ५– व्याख्यात्मक निबन्ध. इसी परिच्छेद मे यथाप्रसग हम जो उनके निबधो के उद्धरण दे रहे हैं, उनसे अनायास स्पष्ट हो जाता है कि विद्यावाचस्पति जी इन सब शैलियो का सफलता के साथ समुचित प्रयोग करने मे पूर्णतया सफल रहे हैं.

संस्मरणात्मक जीवनी परक निबन्धः- विद्यावाचस्पति जी ने अपने निबन्धो मे राष्ट्रीय समस्याओ तथा सास्कृतिक विषयो को प्रधान स्थान दिया है, परन्तु साथ ही उन्होने व्यक्तिविशेष के व्यक्तित्व तथा जीवनी–वृत्त पर कुशल चित्रकार की तरह अपने निबन्धो मे प्रकाश डाला है जिस किसी के प्रति उनके हृदय मे श्रद्धा आस्था थी, उसके गुणो का वर्णन उन्होंने अत करण पूर्वक किया है. प्रथम महायुद्ध शुरु होते ही राजा महेन्द्रप्रताप के साथ विदेश जाने वाले और फिर कभी लौटकर न आने वाले अपने एक मात्र भाई के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने वाला निबन्ध–'बडे भाई हरिश्चद्र',[१५] अपने विद्या गुरु के जीवन से सबधित निबध 'गुरुवर प काशीनाथ शास्त्री'[१६], 'अर्जुन' प्रेस के सहयोगी मशीनमैन पर प्रकाश डालने वाला निबध 'उस्ताद काशीराम,'[१७] 'आचार्य नरेन्द्र देव'[१८] नामक निबध, अपना यौवन, रोजगार और सुख–सर्वस्व धर्म–सेवा को अर्पण करने वाले, प विश्वभरनाथ जी से सबधित निबन्ध, 'एक आदर्श कर्मयोगी',[१९] 'हैदराबाद के न्यायमूर्ति रानडे' केशवराव कोरटकर के सुपुत्र व लोकनेता के जीवन पर प्रकाश डालने वाला निबन्ध 'बैरिस्टर विनायकराव विद्यालकार'[२०] गुरुकुल कुरुक्षेत्र की सेवा मे समर्पण भाव से संलग्न तपोमूर्ति व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने वाला निबन्ध 'आचार्य प्रियव्रत विद्यालकार'[२१] असाधारण प्रतिभा और तेज के खजाने, उग्र क्रान्ति के केन्द्र, राष्ट्र सेवी लाला हरदयाल के सबध में अभिव्यक्त उनकी धारणा इसी संस्मरणात्मक जीवनी परक निबन्ध कोटि की है विद्यावाचस्पति जी जीवन मे जिस किसी से प्रभावित हुए उस व्यक्ति विशेष की सेवाओ की प्रशसा मे उन्होने दो–चार शब्द तो अवश्य ही कहे हैं. गुरुकुल में कई मास तक रहकर सरकारी शिक्षा के विरुद्ध कठोर आलोचनात्मक लेख लिखने वाले लाला हरदयाल के

सबध मे उन्होने कहा है 'कम से कम मैंने अपने सारे जीवन में उनसे बढकर या उनके समान तीक्ष्ण प्रतिभा वाला व्यक्ति नहीं देखा '[२२]

आत्म-कथानक निबन्धः- विद्यावाचस्पति जी द्वारा लिखित इस श्रेणी के निबन्धों को आत्म–परिचयात्मक निबन्ध भी कहा जा सकता है इस श्रेणी का सर्वप्रथम निबध है– 'मेरी प्रथम यात्रा'[२३] यह लेखक द्वारा बचपन मे की गई अपने पूर्वजो के मूलगाव 'तलवन' की यात्रा है यह गाव जालन्धर शहर से बीस–बाईस मील दूरी पर स्थित है द्वितीय निबन्ध है– 'दिल्ली जेल का मेरे मानस पर पडा सामूहिक प्रभाव'.[२४] तृतीय निबध है– 'गाव मे एक रात'[२५] यह बिजनौर जिले के हसनपुर गाव मे बितायी गई एक रात का वर्णन है इस निबन्ध की समता श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने ए.जी. गार्डिनर के रेखाचित्रो से की है[२६] चौथा निबध है– 'मैं क्या न कर सका' इसमे लेखक ने बतलाया है कि –'मैं अब तक एक प्रयत्न मे सफल नहीं हो सका, और वह प्रयत्न था कि मैं सर्वप्रिय हो जाऊँ– मुझसे कोई नाराज न हो, मुझे लोग अजातशत्रु समझे '[२७] पाचवा निबन्ध है– 'मृत्यु द्वार के दर्शन' विद्यावाचस्पति जी ने इस निबन्ध मे देहान्त से लगभग सवा वर्ष पूर्व निमोनिया के आक्रमण के बाद चेतना की अन्तिम सीमा–अचेतावस्था–तक पहुचकर, जो कुछ अनुभव किया उसका वर्णन किया है निबन्ध आद्यन्त उद्धरणीय है प्रारभ मे लेखक ने लिखा है– 'गत वर्ष गर्मियो मे मुझे एक दुर्लभ अनुभव प्राप्त हुआ मैंने यह देख लिया कि मृत्यु का द्वार कैसा है और यह भी अनुभव कर लिया कि, वहा तक की यात्रा कैसे की जाती है, यदि एक कदम आगे बढ जाता, तो अनन्त मे विलीन हो जाता हुआ यह कि ठीक द्वार पर पहुचने पर मुझे पीछे खींच लिया गया और मैं गहरे अधकार से फिर प्रकाश मे आ गया ' निबध का समापन इस परिच्छेद के साथ इस प्रकार हुआ है – 'इस घटना मे मुझे तीन तथ्यो का अनुभव कराया, पहला, मनुष्य की जीवनेच्छा अति प्रबल है स्वभावत वह मरने की अपेक्षा अत्यन्त रोगी और निर्बल जीवन व्यतीत करना भी पसद करता है दूसरे, मरने से पूर्व की जीवन–चेष्टा वस्तुत बहुत दु खदायी होती है, उसे केवल अत्यन्त धैर्य से ही सहा जा सकता है तीसरे, जब मनुष्य की चेतना जाती रहे, तब तक वह जिस अधकार के प्रदेश मे प्रवेश करता है, उससे वह सुख और दु ख दोनो से मुक्त हो जाता है उस समय वह यह भी अनुभव करता है कि उसका अस्तित्व है '[२८] छटा निबन्ध है– 'यदि मुझे पुन जीने का अवसर मिले' इस निबन्ध का भी प्रारभ, मध्य और उपसहार अवलोकनीय है प्रारभ मे कहा गया है– 'यदि मुझे पुन जीने का अवसर मिले, तो मैं भारतभूमि मे ही उत्पन्न होना पसन्द करूगा इसे चाहे मेरी कूपमण्डूकता समझे, अथवा देश का मोह मेरी मनोवाछा यही है ' मध्य मे कहा है– 'यदि मुझे पुन जीने का अवसर मिले तो मैं चाहूगा कि स्वदेश मे शिक्षा प्राप्त करके, विदेश भ्रमण द्वारा उसे पुष्ट तथा परिपूर्ण कर लू तब कार्यक्षेत्र मे प्रवेश करू उससे मेरा दृष्टिकोण अधिक विस्तृत हो जायेगा. निबध की इतिश्री इन शब्दो के साथ हुई है– 'यदि अगले जीवन मे निरोग शरीर मिलेगा, तो इस जीवन की अपेक्षा राष्ट्र की अधिक सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त कर सकूगा, न अन्तरिक्ष की इच्छा है, और न पाताल की मेरी इच्छा इस भूलोक तक ही परिमित है.'[२९]

समसामयिक समस्या प्रधान निबन्धः- विद्यावाचस्पति जी केवल सस्कृति के गूढ रहस्यों के विवेचन मे ही नहीं लगे रहे, अपितु सम–सामयिक समस्याओं के प्रति भी वे एक लेखक एव निबधकार के नाते सतर्क रहे, चाहे फिर स्वातन्त्र्य पूर्व काल हो या स्वातन्त्र्योत्तर रॉलट बिल विरोधी राजनीतिक क्रान्ति के दिनो मे उनके द्वारा लिखे गए कुछ लेखो के शीर्षक हैं– १– 'अजदहा जागा, दिल्ली मे अपूर्व दृश्य'[३०] २– 'लगडा खूनी मैदान में,[३१] 'हमारी छाती पर पिस्तौल'[३२] अग्रलेखो की तेजस्विता से क्षुब्ध होकर जब अग्रेज सरकार की सेंसरशिप आयी तो उसने एक बार श्री विद्यावाचस्पति द्वारा लिखा पूरा अग्रलेख ही काट दिया, तब उन्होंने अग्रलेख के स्थान पर निम्नलिखित शेर दे दिया था

"करीब है यार रोजे महशर, छुपेगा कुश्तो का खून कब तक।
जो चुप रहेगी जुबाने खजर, लहू पुकारेगा आस्तीं का।।"[३३]

स्वातत्र्य पूर्व काल मे विद्यावाचस्पति जी द्वारा लिखे गये कतिपय अन्य लेखों के शीर्षक हैं १– 'सम्राट यहीं रहो'[३४] २– 'प्राचीन भारत मे स्वाधीनता का अभाव'[३५] ३– 'चीन की उन्नति क्यो हुई'?[३६] ४– 'क्रान्ति', ५– 'सत्याग्रह'[३७] ६– 'साम्राज्यवाद', ७– 'ससार की विकट आर्थिक परिस्थिति'[३८] ८– 'दो मस्जिदे'[३९] ९– 'भाई परमानन्द और स्वराज्य'[४०] १०– 'भारत वर्ष किधर को'?[४१] स्वातत्र्योत्तर कालीन सम–सामायिक समस्याओ से सबधित उनके कतिपय निबन्धो या लेखो के शीर्षक हैं १– 'राष्ट्रभाषा की हत्या'[४२] २– 'श्री महाराणा प्रताप का स्मारक'[४३] ३– 'सरकार का सस्कृत आयोग'[४४] और ४– 'शहरो की कृत्रिम आवभगत'[४५] 'राष्ट्रभाषा की हत्या' निबन्ध मे भारतीयो की मानसिक दासता की ओर सकेत करते हुए विद्यावाचस्पति जी कहते हैं– 'पूर्ण रूप से स्वतन्त्र होकर हम स्वतन्त्र रूप से कोई निर्णय नहीं कर सकते एक ओर अग्रेजी और दूसरी ओर से फारसी लिपि और उर्दू, हमारे मस्तिष्क पर अधिकार किये बैठी है हम सोच ही नहीं सकते कि हमारी अपनी लोकभाषा भी राष्ट्रभाषा हो सकती है हमारी इस मनोवृत्ति को यदि आप दासता नहीं कहना चाहते तो 'दासता की प्रतिध्वनि' इस नाम से निर्दिष्ट कर दीजिये, परन्तु है तो दासता ही " श्री महाराणा प्रताप और रानी लक्ष्मीबाई के यथोचित स्मारको के अभाव से व्यथित होकर उन्होने लिखा था– 'किसी भी जाति के विद्या और आचरण का स्तर पहचानना हो तो यह देखना पर्याप्त है कि उस जाति के सर्वसामान्य और सुरक्षित लोग किन व्यक्तियो का आदर करते हैं एक आदर्श प्रेमी जाति मे सन्तो और वीरो का आदर किया जाता है . यह आश्चर्य की बात है कि अपने का आदर्श प्रेमी समझने वाले भारतवासियो ने आज तक अपने देश के अनेक महात्माओ और वीरो की स्मृतियो को उचित सम्मान नहीं दिया आज तक झासी की महारानी लक्ष्मीबाई और चित्तौड केसरी महाराणा प्रतापसिह के समुचित स्मारको का न बनना हम लोगो की निर्बलता और क्षुद्र प्रवृत्तियो का प्रमाण है."[४६] 'सरकार का सस्कृत आयोग' निबन्ध मे भारत सरकार की सस्कृत विषयक नीति से व्यथित होकर विद्यावाचस्पति जी ने कहा है– "आयोग के सदस्यो का निश्चय करते हुए यह ध्यान रखा गया है कि उसमे ऐसे व्यक्ति न आने पाये जिनका दृष्टिकोण सर्वथा स्वतन्त्र हो जो महानुभाव, आयोग की सदस्यता से सम्मानित किये गये हैं. वे किसी न किसी रूप मे सरकार के प्रबन्ध यन्त्र से सबद्ध हैं अनुभव से प्रतीत होता है कि जिस दशा मे सरकार को कोई काम करना होता है, उसके लिए आयोग बनाने की आवश्यकता नहीं समझी जाती सगीत और नृत्य को राष्ट्रीय कार्यक्रम मे ऊँचा स्थान देने के सबध मे कोई कमीशन नहीं बिठाया गया तो भी उन्हे आज राष्ट्रपति भवन तथा अन्य सरकारी स्थानो मे उच्च स्थान प्राप्त हो गया है"[४७]

सामाजिक निबन्धः- विद्यावाचस्पति जी के सामाजिक निबधो मे अधिकाश निबध आर्य सामाजिक क्षेत्र से सबधित हैं अत उन्हे आर्य सामाजिक निबध भी कहा जा सकता है, इस श्रेणी के निबन्ध इस प्रकार हैं– १– 'आर्य कौन'?[४८] २– 'आर्य समाज का भविष्य',[४९] ३– 'श्री दयानन्द सेवा–सदन की प्रस्तावित योजना',[५०] ४– 'आर्य वीर दलो का सगठन,'[५१] ५– 'आर्य समाज और उसका साहित्य',[५२] ६– 'विश्व साहित्य मे सत्यार्थ प्रकाश का स्थान',[५३] ७– 'महर्षि दयानन्द की बोधरात्रि',[५४] ८– 'पूर्ण स्वराज्य के आद्य स्वप्नद्रष्टा स्वामी दयानन्द',[५५] ९– 'प श्यामजी कृष्ण वर्मा',[५६] १०– 'वैदिक धर्मी का राजनैतिक दृष्टिकोण',[५७] ११– 'स्वाधीनता सग्राम मे आर्य समाज का भाग',[५८] १२– 'आर्य समाज और राजनीति',[५९] १३– 'आर्य समाज की कार्य प्रणाली मे मौलिक परिवर्तन की आवश्यकता' और १४– 'श्री स्वामी स्वतन्त्रानद जी'[६०] विद्यावाचस्पति जी आर्यसमाज की अतर्राष्ट्रीय सस्था– 'सार्वदेशिक सभा' के प्रधान और मन्त्री थे आर्य समाज की गतिविधियो से तो वे आजीवन जुडे रहे. श्री रघुनाथ प्रसाद पाठक की दृष्टि मे उनके 'आर्य सामाजिक लेख आदेश–निर्देशो से युक्त और सारगर्भित

रहते थे.'[६१] आर्य समाज का स्वयसेवक दल– 'आर्य वीर दल–' को भी प्रशिक्षित करने के लिए भी विद्यावाचस्पति जी ने दस लघु निबध लिखे थे जिनके शीर्षक हैं– १– 'आर्य वीर दल का प्रधान लक्ष्य', २– 'क्षात्र शक्ति का सामूहिक प्रादुर्भाव' ३– 'आर्य वीर दल का ध्वज', ४– 'आर्य वीर दल के कर्तव्य', ५– 'आर्य वीर दल का विधान तथा उसका आर्य समाज से सबध', ६– 'आर्यत्व की व्याख्या', ७– 'आर्य वीर और राष्ट्र धर्म', ८– 'आर्य वीर दलो का वर्तमान कार्यक्रम, ६– 'आर्य वीर दल और अन्य स्वयसेवक दल', १०– 'राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ और आर्य वीर दल' इन दस लघु लेखो को सकलित कर एक स्वतन्त्र पुस्तिका तैयार की गई है जिसका नाम है– 'आर्य वीर दल का बौद्धिक शिक्षण' [६२] जैसे इन लेखो का सग्रह प्रकाशित किया गया है तद्वत् उपरोक्त आर्य सामाजिक तेरह निबधो का भी एक स्वतत्र श्रेष्ठ सग्रह तैयार किया जा सकता है

विद्यावाचस्पति जी ने ३ जून १६०८ ई के 'सद्धर्म प्रसारक' में 'क्ष' छद्म नाम से 'आर्य समाज और उसका साहित्य' नामक लेख लिखा था इस लेख के लेखन काल मे वे छात्र थे और उनकी आयु केवल १६ वर्ष की थी तत्कालीन उनकी समृद्ध भाषा और तीव्र आलोचनात्मक शैली के उदाहरण के रूप मे उक्त लेख का एक गद्याश प्रस्तुत है आर्य सामाजिक क्षेत्र की कविता की स्थिति का वर्णन करते हुए वे कहते हैं– 'कविता के विषय मे हमे यही कहना है कि आर्य समाज ने कविता–देवी का इतना अपमान किया है जितना कोई पूरी शक्ति से कर सकता था जिन लोगों के ऊपर कभी कविता–देवी ने भूलकर भी दृष्टि निक्षेप नहीं किया, जिन्होने कभी जन्म भर मे एक बार भी सत्कवियो का सग नहीं किया, वे लोग केवल गले के प्रभाव से या पद के प्रभाव से आर्य समाज मे कवि पदवी पाकर कविता–देवी के नाम पर अकड–अकड कर चलते तथा नगर–कीर्तनो मे सरस्वती की कर्णशूल तुक बन्दियो को सुना–सुनाकर तालियो का प्रसाद पाते हैं आर्य समाज ने कविता का खण्डनात्मक पद्यो तथा तुकबन्दियो से बिगाड कर जितना पाप अपने ऊपर लिया है, उससे निस्तार पाना कष्ट साध्य है ''[६३] 'विश्व साहित्य मे सत्यार्थ प्रकाश का स्थान' निबध मे वे अर्न्तराष्ट्रीय धार्मिक साहित्य मे 'सत्यार्थ प्रकाश की असाधारण महत्ता' का प्रतिपादन करते हुए लिखते हैं– ''यह तो सभव है कि सत्यार्थ प्रकाश का पढने वाला व्यक्ति उसकी कुछ बातो से असहमत हो, परन्तु यदि वह पक्षपात की ऐनक को उतारकर सत्यार्थ प्रकाश के समस्त समुल्लासो को पढेगा, तो वह इस परिणाम पर पहुचे बिना नहीं रह सकता कि ग्रन्थकर्ता ने युक्ति और प्रमाण की सहायता से सत्य पर पहुचने का प्रयत्न किया है जो लोग सत्यार्थ प्रकाश को पढे बिना ही केवल सुनी–सुनाई बातो के आधार पर सम्मति बना ले अथवा केवल उसी भाव को पढकर सम्मति बनाए जिसमे उनके अपने परम्परागत सम्प्रदाय की आलोचना की गई है, उनकी सम्मतियो को छोड दीजिए और पूरे सत्यार्थ प्रकाश को पढ जाइये, तो फिर चाहे आप किसी मत के अनुयायी हो, आपको स्वीकार करना पडेगा कि महर्षि ने विविध धर्म और मत–मतान्तरो की आलोचना करने मे अणुमात्र का भी पक्षपात नहीं किया पौराणिक, जैन, ईसाई और मुसलमान के माने हुए साप्रदायिक विचारो तथा रूढियो की एक ही कसौटी पर कसकर परीक्षा की है उनके तर्क की कैंची उन सब विचारो पर एक ही रही है, जिन्हे वह भ्रमपूर्ण मानते हैं कुछ लोगो को यह कहने की आदत पड गई है कि स्वामी दयानन्द मुसलमानो के शत्रु थे वस्तुत सत्यार्थ प्रकाश का स्थान तो विश्व के धार्मिक साहित्य मे होना चाहिये, क्योकि वह मनुष्यो को रूढियो के मायाजाल को काटने और तर्क द्वारा सत्य तक पहुचाने का रास्ता बतलाता है [६४]

'महर्षि दयानन्द की बोध रात्रि' निबन्ध मे उन्होने महर्षि के सुधार कार्यक्रम को चौमुखा बतलाते हुए कहा है– ''उस कार्यक्रम की चार दिशाये थीं प्रथम– मानसिक दासता का विरोध, द्वितीय– सामाजिक कुरीतियों का विरोध, तृतीय– पाश्चात्य सभ्यता के अन्धे अनुकरण का विरोध और चतुर्थ–

राजनीतिक पराधीनता का विरोध, महर्षि दयानन्द का सुधारों का कार्यक्रम मूल रूप मे उन चार दासताओ के विरोध का कार्यक्रम था जिनके नीचे जाति दबी हुई थी यह बात स्पष्ट ही है कि यदि किसी असह्य बोझ से दबे हुए मनुष्य को खडा करना हो तो उस पर से बोझ हटा देना चाहिये महर्षि दयानन्द ने जाति का सबसे बडा उपकार यह किया कि उसकी छाती परसे चारो प्रकार की पराधीनताओ का बोझ हटाने का प्रयत्न किया''[६५] ' उनके उपदेशो ने देशवासियो की प्रवृत्ति का मुह पश्चिम दिशा से हटाकर पूर्व की ओर मोड दिया इस प्रकार उन्होने रूढियो के जगल के स्थान मे विदेशी सभ्यता का जो विष वृक्ष बोया जा रहा था, उसे रोक कर भारतीयता के कल्पवृक्ष का आरोपण कर दिया '' यदि देशवासी महर्षि के जीवन का सावधानता से अनुशीलन करे, और उनके सदेश के व्यापक रूप को सामने रखे तो उन्हे निश्चय हो जायेगा कि उन्हे भारत की स्वाधीनता रूपी भागीरथी का भगीरथ कहने मे अणुमात्र भी अत्युक्ति नहीं है जब हम यह कहते हैं कि स्वामी दयानन्द जी भारत की स्वाधीनता के भगीरथ थे, तब हमे यह बात ध्यान मे रखनी चाहिये कि उनका विचार क्षेत्र केवल भारत तक परिमित नहीं था.'' उन्होंने ससार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य बतलाया है केवल हिन्दू जाति अथवा केवल भारत का उपकार करना नहीं.'' ...''जो लोग उसके विशाल रूप को न पहिचानकर उसे सकुचित मतवाद की सीमा मे बाध देते हैं, वे महर्षि के व्यक्तित्व और मिशन के साथ अन्याय करते हैं.''[६६]

संस्कृति विषयक निबन्धः- विद्यावाचस्पति जी के निबन्धो मे प्राचीन साहित्य तथा सस्कृति का ज्ञान–वैभव और विचारो की मौलिकता का अपूर्व समन्वय है. इस श्रेणी के अन्तर्गत आने वाले उनके निबन्ध इस प्रकार हैं १– 'वैदिक अनुसंधान का उद्देश्य,'[६७] २– 'सहजीवन का वैदिक उपाय,'[६८] ३– 'कर्मफल ' एक वैदिक दृष्टिकोण,'[६९] ४– 'उपनिषदो का अध्यात्म योग,'[७०] ५– 'उपनिषदो की ज्ञान परपरा,'[७१] ६– 'सस्कृत भाषा की ज्ञान–परम्परा,'[७२] ७– 'राम–राज्य की अमर भावना,'[७३] ८– बुद्ध जयन्तीः एक सन्देश,'[७४] ९– 'इन्द्रसूक्त राष्ट्रपति की विशेषताये,'[७५] १०– 'धर्म क्या है और अधर्म क्या है?', ११– 'धर्म क्या है और क्या नहीं?,[७६] १२– 'मानवीय इतिहास में उत्थान और पतन की अवश्यभाविता',[७७] १३– 'स्वामी श्रद्धानन्द जी का शिक्षा सबंधी ध्येय',[७८] १३– 'पं. जवाहर लाल नेहरू –एक विश्लेषण',[७९] १४– 'लोकमान्य की देन',[८०] १५– 'पाप क्या है?'[८१] १६– 'वक्तृत्व कला उसके अंग और विभाग'[८२]

उक्त १६ निबन्धो मे से ६ निबध विद्यावाचस्पति जी के ग्रन्थो में परिशिष्ट और प्रस्तावना के रूप में प्रकाशित लेख हैं 'उपनिषदो की ज्ञान परपरा', 'सस्कृत भाषा की ज्ञान परपरा' (मूलशीर्षक–भाषा परम्परा), और 'लोकमान्य तिलक की देन' ये तीन निबन्ध क्रमश 'ईशोपनिषद्भाष्य' और 'लोकमान्य तिलक और उनका युग' नामक ग्रंथ मे परिशिष्ट या ग्रन्थान्त मे प्रकाशित लेख हैं, तथा इसी प्रकार 'मानवी इतिहास में उत्थान और पतन' 'प. जवाहरलाल नेहरू–एक विश्लेषण' तथा 'वक्तृत्व कला अग और उपाय' नामक तीन निबन्ध क्रमश. 'मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण', 'प जवाहर लाल नेहरू' तथा 'आधुनिक भारत मे वक्तृत्व कला और प्रगति' मे प्रस्तावना के रूप मे प्रकाशित लेख हैं. प्रस्तावना–परिशिष्टों के रूप मे प्रकाशित इन ६ लेखों का समावेश हमने निबंधों मे इसलिये किया है, क्योकि इनमें निबन्धो के सभी आवश्यक गुणों का समावेश है. कई बार ऐसा भी होता है मूल ग्रन्थों पर जितना ध्यान टिका रहता है. उतना प्रस्तावना और परिशिष्टो पर नहीं. प्राय. इनकी उपेक्षित हो जाने की अधिक संभावना रहती है, अत. इनकी उपेक्षा न हो तथा भविष्य में जब विद्यावाचस्पति जी के श्रेष्ठ निबन्धो का प्रकाशन हो तब इन 'परिशिष्ट' और 'प्रस्तावना' के रूप मे प्रकाशित इन ६ लेखो का भी समावेश हो अतः हमने इनकी गणना शेष १० निबन्धों के साथ की है

'सहजीवन का वैदिक उपाय' निबन्ध मे लेखक ने कहा है कि – 'यदि हम भारत के पंचशील, अहिंसा तथा सर्वभूतदया आदि सिद्धान्तो का बीज तलाश करना चाहे, तो हमे ससार की सबसे प्राचीन पुस्तक 'ऋग्वेद' के अन्तिम सूक्त का पाठ करना चाहिये . जिसे आज सघ–मण्डल आदि नामो से पुकारा जाता है वेद मे उसके लिये 'समानी–समिति' शब्द का प्रयोग है मनुष्यो के हृदयो में जब कभी युद्ध से बचने और मिल–जुलकर रहने की इच्छा उत्पन्न हुई तब–तब उन्होने एक समिति का निर्माण किया कभी उसका नाम 'लीग–ऑफ नेशन्ज' रक्खा गया तो कभी उसे 'यू एन ओ ' के नाम से पुकारा गया. शातिपूर्वक मिलकर रहने को आजकल की राजनीति की भाषा मे Co-Existence (सह अस्तित्व) कहा जाता है इस शब्द से केवल साथ रहने का भाव प्रकट होता है. भली प्रकार साथ रहने का नहीं यदि Co-Existence (सह अस्तित्व) की जगह 'सुसहासन' इस शब्द का प्रयोग किया जाय तो बहुत अधिक उपयुक्त होगा '[८३]

'उपनिषदो का अध्यात्म योग' निबन्ध मे विद्यावाचस्पति जी लिखते हैं –'ब्रह्म को भली प्रकार जानने का उपाय अध्यात्म योग है लक्ष्य है आनन्द की प्राप्ति, उपाय है ब्रह्म–शक्ति, और ब्रह्मज्ञान का साधन है "अध्यात्म योग." . अध्यात्म योग के चार अग हैं– सत्य, तप, सम्यक्ज्ञान और नित्य ब्रह्मचर्य '[८४]

'स्वामी श्रद्धानन्द जी का शिक्षा सबंधी ध्येय' नामक निबध की प्रश्नोत्तर शैली में शुरुआत करते हुए लेखक ने कहा है– "यदि यह पूछा जाय कि श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की अपने देश को और सारे विश्व को सबसे बडी देन क्या थी? तो उसका उत्तर होगा गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का पुनरुज्जीवन ' लेख के मध्य मे गुरुकुल शिक्षा–प्रणाली का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहा गया है –"गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में तीन वस्तुओ का समन्वय किया गया था. ब्रह्मचर्य नियमो का पालन सबसे मुख्य था उसके साथ–साथ वैदिक तथा उत्तरकालीन सस्कृत वाड्मय की शिक्षा आवश्यक रखी गई तीसरे स्थान पर आग्ल भाषा, आधुनिक विज्ञान, इतिहास आदि विद्याये और शिल्प उद्योग आदि अर्थकरी विद्याओ की शिक्षा को रखा गया था " लेख की इतिश्री करते हुए विद्यावाचस्पति जी ने लिखा है–'स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने जिस ध्येय को सामने रखकर गुरुकुल की स्थापना का सकल्प किया. उसका निरन्तर स्मरण इसलिए आवश्यक है कि गुरुकुल के सचालक सदा ध्येय पर अपनी दृष्टि लगाए रखे और कभी पथभ्रष्ट न हो "[८५]

'वक्तृत्व कला अंग और विभाग' नामक निबंध में विद्यावाचस्पति जी ने वक्तृत्व कला के तीन अग और दो विभाग बतलाये हैं, वक्तृत्व कला के तीन अग हैं, १– भाषा और उसका ठीक उच्चारण, २– स्वर का उतार–चढाव, और ३– कायिक चेष्टाये वक्ताओ के दो विभाग हैं १– सुवक्ता और २– ऑरेटर. सुवक्ता ससदीय वक्ता होता है और ऑरेटर जनता का वक्ता होता है श्रीयुत गोखले ससदीय वक्ता थे तो लाला लाजपतराय जनता के वक्ता. वस्तुत. यह निबध निबंधकार ने 'आधुनिक भारत मेंवक्तृत्व कला की प्रगति' की 'भूमिका' के रूप में लिखा था दिल्ली के 'हिन्दुस्तान' पत्र ने इस पुस्तक को पूर्णतया मौलिक और उपयोगी बताते हुए लिखा था–'पुस्तक के प्रारभ मे एक अच्छी भूमिका लिखकर विश्व एवं भारत में वक्तृत्व कला के इतिहास और विकास पर लेखक ने सराहनीय प्रकाश डाला है.'[८६]

पत्रकारिता विषयक निबन्धः- विद्यावाचस्पति जी के पत्रकारिता से सबंधित ५ निबन्ध हैं, इनमे से चार 'पत्रकारिता के अनुभव' नामक ग्रन्थ के अन्त में प्रकाशित हुए हैं और पांचवां लघु निबन्ध 'स्वराज्य और चरित्र निर्माण'ग्रन्थ मे 'समाचार पत्रो का दायित्व'[८७] शीर्षक से प्रकाशित हुआ है. शेष निबन्धों के शीर्षक हैं– 'समाचार–पत्र का प्रारभ काल',[८८] 'समाचार–पत्र के उपयोग'[८९], 'समाचार पत्रो की शक्ति'[९०] और 'भारत मे पत्रकारिता– क्या मिशन से व्यवसाय बनेगा?'[९१] डॉ. सोनवणे

जी ने लिखा है 'श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति की 'पत्रकारिता के अनुभव' नामक सस्मरणात्मक पुस्तक तथ्यात्मक अधिक है, भावात्मक कम'[९२] पुस्तक के तथ्यात्मक बन जाने का एक कारण यह भी है कि पत्रकारिता विषयक निबधो को स्वतन्त्र पुस्तक के रूप मे प्रकाशित करने की अपेक्षा पत्रकारिता सबधी सस्मरणो के साथ प्रकाशित कर दिया गया है.

साहित्यिक निबन्धः- विद्यावाचस्पति जी द्वारा लिखित 'स्वतन्त्र भारत की रूपरेखा', 'स्वराज्य और चरित्र निर्माण', 'स्वाधीनता सग्राम मे आर्य समाज का भाग', 'यदि आचार्य चाणक्य प्रधानमन्त्री होते?' आदि ग्रन्थो के रूप मे प्रकाशित सामग्री पहले लेख रूप मे प्रकाशित हुई थी, कालान्तर मे उसने ग्रन्थो का रूप धारण कर लिया आगे जिन ११ निबन्धों का हम उल्लेख कर रहे हैं वे विद्यावाचस्पति जी के हमारी दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट साहित्यिक निबन्ध हैं इनमे से प्रथम दो निबध 'रघुवंश' की भूमिका' मे पूर्वार्द्ध और उत्तरार्ध के रूप मे प्रकाशित हो चुके हैं तीसरा निबन्ध 'किरातार्जुनीय' की 'प्रस्तावना' के रूप मे और चौथा निबन्ध 'भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य का उदय' की 'भूमिका' के रूप मे लिखा गया है, और पाचवॉ निबन्ध 'भारतीय स्वाधीनता सग्राम का इतिहास' का ३२ वा परिच्छेद है शेष ६ निबन्ध छात्रावास के काल से लेकर जीवन–सन्ध्या के अन्तिम चरण तक समय–समय पर लिखे गए हैं, जो यथासमय पत्र–पत्रिकाओ मे प्रकाशित हुए हैं निबन्धो के क्रमश शीर्षक इस प्रकार हैं १– 'महाकवि कालिदास और तत्कालीन भारत,'[९३] २– 'रघुवश का लक्ष्यबिन्दु',[९४] ३– 'किरातार्जुनीय एक ओजस्वी काव्य',[९५] ४– 'इतिहास विज्ञान और साहित्य',[९६] ५– 'साहित्य जागरण',[९७] ६– 'शिवशकर शर्मा काव्यतीर्थ लिखित ब्राह्मण ग्रन्थो की समीक्षा'[९८] ७– बनारसीदास चतुर्वेदी जी लिखित प्रवासी भारतवासी की समीक्षा'[९९] ८– विष्णु प्रभाकर लिखित– विधवा की उन्मुक्त प्रेम–विषयक कथा की समीक्षा',[१००] तथा ९– सरदार के एम पणिक्कर लिखित 'प्रतिक्रिया का खतरा' नामक लेख की 'घोर प्रतिक्रिया के पुजारी'[१०१] नामक लेख द्वारा शल्य चिकित्सा. १०– 'उन्होने जो कुछ लिखा उसमे फौलाद भर दिया'[१०२] शीर्षक से आचार्य चतुरसेन जी शास्त्री को श्रद्धाजलि और ११– देहावसान के कुछ ही समय पूर्व लिखा 'कण्वाश्रम का स्मारक'[१०३] निबन्ध यह स्मारक, उत्तर प्रदेश सरकार की अनुमति और गढवाल प्रदेश के उत्साही निवासियो के प्रयत्न से, गढवाल आचलस्थ, चौकी घाट के पास, मालिनी नदी के तट पर स्थित, एक पहाडी चोटी पर बनाया गया है

उपरोक्त निबधो मे से प्रारभिक ६ निबन्धों की चर्चा विद्यावाचस्पति जी के अनूदित, इतिहास एव पत्रकारिता विषयक अध्यायो मे यथाप्रसग की जा चुकी है ब्राह्मण ग्रथो की समीक्षा के विषय मे स्वय लेखक ने कहा है–'ब्राह्मण ग्रन्थो की आलोचना मे मैंने जो उल्लेख लिखे वे स्थायी उपयोगिता की दृष्टि से नहीं, अपितु बचपन के उत्साह मे लेखनी की खुजली मिटाने के लिए, केवल वाग्विलास समझकर, व्यग्यपूर्ण तथा नवीन शैली की हिन्दी में लिखे थे.'[१०४] इन निबन्धो का लेखन काल लगभग सन् १९१० या १९११ है सत्यकाम–अवनींद्र विद्यालकार के अनुसार श्री बनारसीदास चतुर्वेदी लिखित 'प्रवासी भारतवासी' पुस्तक की समीक्षा मे 'गवेषणापूर्ण तथ्य' लिखे गये हैं.[१०५] विष्णु प्रभाकर लिखित विधवा की उन्मुक्त प्रेम–कथा उन्हे 'ऊबड–खाबड' प्रतीत होते हुए भी अच्छी लगी थी कहानी अच्छी लगने का एक कारण आर्य समाज का उग्र सुधारवाद था, क्योंकि उसमें प्रचलित रीति–नीति का घोर विरोध किया था[१०६]

सरदार के एम पणिक्कर लिखित 'प्रतिक्रिया का खतरा' लेख की आलोचना करते हुए विद्यावास्पति जी ने श्री पणिक्कर की दृष्टि में जो दकियानूसी संकीर्ण विचार बतलाये हैं उनकी सख्या लगभग १५ है १– बीते हुए स्वर्णिम युग पर विश्वास, २– ग्रामों की दशा पर अधिक ध्यान देना, ३– भारत की दरिद्रता और दासता का कारण आध्यात्मिकता की श्रेष्ठता में विश्वास, ४– शराब

बन्दी का आन्दोलन, ५– गाय के प्रति पूज्यभाव, ६– गोमास भक्षण को बुरा मानना, ७– ज्योतिष पर विश्वास रखना, ८– आयुर्वेद को 'नेशनल सिस्टम ऑफ मेडीसन' मानना, ६– सन्यासी तथा पण्डितो के प्रति आदरभाव रखना, १०– कल–कारखानो की उन्नति से भयभीत होना, ११– पत्नी का पतिभक्ति मे विश्वास, १२– शिक्षा को राष्ट्रीय बनाने का प्रयास करना, १३– मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा दिलाने का आग्रह करना, १४– राम और कृष्ण के प्रति भक्तिभाव रखना, १५– हस्त शिल्प, पुरानी दवा–दारू और खादी आदि के लिए आन्दोलन करना

अपने इस 'घोर प्रतिक्रिया के पुजारी' (सरदार के एम पणिक्कर) लेख की शुरुआत मे विद्यावाचस्पति जी ने लिखा है– 'नई दिल्ली के प्रधानमन्त्री भवन से श्रीमती इन्दिरा गाधी की कृपा से एक पुस्तक प्राप्त हुई पुस्तक की छपाई, कागज, आकार–प्रकार आदि का क्या कहना है? भारत के प्रकाशनो मे सर्वोत्कृष्ट कोटि का कह सकते हैं पुस्तक 'जनहित निधि' नाम की सस्था की ओर से प्रकाशित हुई है यहीं पर विद्यावाचस्पति जी ने व्यग्य मे कहा है– 'प्रतीत होता है कि यह हमारे प्रतिभासम्पन्न प्रधानमन्त्री (नेहरू) जी की क्रियाशीलता का नवीनतम परिणाम है' इस लेख के अन्तिम परिच्छेद मे विद्यावाचस्पति जी ने कहा है 'यदि सरदार पणिक्कर के दृष्टिकोण से देखा जाय तो महात्मा गाधी सबसे बडे प्रतिक्रियावादी थे उनसे बचने का शायद एक ही उपाय है कि भारत की किश्ती को इग्लैण्ड या रूस के जहाज के पीछे बाध दिया जाय स्वाधीनता मे तो कुछ न कुछ भारतीयता रहेगी ही और भारतीयता से पणिक्कर साहब को चिढ है स्वाधीनता प्राप्त होने के पश्चात् देश के अनेक पाश्चात्य विचारो के पुजारियो मे यह भावना पैदा हो गयी है कि कहीं सचमुच हमे भारतीय ही न बनना पडे इस भय ने जो प्रतिक्रिया पैदा की है, सरदार पणिक्कर का लेख उसका एक नमूना है' इसी अन्तिम परिच्छेद के अत मे लेखक ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए लिखा है कि– 'यह लेख श्रीमति इन्दिरा गाधी द्वारा सपादित और प्रधानमत्री के भवन से प्रकाशित ग्रन्थ मे सपादकीय टिप्पणी के बिना कैसे प्रकाशित हो गया?'[१०७] इस पूरे लेख मे विद्यावाचस्पति जी उस पुस्तक का नाम देना या तो भूल गये हैं या टाल गये हैं, जिसमे सरदार पणिक्कर का 'प्रतिक्रिया का खतरा' नामक लेख प्रकाशित हुआ है

'उन्होने जो कुछ लिखा उसमे फौलाद भर दिया' इस आचार्य चतुरसेन शास्त्री से सबधित श्रद्धाजलि परक एक लेख मे उनकी निर्भीकताकी ओर सकेत करते हुए विद्यावाचस्पतिजी लिखते हैं– "वह लिखते समय किसी से डरते नहीं थे हृदय के उद्‌गारों को अक्षरो मे ढालते हुए उन्होंने यह भी विचार नहीं किया कि इससे कोई राजा, सेठ, या नेता नाराज हो जायेगा, कोई मित्र रूठ जायेगा वह उन दुर्लभ लेखकों मे से थे जिनके बारे मे नीतिकार ने कहा है– 'सुलभा पुरूषा राजन् सतत प्रियवादिन । अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभ'।।[१०८]

१०.२ विद्यावाचस्पति जीः कवि के रूप मेंः-

विद्यावाचस्पति जी ने केवल हिन्दी में ही नहीं सस्कृत भाषा मे भी काव्य रचना की थी सस्कृत मे तो उन्होने ३० अध्यायो मे विभाजित 'भारतेतिहास' नामक ऐतिहासिक काव्य भी लिखा था इस ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थ की कुल श्लोक सख्या १६६५ है यहाँ हम पहले क्रमश हिन्दी व सस्कृत मे लिखे प्रकीर्ण काव्य और तत्पश्चात् उनके द्वारा विरचित सस्कृत काव्य ग्रन्थ का सक्षिप्त मे परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं

प्रकीर्ण हिंदी काव्यः- छात्रावस्था से ही विद्यावाचस्पति जी हिन्दी मे कविता करने लगे थे 'सद्धर्म प्रचारक' पत्र के प्रबन्धक के अनुसार सन् १६१४ मे ही उनका 'गुरुकुल गीत' नामक काव्य सग्रह प्रकाशित हो चुका था।[१०९] श्री नरेन्द्र विद्यावाचस्पति की सम्मति मे गद्य के साथ पद्य पर भी

उनका अच्छा अधिकार था उनके कुछ सुन्दर गीत एव मधुर भजन कुलभूमि–गुरुकुल कागडी की 'प्रार्थनावली' मे स्थायी स्थान पा गये थे[११०] श्री इद्र विद्यावाचस्पति के शब्दो मे 'छात्रावस्था मे मैं सस्कृत और हिन्दी मे कविता भी करता था मेरी हिन्दी कविताओ का सशोधन प श्रीधर पाठक किया करते थे लगभग ४० वर्ष से (अर्थात् सन् १६१२ से) मैंने कविता करना छोड दिया था'[१११] स्वर्ण देश का उद्धार' नाटक के लिए उनके द्वारा लिखी गई नौ कविताये सन् १६२१ की हैं इससे पूर्व सन् १६१६ मे उनका 'हृदयोद्गार' नामक एक लघु काव्य सग्रह भी प्रकाशित हुआ था. इसमें उनकी 'ईश–प्रार्थना', 'मातृ–वन्दना', 'काल को उपालभ', 'विधना से प्रश्न' और 'आकाशवाणी' शीर्षक ११ कविताये प्रकाशित हुई थीं ये कविताये सरस होने के साथ–साथ उपदेशपूर्ण भी थीं' (मर्यादा. मार्च–१६१६–१६७)

विद्यावाचस्पति जी द्वारा रचित गीतो की आलोचक शिरोमणि प. महावीरप्रसाद द्विवेदी जी ने भूमि–भूरि प्रशसा की थी महात्मा गाधी जी के आश्रम मे गाया जाने वाला गीत– 'हे मातृभूमि तेरे चरणो मे सिर नवाऊँ' उनका ही बनाया हुआ था यह सब होते हुए विद्यावाचस्पति जी ने यह महसूस कर लिया था कि– 'मेरे लिए गद्य लिखना ही स्वाभाविक है',[११२] इसीलिए उन्होने 'रघुवंश' और 'किरातार्जुनीय' का अनुवाद किया तो पद्यानुवाद न करके गद्यानुवाद ही किया था 'भारत को इस समय श्रृगार की नहीं, ओज की जरूरत है' यह सोचकर उन्होने 'किरातार्जुनीय' का पद्यानुवाद करना चाहा था–उन्हीं के शब्दो मे 'यदि मुझमे कविता करने की शक्ति आ जाय और फिर कहा जाय कि समयानुकूल कविता करो, तो मैं 'किरातार्जुनीय' का हिन्दी मे काव्यानुवाद करने का प्रयत्न करूँगा'[११३] पर अपनी काव्य–शक्ति की क्षमता से सुपरिचित होने के कारण उन्होने काव्यानुवाद के ससार मे प्रवेश करना समुचित नहीं समझा। अपने कवि न होने के विषय मे एक स्थान पर टिप्पणी करते हुए उन्होने कहा है– 'मैने छात्रावस्था मे हिन्दी और सस्कृत मे कविताएँ और गीतियाँ लिखी अवश्यथीं, परन्तु मैं कवि नही हूँ इसका सबसे बडा प्रमाण यह है कि मुझे अपनी बनायी कविताएँ याद नहीं रहती यह भी याद नहीं रहता कोई कविता लिखी भी थी जब अपनी पूर्वावस्था की लिखी कविता को सुनता हूँ तो ऐसा भान होता है कि यह कविता कभी सुनी थी.'[११४] एक बार उन्होने स्वय अपना दृष्टात देते हुए कहा था– 'जो अपना क्षेत्र नही है, व्यर्थ ही उसमे कूदना नही चाहिये मेरे पास १०० से अधिक गीत लिखे रखे हैं पर मैं समझता हूँ कि वह मेरा क्षेत्र नहीं है, इसलिए इन्हे छपवाने का प्रयास मैंने कभी नहीं किया.'[११५]

विद्यावाचस्पति के लिए चाहे अपना कवि रूप विस्मरणीय, अप्रकाशनीय हो, पर उनका परिवेश उनके कवि रूप को कभी भुला नहीं पाया श्री शकरदेव विद्यालकार ने प्रतिपादित किया है, महात्मा गाधी के सुपुत्र देवदास गाधी कुछ समय तक गुरुकुल मे रहे थे. उन्हीं के साथ विद्यावाचस्पति जी द्वारा लिखित 'भारत वन्दना' गीत सत्याग्रह आश्रम मे पहुँचा और राष्ट्रीय आन्दोलन का एक प्रेरक तत्व बन गया पूज्य बापू जी को यह विशेष रूप से प्रिय था'[११६] अवनीन्द्रकुमार विद्यालकार की सम्मति मे 'श्री विद्यावाचस्पति कवि भी थे उनके द्वारा रचित गीत 'जयति जयति जगत् जननी' आज भी गुरुकुल मे गाया जाता है श्रीधर पाठक के घनाष्टक के ढग पर उन्होंने भी अष्टक लिखे थे'[११७] परन्तु स्वर्ण देश के उद्धार' के बाद शायद ही उन्होने कभी कविता की हो, दीनानाथ सिद्धातालकार के शब्दो मे 'विद्यावाचस्पति को कविता करने का अच्छा अभ्यास था. गुरुकुल की प्रात कालीन सामूहिक प्रार्थना मे बोले जाने वाले भजनो में 'सुन लो नाथ, अब विनय हमारी' –उन्हीं का बनाया हुआ था, जो बाद मे काफी लोकप्रिय हुआ उनके सब गीतो में उत्कट देशभक्ति और भारत को स्वतत्र करने की प्रबल आकाक्षा भरी रहती थी[११८] विद्यावाचस्पति जी का काव्य 'गुरुकुल कांगडी' की सीमा तक ही सीमित रहा हो, ऐसी बात नहीं उस युग में उनके अनेक गीत 'सत्याग्रह आश्रम' व राष्ट्रीय आन्दोलन मे गाये जाते थे, और वर्तमान मे भी उनके गीत प्रार्थना–कार्यक्रमों के अविभाज्य अग बने

हुए हैं. अब भी हरियाणा प्रान्तीय अनेक शिक्षण सस्थाओ की प्रार्थनाओ मे उनके गीतो का समावेश है. यह जानकर आश्चर्य होता है कि विद्यावाचस्पति की कर्मभूमि हरिद्वार और दिल्ली से सुदूर महाराष्ट्र मे स्थित उदगीर के शासकीय अध्यापक विद्यालय के प्रार्थना–कार्यक्रमो मे भी विद्यावाचस्पति जी के 'भारत–वदना' गीत का समावेश है [११९]

विद्यावाचस्पति जी ने अपनी युवावस्था मे जो सोद्देश्य कवितायें रची, उनके विषय प्राय अध्यात्म, राष्ट्र और प्रकृति–प्रेम से सबधित हैं 'कुल वन्दना' ('प्राणो से हमको प्यारा कुल हो सदा हमारा'), 'प्रार्थना–गीत' ('तव वन्दन है नाथ, करे हम'), 'ईश–स्तुति' ('अद्भुत महिमा जाल'), 'स्वर्ण–देश का गीत' ('भूतल का गहना चमकीला, स्वर्ण देश यह मेरा है'), 'भारत–वन्दना' ('हे मातृभूमि तेरे चरणो मे सिर नवाऊँ'), 'वसन्त–वर्णन' ('कैसा यह वसन्त काल जग निहाल आया') ,'उद्बोधन–गीत' ('जागो प्रमाद छोडो, कसकर कमर खडे हो'), 'वन्दना–गीत' ('जयति जयति जगत् जननी'), 'विनय–पत्रिका' ('सुन लो नाथ, अब विनय हमारी') आदि विद्यावाचस्पति जी की रचनाये, जिनमे से अधिकाश का समावेश सत्यकाम–अवनींद्र विद्यालकार द्वय द्वारा लिखित 'इन्द्र विद्यावाचस्पति' नामक जीवनी मे किया गया है [१२०] ये समस्त कवितायें विद्यावाचस्पतिजी ने द्विवेदी युग मे लिखी थीं अत उनमे प्राय द्विवेदी युगीन समस्त विशेषतायें अनायास दृष्टिपथ मे आ जाती हैं

प्रकीर्ण संस्कृत काव्यः- विद्यावाचस्पति जी मे सस्कृत मे श्लोक व गीत लिखने की प्रवृत्ति छात्रावस्था से रही है और उनकी यह काव्य निर्माण की प्रवृत्ति, हिन्दी काव्य निर्माण की प्रवृत्ति की तरह बीच मे नही छूटी, अपितु शरीर त्याग से ४–५ दिन पूर्व तक जारी रही. 'गुरुकुले राजप्रतिनिधे स्वागतम्' ('अमल सलिल वीचि–क्षालितो प्रातकूले प्रवर धरणिपाल स्वागत स्वागत ते'), 'गुरुकुल जन्मोत्सव सदेश' ('अपगतवति शीते पीत–पीते वनान्ते कुलभुवि कुलबन्धून् द्रष्टुकामोऽस्मिबन्धु ') ये दोनो उनके मालिनी छन्द मे रचे सस्कृत पद हैं प्रथम पद का रचना काल सन् १९१७ है, तो द्वितीय पद का रचना काल ४ मार्च १९१६ है [१२१] प तुलसीराम स्वामी द्वारा सराही गयी 'राम–स्मरणम्' ('वय राम पुण्य प्रतापाश्रयाम भवन्त गुणास्ते सदा वाचयाम ') नामक कविता 'सद्धर्म प्रचारक' २६ आश्विन १९६५ विक्रमी के अक मे प्रकाशित हुई थी, जिससे अभिभूत होकर प तुलसीराम स्वामी ने उसे अपने मेरठ से निकलने वाले 'वेदप्रकाश' पत्र के कार्तिक १९६५ के अक मे उद्धृत किया था [१२२] अपने फिरोजपुर के जेल जीवन (सन् १९२८) मे भी उन्होने अपना अनुभव सस्कृत मे ही पद्य बद्ध करते हुए लिखा था– 'गुण कार्य विहीनानि दिनान्यायान्ति याति च '

विद्यावाचस्पति जी ने राष्ट्रीय आन्दोलन मे उभरे हिसा–अहिसा के राजनीतिक विवाद मे अपना अभिमत स्पष्ट करने के लिए 'जीवन सग्राम' (सन् १९४५) नामक पुस्तक लिखी थी इस पुस्तक का साराश इसी पुस्तक के प्रारभ मे उन्होने 'विजय रहस्यम्' ('सबला एव जीवन्ति विलीयन्ते तु निर्बला ') नामक शीर्षक से ११ श्लोको मे पद्यबद्ध किया था 'आर्यसमाज से लेखन का कार्य कभी बन्द न हो' सदेश देने वाले अमर शहीद लेखरामजी की पुण्यस्मृति मे उन्होने श्रद्धाजलि देते हुए 'लेखराम षट्कम' ('अकुरस्य प्ररोहाय बीजो भवति धूलिसात्, धर्म क्षेत्राणि सिच्यन्ते वीराणा रक्तवारिणा') नामक कविता लिखी थी, जो 'सार्वदेशिक' मासिक के मार्च १९५५ के अक मे प्रकाशित हुई है डॉ. गोपाल वेदालकार रेड्डी सस्कृत विभागाध्यक्ष–उस्मानिया विश्वविद्यालय हैदराबाद ने विद्यावाचस्पति जी द्वारा निर्मित एक श्लोक से मेरा परिचय कराया था– वह श्लोक इस प्रकार है–

"विषयात्मिकया मृगतृष्णिकया, कुलित तृषितच ययाधिमया।
भवखेदहरा निज भक्ति सुधाम्, कृपया परिपायय पाहि हरे।।"[१२३]

विद्यावाचस्पति जी ने 'सूक्ति दशकम्' व 'पचनद प्रदेश ' नामक दो सस्कृत काव्य रचनाये

भी की हैं जो क्रमश 'गुरुकुल पत्रिका' के अगस्त १९५५ और जून १९५६ के अक मे प्रकाशित हुई है सत्तरवा वर्ष प्रारभ होने पर जब ६ नवबर १९५८ मे आपके भक्तो ने 'भूयश्च शरद शतात्' की प्रार्थना की तो आपने निम्न श्लोक द्वारा उसका प्रत्युत्तर दिया था–

"यावन्ते जीवित लोके परार्थं तत् भवेत प्रभो ।

तावत् जीवितुमिच्छामि यावच्छक्नोमि सेवितुम् ।।"[123]

१ जनवरी १९६० को इसी 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत्' की भावना को उन्होने निम्न प्रकार से थोडा–सा पाठभेद कर पुन दोहराया था–

"यावन्मे जीवित लोके परमार्थाय भवेत्प्रभो ।

तावज्जीवितुमिच्छामि यावच्छक्नोमि सेवितुम् ।।"[124]

देहावसान से ठीक तीन दिन पूर्व २० अगस्त १९६० को उन्होने अपनी निम्न सस्कृत प्रार्थना द्वारा प्रभु से सत्कर्म मे नियुक्त रखने की प्रार्थना करते हुए कहा था–

"स्वकर्मभि शोषित काययष्टि, महालये मृत्युमुखे प्रविष्टम् ।

तव प्रसादात्पुनराप्त शक्ति., त्वमम्ब सत्क्रर्मणि मा नियुक्ष्व ।।"[126]

स्वय विद्यावाचस्पति जी ने अपने सस्कृत श्लोको के विषय मे कहा है– "मैंने और भाई हरिश्चन्द्र जी ने सस्कृत श्लोक बनाये, वे प्राय. सभी मेरे पास सुरक्षित है उनका काफी बडा बस्ता बन गया है उनमे बहुत से श्लोक छपे भी थे, शेष अनछपे पडे थे वे छपने लायक हैं भी नहीं, क्योकि उन्हे पढेगा कौन? बस मैं ही कभी–कभी पढ लेता हूँ, और आनन्द लेता हूँ"[127] यह सब महसूस करने के बाद भी वे सस्कृत काव्य निर्माण के मोह से अपने आपको मुक्त नहीं कर पाये जिसका परिणाम यह हुआ कि उन्होने अपने तीस अध्यायो मे विभाजित 'भारतेतिहास', काव्य के बीच–बीच मे 'ऋग्वेद', 'यजुर्वेद', 'अथर्ववेद', 'बाल्मिकी रामायण' और 'श्रीमद्भगवद्गीता' इत्यादि से सौ के लगभग श्लोक समुद्धृत किये हैं, और दो अध्यायो मे तो एकाधिक स्थान पर वे पद्य से अपने सहज स्वभाव गद्य पर उतर आये हैं

अपने हिन्दी काव्य की तरह सस्कृत काव्य की लोकप्रियता के विषय मे भी विद्यावाचस्पति जी मे निराशा दिखलायी देती है पर इस निराशा के बावजूद भी वे अपने परिवेश मे सस्कृत विद्वान् और सस्कृत कवि के रूप मे याद किये जाते रहे दीनानाथ सिद्धातालकार के अनुसार– 'अखिल भारतीय सस्कृत महासम्मेलन के सस्थापको मे आप एक अत्युत्तम थे धारा प्रवाह सस्कृत भाषण और पद्य रचना में भी आप कुशल थे.'[128] सस्कृत पद्य रचनाओ की तरह कभी–कभी आपने सस्कृत गद्य मे भी लेखन कार्य किया था और आप इस गद्य रचना की निकष की दृष्टि से भी एक अत्युत्तम सर्जक थे आपका एक लेख– 'वर्तमान भारते सस्कृत भाषाया स्थानम्'–'गुरुकुल पत्रिका' (अप्रैल १९६२) के 'सस्कृत शिक्षा विशेषाक' मे हमारे देखने मे आया जिसमे आपने सरल–प्रसाद शैली मे सस्कृत लिखने का आग्रह करते हुए कहा है– "यदि वय सस्कृत सर्ववेद्य कर्त्तुमिच्छामस्तर्हि अस्माभि· प्रसाद गुणयुक्ता सरला शैली आश्रयणीया.. तस्मान्ममेद प्रथमन्निवेदन यत्–

देववाणीं समुद्धर्त्तु यदि कल्पोऽस्ति ते कवे ।

कवीना सरला रीति प्रसादाख्या समाश्रय ।।[129]

विद्यावाचस्पति जी का 'पचनदीय सस्कृत साहित्य सम्मेलने अध्यक्षीय भाषणम्, 'गुरुकुल पत्रिका' के अप्रैल १९५६ के अक मे पृष्ठ २८१ से २८४ तक प्रकाशित हुआ है. सभवत यह बहुत कम लोगो को मालूम है कि आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जी भी कभी–कभी शौक से सस्कृत मे

काव्य रचना करते थे स्वामी दयानन्द सरस्वती के प्रति आदराजलि[१३०] व्यक्त करते हुए तथा 'आर्यमित्र' पत्र की शुभाशसा[१३१] मे उन्होने श्लोको की रचना की थी. कहते हैं अपने युग के साहित्यिक नेता आचार्य प्रवर महावीरप्रसाद द्विवेदी जी ने विद्यावाचस्पति के सस्कृत काव्य की परीक्षा लेने के उपरान्त उनके हिन्दी काव्य की तरह सस्कृत काव्य की भी भूमि–भूरि प्रशसा की थी[१३२] प धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड ने भी उन्हे 'शुभ कवि' कहा था ''[१३३]

भारतेतिहासः एक श्रेष्ठतम संस्कृत काव्य रचनाः- विद्यावाचस्पति जी की श्रेष्ठतम रचनाओ मे से एक 'भारतेतिहास ' है, जो १६६० मे लिखी गई और भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रलय की आर्थिक सहायता से १६७० मे हरियाणा साहित्य सस्थान गुरुकुल झज्जर–द्वारा प्रकाशित की गई है यह ऐतिहासिक काव्य पहले 'गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय' की 'गुरुकुल पत्रिका' मे 'भारतैतिह्यम्' शीर्षक से धारावाहिक रूप मे प्रकाशित हुआ था, पर जब इसे ग्रन्थ के रूप मे प्रकाशित किया गया, तो इसका नामकरण 'भारतेतिहास ' (प्रथम खण्ड) कर दिया गया विद्यावाचस्पतिजी भारत का सम्पूर्ण इतिहास काव्य के रूप मे लिखना चाहते थे, पर वे उसका प्रथम खण्ड ही लिख पाये और उसका अतिम ३० वॉ अध्याय भी उन्होने रुग्णावस्था मे ही लिखा था डॉ महावीर ने प्रतिपादित किया है, 'यह अद्यावधि लिखे गये भारतवर्ष के इतिहासों की परम्परा से हटकर सर्वथा नूतन एव अभिनव शैली मे किया गया सर्वथा मौलिक कार्य है इसमे रसहीन भाषा मे इतिहास की घटनाओ का ब्यौरेवार सकलन मात्र नहीं है, अपितु देशवासियो के ह्रदयो को रसाप्लावित कर अत्यन्त माधुर्य के साथ कान्तासम्मित शैली मे अपने देश तथा सस्कृति के प्रति प्रेम और गौरव की भावना जगाने का सफलतम प्रयास है',[१३४]

सस्कृत मे क्रमश कल्हण और बिल्हण रचित 'राजतरगिणी' और 'विक्रमाकदेव' जैसे अनेक चरित्र काव्य मिलते हैं जो ऐतिहासिक काव्य कोटि मे आते हैं, इनमे चरित्रनायक राजाओ के राज्य प्रशासन, प्रजा पालन, दान, युद्ध, लोकोपकार जैसे कार्यो का विस्तृत तथा अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन मिलता है आर्यसमाज के क्षेत्र मे इस विधा के काव्य रचयिताओ मे प इन्द्र विद्यावाचस्पति, गगा प्रसाद उपाध्याय और यमुनादत्त षट्शास्त्री प्रमुख हैं[१३५] विद्यावाचस्पतिजी लिखित 'भारतेतिहास ' यह सस्कृत काव्य ग्रथ ३० अध्यायो मे विभाजित है काल क्रमानुसार लिखे प्राचीन 'भारतेतिहास ' काव्य का प्रमुख उद्देश्य भारत की असाधारणता दर्शाना है[१३६] डॉ वेदव्रत ने टिप्पणी की है, 'स्वतन्त्र भारत मे इस प्रकार के ऐतिहासिक सतुलन की वास्तविक अपेक्षा है जिसमे नये की चकाचौंध मे अपना पुराना गौरव और अनुभव विस्मृत न हो 'भारतेतिहास ' मे पौराणिक कथा की तुलना मे वस्तु को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे देखने की प्रवृत्ति बढी है जिसके साथ नवीन वस्तु और उसमे भी देशप्रेम या अपना इतिहास निबद्ध करना विद्यावाचस्पतिजी को अधिक भाया है यह एक शुभ लक्षण है जो विद्यावाचस्पतिजी के साथ–साथ सस्कृत की प्रगतिशीलता का भी सूचक है[१३७] यह काव्य वर्णनात्मक होते हुए भी उसमे सरसता और सृजनात्मकता अथ से इति तक बनी हुई है कथानक का निर्वाह, पात्रो का चरित्र विश्लेषण, स्फूर्तियुक्त कथनोपकथन 'भारतेतिहास ' की विशेषताये हैं स्थान–स्थान पर अलकारादि काव्य गुणो के कारण कवि की उत्कृष्ट प्रतिभा का परिचय पाठको को अनायास ही प्राप्त हो जाता है भाषा की सरलता और प्रसाद गुणोपेता शैली को देखने से प्रतीत होता है, मानो विद्यावाचस्पतिजी ने महाभारतकार की प्रसाद गुणयुता शैली का ही प्रयोग किया है [१३८] डॉ महावीर के शब्दो मे 'मधुर छन्दो', विविध अलकारों, रमणीय रस प्रयोगो तथा प्रकृति के ह्रदयहारी चित्रो से परिपूर्ण विद्यावाचस्पति की कविता ब्रह्मानद सहोदर आनन्द की सृष्टि के साथ जहॉ बाल्मीकि और कालिदास का स्मरण कराती है वहा वेद, दर्शन एव स्मृतियो के निगूढतम रहस्यो को अत्यन्त सरस एव सरल शब्दावली मे अनावृत्त करती है'.[१३९]

प्रो विजयेन्द्र स्नातक की सम्मति मे, 'विद्यावाचस्पति जी काव्य मर्मज्ञ और सहृदय कवि थे ''[१४०] वे महाभारत की शैली मे भारत का सम्पूर्ण इतिहास लिखना चाहते थे किन्तु उनकी यह इच्छा पूरी न हो सकी श्री नरेन्द्र विद्यावाचस्पति का यह मत सत्य ही है, साहित्य, पत्रकारिता एव राजनीति मे व्यस्त रहने के बावजूद भी वह सस्कृत के कवि कुलगुरु कालिदास की शैली मे 'भारतैतिह्यम्' शीर्षक से ऐसा अनेमोल सस्कृत काव्य रच गये हैं जिसे महाविद्यालयो एव विश्वविद्यालयो के पाठयक्रम मे सरलता से सम्मिलित किया जा सकता है '[१४१] श्री अवनीन्द्र कुमार विद्यालकार की दृष्टि मे 'जयति जननी जगत् जननी' और 'हे मातृभूमि तेरे चरणो मे सिर नवाऊँ' गीतो के गायक कवि ने यद्यपि राजनीति की खडगधार पर चलते हुए कविता का मार्ग छोड दिया, किन्तु भारतीय सस्कृति के इतिहास को सस्कृत श्लोको मे पुराण के ढग पर लिखने का कार्य कभी नहीं छोडा अन्तिम समय तक वह लिखते रहे ढग पुराणो जैसा है, पर शैली कालिदास की है और कविता भावपूर्ण है, शब्दो से बोझिल नहीं है '[१४२]

१०.३ विद्यावाचस्पति जीः नाटककार के रूप में:-

श्री विद्यावाचस्पति जिस वातावरण मे पले, बढे और विकसित हुए, वह वातावरण स्वामी दयानद और आर्यसमाज की विचारधारा से पूर्णतया ओतप्रोत था प शिवकुमार मिश्रा ने प्रतिपादित किया है, 'महाराष्ट्र और बगाल की तुलना मे हिन्दी भाषी क्षेत्र के नाटक के पिछड जाने का कारण स्वामी दयानद का नाटक विरोधी आन्दोलन था '[१४३] डॉ चन्द्रभानु सोनवने की सम्मति मे स्वामी दयानन्द नाटक के इतने विरोधी नही थे जितने कि नाटक के भडुवेपन के[१४४] भारतेन्दु युग मे पारसी रगमचो पर घोर शृगारी दृश्य दिखाये जाते थे इसलिए उन्होने आर्यसमाज के पत्रो मे नाटक प्रकाशित करने का विरोध किया था इस शोध प्रबन्ध के लेखक ने वह दृश्य देखा है, जब दिल्ली मे आयोजित अर्तराष्ट्रीय आर्य समाज स्थापना शताब्दी (१६७५) समारोह के अवसर पर स्वामी दयानद पर ही एक नाटिका दिखलाने का कुछ लोगो ने प्रयास किया, तो उस नाटिका को तत्काल आर्य समाज के ही एक दल ने जबरदस्ती बन्द करवा दिया था पठनीय ग्रथो का उल्लेख करते हुए आर्य समाज के सस्थापक स्वामी दयानद ने सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास मे लिखा है गाधर्ववेद कि जिसको 'गान विद्या' कहते हैं उसमे स्वर, राग, रागिणी, समय, ताल, ग्राम, तान, वादित्र, नृत्य गीत आदि को यथावत् सीखे और 'नारद—सहिता' आदि जो आर्ष ग्रन्थ हैं उनको पढे, परन्तु भडुवे, वेश्या और विषयासक्तिकारक वैरागियो के गर्दभ शब्दवत् व्यर्थ आलाप कभी न करे तत्पश्चात् अपठनीय ग्रन्थो का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं —'अब जो परित्याग के योग्य ग्रन्थ हैं उनका परिगणन सक्षेप से किया जाता है अर्थात् जो—जो नीचे ग्रन्थ लिखेंगे वह—वह जाल ग्रन्थ समझना चाहिए . काव्य मे 'नायिका भेद', कुवलयानद 'रघुवश' माघ 'किरातार्जुनीय' आदि .. सब तन्त्र ग्रथ, सब पुराण, सब उपपुराण, तुलसीदास कृत भाषा रामायण, रुक्मिणी मगलादि और सर्व भाषा ग्रन्थ (अनार्ष ग्रन्थ)', ये सब कपोल'कल्पित मिथ्या ग्रन्थ है.'[१४५] उपरोक्त उद्धृत उद्धरण मे विद्यावाचस्पतिजी की अनूदित कृति 'रघुवश' व 'किरातार्जुनीय' का भी समावेश है गोस्वामी तुलसीदास रचित 'रामचरित—मानस' का भी समावेश है[१४६] एक बार जब महात्मा गांधी जी ने विद्यावाचस्पति जी से यह कहा कि 'स्वामी दयानद जी ने अपठनीय ग्रथो मे 'रामचरित—मानस' का भी समावेश किया है, तो विद्यावाचस्पति जी ने उसका प्रत्युत्तर देते हुए कहा था— वह प्रकरण ब्रह्मचारी बालक—बालिकाओ के अध्ययन अध्यापन से सबंधित है, बुजुर्गों से नहीं.'[१४७] यह सुनकर महात्मा गाधी जी ने मौन धारण कर लिया था जो बात 'रामचरित—मानस' पर लागू होती है वहीं 'रघुवंश' और 'किरातर्जुनीय' पर भी जहां तक नाटक का प्रश्न है स्वामी जी का नाटक से उतना विरोध नही था जितना कि नाटक के भडवेपन से देशभक्ति से ओत—प्रोत नाटक लिखकर विद्यावाचस्पति जी

ने नाटक का भडवापन निकाल दिया था फिर भी गुरुकुल जैसे आर्य सामाजिक क्षेत्र में नाटक व रगमच का प्रवेश आसान बात नही थी उसके लिए असाधारण साहस की अपेक्षा थी, और यह असाधारण साहस का कार्य विद्यावाचस्पति जी द्वारा सपन्न हुआ प्रो विजयेन्द्र स्नातक ने टिप्पणी की है, 'यह भी विद्यावाचस्पति जी की व्यापक दृष्टि का निदर्शन है '[४८]

विद्यावाचस्पति जी ने केवल अपनी ही नाट्य रचना के लिए गुरुकुल मे नाटक और रगमच का प्रवेश किया–करवाया हो, ऐसी बात नहीं, उन्होने गुरुकुल मे अध्यापन करते समय विद्यार्थियो को 'भारत दुर्दशा' नाटक के अभिनय की भी शिक्षा दी थी डॉ गगा राम गर्ग ने स्पष्ट किया है, 'विद्यावाचस्पति जी ने भरत के नाट्यशास्त्र' का गहन अध्ययन ही नहीं किया था, बल्कि उसके क्रियात्मक पक्ष पर भी चिन्तन किया था' एक बार उन्होने अभिनय के सबध मे कहा था– 'पुस्तक मे जो भी शब्द होते हैं, चाहे वे प्रेम के हो, वीर रस के हो, या वियोग के, वे एक ही स्याही में और एक ही टाइप के छपे होते हैं जब भी किसी भाव का पुस्तक मे उल्लेख हो तो कलाकार को यह देखना होता है कि उसकी वाणी तथा उसके हाव–भाव द्वारा उक्तभाव का प्रदर्शन भी हो उच्च कलाकार अपने को उसी परिस्थिति मे ढाल लेता है यही अभिनय कला का मूलमन्त्र है यही बीज है'[४९] एक बार विद्यावाचस्पति जी ने प्रसिद्ध अभिनेता पृथ्वीराज कपूर को भी गुरुकुल मे निमन्त्रित कर उनका व्याख्यान आयोजित किया था[५०]

श्री सत्यकाम विद्यालकार के शब्दो मे– 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित नाटक 'भारत दुर्दशा' का साहित्य के उपाध्याय विद्यावाचस्पति जी द्वारा निर्देशन करने से और छात्रो द्वारा उसका अभिनय करने से गुरुकुल मे एक नये तत्व का प्रवेश हुआ ' गुरुकुल मे अभिनय किया जाना यह एक अद्भुत बात थी उस समय अभिनय से या नाट्य प्रस्तुतीकरण से होने वाले तीन लाभो की चर्चा की गई थी– १– इससे सामाजिक आनन्द प्राप्त होता है, २– उच्चारण शुद्ध होता है, ३– यथार्थ ससार का ज्ञान होता है[५१]

स्वर्ण देश का उद्धार' यह विद्यावाचस्पति जी लिखित नाट्य कृति अनुपलब्ध एव दुर्लभ है अत इस विषय मे विस्तार से कुछ कहने की स्थिति मे हम नही हैं फिर भी विभिन्न स्रोतो से जो जानकारी मिलती है उससे यह पता चलता है कि 'इस नाटक मे गाधी युग की भावनाये निहित हैं विद्यावाचस्पति जी राजनीतिक क्षेत्र मे लोकमान्य तिलक के अनुयायी थे तिलक जी ने ही विद्यावाचस्पति जी व उनके अन्य साथियो से कहा था– 'मैं अब शारीरिक दृष्टि से वृद्ध हो गया हू, मुझे जो कुछ कहना था, वह कह चुका हू अब आवश्यक है कि देश का नेतृत्व दूसरे के हाथो मे जाय वह व्यक्ति जिसके हाथो मे मुझे नेतृत्व सभालने की शक्ति दिखाई देती है, वह गान्धी है '[५२] १ अगस्त १९२० को गाधी जी ने असहयोग आन्दोलन का शुभारभ करने के लिए पहली हडताल करने की घोषणा की दिनाक २५ सितबर १९२० को विद्यावाचस्पति जी के पिता स्वामी श्रद्धानन्द जी ने राजनीति मे छलाग लगाने का निश्चय करते हुए लिखा 'इस समय मेरी सम्मति मे असहयोग की व्यवस्था के क्रियात्मक प्रचार पर ही मातृ–भूमि का भविष्य निर्भर है यदि यह आन्दोलन अकृतकार्य हुआ और महात्मा गाधी को सहायता न मिली तो देश की स्वतन्त्रता का प्रश्न ५० वर्ष पीछे जा पडेगा यह जाति के जीवन और मृत्यु का प्रश्न है इसलिए मैं इस काम मे शीघ्र ही लग जाऊँगा . मैं इस कार्य से रुक नहीं सकता मुझे यह कार्य इस समय सर्वोपरि दीखता है '[५३] अपने राजनैतिक गुरु लोकमान्य तिलक के अन्तिम आदेश और पूज्य पिता व आचार्य स्वामी श्रद्धानन्द के सक्रिय रूप में गाधी जी की राजनीति मे अवतरित होने के बाद विद्यावाचस्पति जी के लिए बापू के अतिरिक्त अन्य किसी का नेतृत्व स्वीकारने का प्रश्न ही नहीं उठता था. वे भी महात्मा गाधी के अनुयायी बन गये जबकि अहिसा विषयक उनका दृष्टिकोण महात्मा जी के अहिसावादी सिद्धान्तो से मेल नहीं

खाता था विद्यावाचस्पति जी के शब्दो मे 'देशवासी चाहे विचारो मे महात्मा जी से कितना ही मतभेद रखते हो, उनके हृदय बापू को मानने के लिए लाचार हो जाते थे 'स पिता पितरस्तेषा केवल जन्महेतव''[५४] कविवर हरिशकर शर्मा के शब्दो मे–

"विश्ववन्द्य गाधी जब कल्याणार्थ आगे आये, सत्य, अहिसा, सत्याग्रह, सिद्धान्त सभी को समझाए।

प इन्द्र बडी श्रद्धा से बापू के सद्भक्त रहे उनके आदेशो–उपदेशो से सदैव अनुरक्त रहे।।"[५५]

डॉ विष्णुदत्त राकेश ने स्वीकार किया है, 'विद्यावाचस्पति जी पर गाधी का गहरा प्रभाव था आर्यसमाज और गाधी युग की मशाल उनके हाथो मे अत तक रही'[५६] १९२० से गाधीजी ने भारत की राजनीति का नेतृत्व सभाला था और १९२१ मे ही विद्यावाचस्पति जी ने भारतीय स्वाधीनता सग्राम व महात्मा गाधी जी को केन्द्र मे रखकर 'स्वर्ण–देश का उद्धार' नामक नाटक लिखा था

इस नाटक की रचना प्रक्रिया की ओर सकेत करते हुए श्री शकरदेव विद्यालकार ने लिखा है–'कम ही लोग जाते हैं विद्यावाचस्पति जी ने नाटक की भी रचना की है इन पक्तियो का लेखक गुरुकुल मे आठवीं कक्षा मे पढता था, उन दिनो छात्रो की साहित्य सवर्धिनी सभा के वार्षिक सम्मेलन पर खेलने के लिए विद्यावाचस्पति जी ने आठ दिनो के अन्दर–अन्दर 'स्वर्ण देश का उद्धार' नामक एक देशभक्तिपूर्ण नाटक लिखकर दिया था और लेखक की कक्षा ने उसका अभिनय किया था यह बात सवत् १९७८ की है'[५७]

'स्वर्ण–देश का उद्धार' (सन् १९२१) यह नाटक असहयोग आन्दोलन काल मे विक्रमी सवत् १९७८ मे प्रकाशित हुआ है प्रकाशक है–गुरुकुल यन्त्रालय कागडी नाटक मे पुरुष पात्र सोलह और स्त्री पात्र केवल एक है कुल अक तीन हैं, प्रत्येक अक मे आठ–आठ दृश्य हैं घटनास्थल स्वर्गलोक और राज–दरबार है विद्यावाचस्पति जी के जो प्रकाशित गीत दिखलाई देते है, उनमे से अनेको की रचना इसी नाटक के लिए की गई थी पात्र बाहुल्य, आदर्शवाद की स्थापना, राष्ट्र–प्रेम इत्यादि से स्पष्ट है कि वे नाट्य क्षेत्र मे श्री जयशकरप्रसाद से प्रभावित रहे हैं नाटककार ने इस नाटक मे असन्तुष्ट जनता द्वारा अन्यायी राज्य की सत्ता को उलटकर १५ फाल्गुन १९७९ (सन् १९२२) को गणतन्त्र की स्थापना की है इसमे मोहनदास कर्मचन्द गाधी के प्रतीक प्रतिनिधि के रूप मे विद्यावाचस्पति जी ने महात्मा कर्मदास की सृष्टि की है 'कर्मचन्द' का कर्म और 'मोहनदास' का दास शब्द लेकर उन्होने 'महात्मा कर्मदास' को नाट्यक्षेत्र मे उतारा है महात्मा कर्मदास अपने स्वयसेवको को हिसा से नही, अपितु अहिसा और शुद्ध भाव से अत्याचारी का हृदय परिवर्तन का मन्त्रपाठ और सदेश देते है नाटक मे धर्मात्मा और क्रूर मे विजयलक्ष्मी किसको वरमाला पहनाती है–इस समस्या को उठाया गया है

नाट्य रचना के उद्देश्य तथा उसके स्वरूप को स्पष्ट करते हुए डॉ दशरथ ओझा ने विस्तार से प्रकाश डालते हुए कहा है– 'नाट्यकार इस नाटक का उद्देश्य 'एक राजनीतिक समस्या का हल' घोषित करता है असहयोग आन्दोलन मे धर्म के प्रतीक, निरस्त्र तपस्वी, महात्मा गाधी, क्रूर शस्त्रधारियो से युद्ध कर रहे हैं धर्मात्मा और क्रूर मे विजयलक्ष्मी किसका साथ देती है, यही समस्या उठायी गई है इसके प्रत्येक गर्भांक मे अलग–अलग कथा सूत्र हैं, यही कथा धर्मप्राण नामक आन्दोलनकारी की है वह एक सभा मे देश की दुर्दशा का चित्र खींचते हैं और इसका दोष भारतवासियो पर लगाते हैं इसी समय एक राजपुरुष धर्मप्राण को बन्दी बनाता है न्यायालय मे उनके ऊपर अभियोग चलता है कर्मदास नामक महात्मा प्रकट होकर धर्मप्राण को समझाते हैं कि– 'यदि अत्याचारी को

हम शुद्ध भाव मे समझाये तो वह मान जायेगा' न्यायाधीश पर राजपुरुष का दबाव पडता है कि धर्मप्राण को अवश्य दण्ड दिया जाय इसी अवधि मे न्यायाधीश भी राज्यक्रान्ति मे सम्मिलित होता है आन्दोलनकारियो को कर्मदास का (अहिसा का) सन्देश सुनाया जाता है पुलिस सबको बन्दी बनाती है देशप्रेमी एक–एक करके बन्दी बना लिये जाते हैं नाटक मे एक ही स्त्री पात्र है, वह है अनन्तप्रभा देवी, जो देश मे क्रान्ति का आह्वान करती है, वह राज्य को उलट देना चाहती है, वह हिसा पर भी उतर आती है, किन्तु महात्मा कर्मदास उसे समझाते हैं धर्मप्राण को बदीगृह से मुक्त कराने के लिए अनन्तप्रभा के साथ जनता एकत्र होती है धर्मप्राण मुक्त होते हैं राजा अपने दीवान पर रुष्ट होता है ढिढोरा पीटने वाला घोषणा करता है कि १५ फाल्गुन १६७६ को सारे देश के लोगो ने अपनी सम्मति से राज्य की सस्था बना ली है और पाच साल के लिए धर्मप्राण को अपना राष्ट्रपति चुना है इस बीच न्यायाधीश राजा को समझाता है कि 'प्रजा जब तक सह सकती है, शान्ति से सह लेती है, परन्तु जब कष्ट असह्य हो जाता है तो भूखी बाघिन की तरह उठती है'[१५८]

डॉ श्रीराम शर्मा का यह मत सत्य है– 'अपने एक मात्र नाटक के माध्यम से विद्यावाचस्पति जी ने शस्त्र–शक्ति की अनिवार्यता का व स्वाधीनता हेतु हिसक गतिविधियो का समर्थन किया है'[१५९] नाटककार के प्राक्कथन के अनुसार 'यह नाटक उनके हृदय की एक उमग का फल है और प्रकाशित करने से पूर्व रगमच पर खेला गया है और उपयोगी भी प्रमाणित हुआ है'[१६०] पर साहित्यिक पत्रिका 'सरस्वती' के अनुसार–यह नाटक शिक्षाप्रद, विषय की दृष्टि से नवीन, अच्छे विषय, अच्छी भाषा और अच्छी कविता वाला है, लेखक की विद्वत्ता और गभीरता की दृष्टि से भी विश्वसनीय है, पर इसमे चित्ताकर्षकता और कलात्मक नैपुण्य का अभाव है इसके कथा भाग मे वह बात नहीं है जिससे दर्शको की कौतूहल वृद्धि होती रहे इसका कारण हमे यह मालूम होता है कि इसमे लेखक ने एक राजनैतिक समस्या का हल किया है अत एव उन्हे उसी के अनुकूल कथा की सृष्टि करनी पडी है जब रस्सी मे फूलो की माला गूथी जाती है, तब माला तो तैयार हो जाती है, पर फूलो का रूप बिगड जाता है'[१६१] विद्यावाचस्पति जी ने एक बार कहा था– 'जो अपना क्षेत्र नहीं है, व्यर्थ ही उसमे कूदना नहीं चाहिये.' हिन्दी काव्य के सन्दर्भ मे तो उन्होने स्पष्ट ही कहा था कि 'वह मेरा क्षेत्र नहीं है' और इस बात की अनुभूति होने के बाद वे पुनश्च दुबारा कभी काव्य के मैदान मे नहीं उतरे 'स्वर्ण–देश का उद्धार' के बाद अपनी नाट्य कृति की सफलता–असफलता के सबध ा मे उनका कोई भी वक्तव्य कहीं पर भी नहीं दिखलायी देता चर्चित नाट्यकृति उनकी 'एकमेवाद्वितीयम्' कृति है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि वे यह ताड गये थे कि काव्य की तरह नाटक भी अपना क्षेत्र नहीं है, फिर भी विषय की नवीनता के कारण उनका नाटक अपने समय मे लोकप्रिय रहा श्री नरेन्द्र विद्यावाचस्पति के शब्दो मे, 'उनके 'स्वर्ण–देश का उद्धार' शीर्षक नाटक ने उस युग मे अच्छी लोकप्रियता पाई थी'[१६२]

सन्दर्भ

१ हिन्दी गद्य साहित्य–२०३

२ आर्य सदेश २३ दिसबर १९९० लेख–दिल्ली की हिन्दी पत्रकारिता के जनक–४३

३ प्रिस बिस्मार्क विषय–सूची से पूर्व

४ साप्ताहिक हिन्दुस्तान २६ फरवरी १९६१ लेख–नूतन युग के प्रहरी–५

५ 'विशाल भारत' मेरे पिता पुस्तक सूची पत्र–१४

६ आजकल १५ नवबर १९४९

७ प्रहलाद अप्रैल १९९० भारतीय मनीषा के प्रतीक पण्डित इन्द्र विद्यावाचस्पति–२५

८ नवनीत मई १९६७ लेख– श्रद्धेय इन्द्रजी–६

९ साप्ताहिक हिन्दुस्तान २६ फरवरी १९६१ लेख 'वह अपनी पीढी के उत्तम लेखक थे–६

१० तत्रैव ११ सितबर १९६० लेख नूतन युग के प्रहरी स्व इद्र विद्यावाचस्पति ४

११ प्रेमचन्द विश्वकोश खण्ड–१–२५०–५१, ५५

१२. आर्य सन्देश २३ दिसबर १९९० लेख–महान् लेखक आर्य हिन्दी के अनन्य भक्त–३६

१३ नवनीत मई १९६७–लेख श्रद्धेय इन्द्रजी–६६

१४ आध्यात्म रोगो की चिकित्सा प्रास्ताविक. निवेदन–छह

१५ आजकल सितम्बर–१९६०

१६ अजन्ता १९५९

१७ पत्रकारिता के अनुभव–४२

१८ साप्ताहिक हिन्दुस्तान ११ सितम्बर १९६०–लेख–नूतन युग के प्रहरी–४

१९ 'सार्वदेशिक' मई १९४९–१३१, १३२

२० विनायकराव अभिनन्दन ग्रथ–३१–३३

२१ वेदवाणी सितम्बर १९७९

२२ भारतीय स्वाधीनता सग्राम का इतिहास–१३५

२३ आजकल १५ नवबर १९४९–७, ८

२४ अमृत बाजार पत्रिका १९२७

२५ आजकल दिसबर–१९६०

२६ नवनीत मई १९६७ लेख श्रद्धेय इन्द्र–६६

२७ सार्वदेशिक फरवरी १९५५–६५०

२८ नवनीत मई १९६०–२३–२६

२९ नवनीत जौलाई १९६०–३६, ३७

३० विजय–दैनिक ६ अप्रैल १९१९

३१ तत्रैव १ अप्रैल १९१९

३२ तत्रैव ३१ मार्च व १, २ अप्रैल १९१९

३३ पत्रकारिता के अनुभव–२७

३४ सद्धर्म प्रचारक दिसबर १९११

३५ माधुरी–अगस्त १९२६ से जनवरी १९२७ का कोई अक–२३४

३६ मर्यादा–१९१२–१९१४ के बीच का कोई अक

३७ विशाल भारत. दिसबर १९३१, अक्टूबर १९३३, अप्रैल–मई १९३४

३८ प जवाहरलाल नेहरू प्रथम सस्करण–परिशिष्ट

३९ तत्रैव

४० तत्रैव

४१ तत्रैव

४२ सार्वदेशिक अगस्त १९४८–२७५, ७६

४३ तत्रैव. अक्टूबर १९५६–३६६, ३६७

४४. तत्रैव अप्रैल १९५७–६३, ६४

४५ आजकल नवनीत–मई १६६७ श्रद्धेय इन्द्रजी–६५

४६ सार्वदेशिक अक्टूबर १६५६–३६६–३६७

४७ सार्वदेशिक अप्रैल १६५७–६३, ६४

४८ वेदप्रकाश मार्च १६५८–आवरण–१

४६ पत्रकार प्रेमचद और हस–३०६/हस अगस्त १६३४–५०

५० सार्वदेशिक अक्टूबर १६५६ – ४३४, ४३५

५१ आर्य वीर दल शिक्षण शिविर कार्य तथा शिक्षणक्रम भूमिका–३

५२ सद्धर्म प्रचारक–३ जून १६०८

५३ सार्वदेशिक जौलाई १६५६ २३०–२३२

५४ तत्रैव अप्रैल १६५७–७०–७३

५५ राजधर्म भूमिका–१–४

५६ सार्वदेशिक अप्रैल १६५७–१०१–१०३

५७ तत्रैव अक्टूबर १६५६ ३६४–३६६

५८ आर्यसमाज का इतिहास द्वितीय भाग–३१८–३२२

५६ सद्धर्म प्रचारक १६१४/सदर्भ इन्द्र विद्यावाचस्पति–३७

६० आर्यमित्र ६ जून १६३८ स्वर्ण जयन्ती अक–५६ / आर्य सदेश ४ सितबर १६१४

६१ सार्वदेशिक ३ सितबर १६७८–लेख– श्री प इन्द्र विद्यावाचस्पति की स्मृति में–६

६२ आर्य वीर दल का बौद्धिक शिक्षण १–२७

६३ सद्धर्म प्रचारक ३ जून १६०८

६४ सार्वदेशिक जुलाई १६५६–२३०–२३२

६५. सार्वदेशिक अप्रैल १६५७–७०

६६ तत्रैव–७३

६७ वैदिक अनुसन्धान नवम्बर १६५६

६८ तत्रैव

६६ शोध लेखक को प्रा राजेन्द्र जिज्ञासु द्वारा २६/१/६४ को दिये गए साक्षात्कार के आधार पर

७० सार्वदेशिक जून १६५७–१८१–१८३

७१ ईशोपनिषद्भाष्य परिशिष्ट–१२२–१३२

७२ तत्रैव परिशिष्ट–१३३–१४५

७३ मुशी अभिनन्दन ग्रन्थ ४ जनवरी १६५०–२६३–६६

७४ काशी के समस्त हिन्दी–अग्रेजी समाचार पत्र २३, २४, २५ मई १६५६/ सार्वदेशिक जुलाई १६५६–२७४

७५ गुरुकुल पत्रिका कार्तिक २००६

७६ आर्य जगत् १४ फरवरी १६६० ३३–४०/ विशाल भारत सितबर–१६३२ २६३–६६

७७ मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण प्रस्तावना ५–१५

७८ सार्वदेशिक दिसबर १६५६ ५२८–५३१

७६ प जवाहर लाल नेहरू प्रस्तावना क–च

८० लोकमान्य तिलक और उनका युग – २२६–२३३

८१ धर्मयुग–१६ अक्तूबर १६६०–१०

८२ आधुनिक भारत मे वक्तृत्व कला की प्रगति– ५–१५

८३ वैदिक अनुसधान नवबर १६५६

८४ सार्वदेशिक जून १६५७–१८१

८५ तत्रैव– दिसम्बर १६५६–५२८–५३१

८६ साप्ताहिक हिन्दुस्तान १६५६–सदर्भ– सार्वदेशिक दिसबर १६५६–५६६

८७ स्वराज्य और चरित्र निर्माण– २५–२७

८८ पत्रकारिता के अनुभव– ७८–८४

८६ तत्रैव–८५–६३

६०. तत्रैव–६४–१०१

६१. तत्रैव–१०२–१०६

६२ हिन्दी गद्य साहित्य–१६६

६३. रघुवंश–भूमिका–पूर्वार्ध–३–१०
६४ तत्रैव–भूमिका–उत्तरार्ध–१०–१५
६५ किरातार्जुनीय–प्रस्तावना–११–२५
६६ भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य का उदय भूमिका–क–ड
६७ भारतीय स्वाधीनता सग्राम का इतिहास–१७१–१७८
६८ पत्रकारिता के अनुभव–३–७
६६ इन्द्र विद्यावाचस्पति–२६
१०० साप्ताहिक हिन्दुस्तान २८ अगस्त १६६६ लेख– सचमुच एक मानव–२३
१०१ सार्वदेशिक फरवरी १६५६– ५६८–५६६
१०२ साप्ताहिक हिन्दुस्तान १७ अप्रैल १६६०–७
१०३ नवनीत नवबर १६६०–६७–१००
१०४ पत्रकारिता के अनुभव– ६–७
१०५ इन्द्र विद्यावाचस्पति–२६
१०६ साप्ताहिक हिन्दुस्तान २८ अगस्त १६६६–२३
१०७ सार्वदेशिक फरवरी १६५६–५६६
१०८ साप्ताहिक हिन्दुस्तान १७ अप्रैल १६६०–७
१०६ प्रिस बिस्मार्क – ग्रन्थकर्ता की अन्य पुस्तके
११० आर्य जगत् ५ नवबर १६८६ लेख– इतिहास, साहित्य एव पत्रकारिता के महारथी–२
१११ अजन्ता सितंबर १६५२–४७
११२ तत्रैव–४७
११३ किरातार्जुनीय – प्रस्तावना–६
११४ मैं इनका ऋणी हू–११६
११५ प्रह्लाद अप्रैल १६६० लेख– पण्डित इन्द्र विद्यावाचस्पति से मेरा सपर्क–४६
११६ साप्ताहिक हिन्दुस्तान २६ फरवरी १६६१ लेख–शील और प्रज्ञा के धनी इन्द्रजी–१०
११७ साप्ताहिक हिन्दुस्तान २६ फरवरी १६६१ लेख–दो पीढी की निकटता–१४
११८ इन्द्र विद्यावाचस्पति–३१–३३
११६ अध्यापिका श्रीमति शोभा ओमप्रकाश निलगेकर से हमे उदगीर के शासकीय अध्यापक विद्यालय मे 'भारत वदना' गीत गाये जाने की जानकारी प्राप्त हुई
१२० तत्रैव–३३–३५
१२१ ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज की सस्कृत साहित्य को देन–२३८
१२२ इन्द्र विद्यावाचस्पति–६५
१२३ डॉ गोपाल रेड्डी द्वारा शोधकर्ता को दिये गए एक साक्षात्कार के आधार पर
१२४ इन्द्र विद्यावाचस्पति–१७५
१२५ तत्रैव–१७६
१२६ तत्रैव–१७८
१२७ पत्रकारिता के अनुभव–२–३
१२८ आर्योदय ३ सितबर १६६७–लेख–श्री इद्र विद्यावाचस्पति–१७
१२६ गुरुकुल पत्रिका अप्रैल १६६२–३०३–३०४
१३० दयानन्द कम्मोरेशन वाल्यूम–३७३
१३१ आर्यमित्र ६ जनवरी १६३८–१२
१३२ अजन्ता सितबर १६५२ इन्द्र विद्यावाचस्पति (साक्षात्कार)–४७
१३३ इन्द्र विद्यावाचस्पति–२२०
१३४ प्रह्लाद अप्रैल १६६० लेख–प्रो इन्द्र विद्यावाचस्पति के साहित्य मे राष्ट्रीय चेतना–६६
१३५ ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज की सस्कृत साहित्य को देन–१७८
१३६. प्रकर– भारतीय साहित्य के २५ वर्ष–१७
१३७ प्रकर–विशेषाक–भारतीय साहित्य के २५ वर्ष–लेख–सर्वदेशीय भाषा–सस्कृत साहित्य २५ वर्ष– लेखक–डॉ वेदव्रत–१७

१३८ ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज की संस्कृत साहित्य को देन–१८७–८

१३६. प्रह्लाद अप्रैल १६६०–६६

१४० इन्द्र विद्यावाचस्पति–२५

१४१ आर्य जगत् ५ दिसबर १६८६–२

१४२ साप्ताहिक हिन्दुस्तान ११ सितबर १६६०–५

१४३ डॉ बाबासाहब अबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग रजत जयन्ती और महापण्डित राहुल साकृत्यायन जन्म शताब्दी वर्ष के उपलब्ध मे आयोजित समारोह (२३ मार्च १६६४) मे दिये वक्तव्य के आधार पर

१४४ डॉ चन्द्रभानु सोनवणे जी से हुई शोधकर्ता की एक चर्चा के आधार पर

१४५ सत्यार्थप्रकाश–१०३–१०५

१४६ सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का २७ वर्षीय इतिहास–२६६

१४७ तत्रैव–२७०

१४८ प्रह्लाद अप्रैल १६६०–२४

१४६. तत्रैव–४८

१५० तत्रैव–४८

१५१ इन्द्र विद्यावाचस्पति–३८

१५२ मेरे पिता–२३३

१५३. स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के प्रधान श्रीमान् लाला रामकृष्ण जी को लिखा पत्र

१५४ मैं इनका ऋणी हूँ–२१

१५५ इन्द्र विद्यावाचस्पति–२२२

१५६ प्रह्लाद अप्रैल १६६०–६

१५७ साप्ताहिक हिन्दुस्तान २१ फरवरी १६६१–१०

१५८. हिन्दी नाटक कोश–६३२

१५६ दि १०–६–१६८० को डॉ श्रीराम शर्मा हैदराबाद द्वारा शोधकर्ता को दिये गये साक्षात्कार के आधार पर

१६० स्वर्ण देश का उद्धार–पाठको के प्रति–१

१६१ सरस्वती १ जनवरी १६२२–१०३–१०४

१६२ आर्य जगत् ५ नवबर १६८६–२

११
विद्यावाचस्पति जी की भाषा-शैली

११.१ तत्युगीन भाषायी परिवेशः-

आधुनिक काल से पूर्व साहित्य के रीतिकाल मे, साहित्य–भाषा के रूप मे, ब्रज–भाषा का आधिपत्य था, पर आधुनिक कालीन द्विवेदी–युग तक आते–आते उसका स्थान खडी बोली ने ले लिया भारतेन्दु युगीन कविता की भाषा तो ब्रज–भाषा ही थी, पर उसी समय खडी बोली का प्रयोग गद्य के लिए प्रारभ हो गया था महावीरप्रसाद द्विवेदी ने गद्य और पद्य की अलग–अलग प्रयुक्त होने वाली भाषा पर टिप्पणी करते हुए लिखा था, 'गद्य और पद्य की भाषा पृथक्–पृथक् न होनी चाहिये हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है, जिसके गद्य मे एक प्रकार की और पद्य मे दूसरे प्रकार की भाषा लिखी जाती है सभ्य समाज की जो भाषा हो उसी में गद्य–पद्यात्मक साहित्य होना चाहिये जो लोग हिन्दी बोलते हैं और हिन्दी के गद्य–साहित्य की सेवा करते हैं, उनके पद मे ब्रज की भाषा का आधिपत्य बहुत दिनो तक नहीं रह सकता.'[१] भारतेन्दु से द्विवेदी काल तक आते–आते गद्य–पद्य दोनो ही क्षेत्रो मे खडी बोली धीरे–धीरे पूर्णतया प्रतिष्ठित हो गई

प्रदीर्घ काल तक साहित्य और व्यवहार मे खडी बोली के प्रयोग न होने का कारण देते हुए आचार्य रामचद्र शुक्ल ने यह तर्क दिया है कि 'खडी बोली वैसे ही एक कोने मे पडी रही जैसे और प्रान्तो की बोलियॉ साहित्य या काव्य मे उसका व्यवहार नहीं हुआ पर किसी भाषा का साहित्य मे व्यवहार न होना इस बात का प्रमाण नहीं है कि उस भाषा का अस्तित्व ही नहीं था. उर्दू का रूप प्राप्त होने के पहले भी खडी बोली अपने देशी रूप मे वर्तमान थी और अब भी बनी हुई है'[२] बीसवीं सदी के प्रथम चतुर्थांश (१६००–१६२५) तक की भाषा की स्थिति का विश्लेषण करते हुए डॉ श्रीकृष्णलाल ने 'हिन्दी साहित्य का विकास' नामक ग्रन्थ मे लिखा है, 'बीसवीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश में हिन्दी गद्य का इतिहास अपने अवयव स्थिर होने और पुन. व्यवस्थित और विकसित होने का इतिहास है साहित्यिक क्षेत्र मे ब्रजभाषा का प्रभुत्व हो या खडी बोली का, इससघर्ष के शान्त होने के साथ–साथ एक नये सघर्ष ने जन्म लिया, जिसे हम खडी बोली के सस्कृतनिष्ठ या उर्दूप्रधान होने का सघर्ष कह सकते हैं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से पूर्व ही हिन्दी और उर्दू के पक्ष को लेकर लेखको के दो वर्ग हो गए थे भारतेन्दु काल मे स्वामी दयानद संस्कृत के पक्षधर थे, तो राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द उर्दू के हिमायती थे स्वामीजी ने विलासिनी उर्दू की तुलना मे सस्कृत और सभ्यता की भाषा हिन्दी को 'कुलकामिनी' कहा था उनके परामर्श के अनुसार ही उदयपुर के महाराणा सज्जनसिह ने सरल हिन्दी को राजभाषा बनाकर राजकीय कार्यालयों के क्लिष्ट फारसी नामो के स्थान पर 'महद्राजसभा' 'शिल्पसभा' आदि नाम रखे थे ३ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सस्कृत–उर्दू की अतिवादी या आग्रही भूमिका को त्यागकर मध्यम मार्ग अपनाया और खडी बोली को व्यवस्थित रूप प्रदान किया, परन्तु व्याकरण और भाषा सबधी अन्य अशुद्धियों का परिमार्जन तब तक नहीं हो पाया था. इस अभाव को अपने अथक प्रयास से आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने दूर किया. कालान्तर में महात्मा गांधी और कॉंग्रेस ने राष्ट्रीय एकता के भाव को ध्यान मे रखकर हिन्दी भाषा को हिन्दुस्तानी का नाम दिया जिसका उद्देश्य था–भाषा का स्तर सर्वसुलभ करना, किन्तु 'इस मिलावट की नीति ने न केवल एक समस्या खड़ी की, बल्कि

भाषा के स्वरूप को विश्रृखलित सा कर दिया'.४ हिन्दू–उर्दू का यह सघर्ष बहुत दिनो तक चलता रहा डॉ लल्लन मिश्र के अनुसार 'उन्नति की अवस्था मे बहुत से प्रतिद्वंद्वी खडे हो जाते हैं और उनसे सघर्ष करना अनिवार्य हो जाता है हिन्दी का जब प्रचार और प्रसार होने लगा, तब उसे और अधिक कठिन परिस्थिति का सामना करना पडा प्रारभिक अवस्था मे हिन्दी और उर्दू मे कोई विशेष अन्तर नहीं था विकास काल मे वे एक दूसरे से अलग हो गई'५

इस उपरोक्त भाषायी उथल–पुथल के सदर्भ मे श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति के क्या विचार थे और वे भाषा को किस रूप मे ग्राह्य समझते थे यह भी यहाँ जान लेना आवश्यक है उर्दू भाषा के सबध मे श्री विद्यावाचस्पति ने लिखा है 'उर्दू भाषा का जन्म उन्ही स्थानो पर हुआ जहाँ सर्वसाधारण हिन्दू और मुसलमान मिलते और हाकिम–महकूम के भेदभाव को छोडकर परस्पर वार्तालाप करते थे उर्दू जबान हिन्दुओ और मुसलमानो के निरन्तर सपर्क से उत्पन्न हुई है'६ वर्तमान हिन्दी को देश की भाषाओ मे प्रमुख स्थान दिलाने का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और स्वामी दयानन्द को देते हुए उन्होने लिखा है, 'साहित्यिक क्षेत्र मे नवीन हिन्दी के भगीरथ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र थे और प्रचार क्षेत्र मे उसके पथदर्शक स्वामी दयानन्द सरस्वती थे तथा महावीरप्रसाद द्विवेदी स्वसम्पादित सरस्वती द्वारा हिन्दी जगत् मे स्वतन्त्र और मानसिक जागृति के प्रवर्तक बन गये थे'७ विद्यावाचस्पति जी की दृष्टि मे, 'हिन्दी मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, स्वामी दयानन्द सरस्वती आदि पूर्व सूरियो ने अपने प्रयत्न से नये जीवनपूर्ण प्रगतिशील साहित्य का जो मार्ग बनाया, उस पर चलकर अनेक कवियो, लेखको और सम्पादको ने देश के नवीन सास्कृतिक और राष्ट्रीय जागरण मे सहयोग दिया,'८ ऐसे राष्ट्रीय लेखक–सपादको मे श्री विद्यावाचस्पति का भी उल्लेखनीय स्थान है

श्री विद्यावाचस्पति भाषा के किस रूप को ग्राह्य समझते थे? इसका सक्षेप मे यही उत्तर दिया जा सकता है कि वे सहज भाषा को ग्राह्य समझते थे. उनकी भाषा मे तत्सम शब्दो के अतिरिक्त प्रसगानुसार उर्दू (अरबी–फारसी) व अग्रेजी भाषा के शब्द भी प्रचुर मात्रा मे पाये जाते हैं. उन्हीं के शब्दो मे– 'भाषा मे जो शब्द आते हैं उन्हे निकालने की आवश्यकता नहीं और न वह निकाले ही जा सकते हैं आवश्यकता इतनी ही है कि हम उनके असली अभिप्राय को समझे और उसके अनुसार ही प्रयोग करे'९ भाषा वही समुचित है, जो श्रोताओ तथा पाठको के कानो के रास्ते सीधी हृदय तक पहुँच जाय, मैने वैसी ही भाषा लिखने का यत्न किया है'१०

अपनी भाषा शैली के गुण–दोषो की विस्तार से चर्चा करते हुए श्री विद्यावाचस्पति लिखते हैं– 'पहले मैं अपनी भाषा की सबसे बडी त्रुटि बतलाऊँगा हमारे शिक्षा काल मे गुरुकुल मे हिन्दी का प्रयोग शिक्षा के माध्यम के रूप मे ही किया जाता था, उसके साहित्य तथा व्याकरण की पढाई नहीं होती थी मैंने हिन्दी का व्याकरण सर्वथा नहीं पढा इस कारण मेरी हिन्दी प्रारभ मे संस्कृत के साचे मे ढल गई हमे सस्कृत का व्याकरण ही पढाया जाता था जब मैंने अपनी प्रथम पुस्तक 'नैपोलियन बोनापार्ट' प्रकाशित की तब उसके समालोचको ने प्रधान रूप से दो बाते लिखीं–पहली बात तो यह थी कि भाषा मे हिन्दी व्याकरण संबंधी अनेक दोष हैं और दूसरी यह थी कि भाषा जोरदार और स्पष्ट है जहॉ तक मैं समझ सका हूँ मेरी भाषा के स्पष्ट होने का मुख्य कारण यह है कि मै लिखने के समय पाठको के साथ अपना एकीभाव कर देता हूँ प्रत्येक वाक्य लिखते हुए यह ध्यान रखता हूँ कि मेरे शब्द पढने वालो तक मेरे हृदय के भावों को सरल और स्पष्ट रीति से पहुँचा देगे अथवा नहीं सदा यह ध्यान रखने से मुझे अपने पाठको के हृदय तक पहुँचने मे थोडी बहुत सफलता प्राप्त हुई है उस सफलता ने मेरी हिन्दी व्याकरण की अनभिज्ञता को थोडा बहुत ढक दिया है इतने वर्षों तक लिखते–लिखते व्यावहारिक व्याकरण का कुछ बोध हो जाने पर भी मैं समझता हूँ हिन्दी व्याकरण का विशेषज्ञ आज भी मेरी भाषा मे से 'भाषा की अनस्थिरता'

के दृष्टान्त पा सकते हैं ' इस न्यूनता के रहते भी प्रारभ से ही पाठको के साथ मेरा जो एकीभाव स्थापित हुआ, वही वस्तुत मेरी साहित्यिक निधि है '[११]

श्री विद्यावाचस्पति सस्कृत के विद्वान् होने के बावजूद भी सस्कृतनिष्ठ भाषा के नहीं, अपितु सहज–सरल भाषा के समर्थक थे प्रो विजयेन्द्र स्नातक की सम्मति मे उनकी 'भाषा शैली प्रभावशाली एव आकर्षक थी'[१२] श्री गोपीनाथ 'अमन' के शब्दो मे विद्यावास्पति जी की भाषा 'शब्द जाल से मुक्त होते हुए भी बहुत सारगर्भित थी '१३ श्री टी एस कन्नन के मतानुसार 'उनकी भाषा सरल एव बोधगम्य थी छोटे छोटे वाक्यो मे बडी बात कहने मे वे सिद्धहस्त थे भाषा उनकी अपनी होकर चलती थी'[१४] श्रीमति महादेवी वर्मा ने भाषा के विषय मे कहा है, 'आदिम जीवन से आज तक मनुष्य की जो सर्जनात्मक उपलब्धियॉं हैं उनकी दीर्घ सूची मे भाषा महत्वपूर्ण आविष्कार है ' इसी क्रम मे आगे वे लिखती है, "मनुष्य अपने भाव या विचार दूसरे मनुष्य के अन्त करण मे प्रतिफलित करना चाहता है और इस सक्रमण की सफलता भावानुकूल शब्दावली, अभिव्यक्ति की शैली तथा शब्दो की प्रभविष्णु शक्ति पर निर्भर है '[१५] इस दृष्टि से जब हम राष्ट्रीय लेखक व पत्रकार श्री विद्यावाचस्पति के साहित्य की ओर दृष्टिपात करते हैं, तो पाते हैं कि वे अपने भावो और विचारो को अपने बहुमुखी सर्जनात्मक साहित्य के माध्यम से व्यापक स्तर पर अभिव्यक्त करने मे नि सन्देह रूप से यशस्वी हुए हैं "

श्री विद्यावाचस्पति ने विषयानुकूल, भावानुकूल, परिमार्जित और परिनिष्ठित भाषा मे सफलतापूर्वक अपने विचारो की अभिव्यक्ति की है उनकी भाषा को सुसज्जित करने मे उनके द्वारा निर्मित व समुद्धृत सूक्तियो का उल्लेखनीय सहयोग है मुहावरो और कहावतो ने उनकी भाषा का श्रृगार किया है सस्कृत के साथ लोक प्रचलित अरबी–फारसी तथा अग्रेजी के शब्दो का प्रयोग करना भी उन्होने सर्वथा समुचित समझा है उनकी रचना–पद्धति मे अलकारिता का चमत्कार भी विद्यमान है उपमा, रूपक, विरोधाभास, उदाहरण, मानवीकरण आदि अलकारो की छटा उनके गद्य मे देखते ही बनती है भाषा शैली की दृष्टि से उन्होने प्रमुखतया प्रसाद शैली का प्रयोग किया है, किन्तु कचित् यत्र–तत्र वे समास शैली का भी आश्रय लेते हुए दिखलाई देते हैं उसका मूल कारण उन पर पडा सस्कृत साहित्य शैली का प्रभाव है रूप शैली की दृष्टि से उन्होने समालोचना और प्रश्नोत्तर शैली को अपनाया है भाव शैली की दृष्टि से विद्यावाचस्पति जी ने प्रमुख रूप से विवेचनात्मक या विश्लेषणात्न्क शैली को स्वीकार किया है इन उपरोक्त विविध रगो से श्री विद्यावाचस्पति ने अपनी भाषा शैली को सजाया है यहॉं कतिपय उदाहरणो के साथ उनकी उक्त विशेषताओ से परिपूर्ण विविधतामयी भाषा की झॉंकी प्रस्तुत की जा रही है.

११.२ विद्यावाचस्पति द्वारा प्रयुक्त सूक्तियॉं:-

सूक्ति शैली मे कला, साहित्य, प्रेम, जीवन, मृत्यु आदि के विषयो मे नई–नई कल्पनाये की जाती है इन सूक्तियो का प्रयोग भाषा को चमत्कारपूर्ण तथा अर्थ को गौरवपूर्ण बनाता है सूक्तियो मे साहित्य तथा लोकानुभूति का भी समन्वय होता है डॉ चन्द्रभानु सोनवणे ने स्वीकार किया है, 'विचार प्रधान भाषा शैली मे सूक्तियो का प्रयोग प्राय अधिक होता है'[१६], विद्यावाचस्पति जी की रचनाओ मे भी प्रचुर मात्रा मे सूक्तियॉं विद्यमान हैं उन्होने भावाभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाने के लिए प्राय हिन्दी व सस्कृत सूक्तियो का प्रयोग किया है जैसे, 'सदेश से हीन साहित्य महान् नहीं हो सकता '[१७] कवि उसे कहते हैं जो दिल के भाव को पहचाने और गहराई मे छिपी हुई सच्चाई बाहर ला (कर) रखे '[१८] 'जो काव्य केवल धन या केवल यश के लिए के लिखा जायेगा, वह उस ऊँचाई तक न पहुँच पायेगा, जिस ऊँचाई तक वह पहुँचेगा जिसका लक्ष्य लोक कल्याण हो,'[१९] 'दास मनोवृत्ति के लोग राजनीतिक स्वाधीनता प्राप्त नहीं कर सकते,'[२०] विद्यावाचस्पति जी की भाषा को सुसज्जित

करने मे सस्कृत की सूक्तियो ने भी बडा सहयोग दिया है जैसे, 'क्रिया सिद्धि सत्वे भवति महता नोपकरणे,'[२१] 'भवन्ति नम्रास्तरव फलोदगमै,'[२२] ऋते ज्ञानान्न मुक्ति'[२३] 'साहसे श्रीर्निवसति'[२४] स्वल्पारभा क्षेमकरा,' उन्होने पद्य सूक्तियो से भी अपनी भाषा का श्रृगार किया है और वे सूक्तियॉ यत्र–यत्र उनकी भाषा की शोभा को द्विगुणित करती हुई–सी प्रतीत होती है जैसे 'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं,'[२५] बिन मागे मोती मिले मागे मिले न भीख,'[२६] 'काल करे सो आज कर, आज करे सो अब,'[२७] बीति ताहि विसार दे, आगे की सुधि ले'[२८]

११.३ मुहावरे:-

मुहावरो के प्रयोग से भाषा के अर्थ मे चमत्कारिक शक्ति आ जाती है, और भाषा प्रवाहमयी हो जाती है जब निर्जीव शब्दालियो के स्थान पर सजीव मुहावरो को अनायास भाषा मे स्थान मिलता है तब उस भाषा मे अद्‌भुत सामर्थ्य आ जाता है प विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार– 'मुहावरे एक प्रकार से लाक्षणिक प्रयोग ही है'[३०] डॉ चन्द्रभानु सोनवणे के मतानुसार 'मुहावरे और लोकोक्तियो को रूढा लक्षणा के अतर्गत समाविष्ट किया जा सकता है,'[३१] श्री विद्यावाचस्पति ने अपनी रचनाओ मे शतश मुहावरो का प्रयोग किया है जिससे उनकी भाषा सशक्त और व्यावहारिक हो गई है, तथा भाषा शैली मे सहज सौन्दर्य का समावेश हो गया है कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है, 'उन्होने सरकारी छात्रवृत्ति को लात मार दी,'[३२] उनकी मृत्यु से ऐसा लगता है मानो हमारे सिर पर से एक बडा साया उठ गया है'[३३] 'वह अपने दृष्टिकोण से जगत् की सब समस्याये हल करने का दावा करके कलम नहीं उठाते थे'[३४] 'दोनो डर तीन दिन मे काफूर हो गए,'[३५] इस प्रकार उक्त तथा अन्यान्य लोक प्रचलित मुहावरो के प्रयोग से स्पष्ट होता है कि श्री विद्यावाचस्पति की भाषा निसदेह सजीव और चुस्त बन गयी है

११.४ लोकोक्तियॉ-कहावतें:-

मौखिक साहित्य मे लोकोक्ति का अतिशय महत्व है इनमे गागर मे सागर भरने की शक्ति पायी जाती है सासारिक व्यवहार–पटुता व सामान्य बुद्धि का जैसा निदर्शन लोकोक्तियो मे मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है, डॉ वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार जिस दिन हिन्दी लिखने की शैली मे लोकोक्ति–कहावतो का समुचित आदर होगा उस दिन उसका रूप खिल उठेगा,'[३६] अभिव्यक्ति मे सौष्ठव लाने के लिए विद्यावाचस्पति जी ने हिन्दी–सस्कृत व कहीं– कही अरबी–फारसी की लोकोक्तियो का भी यथोचित प्रयोग किया है जैसे, हिन्दी लोकोक्तिया– 'जिसकी लाठी उसकी भैंस,'[३७] 'दूध का जला छाछ भी फूक–फूककर पीता है,'[३८] 'डूबते को तिनके का सहारा',[३९] 'जो बोले सो कुण्डा खोले,'[४०] 'श्री विद्यावाचस्पति ने कतिपय लोकोक्तियो का प्रयोग किचित् परिवर्तन के साथ किया है जैसे, 'बबूल बोकर आम के फल कैसे प्राप्त किये जा सकते हैं,'[४१] 'यदि बिल्लिया न लडे तो बदर को पच बनने का अवसर कैसे मिले?,'[४२] 'पहाड खोदकर चूहा भी न निकला,'[४३] बिल्ली जब खिसिया जाती है तो खम्भा नोचने लगती है'[४४] सस्कृत लोकोक्तिया– 'देवोऽपि दुर्बल घातक,'[४५] श्रेयासि बहुविघ्नानि,'[४६] 'इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्ट'[४७] 'कार्यं वा साधयेम् देह वा पातयेम्,'[४८] श्री विद्यावाचस्पति द्वारा प्रस्तुत कतिपय हिन्दी लोकाक्तिया या कथन सस्कृत लोकोक्तियो से प्रभावित हैं यथा, 'आग लग चुकी थी कुआ खोदने से कुछ काम बनने की आशा नहीं थी,'[४९] औरगजेब के सौभाग्य घट के तले मे पहले से कई ऐसे छिद्र हो रहे थे जिससे पानी का निकलना निरन्तर जारी रहा,'[५०] उर्दू–फारसी लोकोक्तिया– 'करे खानाबदोशो की खुदा ही खाक सामानी,'[५१] 'नीम–हकीम खतराए जान,'[५२] 'पीर शौ बिया मोज=बूढा हो फिर भी सीख'[५३] अग्रेजी लोकोक्ति– 'हिज मास्टर्स वायस'[५४]

११.५ शब्द संपदाः-

श्री विद्यावाचस्पति की शब्द सपदा या शब्दावली अतिविस्तृत और समृद्ध ज्ञान की परिचायिका है सस्कृत और आर्ष वाड्मय प्रधान गुरुकुलीय शिक्षा के कारण उन्होने सस्कृत गर्भित तत्सम शब्दावली का प्रयोग बहुलता से किया है, पर उर्दू माहोल के पजाब मे जन्म लेने के कारण उनकी भाषा मे अरबी–फारसी की शब्दावली भी प्रचुर मात्रा मे है. व्यावहारिक भाषा के पक्षधर होने के कारण, जहा आवश्यक प्रतीत हुआ, वहा उन्होने नि सकोच अग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग किया है. शब्दावली की दृष्टि से श्री विद्यावाचस्पति की भाषा के तीन रूप परिलक्षित होते हैं १– सस्कृत गर्भित तत्सम शब्दावली, २– उर्दू के माध्यम से हिन्दी तक पहुची अरबी–फारसी की शब्दावली, तथा– ३– अग्रेजी शब्दावली

श्री विद्यावाचस्पति ने सस्कृत के तत्सम शब्दो को सर्वाधिक अपनाया है जैसे, 'असूर्यपश्या, 'आसनासीन', 'इतिवृत्त', 'ईश्वरेच्छा, उत्पात, ऊहापोह, एकच्छत्र, औचित्य, कटकाकीर्ण, गगनस्पर्शी, चर्मचक्षु, जघन्य, तत्रस्थ, दौहित्र, धराशायी, निरभ्र, प्रत्युत्पन्नमति, ब्राह्म मुहूर्त, भरताग्रज, महती, यज्ञाग्नि, रन्ध्र, लब्धप्रतिष्ठ, वावदूक, शास्य, सच्छिष्य, हार्द, क्षन्तव्य, त्रिकालबाधित आदि

श्री विद्यावाचस्पति सहज लोक प्रचलित भाषा से अरबी–फारसी के यावनिक शब्दो को बीन–बीन कर अलग करने के पक्षधर नहीं थे हमे उनके भाषा भडार मे अरबी–फारसी (उर्दू) के शब्द बहुत बडी सख्या मे मिलते हैं उनकी शब्द–चयन प्रवृत्ति को देखकर यही प्रतीत होता है जहा वे हजारो वर्षो की परपरा से चले आ रहे सस्कृत के शब्दो की उपेक्षा करना आत्मघात समझते थे वहा वे अनायास लोकभाषा मे प्रचलित शब्दो को विदेशी कहकर त्यागना भी मूर्खता मानते थे डॉ वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार 'उर्दू का जो विशाल साहित्य है और गद्य लिखने मे उर्दू वालो का जो निरालापन है हिन्दी वालो को उसमे सदा रूचि रही है और आगे भी रहेगी फारसी–अरबी के पाच–सात हजार नये शब्द लेने से पाच लाख शब्दो वाली हिन्दी का कुछ बनता बिगडता नहीं है, और न हिन्दी वालो को इसकी झिझक है'[५५] विद्यावाचस्पतिजी ने भी लोक–प्रचलित अरबी–फारसी (उर्दू) शब्दो का खुले दिल से अपनी भाषा मे इस्तेमाल किया है जैसे, अरबी शब्द– अहलकार, आमफहम, इनायत, उसूल, काफूर, खरीता, जनाब, तजर्बा, दिक्कत, मरदूद, रसूख, वजीर, शोहरत, सदर, हकीकी उर्दू खडी बोली का वह साहित्यिक रूप है जिसमे अरबी–फारसी के शब्दो की अधिकता है, तो हिन्दी खडी बोली का वह साहित्यिक रूप है, जिसमे सस्कृत शब्दो का बाहुल्य पाया जाता है विद्यावाचस्पतिजी की भाषा सस्कृतनिष्ठ होते हुए भी उसमें यत्र–तत्र फारसी के शब्द पाये जाते हैं फारसी के विषय मे महापडित राहुल साकृत्यायन का मत है कि, 'अरबी भाषा की अपेक्षा फारसी के शब्द हिन्दी मे अधिक आसानी से स्थान पा सकते हैं.'[५६] विद्यावाचस्पति जी की रचनाओ मे प्रयुक्त फारसी शब्दो के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं अहदनामा, आतिश, उज्रदारी, कुफ्र, ख्वाबगाह, चुस्त, जबान, तोशाखाना, दस्तदाजी, नौबत, पुश्तैनी, फौजदारी, बदोबस्त, मीर, लश्कर, शीराजा, सरमायेदार, हरजाना आदि श्री विद्यावाचस्पति ने अपनी भाषा को लोक व्यवहार के अनुकूल बनाने के लिए वाक्यो के बीच–बीच मे अग्रेजी के बहु प्रचलित शब्दो का प्रयोग करना जरूरी समझा है और उनसे भाषा के प्रवाह मे कोई व्याघात भी उत्पन्न नहीं हुआ है कभी–कभी निबन्धादि विद्याओ मे आलोचना–प्रत्यालोचना, खण्डन–मण्डन अथवा तथ्य निरूपण के लिए अन्य भाषाओ के शब्द जितने प्रभावशाली तर्क–सगत तथा भावव्यजक होते हैं. उतने अपनी भाषा के नहीं होते इसलिए उन्होने अपनी रचनाओ मे भावप्रेषणीयता का गुण अधिक मात्रा में लाने के लिए संस्कृत–अरबी–फारसी की तरह अग्रेजी शब्दो का भी उपयोग किया है विद्यावाचस्पति जी की भाषा में कुछ ऐसे पारिभाषिक शब्द भी हैं, जो अग्रेजी शब्दो के आधार पर उनके द्वारा निर्मित हैं. और जिनका उल्लेख करते समय

उन्होने उनके अग्रेजी शब्द भी कोष्ठक मे दिये हैं

विद्यावाचस्पति जी ने स्वभाषा मे अग्रेजी शब्दो का प्रयोग अनेक रूपो मे किया है कतिपय अग्रेजी शब्दों के अर्थ पहले हिन्दी मे और मूल शब्द कोष्ठक के अन्तर्गत रोमन लिपि मे दिये हैं जैसे, अग्रभाग (Van) मध्यभाग (Centre) दक्षिण पार्श्व (Right) वाम पार्श्व (Left) सहायक भाग (Reserve Force) बुद्धि स्वातत्र्य (Freedom of thought) कवलीकरण (Annexation) साम्प्रदायिक (Communal) देवमाला (Muthology) क्रियाकलाप (Ritualism) हेतुवाद (Rationalism) प्रतिस्पर्धा (Competition) ऐरा–गैरा महाशय (Mr Anybody) तर्कशास्त्र (Logic) व्यापारिक स्वाधीनता (Ereetrade) प्रतियोगी सहयोग (Responsive Co-Operation) भारत छोडो (Quit India) मन्त्रीमण्डल पद्धति (Cabinet System) आदि

अग्रेजी शब्दो के प्रयोग के दूसरे वाक्यान्तर्गत रूप वह है जिनमे अग्रेजी शब्दो के अर्थ पूर्ववत् हिन्दी मे पर मूल अग्रेजी शब्द नागरी लिपि मे ही कोष्ठक मे रखे गये हैं जैसे, शरीरी (सोल) भोक्ता (ईगो) कर्ता (स्पिरिट) प्रबोध काल (रेनेसॉ) धार्मिक सुधार (रिफार्मेशन) सास्कृतिक प्रबोध (कल्चरल रेनेसॉ) उदार (लिबरल) अनुदार (कन्जरवेटिव) आदेश–पत्र (ह्विप) राज्य मण्डल (कॉनफिडरेशन) विवरण पत्र (मिनिट) पतित (रैनीगेड) प्रेसिडेसी (बडे प्रान्त) गोले का दर्द (गाल ब्लॅडर कालिक) आज्ञापत्र (चार्टर) प्रतिबध (सेसरशिप) आदि

अग्रेजी शब्दो के प्रयोग के तीसरे वाक्यान्तर्गत रूप वह है जिनमे रोमन लिपि का रूप, रोमन मे न देकर, केवल नागरी लिपि मे ही दिया गया है प्राय वाक्यान्तर्गत अधिकतर अग्रेजी शब्दो का प्रयोग विद्यावाचस्पति जी ने नागरी लिपि मे ही किया है जैसे अप–टू–डेट, इन्फ्लुएजा, एक्टर, ऑनरेबल, कन्वेन्शन, ग्रेन, चार्ट, ट्यूटर, ड्यूटी, पैनेल्टी, फिलासफी, ब्राको निमोनिया, मजिस्ट्रेट, वालन्टियर, शॉर्ट–हैन्ड, सेक्रेटेरियट, हिज हाइनेस आदि

अग्रेजी शब्दो के प्रयोग के चौथे वाक्यान्तर्गगत रूप वह हैं जो केवल रोमन लिपि मे लिखे गये हैं, पर ऐसे शब्द अत्यल्प हैं जैसे, Misfire, Nervous systen, India, Psycho-Andlysis, Thank you आदि इसी प्रकार कतिपय पुस्तको के नाम भी उन्होने प्राय रोमन लिपि मे लिखे हैं जैसे India Divided, India in Vicatorian age, Unrest in India, Indian Princes under British Protection

अग्रेजी शब्द–प्रयोग के पाँचवे वाक्यान्तर्गत रूप वे हैं जिनमे नागरी लिपि लिपि मे अग्रेजी शब्द प्रयोग किया गया है, और तत्पश्चात् कोष्ठक मे उसका रोमन रूप भी दिया गया है इस कोटि के अग्रेजी शब्द प्रयोग भी अत्यल्प ही हैं जैसे, मैडिसन (Medicine) सर्जरी (Surgery) इज्म (Isma) दि वीक्ली न्यूज (the Weekly) दि ओरियन (the orion) आदि अग्रेजी शब्द–प्रयोग के छटे वाक्यान्तर्गत रूप वे हैं, जिनमे पहले नागरी लिपि मे अग्रेजी शब्द का प्रयोग किया है और तत्पश्चात् उसका हिन्दी अनुवाद दिया गया है ऐसे शब्द भी अत्यल्प या नगण्य ही हैं जैसे, सिलवर टग (रजत जिह्व), लाउडथिकिग (सस्वर विचार करना), हिडोनिज्म (सुखवाद) डोमीनियम (उपनिवेश) मॉडरेट (नर्म) अगनोस्टिसिज्म (अनीश्वरतावाद) जीनियस (असाधारण प्रतिभाशाली) आदि

विद्यावाचस्पति जी ने अपनी बात को न्यायसगत, प्रमाणपुष्ट एव तर्कसगत बनाने के लिए अपनी रचनाओ मे सस्कृत और हिन्दी के अतिरिक्त अग्रेजी भाषा के उद्धरणो का भी प्रयोग किया है कहीं पहले मूल रोमन लिपि मे अग्रेजी विचारको के उद्धरण दिये हैं और तत्पश्चात् उसका हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत किया है तो कहीं मूल ग्रथ भाग मे अंग्रेजी विचारको के हिन्दी अनुवाद देकर उनके कथनो को पाद टिप्पणी मे मूल रोमन लिपि मे यथावत् उद्धृत किया गया है जैसे, Good government is no substitute for self government (सुराज्य स्वराज्य का स्थानापन्न नहीं हो

सकता, Nations by themselves are is better than cure' (बीमारी को आने से पहले रोक देना उसके इलाज से कहीं अच्छा है) आदि

विद्यावाचस्पति जी की ललित व ललितेतर रचनाओ मे बार–बार कुछ ऐसे शब्दो का प्रयोग हुआ हैं, जो उसी रूप मे अन्य साहित्यकारो की रचनाओ मे नहीं पाये जाते, जैसे आश्चर्यचकित के स्थान पर 'आश्चर्यित', निजी के स्थान पर 'निजू', घरेलू के स्थान पर 'घरू', सुरक्षा के स्थान पर 'सरक्षा', स्वर्णिम के स्थान पर 'स्वर्णीय', सावधानी के स्थान पर 'सावधानता', स्पष्टता के स्थान पर 'स्पष्टवादिता' आदि इसी प्रकार एकाधिक बार बहुत के स्थान पर 'पुष्कल, परन्तु के स्थान पर 'प्रत्युत', अतीत के स्थान पर 'व्यतीत', अतर्निहित के स्थान पर 'अतर्हित', 'व्यापी' के स्थान पर 'व्यापिनी' 'अतर्धान' के स्थान पर 'अतर्ध्यान', नि सदेह के स्थान पर 'असदिग्ध' जैसे अल्प प्रचलित शब्दो का भी उन्होने प्रयोग किया है जिससे उनकी लेखनी शैली की एक विशिष्ट प्रवृत्ति का पता चलता है

विद्यावाचस्पति जी की लेखन शैली की दूसरी विशिष्ट प्रवृत्ति है पाठको से सवाद स्थापित करने की चाहे ललित विधा हो या ललितेतर, सर्वत्र उन्होने इस शैली का प्रयोग किया है उनकी इन लेखन शैलियो को दोष भी कहा जा सकता है या रचना शैली की विशिष्ट प्रवृत्ति भी पर हम यहा यह उल्लेख करना चाहते हैं कि यही वे विद्यावाचस्पति जी की सहज रचनागत प्रवृतिया हैं, जिनसे उनकी रचनाओ की विश्वसनीयता एवम् प्रामाणिकता बनी रहती है किसी रचना के प्रारभिक पृष्ठो के नदारद या लुप्त–गुप्त हो जाने पर भी इन प्रवृत्तियो के आधार पर उनकी रचनाओ का यत्किचित् प्रयास से अनायास पता लगाया जा सकता है

कहीं–कहीं विद्यावाचस्पति जी की रचनाओ मे भाषागत दुर्बलता भी दिखाई देती है केवल वाक्यो का प्रयोग ही अशुद्ध हुआ हो ऐसी बात नहीं, पर उनका आशय समझने मे कठिनाई होती है जैसे– 'सूर्य प्रकाश दाता है'– इस भाव को व्यक्त करने के लिए विद्यावाचस्पति जी लिखते हैं– 'इसकी चिता मत करो, सूर्य अन्धेरा नहीं दे सकता' कतिपय स्थलो पर स्थान विशेष या सज्ञा विशेष की वर्तनी मे भी विद्यावाचस्पति जी ने गलत प्रयोग किये हैं जैसे मैसूर के स्थान पर माइसूर, सातारा के स्थान पर सितारा, एलोरा के स्थान पर एल्लोरा, कुलाबा के स्थान पर कोलाबो, यूरोप के स्थान पर योरूप, नादेड के स्थान पर नादेर, गुजोटी के स्थान पर गजोटी, त्रिपुरा के स्थान पर त्रिपुरी, ब्रह्मसमाज के स्थान पर ब्रह्मोसमाज, पाटिल के स्थान पर पातिल, तात्या टोपे के स्थान पर तातिया टोपे, कुटे के स्थान पर कुते, गोळे के स्थान पर गोले आदि. डॉ चन्द्रभानु सोनवणे के मतानुसार महाराष्ट्र केसरी छत्रपति शिवाजी के राज–दरबारी कवि महाकवि भूषण ने अपने काव्य मे 'सातारा' के लिए 'सितारा' का प्रयोग किया है, जिसका प्रभाव श्री विद्यावाचस्पति पर पडा है 'ब्रह्मसमाज' के स्थान पर 'ब्राह्मोसमाज' बगाली उच्चारण का परिणाम है तथा शेष सभी रूपातरित शब्द अग्रेजी भाषा की प्रकृति के अनुरूप या प्रतिफल हैं विद्यावाचस्पति जी ने दोगले समासो, सधियो या विरोधी पद–मैत्रियो के शब्द प्रयोग भी किये हैं, जो अनुचित हैं, जैसे–बेत ताडन, निषेधात्मक वायदे, जबरदस्त प्रतिवाद, जनाकीर्ण सडक, 'पुष्कल ऑसू', काफी ख्याति, स्थायी बदोबस्त, स्पष्ट इकरारनामा, निमन्त्रित मुसाहिबो, यत्नसचित मुस्कुराहट, अनुद्घोषित सुलहनामा, विस्तीर्ण पेशानी, घृणाव्यजक कहकहा, पुष्कल पूजी, पब्लिक अखबारनवीसी इसी शैली में लिखे गए कतिपय वाक्य या वाक्याश भी दर्शनीय हैं जैसे– 'बारूदखाना अग्निसात् हो गया'. 'कृत्रिम कोप काफूर हो गया', 'चादर आस्तीर्ण थी', 'सदर स्थान पर एक परिष्कृत मृगछाला शोभायमान थी', 'आपद्ग्रस्त नगरी मे कई प्रकार की सेवा दरकार थी', 'सुलहनामा करने के लिए बाधित किया', 'सधि को बहाल कर दो', 'तत्रस्थ मण्डली बौखला गई', 'नाश्ते के उपरान्त', 'फाटक में प्रविष्ट', 'ईमानदारी की पराकाष्ठा'

आदि विद्यावाचस्पति जी के जीवन–सुमन का विकास गंगा–जुमनी सस्कृति या मिले–जुले आचल मे हुआ था पजाब और दिल्ली उनकी क्रमश जन्मभूमि व कर्मभूमि रही अत उनकी भाषा मे उर्दू शब्द शामिल हो गये हैं, और उनकी शिक्षा–दीक्षा की भूमि सस्कृत और सस्कृति का पुनरुद्धार करने वाली कागडी गुरुकुल रही है, अत उनकी शब्दावली तत्समप्रधान बन गयी है. इन दोनो परिवेशो के गगा–जुमनी वातावरण का यह परिणाम हुआ कि उनकी भाषा मे यत्र–तत्र विरोधी पद–मैत्रियो से तथा विभिन्न भाषायी सस्कृति से युक्त वाक्य, वाक्याश या शब्द मिल जाते हैं

११.६ अलंकारः-

आलकारिक भाषा से अभिव्यजना मे चमत्कार की सृष्टि होती है कविवर सुमित्रानदन पत का अभिमत है कि, 'अलकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं, अपितु वे भावाभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं,[५७] डॉ चन्द्रभानु सोनवणे के शब्दो मे 'अलकार साहित्य का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण उपकरण है और वह अभिव्यक्ति को पूर्णता प्रदान करता है'[५८] डॉ रामकुमार वर्मा के अनुसार 'शब्दालकारो मे शब्द चातुर्य है, तो अर्थालकारो मे अर्थ कौशल, यदि यह कहा जाय कि शब्दालकारो मे भाषा की चित्रशाला है और अर्थालकार मे भावो की मुस्कान तो अत्युक्ति न होगी अलकार एक ओर भाषा का परिष्कारक है, तो दूसरी ओर भावो के प्रयोजन की अन्तर्दृष्टि का सूचक है'[५९] जहा अनुप्रास आदि शब्दालकारो से भाषा मे चमत्कार उत्पन्न होता है वहा उपमा आदि अर्थालकारो एव अप्रस्तुत विधान से प्रभावोत्पादकता उत्पन्न होती है और उसके साथ ही कथ्य का भाव भी सहज ग्राह्य बन जाता है अप्रस्तुत विधान के अन्तर्गत सादृश्यमूलक उपमा–रूपक आदि अलकारो का आश्रय लेकर साहित्यकार वस्तु, गुण, अथवा क्रिया की तीव्र अनुभूति करवाता है इस प्रकार अलकारो के प्रयोग से भाषा, सजीव, प्रभावोत्पासदक एव रमणीय बन जाती है इन अलकारो से परिस्थिति या पात्र के चित्रण मे भी बडी सहायता मिलती है.

श्री विद्यावाचस्पति की रचनाओ मे भी स्वाभाविक रूप से शब्दालकारो एव अर्थालकारो का प्रयोग हुआ है, जिससे उनकी भाषा मे चमत्कारिता के साथ–साथ सशक्त भावप्रेषणीयता का गुण भी अनायास आ गया है तथापि वे 'तुम वहन कर सको जन–मन मे मेरे विचार, वाणी मेरी चाहिये तुम्हे क्या अलकार' के पक्षधर हैं उन्हीं के शब्दो मे– 'भाषा का अलकार वहीं तक शोभाजनक या उपयोगी हो सकता है, जहा तक वह लेखक के अभिप्राय मे कठिनता उत्पन्न न करे'[६०] स्पष्ट है कि विद्यावाचस्पति जी अनावश्यक अलकरण की अपेक्षा सहज अलकरण के हिमायती हैं, उनकी रचनाओ मे हमे रूपक–अलकार का प्रयोग बहुलता के साथ मिलता है अनुप्रास आदि शब्दालकार एवम् उपमा आदि अर्थालकारो की छटा भी दर्शनीय है

विद्यावाचस्पति जी के अलकृत गद्यो मे रूपक–अलकार अपनी अद्भुत छटा विकीर्ण कर रहे हैं जैसे, 'उन्होने (महर्षि दयानद जी ने) रूढियो के जगल के स्थान मे विदेशी सभ्यता का जो विषवृक्ष बोया जा रहा था, उसे रोककर भारतीयता के कल्पवृक्ष का आरोपण कर दिया'[६१] 'आयु की दृष्टि से लोकमान्य तिलक का जीवन–सूर्य मध्याह्न से अस्ताचल की ओर जा रहा था और महात्मा (गाधी) जी का जीवन–सूर्य पूर्वाचल से मध्याह्न की ओर'[६२] 'आज भारत मे जो राष्ट्रीय स्वाधीनता का प्रभात आ रहा है, एक भाषा का सार्वदेशिक रूप से प्रयोग इसका एक प्रमुख कारण है'[६३] 'प्रबोध का वह बाल सूर्य जो १० वीं शताब्दी के आरभ मे भारत के उदयगिरि पर अकुरित हुआ था, वह २० वीं सदी मे प्रबल राज्य क्रान्ति के रूप मे परिणत हो गया और १५ अगस्त १९४७ को उसे ससार ने मध्य आकाश मे चमकते हुए सूर्य की न्याई देखा'[६४] व्याख्यानों के बमो और पोस्टरो के छर्रो से आकाश धुआंधार हो गया'[६५] (महात्मा जी के) एक शब्द की पीठ पर सौ–सौ क्रियाओ की गठरी लदी होती थी'[६६] 'जायदाद वह खटाई है, जो प्रेम रूपी दूध के जर्रे–जर्रे को फाडकर

अलग कर देती है '[६७] '(प्रेमचन्द की) लेखनी रूपी तूलिका ने जो चित्र खींचे हैं, उनमे गरीबो और उनकी झोपडियो, मजदूरो और उनके कष्टो की प्रधानता है '[६८] 'निर्भय सुधारक का काम बडा कठिन होता है, उसे दूसरे के दोषो का स्पष्ट शब्दो मे प्रदर्शन करके नासमझ जनो की क्रोध रूपी आग से खेलना पडता है'[६९] आदि श्री विद्यावाचस्पति की रचना पद्धति मे उपमा अलकार ने तो चार चाद लगा दिये हैं जिससे इनकी शैली मे चारुता एव सुदरता की अनुपम वृद्धि हुई है जैसे, 'सुरेन्द्रबाबू का सिहनाद तूफानी समुद्र की लहरो के समान है '[७०] 'गोखले महोदय का कठ स्वर ऋषिकेश मे बहती हुई गगा की वसन्तकालीन धारा के समान है',[७१] तथा 'विपिनचन्द्रपाल का स्वर सितार के अतिम सप्तक के समान है '[७२] श्री विद्यावाचस्पति ने उत्प्रेक्षा अलकार के माध्यम से भी अपनी बात को भली प्रकार समझाने का प्रयास किया है, जैसे, 'महात्मा जी के आखो मे आसू देखकर प्रतीत होने लगा था, मानो हिमालय अपने स्थान से हिल गया हो '[७३] 'वह (डॉक्टर) मानो भारत मे एलोपैथिक इलाज के अणुबम हैं '[७४] 'मौलाना आरिफ बहुत ही दुबले–पुतले थे देखने से यह मालूम होता था कि किसी ने बॉस के ढाचे पर खद्दर मढ दिया हो '[७५] विद्यावाचस्पति जी ने अप्रस्तुत विधान के माध्यम से भी चमत्कार उत्पन्न किया है जैसे, 'यह नेताजी सुभाषचद्र बोस के व्यक्तित्व का ही जादू था, जिसने चिडिया (कॅप्टन लक्ष्मी) को अग्रेज सेना के बाज (सर ह्यूगरोज) से भिडा दिया '[७६] 'छत्तीस वर्षो में गौ ने (ब्राह्मण धर्मी सिख जाति ने) व्याघ्र का (क्षत्रिय गुणधर्मी सिख जाति का) रूप धारण कर लिया '[७७] 'प्यासा (श्यामा) गगा (चम्पा) के पास जा रहा था, पर गगा (चम्पा) उसके पास आ गई'[७८] आदि.

विद्यावाचस्पति जी की रचनाओ मे दृष्टान्त अलकार का प्रयोग भी विपुलता के साथ हुआ है, जिससे उनकी भाषा मे अधिकाधिक कलात्मकता की श्रीवृद्धि हुई है जैसे, 'दु खो को सहन करके सुख अधिक सुखदायक होता है. चिरायता पीने के पीछे मिसरी का मिठास कई गुणा हो जाता है कमलादेवी ने भी बडी तपस्या के पीछे अपने हृदय–धन (तेजसिह) को पाया है'[७९] 'जैसे कपडे के लाल टुकडे को देखकर साड बिदक जाता है, लार्ड विलिग्डन वैसे ही होमरूल का नामसुनते ही बिगड उठे' 'मराठा' केसरी' का नर्म सस्करण था 'केसरी' उकसाता था, 'मराठा' समझाता था केवल सप्तक का भेद था, राग एक ही था' (लोकमान्य तिलक और उनका युग–१६७,२३) 'गवर्नर जनरल साहब (चक्रवर्ती राजगोपालाचारी) का भाषण पढकर दु ख हुआ मोटे–मोटे उर्दू शब्द जिन्हे लोक भाषा के सरल शब्दो के बीच मे लाकर ऐसे बिठा दिया गया था, जैसे फूलो के हार मे केवल इसलिए काटे लगा दिये जाय कि कहीं काटो के बाग का माली नाराज न हो जाय '[८०] 'जैसे रेलगाडी को स्टेशन से चलकर पूरा जोर पकडने के लिए कुछ समय चाहिये, वैसे हीवक्ता को भी असली रूप मे आने के लिये कुछ दूर तक चलना आवश्यक होता है.'[८१] उस (जेली सिख नम्बरदार) के स्वर से प्रतीत होता था कि उसे मुझ पर दया आ रही है, वैसी दया जैसी भेड को वधस्थान पर ले जाते हुए उसके रखवाले को आती होगी '[८२]

विद्यावाचस्पति जी की भाषा मे कहीं–कहीं विरोधमूलक अलकार की छटा भी दर्शनीय है जैसे, 'मैं आपके नौकरो की स्वामीभक्ति पर आश्चर्यित हूँ कि वह आपको राज्य की ठीक–ठाक दशा नहीं बतलाते और आग को फूॅस से ढकना चाहते हैं' [८३] 'बिना बादल के पानी बरसने के कारण–कलाप पर वे अपने–अपने ढग पर विचार कर रहीं थीं . तीनो बडी बहू के कल्पनातीत बुलावे के सबध मे सोच रही थीं '[८४] 'फूल ही कॉटे बन गये' [८५] इस नहीं मे 'हाँ' अतर्हित है.'[८६] 'मर्ज बढता गया ज्यो–ज्यो दवा की '[८७] 'जो मरने पर तुला बैठा हो वह आसानी से मर नहीं सकता.[८८]

विद्यावाचस्पति जी ने अपनी रचनाओ में यत्र–तत्र अनुप्रास व शब्दानुवृत्ति द्वारा भी अपनी भाषा को अलकृत किया है जैसे, 'ऑरेटरो को सफलता के लिए ऐसा जन–समूह चाहिये कि जिसमे अज्ञ, अल्पज्ञ, और बहुज्ञ सब प्रकार के श्रोता हो '[८९] 'भगवान् की हृदयहारिणी रचना पर मोहित हो

रहा था '[९०] 'शाहजादा मदिरा और मोहिनी मे मदमस्त होकर अपने सर्वनाश के मार्ग को निष्कटक बना रहा था '[९१] भारत की राजनीति मे युग बदल गया है गति के स्थान पर स्थिति आ गई है, परन्तु मेरी सम्मति मे मौलाना की परिस्थिति में कोई भेद नहीं आया'[९२] (वृत्यानुप्रास) चिन्ताहारिणी विनाशकारिणी सुरादेवी का एक और प्याला गले के नीचे उतारा गया[९३] (छेकानुप्रास) 'यह सफेद झूठ है, यह काला झूठ है यह कोरा झूठ है[९४] 'हम अपने रखे हुए फल को सूर्य की रोशनी मे देख सकते हैं, बिजली की रोशनी मे भी देख सकते हैं, गैस की रोशनी मे भी देख सकते हैं, और दीपक की रोशनी मे भी देख सकते हैं दिखानेवाली वस्तु भिन्न हो सकती है, परन्तु वस्तु एक ही रहेगी [९५] प जवाहरलाल नेहरू जिनका जीवन चरित्र आनद भवन मे अकुरित हुआ और हैरो तथा कैम्ब्रिज मे मुकुलित हुआ वह गाधीजी के सत्याग्रह और अग्रेजी सरकार के कारागारो के जलवायु मे पलकर विकसित हुआ [९६] 'इस परिवर्तनशील ससार मे यदि कोई नहीं बदले तो मौलाना अबुल कलाम आजाद, उनकी टोपी का रग नही बदला, दाढी का कट नहीं बदला, बोलने का ढग नहीं बदला और दो–चार हिन्दी शब्दो के आ जाने पर भी भाषा नहीं बदली'[९७] (शब्दानुवृत्ति)

पश्चिमी साहित्य के प्रभाव से हिन्दी मे जिन नवीन अलकारो का समावेश हुआ है, उनमे मानवीकरण अलकार का उल्लेखनीय स्थान है डॉ चन्द्रभानु सोनवणे के अनुसार 'मानवीकरण मे अचेतन को मानव गुणो से युक्त सचेतन रूप मे वर्णित किया जाता है'[९८] विद्यावाचस्पति जी ने भी मानवीकरण अलकार का पयोग करके गद्य मे और भी अधिक चमत्कार की सृष्टि की है जैसे 'टन्–टन्–टन् की उस गभीर ध्वनि ने अधेरी रात की नींद को भी तोड दिया रात मानो जाग उठी और जेल के अहाते मे ॲगडाइयॉ लेने लगीं'[९९] 'पहले सर्दी ने चुपके–चुपके चोर की तरह रात की अधियारी मे प्रवेश किया, फिर पैर जमता देखकर दिन को भी दबोच लिया.'[१००] बच्चो को स्वय जेल मे भेजने वाले उस वृद्ध महानुभाव (स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी) को ग्लानि रह–रहकर सताती थी '[१०१] 'जिस किस्मत ने अब तक उनका साथ दिया था, उसने अब धोखा देने की ठानी',[१०२] 'उस (रानी लक्ष्मीबाई) के शरीर मे जो रक्त बहता था वह हारने से मरने को अधिक प्यार करता था' [१०३] इस प्रकार स्पष्ट है कि विद्यावाचस्पति जी ने आलकारिक शैली मे भी अपने भावो और विचारो की रमणीय अभिव्यजना की है उपरोक्त रूपक, मानवीकरण आदि विविध अलकारो के प्रयोग ने आपकी भाषा को अधिकाधिक, कलात्मक, चमत्कारपूर्ण एव वाग्वैदग्ध्यपूर्ण बना दिया है

११.७ रचना शैलीगत वैविध्यः-

श्री विद्यावाचस्पति की कृतियो का मूल्याकन करने पर सुविदित होता है कि उन्होने अपनी रचनाओ मे भाषा शैली के प्राय सभी उपादनो का प्रयोग किया है. भाषा शैली के प्रमुख दो भेद है– व्यास शैली और समास शैली विद्यावाचस्पतिजी ने प्रधान रूप से व्यास शैली और गौण रूप से समास शैली का प्रयोग किया है व्यास शैली को प्रसाद शैली और समास शैली को सक्षिप्तीकरण शैली भी कहा जा सकता है

व्यास शैली- इस भाषा मे सरल वाक्य और मुख्यार्थ की प्रधानता होती है विद्यावाचस्पतिजी ने भी अपने कथ्य को सरल और स्पष्ट ढग से प्रस्तुत किया है सबद्ध विषय की व्याख्या उन्होने बडे ही प्रभावशाली ढग से की है व्यास शैली की विशेषता प्राय उनके लेखन मे यत्र–तत्र सर्वत्र दिखलाई देती है अपने लेखन मे उन्होने बडे ही सतुलित ढग से सर्वाधिक रूप मे इसी व्यास शैली को अपनाया है यहॉ उदाहरण के रूप मे 'क्रान्ति' विषय से सम्बद्ध एक उद्धरण प्रस्तुत है, 'व्यक्ति या जाति के विकास को रोकने वाले आन्तरिक या बाह्य रोगो को दूर करने के लिए वैसे ही साधनो को प्रयोग मे लाना पडता है, जैसे साधन व्यक्ति के सबध मे प्रयुक्त किये जाते हैं व्यक्ति के शरीर मे रोग निवृत्ति के लिए प्रयुक्त किये गये बलिष्ठ साधनो का नाम चिकित्सा है जाति के

शरीर से रोग को दूर करने के लिए जिन प्रबल उपायों का प्रयोग किया जाता है, उन्हे क्रान्ति कहते हैं शरीर की चिकित्सा का सामान्य नियम यही है कि सर्वप्रथम उद्योग तो यह किया जाय कि कोई रोग पैदा न हो यदि कोई रोग पैदा हो ही जाय, तो दूसरा उद्योग यह होगा कि उसे सरल उपायो से दूर किया जाय, परन्तु यदि रोग अधिक बलवान हो और सरल उपायो से वश मे न आये, तो ऐसा उपाय काम मे लाना पडता है जो शरीर के ढाचे मे उथल–पुथल पैदा कर देता है अन्दर के विकार के लिए जुलाब देना पडता है, जिसे हम मनुष्य के अग पाचन सबधी अगो मे क्रान्ति पैदा करने के सिवा कुछ नहीं कह सकते बडे फोडे को चीरना पडता है वह भी क्रान्ति ही है विकास के मार्ग को रोकने वाले कारणो को दूर करने के लिए (व्यक्ति या जाति के) शरीर मे एकदम पूरा परिवर्तन का नाम क्रान्ति है'[१०४]

समास शैली- भाषा शैली का दूसरा प्रमुख प्रकार समास शैली है विद्यावाचस्पति जी की समास शैली के दो रूप उपलब्ध होते हैं– १– तत्सम–शब्दावली से युक्त वाक्य तथा २– सूत्रात्मक वाक्य तत्सम शब्दावली से युक्त वाक्यो के कतिपय उद्धरण द्रष्टव्य हैं, 'साहित्योद्यान का सबसे उज्ज्वल और चमत्कारी पुष्प तो स्वय कालिदास ही था'[१०५] 'बुद्धोत्तरकालीन भारतीय सस्कृति कई अशो मे आर्य–सस्कृति से भिन्न थी'[१०६] 'राष्ट्र आधार है, राज्य आधेय है जहॉ दोनो की अनुकूलता से आधाराधेय–भाव विद्यमान है, वहॉ शक्ति और उन्नति की सहायक परिस्थिति विद्यमान है'[१०७] 'अग्रेजो की महती सेना साधन–सम्बल–युक्त और सुनियन्त्रित थी'[१०८] 'वे (घटनाये) स्वाधीनता–प्राप्त्यर्थ सत्याग्रह–सग्राम–रूपी श्रृखला की ही भिन्न कडियॉ थीं'[१०९] आदि वस्तुत विद्यावाचस्पतिजी सरल भाषा के पक्षधर थे इसलिए उन्होने भाषा के सरलीकरण हेतु यह सुझाव दिया था कि –यथासम्भव समस्ताना शब्दाना प्रयोग त्याज्य[११०] अर्थात् 'यथासभव सामासिक शब्दो का परित्याग कर देना चाहिये,' इसलिए उनकी शब्दावली सस्कृत के तत्सम शब्दो से ओत–प्रोत होते हुए भी दीर्घ समासयुक्त शब्दावली नहीं है वह सस्कृत के जटिल समासो के घने वन को छोडकर समास रहित हरे–भरे समतल स्थल पर विचरण करती है

सूत्रात्मक वाक्यः- श्री विद्यावाचस्पति यत्र–तत्र कथ्य को कम से कम शब्दो मे आचार्य रामचन्द्र शुक्लवत् सूत्र रूप मे भी प्रस्तुत करते हैं. शुक्ल जी प्राय रचना के प्रारभ मे सूत्र रूप मे लघु सक्षिप्त वाक्य कहकर उसकी व्याख्या और विश्लेषण करते हैं और अन्त मे निष्कर्ष सूत्र देते हैं परन्तु विद्यावाचस्पति जी के ये सूत्रात्मक वाक्य उनके गद्य मे कहीं प्रारभ मे तो कहीं रचना के मध्य या अन्त मे भी मिलते हैं प्रस्तुत सूत्रात्मक उद्धरण उनकी समाहार शक्ति के प्रमाण हैं, 'जाति के विद्या और आचरण का स्तर पहचानना हो तो यह देखना पर्याप्त है कि उस जाति के सर्वसम्मान्य और सुशिक्षित लोग किन व्यक्तियो का आदर करते हैं'[१११] 'सरकारी कमीशन समस्या की अग्नि को शान्त करने का पानी है (रचना के प्रारभ मे)[११२] 'जब एक राज्य का शासक दूसरे राज्य पर बल से या धोखे से अधिकार जमा लेता है तब साम्राज्य की उत्पत्ति होती है'[११३] 'विचारो की स्वाधीनता सब प्रकार की स्वाधीनताओ की जननी है' (रचना के मध्य मे)[११४] 'जो मनुष्य सत्य, तप, सम्यग्ज्ञान और ब्रह्मचर्य इन चार अध्यात्म योग के अगो को सिद्ध कर लेता है, वह घट–घट मे विद्यमान ब्रह्म को जानकर आनन्द को प्राप्त कर लेता है',[११५] 'राज्यो और राजवशो के भवन तपस्या, सेवाभाव और वीरता की नींव पर खडे होते हैं और प्रमाद, लम्पटता और कायरता के आघातो से जर्जरित होकर नष्ट हो जाते हैं' (रचना के अत मे)[११६]

श्री विद्यावाचस्पति समास शैली का दूसरा रूप उनकी वाक्य रचना मे पाया जाता है, जहॉ वे विषय वस्तु को प्रभावशाली ढग से कम से कम शब्दो में अकित करते हैं राष्ट्र के स्वरूप और उसकी सस्कृति पर प्रकाश डालते हुए उन्होने लिखा है– 'राष्ट्र एक भवन है, धर्म और इतिहास

की परंपरा, साहित्य और रीति–रिवाज उसकी नींव है, जाति उसकी दीवारें हैं, और राज्य उसकी छत है, जो मानवीय और प्राकृतिक आपत्तियो से उसकी रक्षा करती है राष्ट्र की बुनियाद जिन चीजों से भरी जाती है, उनका सम्मिलित नाम सस्कृति है धर्म और इतिहास, साहित्य और रीति–रिवाज इन तथा ऐसी ही और मौलिक वस्तुओ के समुच्चय का नाम सस्कृति है'[११७] रूस का दृष्टात देकर धर्मनिरपेक्ष राज्य मे धर्म की अनावश्यकता प्रतिपादित करने वालो पर टिप्पणी करते हुए भी विद्यावाचस्पति जी ने उपरोक्त समास शैली को अपनाया है– 'ध्यान मे रखना चाहिये कि इस समय बोल्शेविज्म ही रूस का धर्म है, लेनिन उस धर्म का मसीहा है और स्टालिन उसका खलीफा है, आज रूस पहले दर्जे की मजहबी हुकूमत है, जिसमे वे लोग काफिर समझे जाते हैं, जो बोल्शेविज्म को स्वीकार न करे इस मजहब का कुरान–शरीफ, कार्ल मार्क्स के लेख हैं और काजी, बोल्शेविज्म के प्रोफेसर है रूस की वर्तमान हुकूमत पोप या सुल्तान के राज्य से किसी भी तरह कम धर्मान्ध नहीं''[११८]

समालोचना शैली:- श्री विद्यावाचस्पति ने पाखण्डपूर्ण राजनीतिक–सामाजिक जीवन की आलोचना के साथ–साथ पुस्तको, कवियों की भी आलोचना की है 'सेवा–सदन' उपन्यास की आलोचना करते हुए आपने लिखा है– 'प्रेमचन्द की ओर हिन्दी जगत् का ध्यान विशेष रूप से तब आकृष्ट हुआ, जब आपका 'सेवा–सदन' नाम का उपन्यास प्रकाशित हुआ आज पढे तो 'सेवा–सदन' मे कोई विशेष बात दिखाई नहीं देती, परन्तु जिस समय 'सेवा–सदन' प्रकाशित हुआ, उस समय उसमे एक अनूठापन था गगा से नहरें तो कई शिल्पियो ने निकाली हैं, परन्तु उसके साथ नाम भगीरथ का ही जुडा हुआ है हिन्दी के उपन्यास, लीक पर पडी हुई बैलगाडी की तरह चर–चर करते हुए धीरे–धीरे चले जा रहे थे 'सेवा–सदन' ने उन्हे एक ऐसा रास्ता दिखाया जो सामयिक था और मौलिक भी यही कारण है कि प्रेमचन्द जी आधुनिक हिन्दी उपन्यासो के जन्मदाता कहे जाते हैं'[११९] इसी प्रकार कवीन्द्र रवीन्द्र की 'जहॉं न पहुँचे रवि तहॉं पहुँचे कवि' की दूरदृष्टि पर आलोचनात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए विद्यावाचस्पतिजी ने कहा है– 'ज्यो–ज्यो कविवर पश्चिम के सम्पर्क मे आते गये, त्यों–त्यो वहॉं की बढती हुई ऐय्याशी और घातक प्रवृत्तियो को देखकर उनके मन मे ग्लानि–सी उत्पन्न होती गई उन्हे अनुभव होने लगा कि यूरोप के चमकते हुए पर्दे के पीछे सर्वनाश की सामग्री तैयार हो रही है, इस भावना को उन्होने अपनी 'दी ट्रम्पैट' शीर्षक कविता मे प्रकाशित भी किया उस समय यूरोप का पहला युद्ध आरभ नहीं हुआ था अपनी कविता मे कवि ने यूरोप के सबध मे जो आशका प्रकट की थी, वह एक प्रकार से भविष्यवाणी ही सिद्ध हुई उसके थोडे ही समय के पश्चात् यूरोप का पहला महायुद्ध आरभ हो गया जिन लोगो ने कवि की नई कविताए पढी थीं, उन लोगो को विश्वास हो गया कि रवीन्द्रनाथ मे सच्चे कवि का यह गुण विद्यमान है कि वह समय की दीवारो को तोडकर भूत, वर्तमान और भविष्य को देख सके'[१२०]

प्रश्नोत्तर शैली:- समालोचक शैली के अतिरिक्त श्री विद्यावाचस्पति ने वार्तालाप से युक्त प्रश्नोत्तर शैली का अपनी अनेक रचनाओ मे सफलता के साथ उपयोग किया है और इस प्रकार से उन्होने जाने–अनजाने भारतेन्दु–द्विवेदी युगीन प्रश्नोत्तर शैली को यथासंभव पुष्ट ही किया है 'लोकमान्य तिलक', 'मोतीलाल नेहरू', 'मैं क्या न कर सका' इत्यादि सस्मरणात्मक रचनाओ तथा 'एक आदर्श कर्मयोगी', 'विश्वसाहित्य मे सत्यार्थप्रकाश का स्थान', 'स्वामी श्रद्धानद का शिक्षा सबधी ध्येय' आदि लेखो का प्रारभ ही उन्होने प्रश्नोत्तर शैली में किया है, गाधी युग के वक्ताओ मे सर्वप्रथम स्थान प मोतीलाल नेहरू का अकित करते हुए वे लिखते हैं– 'मुझसे यदि पूछा जाय कि महात्मा गाधी की सबसे बडी जीत कौन–सी थी, तो मैं यह उत्तर दूँगा कि महात्मा जी ने प. मोतीलाल जी को अपना अनुयायी और मित्र बना लिया, यह उनकी सबसे बड़ी जीत थी वह जीत

उन अनेक बडी–बडी विजयो का प्रारभ था, जो आगामी वर्षों मे महात्मा जी को प्राप्त हुई.[१२१] विद्यावाचस्पति जी की रचना शैली की अन्य आठ शैलियाँ इस प्रकार हैं– भावात्मक शैली, व्यग्यात्मक शैली, चित्रात्मक शैली, विश्लेषणात्मक शैली, वर्णनात्मक शैली, गवेषणात्मक शैली, व्याख्यात्मक शैली और उद्धरण शैली इनमे से प्रथम पाच शैलियों का विवेचन–वर्णन प्रस्तुत शोध ग्रन्थ के तृतीय और छटे परिच्छेद मे किया जा चुका है अत पिष्टपेषण और पुनरूक्ति से बचते हुए हम शेष तीन गवेषणात्मक, व्याख्यात्मक और उद्धरण शैली का ही यहाँ पर विवेचन करेगे

गवेषणात्मक शैली:- श्री विद्यावाचस्पति इतिहास और पुरातत्व प्रेमी थे उनके द्वारा विरचित 'सस्कृत साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन', 'आर्यसमाज का इतिहास', 'मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण', 'भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य का उदय', 'भारतीय स्वाधीनता सग्राम का इतिहास', 'भारतीय सस्कृति का प्रवाह', 'स्वतत्र भारत की रूपरेखा' इत्यादि ग्रन्थो तथा 'कण्वाश्रम का स्मारक', 'रामराज्य की अमर भावना' इत्यादि लेखो तथा अनुवादित रचना 'किरातार्जुनीय' और 'रघुवश' की प्रस्तावना मे स्थान–स्थान पर उनकी गवेषणात्मक शैली का परिचय मिलता है जैसे, 'अन्य किसी पुष्ट कल्पना के अभाव मे, मैंने यही स्वीकार कर लिया है कि अब से २०१३ वर्ष पूर्व, विक्रमादित्य नाम का एक प्रतापी सम्राट् भारत मे राज्य करता था उसने विदेशी आक्रमणकारियो पर विजय प्राप्त करके स्मारक रूप मे विक्रमी सवत् की स्थापना की थी', 'वह विक्रमादित्य किस शताब्दी का विक्रमादित्य था? उसका नाम केवल विक्रमादित्य था अथवा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य अथवा कुमारगुप्त विक्रमादित्य था? इन प्रश्नो की उलझन मे न पडकर भी इतिहास का विद्यार्थी इस परिणाम पर पहुँच सकता है कि 'रघुवश' के निर्माता महाकवि कालिदास ने अपना काव्य जिस समय लिखा, उस समय भारत पर विक्रमादित्य पदवीधारी एक प्रतापी राजा राज्य करता था'[१२२] 'कालिदास के ग्रथो को पढिए तो आप उस समय के भावो की झलक ज्ञानचक्षुओ से देख सकते हैं आप 'रघुवश' से उस समय की राजनीतिक भावनाओ, 'कुमारसभव' से धार्मिक विचारो और 'मेघदूत' से सामाजिक तथा भौगोलिक परिस्थितियो का एक स्पष्ट चित्र खींच सकते हैं तीनो काव्य मुख्य रूप से उस काल के राजाओ, राज–परिवारो और राजमहलो की अवस्थाओ का प्रदर्शन करने के अतिरिक्त प्रसगवश थोडा–बहुत जनता के जीवन को भी चित्रित करते हैं'[१२३]

व्याख्यात्मक शैली:- इतिहास और पुरातत्व प्रेमी होने के अतिरिक्त विद्यावाचस्पति जी सफल पत्रकार और यशस्वी उपाध्याय भी थे अत उनकी शैली मे पत्रकार और उपाध्याय की प्रवृत्ति के अनुरूप व्याख्यावृत्ति का मिलना स्वाभाविक है उन्होने भाव शैली की विभिन्न प्रकारो मे से व्याख्यात्मक शैली को विशेष रूप से अपनाया है वैचारिक सूत्र प्रस्तुत करने के साथ ही प्राय वे व्याख्यात्मक शैली को भी अपनाते हैं जैसे– 'मानसिक दासता अन्य सब प्रकार की दासताओ की माता है जब इजिन बिगड गया तो गाडी क्या चलेगी? उस समय ड्राइवर भी अशक्त हो जाता है. मन के अपाहिज हो जाने पर आत्मा जड से भी बदत्तर हो जाती है जड स्वय अपना नाश नहीं कर सकता, दासता की बेडियो मे जकडा हुआ मन अपना और अपने मालिक का भी नाश कर देता है. सब प्रकार की गुलामी मन की गुलामी का परिणाम है, और मनुष्य के फैलायें हुए चित्र के रूप मे ईश्वर, पैगम्बर, किताब, पुरोहित और रूढियॉ मन को कैदी बनाने के लिए लोहे के सलाखों और तालो का काम देते हैं इस कारण वर्तमान रूप मे धर्म मानसिक दासता का सबसे बडा मित्र और इसीलिए मनुष्य जाति की उन्नति का सबसे बडा शत्रु है'[१२४]

उद्धरण शैली:- विद्यावाचस्पति प्राच्य वैदिक वाड्मय व अर्वाचीन सस्कृत वाङ्मय के मर्मज्ञ विद्वान थे अत स्वाभाविक रूप से वेद, उपनिषद्, गीता, मनुस्मृति तथा कालिदास, भर्तृहरि, मल्लिनाथ, जगन्नाथ आदि सस्कृत कवियो के उद्धरण उनके साहित्य मे यत्र–तत्र प्राप्त होते हैं सस्कृत के

अतिरिक्त उन्होने हिन्दी व अग्रेजी साहित्य के भी उद्धरण उद्धृत किये हैं, परन्तु अधिकाधिक सस्कृत के उद्धरण उद्धृत करने की ओर ही उनकी प्रवृत्ति रही है डॉ चन्द्रभानु सोनवणे की दृष्टि मे 'उद्धरणो को उद्धृत करने की पृष्ठभूमि मे आप्त प्रामाण्य का भाव भी विद्यमान रहता है'[१२४] विद्यावाचस्पति जी ने सस्कृत उद्धरण अनेक प्रकार से समुद्धृत किये हैं, जिनमे से प्रथम प्रकार स्वतन्त्र वाक्य या वाक्य समूह के रूप मे उद्धरण उद्धृत करने का है जैसे, 'एक वीर खुले मैदान मे आने वाले सौ आक्रमणकारियो से लड सकता है एक शत बोधयति प्राकारस्थो धनुर्धर',[१२६] 'पुरोहित कुल मे जन्म लेकर ठग और बदमाश भी पुरोहित ही रहते हैं। जो अधिकार जन्म से ही मिल जाय उसके लिए परिश्रम कौन करे? अकैचेन्मधु विन्देत किमर्थ पर्वत व्रजेत्'[१२७] विद्यावाचस्पति जी का उद्धरण उद्धृत करने का दूसरा प्रकार वाक्यागभूत उद्धरणो का है पृथक् स्वतन्त्र वाक्य या वाक्य समूह के रूप मे दिये गये उद्धरण की अपेक्षा वाक्याग रूप मे दिये गए उद्धरण अधिक कलात्मक माने गये हैं', जैसे, 'लोकमान्य तिलक ने 'प्रारब्ध उत्तमजना न परित्यजन्ति' की नीति का पालन करते हुए अभियोग लडने का ही निश्चय दृढ रक्खा,'[१२८] 'महात्मा जी के सरल और भावपूर्ण शब्दो का श्रोताओ पर इतना प्रभाव पडता था कि शब्द–जाल की कोई गुजाइश ही नहीं रहती थी बडे–बडे ऑरेटर, जो इससे पूर्व श्रोताओ को मन्त्र–मुग्ध कर लिया करते थे, वे अपने–आपको महात्मा (गाधी) जी की उपस्थिति मे 'भोगीव मन्त्रौषधिरुद्धवीर्य' अनुभव करते थे प्रतीत होता था, मानो उनकी शक्ति मन्त्रौषधि के बल से रोक दी गई'[१२९] विद्यावाचस्पति जी का उद्धरण उद्धृत करने का तीसरा प्रकार अर्थ सहित उद्धरण उद्धृत करने का है जैसे, 'पथ्ये सति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणै' इसके दो अर्थ हैं– यदि पथ्य भोजन लिया जाय तो रोगी को दवा की आवश्यकता ही क्या? और यदि पथ्य भोजन न किया जाय तो दवा खाने से लाभ ही क्या?',[१३०] 'मुनीनाच मतिर्भ्रम. अर्थात् कभी–कभी मुनि लोगो की बुद्धि भी काम के बोझो से डावाडोल हो जाती है,'[१३१] श्री विद्यावाचस्पति का उद्धरण उद्धृत करने का चौथा प्रकार परिच्छेद या रचना के प्रारभ मे कोई आप्त वाक्य या उक्ति उद्धृत करने का है, जिससे उस रचना या परिच्छेद का केन्द्रीय आशय भी स्पष्ट हो जाय जैसे, 'वीर भोग्या वसुन्धरा' केवल वीर ही पृथ्वी पर शासन करते हैं',[१३२] 'यशसा ३ स्या ससदोऽह प्रवदिता स्याम्' –मैं इस ससद् का यशस्वी वक्ता बनू,'[१३३] 'अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्य न पलायनम्'[१३४] अर्थात कुरूक्षेत्र मे अर्जुन की (कर्तव्य क्षेत्र मे 'अर्जुन' पत्र की) दो प्रतिज्ञाये हैं, न तो दीनता प्रकट करूगा और न ही पलायन करूगा 'न ह्यर्थ विना स्वप्नेऽपि चेष्टते चाणक्य– चाणक्य मतलब के बिना स्वप्न मे भी नही हिलता'[१३५] विद्यावाचस्पति जी का उद्धरण प्रस्तुत करने का पाचवा प्रकार वह है जिसमे मूल उद्धरण न देकर उसका अर्थ मात्र या आशय मात्र दिया जाता है जैसे, 'लडकिया पराया धन हैं'[१३६] यह उद्धरण अपने मूल सस्कृत रूप में इस प्रकार है– 'अर्थो हि कन्या परकीय एव'

इस प्रकार स्पष्ट है कि विद्यावाचस्पति जी की भाषा–शैली इतनी रोचक व सरस है कि विषय को आत्मसात् करने मे पाठक को किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती उसमे सूक्तियो की शोभा है, उक्तिवैचित्र्यपूर्ण लाक्षणिक लोकोक्तियो एव मुहावरो का चमत्कार है, अलकारो की अद्भुत छ्टा है, तत्सम शब्दावली के अतिरिक्त यथास्थान लोक प्रचलित अरबी–फारसी व अग्रेजी शब्द–सपदा का पर्याप्त प्रयोग है, ओज–प्रसाद आदि गुणों की विलक्षण कान्ति है, प्रधानतया व्यास शैली का प्रयोग हुआ है, पुनरपि कही–कहीं समास शैली के भी दर्शन होते है, तर्कप्रधान विश्लेषणात्मकता, उद्बोधनप्रियता या उपदेशात्मकता, उद्रण बहुलता व चित्रात्मकता इत्यादि से उन्हे इतना अधिक लगाव रहा है कि प्राय ये शैलिया उनकी तूलिका की चिरसगिनी बनकर रहीं हैं व्याकरण सबधी कतिपय दोषो के बावजूद भी उनकी भाषा–शैली प्रौढ, प्राजल व चित्ताकर्षक है पाण्डित्यपूर्ण

विषय–सामग्री और मौलिक चिन्तन के बावजूद भी पाण्डित्य प्रदर्शन की अथवा पाठको को आतंकित करने की तृणमात्र भी उनमे भावना नहीं है भाषा की सहजता, सरलता एव स्वाभाविकता की उन्होने सर्वत्र रक्षा की है, नि सदेह उनकी अकृत्रिम प्राजल एव प्रवाहमयी शैली ने यथासामर्थ्य तत्युगीन हिन्दी साहित्योद्यान को पल्लवित–पुष्पित एव सुरभित किया है

संदर्भ

१ चेतना का सस्कार–४२
२ हिन्दी साहित्य का इतिहास–४०६
३ हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास त्रयोदश भाग–४१
४ हिन्दी गद्य साहित्य–७७
५ गणेश शकर विद्यार्थी–१६२
६ भारतीय सस्कृति का प्रवाह–१५५
७ भारतीय स्वाधीनता सग्राम का इतिहास–१७४
८ भारतीय सस्कृति का प्रवाह–१६६
६ स्वतन्त्र भारत की रूपरेखा–६
१० अध्यात्म रोगो की चिकित्सा–छह
११ पत्रकारिता के अनुभव–११–१२
१२ इन्द्र विद्यावाचस्पति–१६
१३ साप्ताहिक हिन्दुस्तान–२६ फरवरी १६६१
१४ तत्रैव–३० अगस्त १६६४
१५ सघिनी–१४
१६ हिन्दी गद्य साहित्य–२८४
१७ रघुवश भूमिका–१०
१८ किरातार्जुनीय प्रस्तावना–११
१६ रघुवश भूमिका–१०
२०. लोकमान्य तिलक और उनका युग–२
२१. महावीर गेरीवाल्डी–५३
२२. अध्यात्म रोगो की चिकित्सा–१५५
२३. सार्वदेशिक जून १६५७–१८२
२४. महावीर गेरीवाल्डी–२४
२५ गुरुकुल कागडी के साठ वर्ष–६१
२६. मेरे नौकरशाही जेल के अनुभव–१६
२७ जीवन ज्योति–१७६
२८ सरला–१२७
२६. तत्रैव–१८२
३०. पदमाकर–पचामृत–१०२
३१ साहित्य शास्त्र–१८६
३२ भारतीय स्वाधीनता सग्राम का इतिहास–१३५
३३ आर्य सन्देश ४ सितबर १६६४ –स्व श्री स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी–८
३४ साप्ताहिक हिन्दुस्तान १७ अप्रैल १६६०–लेख–उन्होने (आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने) जो कुछ लिखा उसमे फौलाद भर दिया–७
३५ धर्मयुग १० अगस्त १६५८ . रेखाचित्र–रोजी
३६ वासुदेवशारण अग्रवाल व्यक्तित्व एव कृतित्व–२८५
३७ मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण भाग–१–५५
३८. अर्जुन ३० जनवरी १६४६
३६ मैं चिकित्सा के चक्रव्यूह से कैसे निकला–११
४० गुरुकुल कागडी के साठ वर्ष–६०
४१ आत्म बलिदान–१२
४२. भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य का उदय–१३५
४३ अपराधी कौन–८६
४४ जमींदार–१२५
४५. भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य का उदय–२३५
४६ लोकमान्य तिलक और उनका युग–५६
४७ मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण–१३७
४८. शाह आलम की आँखें–३६
४६. मूल सस्कृत लोकोक्ति है– 'सदीप्ते भवने तु कूप खनन प्रत्युद्यम कीदृश '– मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण भाग–४–११२
५०. मूल संस्कृत उक्ति है– छिद्रेष्वनर्था. बहुली भवन्ति–तत्रैव–भाग–२–१८३
५१. महावीर गेरीवाल्डी–३१
५२ मैं चिकित्सा के चक्रव्यूह से कैसे निकला–१

५३ अध्यात्म रोगो की चिकित्सा–१६५

५४ आधुनिक भारत मे वक्तृत्व कला की प्रगति–७४

५५ हिन्दी आन्दोलन हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग १६६४ लेख–हिन्दी के प्रति–४०

५६ साहित्य निबन्धावली–३१

५७ साहित्य शास्त्र–१६३

५८ साहित्य शास्त्र–२२३

५६ साहित्य शास्त्र–११८–१६

६० पत्रकारिता के अनुभव–११–१२

६१ सार्वदेशिक अप्रैल १६५७ लेख–महर्षि दयानन्द की बोधरात्रि–७२

६२ आधुनिक भारत मे वक्तृत्व कला की प्रगति–३२

६३ स्वतन्त्र भारत की रूपरेखा–६७

६४ तत्रैव–४२

६५ सार्वदेशिक फरवरी १६५५ लेख–मै क्या न कर सका–६५२

६६ आधुनिक भारत मे वक्तृत्व कला की प्रगति–२६

६७ विशाल भारत अक्टूबर १६३३–लेख–साम्राज्यवाद–३८५

६८ जीवन ज्योति–८०

६६ तत्रैव–६६

७० आधुनिक भारत मे वक्तृत्व कला की प्रगति–५

७१ तत्रैव–५

७२ तत्रैव–११

७३. तत्रैव–४५

७४ मैं चिकित्सा के चक्रव्यूह से कैसे निकला–१०

७५ मेरे नौकरशाही जेल के अनुभव–६२

७६ वीर अर्जुन ६ मार्च १६४६ लेख–तूफान का पूर्वरूप

७७ मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण–२३६

७८ सरला की भाभी–६०

७६ शाह आलम की ऑखे–१५०

८० सार्वदेशिक अगस्त १६४८– लेख–राष्ट्रभाषा की हत्या–४८

८१ आधुनिक भारत मे वक्तृत्व कला की प्रगति–७५

८२ मेरे नौकरशाही जेल के अनुभव–६७

८३ मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण, भाग–२–२०५

८४ सरला की भाभी–१४८

८५ मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण भाग १–७७

८६ सरला–१३६

८७ आत्म बलिदान–११३

८८ मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण, भाग–२–२५२

८६ आधुनिक भारत मे वक्तृत्व कला की प्रगति–१३

६० शाह आलम की ऑखे–५

६१ मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण, भाग–२–३२८

६२ आधुनिक भारत मे वक्तृत्व कला की प्रगति–६२

६३ शाह आलम की ऑखे–१५७

६४ आत्म बलिदान–१२२

६५ आर्य जगत् १४ फरवरी १६८० लेख– धर्म क्या है और अधर्म क्या है?–३६

६६ जीवन–ज्योति–१८६

६७ आधुनिक भारत मे वक्तृत्व कला की प्रगति–६२

६८ साहित्य शास्त्र–१६८

६६ अपराधी कौन–२४६

५०० शाह आलम की ऑखे–६३

१०१. आर्य सन्देश ४ सितबर १६६४ लेख–श्री स्वामी स्वतत्रानन्दजी–१०

१०२ अपराधी कौन–२४६

१०३ भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य का उदय–३४८

१०४ विशाल भारत दिसबर १६३१ लेख–क्रान्ति–६६७

१०५ रघुवश भूमिका–८

१०६ स्वतत्र भारत की रूपरेखा–३५

१०७ विशाल भारत अक्टूबर १६३३ लेख–साम्राज्यवाद–३८०

१०८ जीवन–ज्योति–१२३

१०६ तत्रैव–१६०

११० गुरुकुल पत्रिका अप्रैल १६६२–३०३

१११ सार्वदेशिक अक्टूबर १६५६–लेख–श्री महाराणा प्रताप का स्मारक–३६६

११२ सार्वदेशिक अप्रैल १६५७ लेख–सरकार का सस्कृत आयोग–६३

११३ विशाल भारत अक्टूबर १६३३ लेख–साम्राज्यवाद–३८१

११४ सार्वदेशिक अप्रैल १६५७ लेख–महर्षि दयानद की बोधरात्रि–७१

११५ सार्वदेशिक जून १६५७ लेख–उपनिषदो का अध्यात्म योग–१८३

११६ रघुवश भूमिका–१५

११७ स्वतत्र भारत की रूपरेखा–३२

११८ तत्रैव–३०

११६ जीवन–ज्योति–८२

१२० तत्रैव–६५

१२१ आधुनिक भारत मे वक्तृत्व कला की प्रगति–३६

१२२ रघुवश भूमिका–६–७, १५

१२३ तत्रैव–७–८

१२४ विशाल भारत सितबर १६३२, लेख–धर्म क्या है और क्या नहीं?–२६६

१२५ हिन्दी गद्य साहित्य–२७८

१२६ प्रिस बिस्मार्क–३६

१२७ विशाल भारत सितबर १६३२–२६८

१२८ लोकमान्य तिलक और उनका युग–२०३

१२६ आधुनिक भारत मे वक्तृत्व कला की प्रगति–३४

१३० अध्यात्म रोगो की चिकित्सा–६२

१३१ तत्रैव–८६

१३२ 'स्वतत्र भारत की रूपरेखा' के प्रारभ मे

१३३ 'आधुनिक भारत मे वक्तृत्व कला की प्रगति' के प्रारभ मे 'सामवेद', पू ६ ३ १० से उद्धृत

१३४ 'अर्जुन' 'वीर अर्जुन' दैनिक पर नियमित रूप से प्रकाशित होने वाला आदर्श वाक्य

१३५ 'महावीर गेरीवाल्डी'– दूसरे परिच्छेद– 'राजनीति के दावपेच' के प्रारभ मे–१४२

१३६ मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण, भाग–२–२८४

१२

उपसंहार : विद्यावाचस्पति जी की हिन्दी साहित्य को देन

प्रस्तुत प्रबध के विगत अध्यायो मे किये गए अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति की साहित्य क्षेत्रीय उपलब्धियॉ अनेक दृष्टियो से महत्वपूर्ण है, उन्होने सस्मरण, जीवनी, इतिहास, पत्रकारिता, निबध आदि क्षेत्रो मे अपना अविस्मरणीय योगदान दिया है, यहॉ हम उनके समग्र साहित्यिक व्यक्तित्व का पुनश्च एक बार विहगावलोकन एव मूल्याकन करेगे

आधुनिक हिन्दी साहित्य जिसका अधिकाश साहित्य राजनीतिक परतन्त्रता मे लिखा गया है, अपनी चिन्तन प्रक्रिया के लिए उन सारी परिस्थितियों का ऋणी है जो मुगल शासन कालीन परिस्थितियो के बाद अँग्रेजी–शासन के फलस्वरुप उत्पन्न हुई थीं, आधुनिक हिन्दी साहित्य की तरह श्री विद्यावाचस्पति के साहित्य पर भी युगीन परिवेश का व्यक्त व अव्यक्त प्रभाव रहा है विद्यावाचस्पति जी के पिताश्री महात्मा मुशीराम तो तत्युगीन परिस्थितियो के दर्शक ही नहीं, अपितु उन परिस्थितियो को मोड देने वाले अग्रणी मार्गदर्शको मे से एक थे, अत पुत्र व शिष्य के रूप मे उनके साथ सहयात्रा करने वाले श्री विद्यावाचस्पति पर सम–समायिक परिस्थितियो का प्रभाव पडना अस्वाभाविक नहीं था नि सदेह आधुनिक युग की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक परिस्थितियो ने उनके साहित्य का स्वरूप स्थिर किया है जिन साहित्यकारो पर युग की चेतना का अधिकतम प्रभाव दिखलाया जा सकता है, उनमे श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति का भी उल्लेखनीय नाम है, केवल उनकी एक मात्र रचना 'मेरे पिता' को भी सामने रखेगे, तो उसमे आप तत्युगीन भारत के सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक जीवन की प्रवृत्तियो, आदोलनो और गतिरोधो का बडा सतुलित विवेचन बडी मनोरम शैली मे अकित पायेगे, तत्युगीन परिस्थितियो मे से उनके सृजनात्मक साहित्य को सर्वाधिक राजनीतिक परिस्थितियो ने प्रभावित किया है प्रधानतया उक्त परिस्थिति की प्रेरणा के कारण ही श्री विद्यावाचस्पति सारस्वत–साधना की भूमि पर एक राष्ट्रीय साहित्यकार के रूप मे उभरे हैं, उनके समस्त साहित्य मे देशभक्ति का ही रस विभिन्न विधाओ का आश्रय लेते हुए विशिष्ट रूप से फला–फूला है, श्री क्षेमचद्र 'सुमन' के अनुसार 'राष्ट्रीय जागरण उनकी लेखनी का पहला लक्ष्य था और इसी की सम्पूर्ति मे वे यावज्जीवन लगे रहे डॉ महावीर के शब्दो मे 'राष्ट्रप्रेम की उदात्त भावना विद्यावाचस्पति जी की प्रत्येक कृति मे, प्रत्येक लेख मे और 'अर्जुन' के प्रत्येक सपादकीय मे दृष्टिगोचर होती है यदि यह कहा जाय कि उनकी साहित्य साधना मे, महाकवि भवभूति का हृदय करुणा मे रमण करता है, वैसे ही प्रो. इन्द्र का मन देशभक्ति की भावना मे रमण करता है. इस प्रकार स्पष्ट है कि सम–सामायिक परिस्थितियो का प्रभाव असदिग्ध रूप से श्री विद्यावाचस्पति के साहित्य पर पडा है, पर तत्युगीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक परिस्थितियो मे से राजनीतिक परिस्थितियों ने उन्हे सर्वाधिक साहित्य–रचना धर्मिता की ओर प्रेरित किया है

विद्यावाचस्पति जी के एकहत्तर वर्षीय जीवन का आधे से अधिक समय सामाजिक–धार्मिक और राजनीतिक आदोलनो मे बीता उनका जीवन एव व्यक्तित्व बहुमुखी था. मौलिक साहित्य सृजन

के साथ–साथ वे हिन्दी प्रचार–प्रसार आदोलन से भी प्रत्यक्ष रूप से जुडे रहे अखिल भारतीय हिन्दी सम्मेलन तथा उसके प्रान्तीय सम्मेलनो से उनका निकटतम सबध था वे अपने पूज्य पिताश्री द्वारा स्थापित गुरुकुल कॉगडी के लिए तो आजीवन समर्पित रहे. डॉ ज्ञानवती दरबार ने स्वीकार किया है 'विद्यावाचस्पति जी ने अपने पिता स्वामी श्रद्धानन्द के पदचिह्नो पर चलकर शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र मे अथक कार्य करके हिन्दी की अमूल्य सेवा की है. '१९४६ मे उन्हे उनकी हिन्दी सेवाओ के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए हिन्दी साहित्य सम्मेलन का 'सभापति' पद प्रस्तुत किया गया था, पर वे उससे विरक्त ही रहे १९४८ मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिकारियो ने उनकी अनन्य हिन्दी निष्ठा के कारण उन्हे डॉ भगवानदास, सेठ गोविददास, श्रीमती महादेवी वर्मा तथा महापण्डित राहुल साकृत्यायन केसाथ 'साहित्य वाचस्पति' की सर्वोच्च उपाधि से समलकृत किया था प्रो राजेन्द्र जिज्ञासु ने टिप्पणी की है 'विद्यावाचस्पति जी की इच्छा शक्ति विलक्षण थी, इसीलिए एक ही फेफडे के होने पर भी वे विदेशी सरकार की कारागार की यातनाये सहन कर पाये थे' श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर के शब्दो मे 'दिल्ली की राजनीतिक वृद्धत्रयी (सर्वश्री इन्द्र विद्यावाचस्पति, बॅरिस्टर आसफ अली और देशबधु गुप्त) मे अपने राजनीतिक ज्ञान, अपनी देश–सेवा समाज सेवा और चरित्र के कारण वे सीनियर थे, पर राजनीति की भागदौड मे वे जूनियर हो गये थे यह इसलिए कि वह धक्का देकर आगे बढने को और किसी के 'हिज मास्टर्स वायस' बनने को अनुचित समझते थे उनमे सत्य, शिव, औचित्य और मर्यादा के पूर्णभाव थे' विद्यावाचस्पति राजनीतिक जीवन के साथ सामाजिक जीवन मे भी सक्रिय रहे गाधी–युग की मशाल के साथ आर्यसमाज की मशाल भी उनके हाथ मे थी आर्यसमाज को सशक्त करने के लिए 'सार्वदेशिक सभा' के अन्तर्गत 'आर्य वीर दल' का गठन भी आपके मन्त्रीत्व काल मे ही हुआ था वे एक साहित्य सेवी, पत्रकार, इतिहासवेत्ता, स्वाधीनता सेनानी और गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय के आधुनिकीकरण के प्रस्तोता थे उनका व्यक्तित्व आज भी देशवासियो मे अपने राष्ट्र एव संस्कृति के प्रति प्रेम और श्रद्धा के उदात्त भावो को जगाने मे सक्षम है कोई भी व्यक्ति उनके बहुमुखी जीवन से 'जीवन–सग्राम' व जीवन–निर्माण' की प्रेरणा ले सकता है बॅरिस्टर विनायकराव विद्यालकार का यह मत सत्य ही है कि 'उन लोगो के लिए प विद्यावाचस्पति जी एक महान वटवृक्ष की तरह थे, जिसकी घनी छाया मे तप्त हृदय सात्वना का आनद पाते थे वह उनके लिए बहती नदी के समान थे जहॉ आकर हर तृषित अपनी प्यास को बुझा सकता था अथवा अनेको के लिए वह दीपक का काम करते थे जिसकी ज्योति मे जीवन रूपी बीहड जगल मे भटके हुए यात्री राजपथ पर लग जाया करते थे यह काम वही कर सकता है, जिसका दिमाग सुलझा हुआ हो, जिसने जीवन मे कठिनाइयो का सामना किया हो, जो अनुभवी हो, जिसके अदर सहृदयता और सहानुभूति का अपरपार भडार हो और जिसकी बुद्धि किसी भी कारण से विचलित न हो'

विद्यावाचस्पति जी ने अपनी बहुमूल्य रचनाओ द्वारा हिन्दी के सस्मरण साहित्य को समृद्ध किया है डॉ विष्णुदत्त राकेश के शब्दो मे 'इतिहास, युगबोध और मानवीय सवेदना के आधार पर उच्चकोटि के सस्मरण लेखक के रूप मे प इन्द्र जी को याद किया जायेगा जहॉ उन्होने स्मरणीय व्यक्ति की बाह्य रूपरेखा को सफलतापूर्वक उकेरा है वहॉ उसके व्यक्तित्व के विधायक दुर्लभ गुणो और विशेषताओ को प्रभावक रूप मे प्रस्तुत किया है.' डॉ. ओमप्रकाश सिहल ने उनकी 'मै इनका ऋणी हूँ' कृति को 'उल्लेखनीय' माना है डॉ. हरदयाल ने 'मेरे पिता' को 'महत्वपूर्ण व अत्यन्त सजीव कृति' स्वीकार किया है विद्यावाचस्पति जी ने 'जीवन की झाकियॉ' के तीन खण्डो मे अपने जीवन की रोचक और शिक्षाप्रद घटनाये भी दी हैं. वे अपने समकालीन लेखको के लिए भी प्रेरणास्रोत रहे हैं.' सुप्रसिद्ध सस्मरण लेखक कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर पर जिन चार लेखको का प्रभाव पडा उनमे से एक श्री विद्यावाचस्पति जी भी है उनकी सस्मरण कला मे बनारसीदास चतुर्वेदी का आरभ, श्रीराम

शर्मा की प्रवाह शक्ति, श्री रामनाथ सुमन का विश्लेषण कौशल और विद्यावाचस्पति की घटना श्रृखला का समन्वय मिलता है श्री प्रभाकर जी की दृष्टि मे तो विद्यावाचस्पति जी 'सस्मरण कला के आचार्य है ' श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा है कि विद्यावाचस्पति जी का 'गाव में एक रात' सस्मरणात्मक रेखाचित्र पढकर मुझे मि ए जी गार्डिनर के रेखाचित्रो की याद आ गई थी इसी प्रकार 'जब उनके लिखे डॉ असारी के सस्मरण मुझे पढने को मिले तो मेरी तबियत फडक उठी थी और मैंने कई मित्रो से उनके उस लेख का जिक्र किया था चतुर्वेदी जी ने उनकी "मैं इनका ऋणी हूँ' कृति को सस्मरण साहित्य की बेजोड कृति माना है उन्ही के अनुसार श्री इन्द्रजी ने अपने पूज्य पिताजी की शहादत का जो वर्णन किया था वह बडी सयत भाषा मे था, यद्यपि वह केवल उनके जीवन की ही नहीं, देश की भी बडी भारी दुर्घटना थी, पर इन्द्रजी का अपनी लेखनी पर पूरा नियत्रण था वह उसे भटकने नही देते थे रूस के महान् कवि–लेखक चेखव जिस प्रकार थोडे से शब्दो मे प्रभावशाली ढग से अपनी कहानी का अत कर देते थे उसी प्रकार इन्द्रजी ने अपने पूज्य पिताजी को श्रद्धाजलि अर्पित की थी उत्कृष्ट कोटि का कोई साधक कलाकार ही वैसा कर सकता था' डॉ हरवशलाल वर्मा की सम्मति मे भी 'विद्यावाचस्पति जी सस्मरणात्मक शैली मे रेखाचित्र लिखने की कला मे सिद्धहस्त थे 'श्री कामेश्वर शरण सहाय ने प्रतिपादित किया है, 'प्रो इन्द्र के सस्मरणो मे विस्तृत जीवन के जीवनानुभव और व्यापक सपर्कों का प्रत्यक्ष दृश्य अनुपम है। उनकी प्रौढ भाषा शैली से उनके सस्मरण ग्रथो की साहित्यकता निखर उठी है ' इन सब सम्मतियो से स्पष्ट है कि हिन्दी की सस्मरण कला को समृद्ध करने और उसे अभिनव रूप देने मे विद्यावाचस्पति जी का उल्लेखनीय ही नहीं, अपितु अविस्मरणीय स्थान है

'हिन्दी जीवनी साहित्य' मे विद्यावाचस्पतिजी का महत्वपूर्ण योगदान है प्राय उन्होने स्वाधीनता के पुजारियो की जीवनियॉं लिखी हैं। फिर चाहे वे देशी हो या विदेशी उनके द्वारा लिखे सर्वप्रथम जीवन चरित 'नैपोलियन बोनापार्ट' के सबध मे 'सरस्वती' मासिक ने लिखा था, 'नैपोलियन बोनापार्ट' इतिहास और जीवन चरित का समिश्रण है ऐसी पुस्तको की बडी आवश्यकता है क्योकि यह एक ऐसे विषय की पुस्तक है जिस पर लिखी गई पुस्तकों की हिन्दी मे बहुत कमी है–कमी क्या प्राय अभाव ही है ' इसी अभाव की ओर सकेत करते हुए डॉ भवानीलाल भारतीय ने भी कहा है कि 'विद्यावाचस्पति जी ने ' नैपोलियन बोनापार्ट', प्रिस बिस्मार्क' तथा देशभक्त 'गेरीवाल्डी' के जीवन चरित उस समय लिखे, जब हिन्दी मे इन यूरोपीय राष्ट्रनायको के सबध मे कोई सामग्री थी ही नहीं' विद्यावाचस्पति जी ने बाईस साल की उम्र मे 'नैपालियन बोनापार्ट' की जीवनी लिखी थी इस जीवनी के श्रोता स्वामी श्रद्धानद थे तो पाठक पजाब केसरी लाला लाजपतराय लालाजी ने कहा था, 'नैपोलियन की जीवनी मे उपन्यास जैसा आनद आता है ' जीवन चरित लिखने का यह शौक उन्हे जीवन के अत तक बना रहा उनके द्वारा लिखी गई 'लोकमान्य तिलक और उनका युग' जीवनी सबसे अतिम जीवनी थी, जो उनके देहान्त के बाद प्रकाशित हुई डॉ हरदयाल के मत मे 'विद्यावाचस्पति द्वारा लिखी 'महर्षि दयानन्द नामक जीवनी एक सर्वांगपूर्ण, साहित्यिक और हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ जीवनियो मे से एक है ' स्वामी दयानद की ही यशस्वी जीवनी के रचयिता डॉ भवानीलाल भारतीय लिखते हैं यो तो स्वामी दयानन्द के हिन्दी मे लगभग एक सौ जीवन चरित छपे हैं किन्तु इन्द्रजी द्वारा लिखे गये इस जीवन चरित की प्रमुख विशेषता इसका साहित्यिक शैली मे लिखा होना ही है इसमे मात्र घटनाओ का स्थूल विवरण ही नहीं है अपितु चरितनायक के चरित्र के विकास को घटनाओ के परिप्रेक्ष्य मे स्पष्ट किया गया है ' श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने विद्यावाचस्पतिजी की चरित्र लेखन–कला पर प्रकाश डालते हुए कहा है, 'उनके जीवन परिचयो मे घटनाओ का क्रम विकास ऐसा गजब का होता था कि जीवन का फूल खिलता जाता था डॉ चन्द्रभानु जी सोनवणे ने श्री विद्यावाचस्पति के जीवनी–साहित्य का मूल्याकन करते हुए लिखा है, 'उनकी ओजस्वितापूर्ण

जीवनियो मे युग का गभीर अध्ययन, इतिहासकार का प्रमाणिक दृष्टिकोण एव चरित्र का गभीर विश्लेषण दिखलायी देता है ' श्री शकरदेव विद्यालकार ने 'शील और प्रज्ञा के धनी इन्द्रजी' नामक रचना मे विद्यावाचस्पतिजी की प्रेरक जीवनियो की चर्चा करते हुए लिखा है,–'ये जीवनियाँ हिन्दी भाषा के चरित्र–साहित्य की तेजस्वी कृतियाँ है गुजराती भाषा मे भी इनके दो–दो सस्करण निकल चुके हैं 'इन सब विद्वज्जनो की सम्मतियो से यह स्पष्ट है कि हिन्दी जीवन कथा साहित्य को श्री विद्यावाचस्पति द्वारा लिखी चरित्र–कथाएँ, एक अनूठा अवदान है

विद्यावाचस्पति जी की कलम ने सम–सामायिक हिन्दी उपन्यास साहित्य को भी समृद्ध किया है प्रेमचन्द और प्रसाद के कथा साहित्य से आपकी औपन्यासिक कृतियाँ प्रभावित है अपने 'शाह आलम की ऑखे' नामक ऐतिहासिक उपन्यास मे आपने ह्रासोन्मुखी हिन्दू सामन्तवाद और मुगल साम्राज्य के पतनोन्मुख काल मे तेजसिह जैसे स्वाभिमानी राजपूत की अवतारणा कर स्वातत्र्य चेतना का सूत्रपात किया है 'अपराधी कौन' एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है अनाथ बालक को डाकू बनाने मे समाज का क्या योगदान है यही इस उपन्यास का विषय है लेखक का कहना है, 'अपराधी दण्डनीय नहीं हैं, वे व्यक्ति दडनीय हैं, जो निहित स्वार्थ के कारण ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करते हैं, जिनके दबावो से अपराधो का जन्म होता है, 'जमीदार' उपन्यास किसी राजनीतिक विचारधारा से सम्बद्ध न होते हुए भी किसान–मजदूरो के शोषण और ग्राम्य व्यवस्था के वैषम्य की कहानी कहता है सरला की भाभी' 'सरला' और 'आत्म बलिदान' पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक तथा सम–सामयिक राजनीतिक पृष्ठभूमि पर लिखे गये उपन्यास हैं 'आत्म–बलिदान' उपन्यास आदर्शवादी होते हुए भी यथार्थवादी है, क्योकि नायक रामनाथ के घोर अहकार और हठीले व्यक्तित्व से मुक्त होने के लिए भी नायिका सरला राष्ट्र की बलि वेदी पर आत्म–बलिदान करती है। डॉ ज्ञानवती दरबार के अनुसार इतिहास और कल्पना मे जो समन्वय अग्रेजी उपन्यासकार थैकर ने स्थापित किया, उसका इन्द्रजी की रचनाओ मे अभाव मिलता है वास्तविकता यह है कि विद्यावाचस्पति जी की विचार और लेखन शैली पर पत्रकारिता, इतिहास और चालू विषयो का अत्यधिक प्रभाव है 'स्वय विद्यावाचस्पति जी ने लिखा है 'गणेश जी के वरदान से लेखको को परोक्ष रूप धारण करने और कराने की शक्ति प्राप्त होती है,' पर लगता है उनके उपन्यासो मे उनकी इस कल्पना शक्ति को तथ्यात्मकता ने दबोचकर गौण बना दिया हैं तथ्यात्मकता की प्रधानता के कारण ही उनके उपन्यास विशेष लोकप्रिय नही हो पाये डॉ भवानीलाल भारतीय के शब्दो मे 'यद्यपि विद्यावाचस्पति जी की उपन्यासकार के रूप मे पर्याप्त चर्चा नहीं हुई, किन्तु यह कौन नहीं जानता कि उनकी लेखनी से प्रसूत उपन्यासो ने उन्हे हिन्दी कथाकारो मे उल्लेखनीय स्थान दिलाया था

हिन्दी पत्रकारिता के पादप को अकुरित, पल्लवित और पुष्पित करने मे जिन व्यक्तियो का नाम आदर के साथ लिया जाता है, उनमे श्री विद्यावाचस्पति जी का नाम अविस्मरणीय है और विशेष रूप से उल्लेखनीय है। निर्विवाद रूप से दिल्ली की हिन्दी पत्रकारिता के तो वे जनक थे राष्ट्रीय और निर्भीक पत्रकार के रूप मे वे विख्यात रहे उनके द्वारा लिखी सद्धर्म प्रचारक की राजनीतिक टिप्पणियो से प्रभावित होकर श्री गणेश शकर विद्यार्थी उनसे मिलने कानपुर से गुरुकुल कागडी पधारे थे उनके द्वारा सपादित 'विजय' और 'वीर अर्जुन' की गणना ख्याति प्राप्त उग्र राष्ट्रवादी पत्रो मे होती थी डॉ लल्लन मिश्र ने स्वीकार किया है 'सन् १६२३ मे प्रकाशित होने वाले दैनिक पत्रो मे 'अर्जुन' सबसे प्रभावशाली दैनिक पत्र था ' 'विशाल भारत' के सपादक श्री मनोहरसिह सेगर का अभिमत है, 'वीर अर्जुन' का साप्ताहिक सस्करण भी हिन्दी के श्रेष्ठ साप्ताहिको मे अग्रणी था ' यह पत्र साहित्यिक, सामाजिक एव राजनीतिक पत्र के रूप मे प्रकाशित होता था डॉ विष्णुदत्त राकेश ने प्रतिपादित किया है ' 'विदेशी दमन–चक्र के उस काल मे उनकी लेखनी को प्रतिबधित

किया गया, पर उससे दया की स्याही नही, अपितु अधिकार की आग निकली ' उनकी तेजस्वी लेखनी और विद्वत्ता का ही सुपरिणाम था कि दिल्ली जैसे उर्दू बहुल क्षेत्र मे हिन्दी पत्रकारिता की जडे जमी, 'मुबई' जैसे सुदूर क्षेत्र मे भी उन्होने 'नवराष्ट्र' नामक हिन्दी दैनिक का शुभारभ ही नहीं किया, अपितु उसका इस प्रकार से एक वर्ष तक सुसचालन किया कि वह चिरस्थायी व स्वावलम्बी हो सके उनके सपादकीय लेख तो प्राय सरकार के लिए चुनौती होते थे, चाहे फिर विदेशी सरकार हो या देशी, 'वीणा की झकार', 'गाण्डीव के तीर' और 'भानुमती का पिटारा' उनके पत्रो के लोकप्रिय स्तभ थे अपनी मार्मिक व्यग्यात्मकता के कारण इन स्तभो को विशेष लोकप्रियता प्राप्त हुई डॉ रामप्रसाद वेदालकार की दृष्टि मे, 'समाज धर्म और राष्ट्र विरोधियो पर गाण्डीव के शर के समान तीक्ष्ण प्रहार करने से वे कभी नही चूके धनुष पर चढी प्रत्यचा उन्होने कभी शिथिल नहीं होने दी, 'श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने विद्यावाचस्पतिजी की सघर्षशील पत्रकारिता की ओर ध्यानाकर्षण करते हुए १४ जुलाई १६३५ के 'विकास' के मुखपृष्ठ पर लिखा था, 'आपके पत्र अर्जुन की दो हजार रुपए की जमानत क्वेटा सबधी लेखो के कारण जब्त कर ली गई और अब उससे पॉच हजार की जमानत मागी गई है. डॉ विष्णुदत्त राकेश का अभिमत है कि– 'अर्जुन' के अग्रलेखो का जिस दिन स कलन–सपादन हो जाएगा, उस दिन स्वाधीनता आदोलन मे हिन्दी पत्रकारिता का अध्ययन करने वालो को निर्भीक निस्पृह तथा स्वतत्र पत्रकारिता का दस्तावेज मिल जायेगा, 'डॉ विजयेन्द्र स्नातक की सम्मति मे, 'विद्यावाचस्पति जी ने हिन्दी पत्रकारिता को जो मान–मर्यादा प्रदान की वह पहले कोई सपादक नहीं दे सका था उन्होने पूजीपति पत्र–स्वामियो के आदेश कभी नहीं माने और अपनी मान–मर्यादा मे रहकर सपादन करते रहे, 'वे आर्दशवादी पत्रकार थे, अच्छा वेतन मिलने पर भी 'जनसत्ता' जैसे दैनिक पत्र की सपादकी उन्होने एक छोटी–सी बात पर छोड दी थी। विद्यावाचस्पति जी ने लगभग तीस वर्षो तक हिन्दी पत्रकारिता को दिशा दी श्री रामप्रसाद वेदालकार के कथनानुसार 'दिल्ली के राष्ट्रीय हिन्दी पत्रो मे उनकी पत्रकार दृष्टि 'मील का पत्थर' कही जा सकती है ' विद्यावाचस्पति जी हिन्दी पत्रो और पत्रकारो के निर्माता थे पत्रकारिता उनके लिए एक मिशन, एक आदोलन और एक राष्ट्रीय साधना भी थी सन् १६४७ मे विद्यावाचस्पति जी ने दिल्ली की हिन्दी पत्रकारिता मे मनोरजन प्रधान साहित्यिक मासिक 'मनोरजन' का प्रकाशन करके एक नया आयाम जोडा था श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन का यह मत सत्य है, प्रो इन्द्र विद्यावाचस्पति हिन्दी पत्रकारिता गगन के एक उज्ज्वल नक्षत्र थे हिन्दी पत्रकारिता के माध्यम से उत्तर भारत के जन–जागरण मे आपका प्रमुख योग रहा 'राजर्षि पुरुषोत्तमदास टडन ने कहा था, 'वीर अर्जुन' ने मेरे प्यारे भाई श्री इन्द्र जी की शक्ति पाकर निर्भीकता से देश की उपासना की है और वह हिन्दी भाषियो के प्रेम और सम्मान का अधिकारी है 'वस्तुत श्री विद्यावाचस्पति का हिन्दी पत्रकारिता का अवदान अतिशय महत्वपूर्ण है वे हिन्दी पत्रकारिता के जनक, प्रकाशस्तभ ही नही, अपितु मुख्य पुरोधा भी थे

इतिहास के क्षेत्र मे विद्यावाचस्पतिजी का योगदान कम महत्वपूर्ण नहीं हैं. राष्ट्रीय चेतना और अतीत का गौरवपूर्ण चित्र–चित्रित करने की दृष्टि से विद्यावाचस्पति जी सरस इतिहासकार के रुप मे हिन्दी जगत् मे अवतीर्ण हुए डॉ जबरसिह सेगर ने टिप्पणी की है, 'कतिपय पाश्चात्य इतिहासकारो ने भारतवर्ष के इतिहास को जिस प्रकार तोड–मरोडकर लिखा उससे श्री विद्यावाचस्पति क्षुब्ध थे राट्रीय चेतना के अतिरिक्त इस सशोधनात्मक दृष्टि से भी उन्होने ऐतिहासिक ग्रथो की रचना की. वैदिक काल से लेकर स्वतन्त्र भारत तक के इतिहास तक उन्होने अपनी कलम चलायी है। उनके ऐतिहासिक ग्रथ अतिशय तल्लीनता पूर्वक अनुसधानात्मक प्रणाली से लिखे गए हैं डॉ ओमप्रकाश सिहल व श्री महेन्द्र चतुर्वेदी के अनुसार श्री विद्यावाचस्पति कृत 'मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण' तथा 'भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य का उदय उल्लेखनीय कृतियॉ हैं. नि.सदेह विद्यावाचस्पति जी राष्ट्रो और साम्राज्यो के इतिहास लेखन मे सिद्धहस्त थे स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

के शब्दो मे विद्यावाचस्पति जी ने 'मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण' जैसी सरस, रोचक, धाराप्रवाह–ऐतिहासिक पुस्तक लिखकर हिन्दी साहित्य की सचमुच बडी सेवा की है ' श्री सतराम बी ए की सम्मति मे, मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण' यह ऐतिहासिक ग्रथ धर्म शिक्षा की पुस्तको से अधिक शिक्षादायक और उपन्यास से अधिक मनोरजक तथा कार्य–कारण श्रृखला मे सुसबद्ध है ' 'सरस्वती' मासिक ने विद्यावाचस्पति जी के ऐतिहासिक ग्रथो की इस प्रकार विवेचना की है, 'मुगल साम्राज्य का उदय तो स्वतन्त्र भारत मे अपने विषय पर शायद यह हिन्दी की पहली पुस्तक है इसमे लेखक की प्रौढता और अध्ययन का प्रमाण–पत्र पग–पग पर मिलता है हिन्दी मे यह पुस्तक एक बहुत बडे अभाव की पूर्ति करती है' श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर का अभिमत है कि–'इन्द्र विद्यावाचस्पति जी के इतिहास लिखने की अपनी शैली है मुगल साम्राज्य के इतिहास मे इस शैली का शिलान्यास हुआ था, तो ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास मे उसकी पूर्णता हुई है यह शैली इतिहास की प्रामाणिकता के साथ उसे उपन्यास की रोचकता भी देती है डॉ भवानीलाल भारतीय के शब्दो मे 'भारतीय इतिहास के अनुशीलन मे उनकी अत्याधिक रुचि थी इसीलिए उन्होने 'मुगल' साम्राज्य का क्षय और उसके कारण', 'भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य का उदय, तथा 'भारतीय स्वाधीनता सग्राम का इतिहास' जैसे मानक ग्रथ लिखे इन ग्रथो मे इतिहास की शुष्कता न होकर ऐतिहासिक सरसता के सर्वत्र दर्शन होते हैं ' विद्यावाचस्पति जी को आर्यसमाज का सर्वप्रथम क्रमबद्ध इतिहास लिखने का श्रेय भी प्राप्त है उनहोने इतिहास लेखन मे तटस्थ और उदार दृष्टिकोण से काम लिया है साप्रदायिकता की सकीर्णता उन्हे स्पर्श भी नहीं कर पायी है, उन्होने अकबर की नीतियो की मुक्तकठ से प्रशसा की है राष्ट्रीय आदोलन के इतिहासकार मन्मथनाथ गुप्त ने प्रतिपादित किया है, 'विद्यावाचस्पति जी राष्ट्रीय आदोलन को साफल्य मडित करने मे समस्त राजनीतिक दलो एव प्रवृतियो का योगदान मानने मे मेरे अनुगामी थे ' इस प्रकार स्पष्ट है कि विद्यावाचस्पति जी का इतिहास–विषयक कार्य अमूल्य है सरस ऐतिहासिक ग्रथ लिखकर उन्होने हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की है विद्यावाचस्पति जी ने ऐतिहासिक ग्रंथो के अतिरिक्त कतिपय राजनीति विषयक चितनात्मक ग्रथ भी लिखे हैं। वे जहॉ राजशास्त्रज्ञ थे वहॉ उन्हे राजनीतिक जीवन का सक्रिय अनुभव भी था धर्म के क्षेत्र मे वे महर्षि दयानद के व राजनीति के क्षेत्र मे लोकमान्य तिलक के अनुयायी थे किसी दल विशेष से सोच–विचारपूर्वक राजनीतिक नाता जोड लेने के बाद उसे तोडना उन्हे पसद नहीं था, वे पूर्ण दृढता के साथ आजीवन कॉग्रेसी रहे, पुनरपि वे एक पत्रकार के नाते पूर्णतया स्वतन्त्र थे, और कॉग्रेस तथा उसकी नीतियों की निर्भीकतापूर्वक आलोचना किया करते थे, सभवत वे एक मात्र ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होने कॉग्रेस की सदस्यता का फार्म भरते समय अहिसा की शर्त को सब परिस्थितियो मे मानने से इकार कर दिया था 'आततायिनमायान्त हन्यादेवाविचारयन्' पर उनका विश्वास था उन्होने अपना राजनीति–विषयक 'जीवन–सग्राम' नामक ग्रथ अपनी हिसा–अहिसा विषयक भूमिका को स्पष्ट करने की दृष्टि से ही लिखा है उनके 'वीर अर्जुन' के सपादकीय लेख भी इस बात के साक्षी हैं कि वे कॉग्रेस की अल्पसख्यक तुष्टीकरण की नीति से असहमत थे विद्यावाचस्पति जी आजीवन राजनीति के क्षेत्र मे कॉग्रेस से और धार्मिक–सामाजिक क्षेत्र मे आर्यसमाज से जुडे रहे. आर्यसमाज अपनी राजनीतिक भूमिका किस प्रकार अदा करे–इस सबध मे उन्होने कहा था– 'राजनीतिक सिद्धातो का आर्यसमाज प्रचार करे और दलगत राजनीति मे पडे बगैर राजनीतिक प्रणाली मे सशोधन कार्य करे, 'जीवन सग्राम' मे उन्होने ब्राहमणत्व को क्षत्रियत्व से समन्वित करने का आग्रह कर एक प्रकार से देवताओ को अग्नि के साथ सुशोभित रहने का सदेश दिया है 'राष्ट्रो की उन्नति,' 'राष्ट्रीयता का मूल–मत्र' 'जीवन–सग्राम', स्वतंत्र भारत की रुपरेखा', 'स्वराज्य और चरित्र निर्माण', यदि आचार्य चाणक्य प्रधानमन्त्री होते' आदि उनकी राजनीति विषयक विवेचनात्मक रचनाये हैं

विद्यावाचस्पति जी ने सस्कृत के कालजयी ग्रथो के अनुवादो व भाष्य से भी हिन्दी साहित्य को सुसपन्न किया है इस दृष्टि से उनके उल्लेखनीय ग्रथ हैं 'रघुवश', 'किरातार्जुनीय' और ईशोपनिषद्भाष्य' युजर्वेद का ४० वॉ अध्याय जो प्रकारान्तर से 'ईशोपनिषद्' के नाम से सुप्रसिद्ध है, उसका उन्होने विद्वतापूर्ण भाष्य किया है, जिससे स्पष्ट है कि उनके व्यक्तित्व और कृतित्व मे प्राचीन शास्त्रो का परम वैदुष्य था जहॉ उन्होने 'ईशोपनिषद् भाष्य' जैसे औपनिषदिक भाष्य ग्रथ लिखकर हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है, वहॉ रघुवश जैसे ललित ग्रथो के अनुवाद से भी हिन्दी वाड्मय को समृद्ध किया है विद्यावाचस्पति जी सस्कृत ग्रथो के अनुवाद हिन्दी के लिए अत्यन्त आवश्यक मानते थे इसलिए उन्होने सस्कृत ग्रथो के सर्वजनसुलभ अनुवाद किये शब्दानुवाद की अपेक्षा भावानुवाद की शैली को उन्होने अपनाया है इसीलिए वे 'हिरण्मय' शब्द का अर्थ 'प्रलोभन', स्तूप' शब्द का अर्थ 'ढेर,' तथा 'समिद्धि ' शब्द का अर्थ 'जलाने के लिए लकडियॉ' करते हैं अनुवाद पूर्ण तल्लीनता व प्रामाणिकता से पूर्ण करने के बाद भी वह अपूर्ण ही रह जाता है इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए श्री विद्यावाचस्पति ने कहा है "लोकभाषा मे कविकुलगुरु कालिदास के काव्यामृत की 'बानगी' दिखाने की यह चेष्टा कविकुलगुरु के शब्दो मे 'ऊँचे वृक्ष के फल को प्राप्त करने की वामन चेष्टा के समान ही है' पर सतोष इतना ही है कि पृथ्वी मुझ जैसे वामनो से भरी पडी है 'एक साहित्यिक वामन' को वामनो का ससार क्षमा न करेगा तो कौन करेगा बहुत से प्राशु महानुभाव भी हैं, वे तो अपनी प्राशुता के कारण ही मेरे इस प्रयत्न को क्षन्तव्य समझेगे " विद्यावाचस्पति जी ने भारवि विरचित 'किरातार्जुनीय' का अनुवाद पराधीन और निराश भारत के लिए समयोजित सजीवनी बूटी और रामबाण मानकर किया है वस्तुत वे सस्कृत से हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि करने वाले एक सफल अनुवादक और भाष्यकार हैं उनके साहित्यिक बामनीय व्यक्तित्व मे केवल विनम्रता की भावना ही निहित नहीं है अपितु उसमे 'धरती को तीन पगो मे मापने का ओज' भी विद्यमान है

विद्यावाचस्पति जी भारतीय सस्कृति के व्याख्याता थे 'उपनिषदो की भूमिका', 'आध्यात्म रोगो की चिकित्सा', सस्कृत साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन' और 'भारतीय सस्कृति का प्रवाह' आदि विवेचनात्मक ग्रथो की रचना कर सस्कृति विषयक साहित्य से भी उन्होने हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है, उनके लिए सामाजिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक विषयो पर लिखना जितना सहज था, उतना ही आध्यात्मिक, धार्मिक, दार्शनिक, सास्कृतिक और शास्त्रीय विषयो पर भी, आर्यसमाज मे शास्त्रार्थ परपरा के साथ ही खण्डन–मण्डनात्मक साहित्य लेखन की परम्परा भी समृद्ध हुई, विद्यावाचस्पति जी ने इस क्षेत्र मे भी अपनी भूमिका निभायी गुरुकुल के स्नातक और उपाध्याय होते ही उन्होने 'वर्ण–व्यवस्था, जन्मना या कर्मणा', जीवित पितरो का श्राद्ध, या मृतक् पितरो का' विषय पर महामहोपाध्याय प गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी से शास्त्रार्थ किया था 'वर्ण व्यवस्था' व 'मृतक श्राद्ध पर विचार' नामक प्रकाशित शास्त्रार्थ को देखने पर स्पष्ट होता है कि पाण्डित्य और युक्तिपूर्वक विचारो के प्रतिपादन मे विद्यावाचस्पति जी अतिशय दक्ष थे, उनकी प्रौढ तर्क शैली तथा उनके विशद शास्त्रज्ञान ने उन्हे इन शास्त्रार्थ संग्रामो में विजय दिलाई थी 'सस्कृत साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन' मे विद्यावाचस्पति जी ने सस्कृत कवियो की काव्य रचना की आधारभूमि को खोजकर पाठकों के समक्ष उपस्थित किया है डॉ विजयेन्द्र स्नातक की दृष्टि मे 'विद्यावाचस्पति जी भारतीय मनीषा के प्रतीक थे उनकी वृत्ति उदार व समन्वयात्मक थी इसलिए वे आर्यसमाज और ऋषि दयानद के प्रति पूर्ण श्रद्धा रखते हुए भी 'भागवत्पुराण' और 'रामचरितमानस' कार तुलसी की प्रशसा करते थे.' डॉ महावीर का यह कथन ठीक ही है कि 'उनकी रचनाधर्मिता केवल आर्यसमाज की सीमाओ में ही सीमित न रही अपितु उसने साहित्य–गगन मे मुक्त रुप से विचरण किया है ' डॉ गगाराम गर्ग की सम्मतिमे, विद्यावाचस्पति जी वेदो के मर्मज्ञ व भाष्यकार थे ' यथार्थ मे वे एक सास्कृतिक

पुरुष थे साहित्य, सस्कृति के क्षेत्र मे हिन्दी साहित्य को उनका जो योगदान है, वस्तुत वह अविस्मरणीय है

विद्यावाचस्पति जी विचारात्मक और प्रमाणबहुला शैली के निबधकार थे, पर उनके निबध ग्रथ रुप मे सकलित न होने के कारण उन्हे निबधकार के रुप मे विशेष ख्याति नही मिल पायी है वे इस दृष्टि से अचर्चित ही रहे, जबकि उनके 'क्रान्ति', 'साम्राज्यवाद', धर्म क्या है और क्या नहीं?' आदि निबध तो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की विचारात्मक निबधो की परपरा का अनुसरण व विकास करने वाले निबध है श्री शकरदेव विद्यालकार ने उनके निबधो को 'विचारपूर्वक निबध' कहा है आज भी यदि उनके निबन्ध सकलित हो जाये तो निश्चित रूप से उनका सरस विचारात्मक निबधकार का रूप पाठको को मोहित किये बिना न रहेगा श्री रामप्रसाद वेदालकार का अभिमत है, 'उन्होने हिन्दी साहित्य को केवल ललित साहित्य से ही नहीं, अपितु तत्वनिष्ठ चिंतन से भी पूर्ण किया है' इस तत्वनिष्ठ चिंतन मे उनके निबध साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका रही है विद्यावाचस्पति जी ने निबध क्षेत्र के अतिरिक्त हिन्दी व सस्कृत काव्य के क्षेत्र मे भी कुछ समय के लिए प्रवेश किया था और उसमे यशस्वी भी हुए थे, पर यह क्षेत्र उन्हे अपने अनुकूल प्रतीत नही हुआ' उन्ही के शब्दो मे 'मेरे पास सौ से भी अधिक गीत लिखे रखे हैं, पर मैं समझता हूँ कि वह मेरा क्षेत्र नहीं है उनके हिन्दी गीत 'गुरुकुल गीत', 'हृदयोद्गार' नामक काव्य–सग्रहो तथा 'स्वर्ण देश का उद्धार' नामक नाटक म प्रकाशित हुई थीं सस्कृत काव्य रचनाओ की तुलना मे उनकी हिन्दी काव्य रचनाये अधिक लोकप्रिय हुई राष्ट्रीय स्वाधीनता सग्राम में श्री विद्यावाचस्पति जी का एक गीत 'हे मातृभूमि तेरे चरणो मे सिर नवाऊँ' बडा लोकप्रिय रहा गुरुकुलो तथा आर्य वीर दल के शिविरो मे प्राय उनका एक गीत गाया जाता रहा है– 'तव वन्दन हे नाथ करे हम' उन्हीं के द्वारा विरचित 'जागो प्रमाद छोडो कसकर कमर खडे हो' जैसे भावपूर्ण गीतो मे आज भी जन–जन मे स्फूर्ति का सचार करने की शक्ति विद्यमान है जैसे श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी अपनी दो–तीन कहानियो के कारण सुप्रसिद्ध हुए वैसे ही इन्द्र जी भी अपनी दो–तीन कविताओ के कारण बहुचर्चित रहे हैं उनकी कविता महावीरप्राद द्विवेदी और श्रीधर पाठक जैसे महाकवियो के मार्गदर्शन से पल्लवित पुष्पित हुई थी अत स्वाभाविक रुप से उनके काव्य पर द्विवेदी युगीन काव्य प्रवृत्तियो की छटा विद्यमान है. डॉ विष्णुदत्त राकेश के कथनानुसार 'श्री विद्यावाचस्पति ने पराधीन भारत की बेडियॉं काटने के लिए तत्पर बलिदानियो को प्रेरणा देने वाले गीत लिखे राष्ट्रीय काव्यधारा के इन गीतो की गूँज 'शीश बलि' देने वालो की रक्त चेतना मे झकृत होती रही है' छात्रावस्था या युवावस्था के बाद विद्यावाचस्पति जी हिन्दी काव्य क्षेत्र से सदा–सदा के लिए विदा हो गये, पर सस्कृत मे काव्य रचना का क्रम तो उन्होने देह त्याग के चार–पाच दिन पहले तक जारी रखा था 'भारतेतिहास' उनकी तीस अध्यायो मे विभाजित सस्कृत भाषा की छन्दोबद्ध कृति है डॉ महावीर ने 'भारतेतिहास' काव्य की इस प्रकार मीमासा की है ' अद्यावधि लिखे गये भारतवर्ष के इतिहासो की परम्परा से हटकर सर्वथा नूतन एव अभिनव शैली मे किया गया यह एक सर्वथा मौलिक कार्य है इसमे रसहीन भाषा मे इतिहास की घटनाओं का ब्यौराबार संकलन मात्र ही नहीं है, अपितु देशवासियो के हृदय को रसाप्लावित कर अत्यत माधुर्य के साथ कान्ता–सम्मित–शैली मे अपने देश तथा सस्कृति के प्रेम और गौरव की भावना जगाने का सफलतम प्रयास है, मधुर छन्दों, विविध अलकारो, रमणीय रस प्रसंगों तथा प्रकृति के हृदयहारी चित्रो से परिपूर्ण विद्यावाचस्पति जी की कविता, ब्रह्मानन्द सहोदर आनन्द की वृष्टि के साथ, जहॉं वाल्मीकि और कालिदास का स्मरण कराती है, वहॉं वेद, दर्शन एव स्मृतियो के निगूढतम रहस्यो को अत्यन्त सरस एव सरल शब्दावली मे अनावृत्त करती है' विद्यावाचस्पति जी ने निबध, काव्य विधा के साथ–साथ नाट्यक्षेत्र मे भी अपनी कलम चलायी है उनकी एक मात्र नाट्यकृति का नाम है– 'स्वर्ण देश का उद्धार' नाटक मे कूट–कूट कर भरे

राष्ट्रप्रेम तथा गीत बाहुल्य को देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे उनके नाटक जयशकर प्रसाद की शैली का अनुसरण कर रहे हैं उक्त नाटक की समीक्षा करते हुए 'सरस्वती' मासिक ने लिखा था 'नाटक का विषय अच्छा है भाषा अच्छी है, कविता भी बुरी नहीं है, तो भी हमे उससे सतोष नहीं हुआ लेखक की विद्वत्ता ओर गभीरता पर हमे पूरा विश्वास है, पर हम यह समझते हैं कि उनमे कदाचित् वह नैपुण्य नहीं है, जो एक नाटककार मे होता है, पुनरपि सभव है, पाठक 'स्वर्ण देश का उद्धार' एक बार अवश्य पढे, परन्तु इसका कारण विषय की नवीनता है, कला का नैपुण्य नहीं'

भाषा शैली की सरसताव सहजता की दृष्टि से भी श्री विद्यावाचस्पति के साहित्य की महत्ता कम नहीं हैं कहा जाता है भाषा–शैली मे शैलीकार का व्यक्तित्व छिपा रहता है, इसे यूँ भी कह सकते हैं कि जैसा जीवन होता है, वैसी ही भाषा भी होती है विद्यावाचस्पति जी आडम्बर के विरोधी थे और स्वच्छता एव सादगी पसन्द करते थे तदनुकूल उनकी भाषा भी कृत्रिम अलकारो के प्रतिकूल और सहज अलकारो के अनुकूल थी इस सबके बावजूद भी उनके साहित्य मे शब्द–सौन्दर्य और भाव सौन्दर्य इन्द्रधनुष के वर्णो की भाति यत्र–तत्र एक–दूसरे मे ओतप्रोत हैं उनकी भाषा कभी तत्सम शब्दावली का चोगा पहनती है तो कभी अरबी–फारसी के शब्दो की ओढनी धारण करती है डॉ ज्ञानवती दरबार ने स्वीकार किया है 'विषय चाहे जो हो श्री विद्यावाचस्पति की भाषा आकर्षक और हृदयग्राही है, क्योकि उसमे प्रवाह है सास्कृतिक विषयो पर लिखते हुए वे विचार जगत् मे विचरते हैं और आत्मगत भावो का वर्णन करने का लोभ सवरण नहीं कर पाते श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने उनकी सहज भाषा–शैली पर प्रकाश डालते हुए लिखा है– 'जिस प्रकार किसी सुदर महिला को आभूषणो की जरुरत नही, सौन्दर्य ही उसका सबसे बडा आभूषण है, उसी प्रकार उनकी सीधी–सादी भाषा को अलकारो की आवश्यकता नहीं जो कुछ उन्होने लिखा था, वह समझ मे आ जाता था, घुमा–फिरा कर बात करने की उनकी आदत न थी भाषा आखिर भावो को प्रकट करने के लिए है, पर कितने ही लेखक उससे उलटा ही काम लेते हैं–यानी हृदय के भावो को छिपाने का' विद्यावाचस्पति जी की भाषा मे 'गागर मे सागर' भरने की क्षमता है छोटे–छोटे शब्दो या वाक्यो मे, वे बहुत कुछ कह जाते थे उदाहरण के लिए दो वाक्य प्रस्तुत है–'सरदार पटेल महात्मा गाधी के पट्टशिष्य हैं ' 'प नेहरू, महात्मा गाधी के पटुशिष्य हैं ' प्रा राजेन्द्र जिज्ञासु ने उन्हे 'शब्द चयन के धनी' विशेषण से विशेषित किया है श्री जिज्ञासु जी की सम्मति मे 'पिता महात्मा मुशीराम जी का ओज व रस, सारा का सारा, उनकी लेखनी मे आ गया था विद्यावाचस्पति जी के साहित्य व लेखो को पढकर मुर्दा दिल भी हुँकारने लग जाते थे ' नि सदेह उनकी सरल सुष्ठु और प्रसाद–ओज गुणमयी भाषा शैली ने हिन्दी साहित्य को कलात्मक समृद्धि प्रदान की है

विद्यावाचस्पति जी के सम्पूर्ण साहित्य का अनुशीलन करने पर निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि उनके साहित्य मे राष्ट्रीयता की प्रवृति सर्वाधिक महत्वपूर्ण है विविध विधाओ मे लिखा गया उनका बहुमुखी साहित्य स्वराज्य और सुराज्य को सर्वांग परिपूर्ण और सुसपन्न करने के लिए ही समर्पित रहा है एक प्रकार से उनका साहित्य उनके उस जीवन का अनुवाद है, जिसमे उनका राष्ट्रीय व्यक्तित्व अनुस्यूत हुआ है। विद्यावाचस्पति जी की साहित्य–सर्जना का उत्स ही राष्ट्रीयता है, जो उनके समस्त साहित्य मे अथ से इति तक अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित रहा है डॉ विष्णुदत्त राकेश ने उनके जीवन एव साहित्य की इस प्रकार मीमासा की है, 'वे निजी जीवन व वाडमय मे विभिन्न वर्गों के लिए आजादी के क्षितिज खोजते रहे राजनीतिक पराभव से मुक्ति का क्षितिज, रूढियो और सकीर्णताओ मे जकडे समाज की आजादी का क्षितिज, सास्कृतिक ह्रास की आत्महीनता से मुक्ति का क्षितिज तथा मानव धर्म की सप्रदाय मुक्ति की धारणा का क्षितिज। श्री फूलचन्द जैन के शब्दो मे, – 'प्रो इन्द्र विद्यावाचस्पति अपने युग की ऐसी शक्ति थे कि जिन्होने एक ओर शब्द के अस्त्र

से समाज को मगलमय राह दिखाई, तो दूसरी ओर सामाजिक, शैक्षिक और राजनीतिक कर्मयुद्ध मे सक्रिय योद्धा की भूमिका निबाही डॉ रामनाथ वेदालकार की धारणानुसार–'विद्यावाचस्पति जी के व्यक्तित्व मे प्राचीन शास्त्रो का परम वैदुष्य, प्रणाली के प्रति अगाध आस्था, गुरुकुल कॉगडी को ससार भर मे अनुपम विवविद्यालय बना देने की चिर अभिलाषा, प्रगाढ आशावादिता, जर्जर स्वास्थ्य मे भी कुछ उपयोगी कार्य कर जाने की अदम्य लालसा थी ' सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री बनारसीदास चतुर्वेदी की दृष्टि मे–विद्यावाचस्पति जी 'स्वाभावत साहित्यिक' है, तथा उनका साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र मे किया गया कार्य भी'प्रशसनीय' है उन्होने उन्हे 'ब्राह्मण वृत्ति का साहित्य तपस्वी' भी घेषित किया है प्रा राजेन्द्र जिज्ञासु ने श्री विद्यावाचस्पति को 'विश्व का एक ऐसा प्रमुख साहित्यकार माना है, जिन्होने बिना किसी सरक्षण के सहस्रो पृष्ठ लिख डाले ' साथ ही उन्होने यह अभिमत भी प्रकट किया है कि 'उनके सम्पूर्ण साहित्य का विविध खण्डो मे प्रकाशन होना चाहिये 'डॉ कमलकिशोर जी गोयनका और डॉ धर्मपाल जी ने भी इसी प्रकार उनके समस्त साहित्य को खण्डो मे प्रकाशित करने की बात कही है श्री विष्णु प्रभाकर ने प्रतिपादित किया है, 'विद्यावाचस्पति जी के 'सस्मरण और ऐतिहासिक ग्रथ हिन्दी साहित्य की निधि है जिस प्रकार उनके सपादकीय लेखो से स्वाधीनता के सैनिक अनुप्राणित होते थे, उसी प्रकार उनकी साहित्यिक रचनाओ ने अनेक पाठक पैदा किए हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र मे प इन्द्रजी श्रद्धेय बाबूराव विष्णु पराडकर के समकक्ष थे हिंदी पत्रकारिता की जडे जमाने मे उनका योगदान अभूतपूर्व रहा है वह साहित्यिक थे, स्वाधीनता सग्राम के सैनिक थे, राजनेता थे, शिक्षाविद् थे और एक प्रसिद्ध आर्यसमाजी थे, उनकी विशेषताये असाधारण है वस्तुत विद्यावाचस्पति जी ने साहित्य–साधना के ४६ वर्षों मे लगभग ४६ ग्रथो की रचना कर हिन्दी वाङ्मय की श्रीवृद्धि की है वे १९११ से १९६० तक अनवरत हिंदी की साहित्य–साधना मे लगे रहे है, उनके द्वारा लिखित विपुल साहित्य–सपदा मे सस्मरण, जीवन–चरित्र, उपन्यास, पत्रकारिता, इतिहास, राजनीति, अनुवाद, भारतीय सस्कृति, निबध, काव्य, नाटक आदि सभी कुछ है, लेकिन सस्मरण, जीवन–चरित्र, पत्रकारिता और इतिहास लेखन मे उनका हिन्दी साहित्य को अवदान निश्चित रुप से अनुपम एव अविस्मरणीय है सस्मरण–कला के आचार्य, ओजस्वी चरित्र–लेखक, तेजस्वी–पत्रकार एव सरस इतिहासकार के रूप मे उनका स्मरण सदैव आदर और श्रद्धा के साथ किया जाता रहेगा, एतदर्थ सदैव हिन्दी–साहित्य ससार उनके इस अद्भुत साहित्यिक योगदान के प्रति चिरऋणी रहेगा

परिशिष्ट

(क) पं. इन्द्र विद्याचस्पति : साहित्य सूची

क्रम	कृति	प्रकाशक
१	अध्यात्म रोगो की चिकित्सा	गुरुकुल कागडी हरिद्वार (१६४६ ई)
२	अपराधी कौन	राजपाल एड सस, दिल्ली (१६३२ ई.)
३	अमर शहीद जतीन्द्रनाथदास	अर्जुन प्रेस–देहली
४	आत्म–बलिदान	विजय पुस्तक भडार, दिल्ली (१६४८ ई)
५	आधुनिक भारत मे वक्तृत्व कला की प्रगति	वाचस्पति पुस्तक भडार, दिल्ली (१६५६ ई)
६	आर्य वीर दल का बौद्धिक शिक्षण	सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली (१६७६ ई.)
७	आर्यसमाज का इतिहास–प्रथम भाग	सा अ प्र स दिल्ली (१६५७ ई.)
८	आर्य समाज का इतिहास–द्वितीय भाग	सा अ प्र स, दिल्ली (१६५७ ई)
६	ईशोपनिषद्भाष्य	गुरुकुल कागडी, हरिद्वार (१६५६ ई)
१०	उपनिषदो की भूमिका	गुरुकुल कागडी, हरिद्वार (१६१३ ई)
११	एक शिक्षादायक जीवन (स्वामी श्रद्धानद जी महाराज)	सा आ प्र स, दिल्ली (१६४८ ई)
१२	किरातार्जुनीय (हिंदी अनुवाद)	राजपाल एड सस, दिल्ली (१६५७ ई)
१३	गुरुकुल कागडी के साठ वर्ष	गुरुकुल कागडी, हरिद्वार (१६६० ई)
१४	गुरुकुल गीत	गुरुकुल कागडी, हरिद्वार (१६१४ ई)
१५	जमींदार	इण्डियन प्रेस, प्रयाग (१६४२ ई)
१६	जीवन की झाकियॉ–प्रथम खड (दिल्ली के वे स्मरणीय बीस दिन)	विजय पुस्तक भडार, दिल्ली (१६३५ ई)
१७	जीवन की झाकियॉ–तृतीय खड (मैं चिकित्सा के चक्रव्यूह से कैसे निकला)	विजय पुस्तक भडार, दिल्ली (१६४५ ई)
१८	जीवन की झाकियॉ–तृतीय खड (मेरे नौकरशाही जेल के अनुभव)	विजय पुस्तक भडार, दिल्ली (१६४७ ई)
१६	जीवन ज्योति	राजपाल एड सस, दिल्ली (१६५६ ई)
२०.	जीवन सग्राम	राजधर्म प्रकाशन, दिल्ली (१६७० ई.)
२१	दिल्ली का राजनीतिक इतिहास	जिला कॉग्रेस कमेटी, देहली (१६४० ई)
२२	दिल्ली के फिसाद	विजय पुस्तक भडार, दिल्ली (१६२४ ई.)
२३	नैपोलियन बोनापार्ट	गुरुकुल कागडी, बिजनौर (१६१२ ई)

२४.	प. ज्वाहरलाल नेहरू	विजय पुस्तक भडार, दिल्ली (१६४६ ई)
२५	पत्रकारिता के अनुभव	नेशनल पब्लिशिग हाउस, दिल्ली (१६६० ई)
२६	प्रिस बिस्मार्क (जर्मन साम्राज्य की पुन स्थापना)	गुरुकुल कागडी, बिजनौर (१६१५ ई)
२७	भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य का उदय	आत्माराम एड सस, दिल्ली (१६५६ ई)
२८	भारतीय सस्कृति व राजनीति	(अनुपलब्ध एव दुर्लभ ग्रथ)
२६	भारतीय सस्कृति का प्रवाह	एस चॉद एड कपनी, दिल्ली (१६५६ ई)
३०	भारतीय स्वाधीनता सग्राम का इतिहास	सस्ता साहित्य मडल, दिल्ली (१६६० ई)
३१	भारतेतिहास	हरियाणा साहित्य सस्थान, गुरुकुल झज्जर, (१६७० ई)
३२	मराठो का इतिहास	(अनुपलब्ध एव दुर्लभ ग्रथ)
३३.	महर्षि दयानद	विजय पुस्तक भडार, दिल्ली (१६४५ ई)
३४	महावीर गेरीवाल्डी	गुरुकुल कागडी, हरिद्वार (१६२० ई)
३५	मृतक श्राद्ध पर विचार (शास्त्रार्थ)	गुरुकुल कागडी, हरिद्वार (१६१६ ई)
३६	मुगलसाम्राज्य का क्षय और उसके कारण	हिदी ग्रथ रत्नाकर, बबई (१६३१ ई)
३७	मेरे पिता	वाचस्पति पुस्तक भंडार, दिल्ली (१६५७ ई)
३८	मै इनका ऋणी हूँ	सस्ता साहित्य मडल, दिल्ली (१६५६ ई)
३६	यदि आचार्य चाणक्य प्रधानमत्री होते	आर्यसमाज दीवानहास, दिल्ली (१६५६ ई)
४०	रघुवश (हिन्दी अनुवाद)	राजपाल एड सस, दिल्ली (१६५४ ई)
४१	राष्ट्रीयता का मूल मत्र	गुरुकुल कागडी, हरिद्वार (१६१४ ई)
४२	राष्ट्रो की उन्नति	गुरुकुल कागडी, हरिद्वार (१६१४ ई)
४३	लाला लाजपतराय	(अनुपलब्ध एव दुर्लभ ग्रथ)
४४	लोकमान्य तिलक और उनका युग	ससता साहित्य मडल, दिल्ली (१६६३ ई)
४५.	वर्ण व्यवस्था (शास्त्रार्थ)	गुरुकुल कागडी, हरिद्वार (१६१६ ई)
४६	वैदिक देवता	(अनुपलब्ध एव दुर्लभ ग्रथ)
४७	शाह आलम की ऑखें	नालन्दा प्रकाशन, बबई (१६३२ ई)
४८	सस्कृत साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन	गुकुल कागडी, हरिद्वार (१६१६ ई)
४६	सम्राट् रघु	विजय पुस्तक भडार, दिल्ली (१६४७ ई)
५०	सरला	वाचस्पति पुस्तक भडार, दिल्ली (१६४५ ई)
५१.	सरला की भाभी	वाचस्पति पुस्तक भडार, दिल्ली (१६५४ ई)
५२.	स्वतत्र भारत की रूपरेखा	विजय पुस्तक भडार, दिल्ली (१६४७ ई)
५३.	स्वराज्य और चरित्र निर्माण	वाचस्पति पुस्तक भडार, दिल्ली (१६५४ ई.)
५४	स्वर्ण देश का उद्धार	गुरुकुल कागडी, हरिद्वार (१६२१ ई.)

५५ स्वाधीनता सग्राम मे आर्यसमाज का भाग — सा आ प्र.स., दिल्ली (१६८५ ई.)
५६ हमारे कर्मयोगी राष्ट्रपति — आत्माराम एड सस, दिल्ली (१६५२ ई.)
५७ हृदयोद्गार — गुरुकुल कागडी, हरिद्वार (१६१६ ई)

(ख) संदर्भ ग्रंथों तथा पत्र-पत्रकाओं की सूची

१ अतीत के चलचित्र महादेवी वर्मा — भारती भडार प्रयाग (२०१७ विक्रमी)
२ अतीत से वर्तमान राहुल साकृत्यायन — विद्यामादिर प्रेस, वाराणसी (१६५६ ई)
३ अनुवाद क्या है ? डॉ राजमल बोरा — वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली (१६६३ ई)
४ अनुसधान की प्रक्रिया डॉ सावित्री सिन्हा, विजयेद्र स्नातक — नेशनल, दिल्ली (१६६० ई)
५ अनूदित हिदी साहित्य स आत्माराम सेठी — इडियन डॉक्यूमेटेशन सर्विस, गुडगाव हरियाणा (१६८१ ई)
६ अवतरण शोध तन्त्र के सदर्भ मे डॉ चन्द्रभानु सोनवणे — आलोक प्रकाशन औरगाबाद (१६६० ई)
७ अशोक के फूल आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी — लोक भारती इलाहाबाद (१६७१ ई)
८ आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी व्यक्तित्व एव कृतित्व शैव्या झा — अनुपम प्रकाशन, पटना (१६७१ ई)
६ आत्मकथा नारायण स्वामी — आर्य साहित्य सदन, देहली, शाहदरा (१६४३ ई)
१० आत्मकथा डॉ राजेद्रप्रसाद — सस्ता साहित्य मडल, नई दिल्ली (१६६२ ई)
११ आधुनिक पत्रकार कला रामकृष्ण रघुनाथ खाडिलकर — ज्ञान मडल, वाराणसी (१६५३ ई)
१२ आधुनिक भारत . आचार्य जावेडेकर — सस्ता साहित्य मडल, नई दिल्ली
१३ आधुनिक हिन्दी का जीवनी परक साहित्य . डॉ शाति खन्ना — सन्मार्ग दिल्ली (१६७३ ई.)
१४ आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान डॉ देवराज उपाध्याय — साहित्य भवन, प्रयाग (१६६३ ई)
१५ आधुनिक हिन्दी गद्य डॉ. हरदयाल — आदर्श साहित्य प्रकाशन, दिल्ली (१६७२ ई.)
१६. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास · डॉ श्रीकृष्णलाल — हिन्दी परिषद, प्रयाग विश्वविद्यालय (१६६५ ई.)

१७. आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास मे सरस्वती का योगदान डॉ सत बख्शसिह — साहित्यालोक, कानपुर (१६८६ ई)

१८. आर्यसमाज का इतिहास–भाग–५,६,७ स डॉ सत्यकेतु विद्यालकार, श्री हरिदत्त वेदालकार, डॉ भवानीलाल भारतीय — आर्य स्वाध्याय केन्द्र, दिल्ली (१६८६, १६८७, १६८८ ई)

१६. आर्यसमाज के पत्र और पत्रकार डॉ. भवानीलाल भारतीय — परोपकारिणी सभा, अजमेर (१६८१ ई)

२० आर्यसमाज के शास्त्रार्थ महारथी . डॉ भवानी भारतीय — परोपकारिणी सभा, अजमेर (२०२७ वि)

२१ आर्याभिविनय स्वामी दयानन्द सरस्वती — रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर (१६६१ ई.)

२२ आस्यैक्टस ऑफ बायोग्राफी आद्रे मारवा — कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, लदन (१६२६ ई)

२३ इतिहास प्रवेश जयचद्र विद्यालकार — सरस्वती प्रकाशन मदिर, प्रयाग (१६४१ ई)

२४ इन्द्र विद्यावाचस्पति विजयेन्द्र स्नातक — साहित्य अकादेमी, दिल्ली (१६६३ ई)

२५ इन्द्र विद्यावाचस्पति . सत्यकाम विद्यालकार, अवनीन्द्र विद्यालकार — आर्य केन्द्रीय प्रचार समिति, दिल्ली (२०२३ वि)

२६ ईशवास्योपनिषद् . अनु.अज्ञात — गीता प्रेस, गोरखपुर (२०३५ वि)

२७ ईशावास्योपनिषद् . व्याख्याता– आचार्य रजनीश — पारस प्रकाशन, इलाहाबाद (१६७१ ई)

२८ उपन्यास और लोकजीवन . रैल फाक्स-भूमिका–डॉ रामविलास शर्मा — पीपल्स पब्लिशिग हाउस, दिल्ली (१६५७ ई)

२६ ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज की संस्कृत साहित्य को देन भवानीलाल भारतीय — रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ (२०२५ वि.)

३०. एकादशोपनिषद् सत्यव्रत सिद्धांतालकार — विद्याविहार, देहरादून (१६५४ ई)

३१. ऐमीनेंट विकटोरियस लिटन स्ट्रेची — चैटो एण्ड विण्डस, लदन (१६५७ ई)

३२. कल्याण मार्ग का पथिक . स्वामी श्रद्धानंद — गोविंदराम हासानंद, दिल्ली (१६८७ ई.)

३३. काँग्रेस का इतिहास : डॉ. पट्टाभि सीतारमय्या — सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली (१६५८)

३४. कालिदास के पक्षी . हरिदत्त वेदालकार — गुरुकुल कागड़ी, हरिद्वार (१६६४ ई.)

३५. काव्य के रुप : बाबू गुलाबराय — प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली (१६५० ई.)

३६. काशी की पाण्डित्य परपरा : आचार्य बलदेव उपाध्याय — विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी (१६८३ ई.)

३७	किरातार्जुनीय मराठी अनु. अज्ञात सं. नारायण आचार्य	निर्णयसागर प्रेस, मबई (१९५४ ई)
३८	किरातार्जुनीय अनु गगाधर शर्मा मिश्र	चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी (१६७३ ई)
३६	कुछ विचारभाग १ प्रेमचद	सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद (१६६१ ई.)
४०	कुटज आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी	नैवेद्य निकेतन, वाराण्सी (१६६४ ई)
४१	कुमारसभव अनु महावीरप्रसाद द्विवेदी	इडियन प्रेस, इलाहाबाद (१६५१ ई)
४२.	केळकर : प्रभाकर पाध्ये	केसरी प्रकाशन, दिल्ली (१६७२ ई)
४३	खट्टी–मीठी यादे–स्वामी विद्यानद सरस्वती	भगवती प्रकाशन, दिल्ली (१६८८ ई)
४४	गणेश शकर विद्यार्थी डॉ. लल्लन मिश्र	संजयय बुक सेटर, वाराणसी (१६८८ ई)
४५	गीतामृत मैथिलीशरण गुप्त	चिरगाव, झासी (१६८२ ई)
४६	गुरुकुल के स्नातक स. हरिदत्त, रामेश बेदी, शकरदेव	गुरुकुल कागडी, हरिद्वार
४७.	गृह राजनीतिक विभाग कार्यवाही	राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली (१६१६ ई)
४८	चाबुक . सूर्यकात त्रिपाठी निराला	निरुपमा प्रकाशन, दिल्ली
४६	चेतना का सस्कार स डॉ. विश्वनाथ प्रताप तिवारी	वाणी प्रकाशन दिल्ली
५०	जतिभेद निर्मूलन डॉ भीमराव आबेडकर	प्रज्ञा प्रकाशन मडळ नागपुर (१६३६ ई.)
५१	जीवन सघर्ष सत्यदेव विद्यालकार	राजपाल एड सस, दिल्ली (१६६३ ई)
५२	डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिट्रेचर · टी शिप्ले	दि फिलोसॉफिकल लाइब्रेरी, न्यूयार्क (१६४३ ई.)
५३	दयानन्द कम्मेमोरेशन वाल्यूम · सं हरविलास शारदा	परोपकारिणी सभा, अजमेर (१६३३ ई)
५४	दि इन्साइकलोपीडिया अमेरिकना	अमेरिकना कारप न्यूयार्क (१६६१ ई.)
५५.	दि इन्साइकलोपीडिया ब्रिटानिका	इन्साइकोपीडिया ब्रिटानिका इन्क, लदन (१६६५ ई.)
५६.	दि गवर्नमेट ऑफ इण्डिया . रेम्जे मॅक्डोनल्ड	लदन स्वर्थ मोर प्रेस (१६२३ ई)
५७	दि डाक्ट्रिन ऑफ पैसिव रेसिस्टेंस' अरविद घोष	'वद मातरम' में प्रकाशित लेखमाला (१६०७ ई)
५८	दि डिस्कवरी ऑफ इण्डिया जवाहरलाल नेहरू	दि सिनगट प्रग कलकत्ता (१६४६ ई)
५६	दि लाइफ ऑफ रामकृष्ण : रोमा रोलॉ	अद्वैताश्रम, अल्माडा (१६५३ ई)

६०.	दि हिस्टॉरिकल नॉवल्ज जॉर्ज ल्यूकाक्स	मर्लिन प्रेस, लंदन (१९६२ ई)
६१.	दीवान–ए–गालिब सं. मालिकराम	गलिब इस्टीट्यूट, नई दिल्ली (१९७६ ई.)
६२	नारायण अभिनदन ग्रथ सं महेन्द्रप्रताप शास्त्री	सार्वदेशिक सभा, दिल्ली (१९४५ ई.)
६३.	निराला और नवजागरण डॉ रामरतन भटनागर	साथी प्रकाशन, सागर (म प्र)
६४.	नेताजी सुभाष दर्शन . श्रीकृष्ण सरल	जन कल्याण पब्लिकेशस, उज्जैन (म प्र)
६५	प बालकृष्ण भट्ट व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ मधुकर भट्ट	बालकृष्ण प्रकाशन, वारणसी (१९७२ ई)
६६	पद्माकर पचामृत . स. विश्वनाथप्रसाद मिश्र	वाराणसी (१९३५ ई.)
६७	पत प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त रामधारीसिह दिनकर	उदयाचल प्रकाशन–पटना १९५८
६८.	पत्रकार प्रेमचद और हस डॉ रत्नाकर	राजेश प्रकाशन, दिल्ली (१९८० ई)
६९	पुरातत्व निबधावली राहुल साकृत्यायन	इडियन प्रेस, इलाहाबाद (१९५६ ई.)
७०	प्रबध प्रतिमा सूर्यकात त्रिपाठी निराला	भारती भडार, प्रयाग (१९६३ ई)
७१	प्रेमचद विश्वकोष– भाग – १ स डॉ कमलकिशोर गोयनका	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली (१९८१ ई)
७२	बदी घर के विचित्र अनुभव स प्रा राजेन्द्र जिज्ञासु	स्वामी स्वतत्रानद शोध सस्थान, अबोहर (१९८५ ई)
७३	बदी जीवन शचींद्रनाथ सान्याल	आत्माराम एड सस, दिल्ली (१९६३ ई)
७४	बांसुरी रवीद्रनाथ ठाकुर – अनु धन्यकुमार जैन	हिद पाकेट बुक्स, शाहदरा–दिल्ली (१९७० ई)
७५	बृहद हिन्दी पत्रकारिता कोश डॉ प्रतापनारायण टडन	साहित्य शिल्पी प्रकाशन, लखनऊ (१९८६ ई)
७६	भरतखड पर्व गोपालराव हरि देशमुख लोकहितवादी	पुणे (१८५१ ई)
७७.	भारत का सास्कृतिक इतिहास हरिदत्त वेदालकार	आत्माराम एड सस, दिल्ली (१९६२ ई)
७८	भारत मे अँग्रेजी राज : भाग – १	सूचना एव प्रसारण मत्रलय, प्रकाशन, दिल्ली (१९६० ई)
७९.	भारतीय राष्ट्रवाद एव आर्यसमाज का आदोलन . प्रो विजद्रपालसिह	वि भू. प्रकाशन, साहिबाबाद (१९७७ ई)
८०	भारतीय साहित्य कोश . स डॉ नगेन्द्र	नेशनल पब्लिशिग हाउस, दिल्ली (१९८१ ई)

८१	भारतीय स्वाधीनता सग्राम और आर्यसमाज · डॉ चन्द्रभानु सोनवणे	पचशील प्रकाशन, जयपुर (१६७७ ई)
८३	भारतेन्दु युग डॉ रामविलास शर्मा	विनोद पुस्तक मदिर, आगरा (१६५१ ई)
८४	मध्यकालीन धर्म साधना आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी	साहित्य भवन, इलाहाबाद (१६५६ ई.)
८५	महात्मा गाधी याचे सकलित वाड्मय खड–२४ अनु त्र्य र देवगिरीकर	महात्मा गाधी वाड्मय प्रकाशन समिति, मुबई (१६७५ ई)
८६	महादेवी साहित्य भाग–१ · स ओकार शरद्	सेतु प्रकाशन, झासी (१६६६ ई)
८७	महापडित राहुल साकृत्यायन का सर्जनात्मक साहित्य डॉ रवेलचद	शारदा प्रकाशन, दिल्ली (१६७३ ई)
८८	महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी जवजागरण रामविलास शर्मा	राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली (१६७७ ई)
८६	माधवराव स्प्रे गोविदराव हार्डीकर	जबलपुर (१६५० ई)
६०	मृतक श्राद्ध पर विचार स. मुशीराम जिज्ञासु	गुरुकुल कागडी, हरिद्वार (१६१६ ई)
६२	मेरी कहानी . प ज्वाहरलाल नेहरू	सस्ता साहित्य मडल, दिल्ली (१६६२ ई)
६३	मेरे समकालीन . महात्मा गाधी–स विष्णु प्रभाकर	सस्ता साहित्य, मडल, दिल्ली
६४	मैथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य : दानबहादुर पाठक	विनोद पुस्तक मदिर, आगरा (१६६६ ई)
६५	रघुवश मराठी अनु गणेश शास्त्री लेले त्र्यबककर	महाराष्ट्र साहित्य परिषद, सोलापुर, पॉप्युलर प्रकाशन, मुबई (१६६३ ई)
६६	रघुवश महाकाव्यम् अनु. हरगोविद मिश्र	चौरवभा विद्या भवन, वाराणसी (१६६२ ई)
६७	रणजीत चरित . सतराम बी.ए	आत्माराम एड सस, लाहौर (१६५८ ई)
६८	राजधर्म . स. लक्ष्मीदत्त दीक्षित	सार्वदेशिक प्रेस, देहली (१६५० ई)
६६	राष्ट्रीय आदोलन का इतिहास मन्मथनाथ गुप्त	शिवलाल अग्रवाल बड कपनी, आगरा (१६६२ ई.)
१००	लघु इतिहास प्रवेश जयचन्द्र विद्यालकार	हिन्दी भवन, जालधर (१६५१ ई)
१०१.	लोकमान्य टिळक याच्या आठवणी व आख्यायिका सदाशिव विनायक बापट	घर नं. ५६६, नारायण पेठ पुणे (१६२४ ई.)
१०२	वदना के स्वर . स क्षेमचंद्र सुमन	दयानद संस्थान, नयी दिल्ली
१०३.	वन माईटी टॉरैंट एडगर जॉनसन	दि मैकमिलन कपनी, न्यूयार्क (१६५५ ई)
१०४	वासुदेवशरण अग्रवाल व्यक्तित्व एव कृतित्व .डॉ नरेशकुमार	इण्डोविजन प्रा लि. गाजियाबाद (१६८५ ई.)

१०५. विनायकराव अभिनदन ग्रथ स वशीधर विद्यालकार	आर्य प्रतिनिधि सभा, हैदराबाद (१६५६ ई)
१०६ विरजानन्दचरित देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय	आर्य प्रतिनिधि सभा, लखनऊ (१६१६ ई)
१०७ विवेकानद साहित्य–भाग–६	रामकृष्ण आश्रम, नागपुर
१०८. वैदिक गीता भाष्यकार आर्यमुनि	दयानद सस्थान, नयी दिल्ली (२०३३ वि)
१०६ वैदिक वर्ण व्यवस्था और श्राद्ध	किशोर विद्या निकेतन, भदैनी, वाराणसी (१६७६ ई)
११० वैदिक साहित्य कुछ उपलब्धियॉ नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ	गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर (१६७० ई)
१११ शिवपूजन रचनावली ३–४ खड	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद,, पटना (१६५७ ई)
११२ शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त गोविद त्रिगुणायत	भारती साहित्य मदिर, दिलली (१६६८ ई)
११३ शोध प्रविधि डॉ विनय मोहन शर्मा	नेशनल पब्लिशिग हाउस, दिल्ली (१६७३ ई०)
११४ सधिनी महादेवी वर्मा	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
११५ सस्कृति के चार अध्याय रामधारीसिह दिनकर	राजपाल एड सस, दिल्ली (१६५६ ई)
११६ सत्यार्थप्रकाश स्वामी दयानद सरस्वती स युधिष्ठिर मीमासक	रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ–सोनीपत (१६७५ ई)
११७ समाचार पत्रो का इतिहास अबिकाप्रसाद वाजपेयी	ज्ञानमडल, काशी (२०१० वि)
११८ साकल्य शातिप्रिय द्विवेदी	हिंदी प्रचारक पुस्ताकालय, वाराणसी (१६६२ ई)
११६ सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का सत्ताइस वर्षीय इतिहास	सार्वदेशिक सभा, दिल्ली (१६६६ वि)
१२० साहित्य का उद्देश्य : प्रेमचद	हस प्रकाशन, प्रयाग (१६५४ ई)
१२१ साहित्य का श्रेय और प्रेय जैनेन्द्र	पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली (१६६१ ई)
१२२ साहित्य निबधावली राहुल साकृत्यायन	किताब महल, इलाहाबाद (१६६१ ई)
१२३ साहित्य शास्त्र डॉ चन्द्रभानु सोनवणे	आलोक २३६ समर्थनगर, औरगाबाद (१६६२ ई)
१२४ साहित्य शास्त्र डॉ माधव सोनटके	नाथ, नरळीबाग, औरगाबाद (१६६३ ई)
१२५ साहित्य शास्त्र डॉ राजकुमार वर्मा	भारतीय विद्या भवन, इलाहाबाद (१६५६ ई)
१२६ सोशियल बॅक ग्राउण्ड ऑफ इडियन नेशनलिज्म ए आर देसाई	पॉप्युलर प्रकाशन, बबई (१६४८ ई)

१२७ स्वामी श्रद्धानद ग्रंथावली–खंड–नौ अनु प्रा राजेन्द्र जिज्ञासु — गोविंदराम हासानद, दिल्ली, (१६८७ ई.)

१२८ हिन्दी आदोलन स लक्ष्मीकांत वर्मा — हिन्दी साहित्य समेलन, प्रयाग (१६६४ ई.)

१२६ हिन्दी का सस्मरण साहित्य · कामेश्वरशरण सहाय — विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, (१६८२ ई.)

१३० हिन्दी की पत्र–पत्रिकाये . अखिल विनय — हिदी साहित्य समिति, पिलानी (१६४८ ई)

१३१ हिन्दी के मनौवैज्ञानिक उपन्यास डॉ धनराज मानधने — ग्रथम् कानपुर (१६७१ ई)

१३२. हिन्दी गद्य विधाये और विकास · डॉ. पद्मसिह शर्मा कमलेश — बसल एड कपनी, दिल्ली (१६६१ ई)

१३३ हिन्दी गद्य साहित्य डॉ चन्द्रभानु सोनवणे — ग्रथम् प्रकाशन, कानपुर (१६७५ ई)

१३४ हिन्द्री जीवनी साहित्य सिद्धात और अध्ययन डॉ भगवानशरण भारद्वाज — परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद (१६७८ ई)

१३५ हिन्दी नाटक कोश डॉ. दशरथ ओझा — नेशनल पब्लिशिग हाउस, दिल्ली (१६७५ ई.)

१३६ हिन्दी पत्रकारिता और राष्ट्रीय आदोलन — कलकत्ता (१६७६ ई.)

१३७. हिन्दी पत्रकारिता और राष्ट्रीय आदोलन राजीव दुबे — सत्येन्द्र प्रकाशन, इलाहाबाद (१६८८ ई.)

१३८. हिन्दी पत्रकारिता का आलोचनात्मक इतिहास डॉ रमेश कुमार जैन — हसा प्रकाशन जयपुर १६८७

१३६. हिन्दी पत्रकारिता का विविध आयाम डॉ. वेदप्रताप वैदिक — नेशनल पब्लिशिग हाउस, नई दिल्ली (१६७६ ई.)

१४० हिन्दी पत्रो के सपादक बी एस ठाकुर . सुशीला पाडेय — स्वतंत्र प्रकाशन मंडल, लखनऊ (१६४० ई.)

१४१ हिन्दी भाषा और साहित्य को आर्यसमाज की देन : लक्ष्मीनारायण गुप्त — लखनऊ विश्वविद्यालय प्रकाशन, लखनऊ (२०१८ वि.)

१४२. हिन्दी रेखाचित्र : डॉ हरवशलाल वर्मा — हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ, उ प्र (१६६१ ई.)

१४३ हिन्दी वाड्मय बीसवीं शती . सं डॉ नगेन्द्र — विनोद पुस्तक मदिर, आगरा

१४४ हिन्दी विश्वकोश खड–१ . सं धीरेंद्र वर्मा — ना.प्र.स. वाराणसी (१६६० ई.)

१४५ हिन्दी विश्वकोश–खड–१ : स. नगेन्द्रनाथ वसु — बी.बार पब्लिशिग कार्पोरेशन, दिल्ली (१६८६ ई)

१४६ हिन्दी साहित्य का इतिहास स. डॉ. नागेन्द्र नेशनल पब्लिशिग हाउस, दिल्ली (१९७३ ई)

१४७. हिन्दी साहित्य का इतिहास नागरी प्रचारिणी सभा काशी (२००८ वि) आचार्य रामचद्र शुक्ल

१४८ हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास–भाग–१३ ना.प्र.स., काशी डॉ लक्ष्मीनारायण सुधाशु

१४९ हिन्दी साहित्य को आर्यसमाज की देन मधुर प्रकाशन, दिल्ली (१९७० ई) क्षेमचन्द्र सुमन

१५० हिन्दी साहित्य कोश भाग–२ ज्ञान मडल, काशी (२०२० वि) स धीरेन्द्र वर्मा

१५१ हैदराबाद के आर्यो की साधना और गोविदराम हासानद, दिल्ली (१९७३ ई.) सघर्ष प नरेन्द्र

पत्र-पत्रिकाएँ :- अजन्ता, अमृत बाजार पत्रिका, आजकल, आर्य जगत्, आर्य मर्यादा, आर्यमित्र, आर्य सदेश, आर्योदय, आलोचना, गुरुकुल पत्रिका, जन ज्ञान, ज्ञानोदय, टकारा पत्रिका, दि आर्य मेसेजर, धर्मयुग, नया जीवन, नवजीवन, नवनीत, प्रकर, प्रह्लाद, मर्यादा, माधुरी, वदे मातरम्, विकास, विजय, विशाल भारत, वीर अर्जुन, वेद प्रकाश, वेदवाणी, वैदिक अनुसधान, संमेलन पत्रिका, सद्धर्म प्रचारक, सरस्वती, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, सार्वदेशिक, हस, हिन्दी केसरी, हिन्दी नवजीवन आदि.